MAPSY 04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

Social and Cultural Psychology

सामाजिक एवं सांस्कृतिक मनोविज्ञान

MAPSY 04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

संरक्षक	अध्यक्ष
प्रो. अशोक शर्मा	**प्रो. एल.आर. गुर्जर**
कुलपति	निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक एवं सदस्य

** संयोजक	* संयोजक
डॉ. अनिल कुमार जैन	**डॉ. रजनी रंजन सिंह**
सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ	सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

प्रो. (डॉ) एल.आर. गुर्जर	**प्रो. एच. बी. नंदवाना**
निदेशक (अकादमिक)	निदेशक, सतत शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
प्रो. विजयलक्ष्मी चौहान (सेवानिवृत्त)	**प्रो.आशा हिंगर (सेवानिवृत्त)**
मनोविज्ञान विभाग	मनोविज्ञान विभाग
मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर	राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
प्रो. दामीना चौधरी (सेवानिवृत्त)	**डॉ. रजनी रंजन सिंह**
शिक्षा विद्यापीठ	सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. अनिल कुमार जैन	**डॉ. कीर्ति सिंह**
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ	सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा
डॉ. पतंजलि मिश्र	**डॉ. अखिलेश कुमार**
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ	सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

*डॉ. रजनी रंजन सिंह ,सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ 13.06.2015 तक

** डॉ. अनिल कुमार जैन, सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ 14.06.2015 से निरन्तर

समन्वयक एवं सम्पादक

समन्वयक
डॉ. अनिल कुमार जैन
सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विषय वस्तु एवं भाषा संबंधीसम्पादन
डॉ. कीर्ति सिंह
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

इकाई लेखन

1 **डॉ. हनुमान सहाय शर्मा** (इकाई 1,2)
रीडर निम्बार्क टीटी कॉलेज
उदयपुर

2 **डॉ. कमलेश झा,** (इकाई 3,10)
सहायक प्रोफेसर राजकीय आईएएसई,
बीकानेर

3 **डॉ. प्रीति सिंह** (इकाई 4,5,6, 11)
पोस्ट डॉक्टरल फैलो
जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

4 **डॉ. अंबा लाल लोहिया** (इकाई 7,8,9)
मनोविज्ञान विभाग
मीरा गवर्नमेंट गर्ल्स पीजी कॉलेज, उदयपुर

5 **श्री संजय कुमार** (इकाई 12)
व्याख्याता
प्रारंभ शिक्षक शिक्षा विद्यापीठ
झझर, हरियाणा

6 **डॉ. कीर्ति सिंह** (इकाई 13 , 14, 16,17,18, 20)
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

7 **डॉ. पतंजलि मिश्र** (इकाई 15)
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

8 **डॉ. सरिता गौतम** (इकाई 19)
सहायक आचार्य
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

आभार

प्रो. विनय कुमार पाठक
पूर्व कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. अशोक शर्मा
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो .एल.आर .गुर्जर
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो. करण सिंह
निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

डॉ. सुबोध कुमार
अतिरिक्त निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

उत्पादन 2015, ISBN : 978-81-8496-508-7

इस सामग्री के किसी भी अंश को व.म.खु.वि.वि., कोटा, की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। व.म.खु.वि.वि., कोटा के लिए कुलसचिव, व.म.खु.वि.वि., कोटा (राजस्थान) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

MAPSY 04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई सं.	इकाई का नाम	पेज नं.
1	सामाजिक व्यवहार की समझ : अनुकरण, सुझाव और सहानुभूति	1
2	सामाजिक मनोविज्ञान के विषय - प्रकृत्ति, क्षेत्र एवं सार्थकता	17
3	सामाजिक व्यवहार के लिए उपागम – अवलोकन, सर्वेक्षण, वैयक्तिक अध्ययन, समाजमिति, प्रयोगात्मक	28
4	अभिवृत्ति- अर्थ, प्रकृति एवं संघटक	51
5	अभिवृत्ति का विकास एवं निर्माण तथा अभिवृत्ति मापन	61
6	अभिवृत्ति परिवर्तन- कारक एवं सिद्धान्त	80
7	पूर्वाग्रह का अर्थ और विशेषता पूर्वाग्रह के प्रकार	104
8	पूर्वाग्रह के कारण, पूर्वाग्रह, विभेदन और स्थिर धारणा में अंतर	114
9	पूर्वाग्रह को कम करने की विधियां भारत में साम्प्रदायिकता	125
10	समूह : अर्थ, प्रकार,संरचना एवं कार्य	135
11	समूह प्रभावशीलता- कारक, समूह समग्रता- कारक	149
12	सामाजिक सरलीकरण, भीड़, सामाजिक श्रमानवयन, निर्वैयक्तिता	160
13	संस्कृति का अर्थ एव विशेषताएँ, संस्कृति के प्रकार	176
14	संस्कृति एवं व्यक्तित्व	199
15	राष्ट्रीय चरित्र	209
16	अर्थ और प्रकृति,नेतृत्व के प्रकार, नेतृत्व का उद्भव , नेतृत्व के गुण, सत्ताधारी और प्रजातान्त्रिक नेतृत्व में अंतर	220
17	सामाजिक समस्याओं का अर्थ और विशेषताएँ, सामाजिक समस्याओँ के प्रकार	241
18	निरक्षरता,निर्धनता,और बेरोज़गारी	252
19	जनसंख्या विस्फोट, लैंगिक असमानता , नगरीकरण एवं आधुनिकीकरण	293
20	सामाजिक शोषण,बाल श्रम , सामाजिक एवं घरेलु हिंसा , कार्यस्थल शोषण , विभिन्न सामाजिक समस्याओँ के समाधान	321

इकाई - 1

सामाजिक व्यवहार की समझ : अनुकरण, सुझाव और सहानुभूति

Understanding Social Behaviour Imitation, Suggestion, Sympathy

---

इकाई की रूपरेखा :

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 अनुकरण

- 1.3.1 अनुकरण की परिभाषा
- 1.3.2 अनुकरण के प्रकार
- 1.3.3 अनुकरण का सामाजिक जीवन में महत्व
- 1.3.4 अनुकरण के नियम
- 1.3.5 अनुकरण के सिद्धान्त

1.4 सुझाव

- 1.4.1 सुझाव की परिभाषा
- 1.4.2 सुझाव के स्वरूप
- 1.4.3 सुझाव के प्रकार
- 1.4.4 सुझाव का सामाजिक जीवन में महत्त्व
- 1.4.5 सुझाव को प्रभावपूर्ण बनाने वाली परिस्थितियाँ

1.5 सहानुभूति

- 1.5.1 सहानुभूति की परिभाषा
- 1.5.2 सहानुभूति के आवश्यक तत्व
- 1.5.3 सहानुभूति के प्रकार
- 1.5.4 सामाजिक जीवन में सहानुभूति का महत्त्व

1.6 सारांश

1.8 कठिन शब्द

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.1 प्रस्तावना

मैग्डुगल ने चौदह मूल प्रवृत्तियाँ बताई है | मूल प्रवृत्तियों के साथ-साथ कुछ सामान्य प्रवृत्तियों का वर्णन भी किया है, जिन्हें छद्म मूल प्रवृत्तियाँ कहा है | छद्म मूल प्रवृत्तियाँ जन्मजात मूल प्रवृत्तियाँ न होकर सामाजिक- मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ है | ये तीन प्रक्रियाएँ या मेकैनिजम्स एक है क्योंकि इनके द्वारा व्यक्ति की क्रियाओं और मानसिक स्थितियों का दूसरे व्यक्ति की क्रियाओं, मानसिक स्थितियों के साथ समायोजन स्थापित हो जाता है | सामाजिक आत्मीकरण का ज्ञानात्मक पक्ष सुझाव भावात्मक पक्ष सहानुभूति तथा क्रियात्मक पक्ष अनुकरण है| अनुकरण सहानुभूति व सुझाव एक दूसरे पृथक नहीं है, अपितु एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है | इसमें प्रत्येक की प्रक्रिया में दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच अन्त:क्रिया अवश्य होती है |

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :-

- अनुकरण का अर्थ व परिभाषा को जान सकेंगे।
- अनुकरण के प्रकारों को समझ सकेंगे।
- अनुकरण के महत्त्व को स्पष्ट कर सकेंगे।
- अनुकरण के नियम व सिद्धान्तों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- सहानुभूति का अर्थ व परिभाषा को जान सकेंगे।
- सहानुभूति के प्रकार व महत्त्व को समझ सकेंगे।
- सहानुभूति को स्पष्ट करने वाली परिस्थितियों की व्याख्या कर सकेंगे।
- सुझाव का अर्थ व परिभाषा को जान सकेंगे।
- सुझाव के स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे।
- सुझाव के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- सुझाव को प्रभावपूर्ण बनाने वाली परिस्थितियों की व्याख्या कर सकेंगे।

1.3 अनुकरण (Imitation)

अनुकरण का मतलब हम ऐसे काम से समझते है, जो दूसरों के भाँति होते हैं, जब किसी को रोता देखकर हम भी रोने लगते है या दूसरों को दौड़ते देखकर हम भी दौड़ने लगते हैं, तो इन क्रियाओं को सामान्यत: अनुकरण कहते हैं | बैगहार व टार्ड ने तो सांस्कृतिक प्रसार को भी अनुकरण-प्रक्रिया में सम्मिलित किया है। बाल्डविड ने तो सीखने की प्रक्रिया को भी अनुकरण माना है |

इस प्रक्रिया को रोजमरा-दैनिक जीवन में क्रियाशील देखते हैं माँ को ईश्वर के सामने प्रणाम करते देखकर लड़की भी ईश्वर को प्रणाम करने के लिए झुकती है, बड़े भाई को लिखते देखकर छोटा भाई भी पैन लेकर उल्टी सीधी रेखायें खींचकर लिखने की क्रिया की नकल करता है, इस प्रकार बच्चे अपने परिवार के लोगों की, खेल के साथियों की, विद्यालय के शिक्षकों की नकल उतारते है, बड़े होकर सिने-अभिनेता व अभिनेत्रियों की पोशाक, मुद्राओं व केश-विन्याश के ढंग की नकल करते हैं | यही अनुकरण है, जिससे सामाजिक व्यवहार की समझ विकसित होती है ।

1.3.1 अनुकरण की परिभाषा (Defination of Imitation)

लिन्टन के अनुसार, ''अनुकरण से तात्पर्य दूसरों के व्यवहार की नकल करना है, चाहे नकल करने वाले व्यक्ति को उस व्यवहार के विषय में जानकारी प्रत्यक्ष निरीक्षण द्वारा या किसी से सुनकर या अधिक प्रगतिशील समाजों में पढ़कर ही मिली हो ।''

मैग्डुगल **(1960)** के अनुसार - ''अनुकरण केवल एक मनुष्य द्वारा किसी दूसरे मनुष्य के शरीर सम्बन्धी व्यवहार-क्रियाओं की नकल करने को कहते है।''

एस.जी. हुलयालकर एवं अन्य **(1956)** के अनुसार - ''अनुकरण दूसरों के व्यवहार का पुनरावृत्ति (Reproduction) है।''

जी.एम. मीड **(1960)** के अनुसार ''दूसरों के कार्यों या व्यवहारों को जानबूझ कर अपनाने को अनुकरण कहते है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अनुकरण एक प्रकार का सामाजिक और सीखा हुआ व्यवहार है, जिसमें दूसरों के व्यवहार को देखकर उसकी प्रतिकृति (Duplicate) अपने व्यवहार में उतारी जाती है |

1.3.2 अनुकरण के प्रकार (Types of Imitiation)

अलग-अलग मनोवैज्ञानिकों ने अनुकरण के अलग-अलग प्रकार बताये है, मैग्डुगल ने तीन मुख्य व दो गौण अनुकरण का उल्लेख किया है, वहीँ गिन्सबर्ग ने तीन प्रकारों का उल्लेख किया है | ड्रीवर ने अनुकरण के दो प्रकार बताये है | मनोवैज्ञानिकों द्वारा बताए गए अनुकरण के प्रकार निम्नलिखित हैं-

मैग्डुगल के अनुसार

1.3.2.1 सहानुभूतिपूर्ण अनुकरण

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस प्रकार के अनुकरण में एक व्यक्ति दूसरे के व्यवहारों का अनुकरण सहानुभूति की भावना से प्रेरित होकर करता है | दूसरों को रोता देखकर रोने लगे या दूसरों को हँसता देखकर हँसने लगे तो इस प्रकार के अनुकरण को सहानुभूति पूर्ण अनुकरण कहा जाता है | मैग्डुगल का मानना है कि इस प्रकार का अनुकरण पशुओं में भी पाया जाता है, यदि एक जाति का पशु भय या क्रोध से आवाज करता है तो उस जाति के दूसरे जानवर भी उससे अपनी सहानुभूति प्रकट करने के लिए उसी प्रकार की आवाज करते हैं परन्तु मैग्डुगल के इस मत से पूर्णतया सहमत होना कठिन है | यह आवश्यक नहीं है कि गुस्से से भरे एक व्यक्ति को देखकर

अन्य व्यक्ति को भी गुस्सा आ ही जाये हो सकता है दूसरे व्यक्ति उसे गुस्से में देखकर स्वयं भी गुस्सा होने के बजाय उस पर आश्चर्य प्रकट करें या उसका मजाक उड़ायें।

1.3.2.2 विचार चालक अनुकरण

इस अनुकरण को स्वत: अनुकरण भी कहते हैं | जब कोई व्यक्ति अपनी किसी क्रिया से किसी दूसरे को भी उसी के समान कार्य करने को प्रेरित करता है तो उसे विचार चालक अनुकरण कहते है | उदाहरण के लिए स्टेज पर नर्तकी को नाचते देखकर दर्शक भी अपने पैरों को नृत्य की मुद्रा में हिलाने लगता है, मैग्डुगल का मानना है कि बच्चों द्वारा की गई अनेक अनुकरणात्मक क्रियाएँ इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती है । जैसे अध्यापक द्वारा पढ़ाते समय कोई आदेश या बताते है तो बालक उस मुद्रा का अनुकरण जल्दी ही कर लेता है ।

1.3.2.3 ऐच्छिक या-जानबूझ कर किया गया अनुकरण

अनुकरण करता जिसे अपना आदर्श समझता है उसके व्यवहार का अनुकरण करता है, उसे ऐच्छिक या जानबूझ कर किया गया अनुकरण कहते हैं जैसे किसी प्रिय अध्यापक के पढ़ाते समय किये गये हाव, भाव, मुद्रा का स्वयं अध्ययन करते समय छात्र अनुकरण करता है या अपने किसी प्रिय अभिनेता या अभिनेत्री के केश विन्यास, हाव-भाव, मुख मुद्राओं का अनुकरण करने लगते हैं | कुछ लोग अपने माता या पिता के व्यवहारों का सचेतरूप में अनुकरण करने लगते हैं |

1.3.2.4 संचेत विचार चालक अनुकरण

मैग्डुगल के द्वितीय व तृतीय प्रकार के मुख्य गुणों के मिश्रण के अनुकरण प्रक्रिया संचेत विचार चालक अनुकरण है | जैसे एक बालक किसी व्यस्क को आग में कागज फैंकते और आग को भड़काते देखता है | भड़कती आग उसका ध्यान आकर्षित करती है और उसके मस्तिष्क में आग भड़काने के सम्बन्ध में विचार उत्पन्न होता है जब वह बालक अपने को आग व कागज के पास पाता है तो तुरन्त उसका पिछला विचार सचेत क्रिया में बदल जाता है और वह व्यस्क व्यक्ति में व्यवहार की नकल करने लगता है |

1.3.2.5 आरम्भिक अनुकरण

यह अनुकरण का प्रारम्भिक शुद्ध व सरलतम रूप है जो छोटे बच्चों में देखने को मिलता है | इस अनुकरण में न तो किसी भाव का न ही किसी उद्वेग को अभिव्यक्त करता है यह तो स्वाभाविक मौलिक मूल प्रवृत्तियों का परिणाम है | यह उपकरण चार के बालक में देखने को मिलता है, जिसमें दूसरे व्यक्ति को जीभ निकालते देखकर स्वयं की जीभ निकाल देता है |

गीन्स बर्ग के अनुसार अनुकरण के तीन प्रकार है :-

1. जैविक अनुकरण

जैविक समानता के कारण जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यवहार या क्रिया की नकल करता है तो उसे जैविक अनुकरण कहते हैं | यह अनुकरण मूलप्रत्यात्मक स्तर पर होता है | जैसे एक कुत्ते को भौंकते देखकर अन्य कुत्ते भी भौंकने लगते है | यह अनुकरण सीखा हुआ न होकर वंशानुक्रमपर आधारित होता है |

2. विचार चालक अनुकरण

यह अनुकरण मैग्डुगल के द्वारा दिये गये अनुकरण के समान है |

3. तार्किक या प्रयोजन मूलक अनुकरण

जब किसी उद्देश्य या प्रयोजन को लेकर विचारपूर्वक अनुकरण किया जाता है तो उसे तार्किक अनुकरण कहते हैं | इंजीनियर या एक अध्यापक से शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति जब स्वयं भी इंजीनियर या अध्यापक बनने के लिए उसके व्यवहारों का अनुकरण करते हैं तो उसे तार्किक या प्रयोजन मूलक अनुकरण कहते हैं | यह अनुकरण मैग्डुगल द्वारा उल्लेखित ऐच्छिक या आत्मसचेत अनुकरण के समान है |

ड्रीवर के अनुसार अनुकरण के दो भाग :-

1. अचेत अनुकरण

जिसमें व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के कार्यों की नकल अचेतन रूप से करता है, उसे अचेत अनुकरण कहते हैं |

2. सचेत अनुकरण

जिसमें व्यक्ति चेतन रूप में किसी आदर्श व्यक्ति का अनुकरण करता है |

1.3.3 अनुकरण का सामाजिक जीवन में महत्व (Importance of Imitation in Social Life)

अनुकरण का सामाजिक जीवन में अपना एक महत्व है, जिसकी अवहेलना किसी भी रूप में नहीं की जा सकती है | जो निम्न प्रकार है :-

1.3.3.1 अनुकरण का सामाजिक अधिगम में महत्व

सामाजिक प्राणी के रूप में यह आवश्यक है कि हम अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये कुछ वैयक्तिक व सामाजिक व्यवहारों को सीख जाये। इस कार्य में अनुकरण हमारी मदद करता है | प्रारम्भ में सामाजिक अधिगम को बालक अनुकरण के आधार पर अपने परिवार में सीखता है | आयु बढ़ने के साथ-साथ वह खेल के साथियों, पड़ोस और स्कूल-कॉलेज के साथियों व शिक्षकों से सीखता है | प्रथा, परम्परा, धर्म, रीति-रिवाज, आदर्श, भाषा आदि को अधिकांशत: अनुकरण के आधार पर सीखता है |

1.3.3.2 व्यक्तित्व के विकास में अनुकरण का महत्व

व्यक्ति का व्यक्तित्व आदतों, विचारों, भावनाओं, आदर्शों का एक संगठित रूप होता है | व्यक्तित्व के इन तत्वों को संकलित करने में अनुकरण का अनुपम योगदान है | इसलिए टी.पी. नन ने कहा है कि अनुकरण व्यक्तित्व विकास की प्रथम सीढ़ी है | अनुकरण के द्वारा हम एक दूसरे की सफलताओं व असफलताओं से लाभ उठाते हैं | इनसे जो अनुभव, विचार, आदत आदि हम अर्जित करते है, वे हमारे व्यक्तित्व का आधार बन जाते हैं |

1.3.3.3 सामाजिक प्रगति की दृष्टि से अनुकरण का महत्त्व

अनुकरण समाज की प्रगति का एक महत्वपूर्ण कारक भी है | सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्ति समाज के महान व्यक्तियों का अनुकरण करके भी महान बन सकता है। साथ ही इस प्रकार प्राप्त प्रतिष्ठा और स्तर की सहायता से अपने समाज को उन्नत कर सकता है | अनुकरण के द्वारा अन्य समाजों के प्रगतिशील विचार, व्यवहार व आचरण अपने पूरे समाज में न केवल फैल जाते हैं, अपितु जनता को प्रगति का मार्ग भी दिखलाते हैं | महान शिक्षकों, महात्माओं, समाज सुधारकों व नेताओं के विचार व आचरणों का अनुकरण भी सामाजिक प्रगति में सहायक सिद्ध होता है |

1.3.3.4 अनुकरण सामाजिक एकरूपता व संगठन की दृष्टि से महत्त्व

अनुकरण के द्वारा समाज के व्यवहार, विचार, आदर्श, आदि समाज के अधिकांश सदस्यों में फैल जाते है साथ ही समाज के सभी सदस्यों में एक समानता का भी विकास होता है | इन सब में समानता का अर्थ होता है, सामाजिक एकरूपता, जिसके आधार पर सामाजिक संगठन का पनपना और बना रहना आसान हो जाता है |

1.3.3.5अनुकरण का वैयक्तिक इच्छाओं की पूर्ति की दृष्टि से महत्व

अनुकरण के द्वारा वैयक्तिक इच्छाओं की पूर्ति भी सम्भव है | इसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न प्रकार के व्यवहारों को सीखकर अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है | सफलता पूर्वक अनुकरण के आधार पर वह कुशल खिलाड़ी, मित्र या कुछ भी बन सकता है | इन्हें बनाये रखने की प्रविधि और अनेक चीजों को व्यक्ति दूसरों का अनुकरण करके ही सीखता है और अपनी इच्छाओं को तुष्ट करता है |

1.3.4 अनुकरण के नियम (Law of Imitation)

अनुकरण की प्रक्रिया से सम्बन्धित सामान्य विशेषताओं को विभिन्न विद्वानों ने कुछ नियमों के रूप में प्रस्तुत किया है | अनुकरण की वास्तविक प्रकृति को समझने के लिए नियमों के बारे में जानना आवश्यक है जो कि निम्नलिखित हैं :-

1.3.4.1 अनुकरण ऊँचे से नीचे की ओर अग्रसर होता है :

इस नियम के अनुसार जिस समूह, समुदाय, वर्ग या व्यक्ति की सामाजिक स्थिति किसी भी रूप में ऊँची होती है, उस समूह वर्ग या व्यक्ति के व्यवहार का अनुकरण उससे निम्न समूह, वर्ग या व्यक्ति के द्वारा किया जाता है | यही कारण है कि शासित वर्ग का अनुकरण शासित वर्ग करता है, नेताओं का अनुकरण अनुयायी वर्ग करता है, सभ्य समाज का अनुकरण आदिम समाज करता है और नगरवासियों का अनुकरण गाँव के लोग करते हैं। क्योंकि उच्चतर सामाजिक स्थिति एक आदर्श स्थिति होती है और आदर्श की नकल सभी करना पसन्द करते हैं।

1.3.4.2 अनुकरण अन्दर से बाहर की ओर अग्रसर होता है

यह नियम इस बात पर बल देता है कि पहले लोग दूसरों के विचारों, आदर्शों, मूल्यों एवं विश्वासों अर्थात आन्तरिक तत्त्वों को अपनाते हैं और उसके बाद दूसरों के बाह्य व्यवहारों का

अनुकरण करते हैं। जैसे हम पहले पाश्चात्य भाषा, संस्कृति से प्रभावित हुए और बाद में इन देशों के लोगों के रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा आदि का अनुकरण करने लगे।

1.3.4.3 अनुकरण ज्योमितीय अनुपात में फैलता है

इस नियम के अनुसार अनुकरण तीव्र गति से फैलता है | तीव्र गति का अर्थ है दो से चार, चार में आठ, आठ में सोलह इसी तरह इसकी गति तीव्र और फिर अधिक तीव्र होती जाती है, फैशन का अनुकरण इसका उदाहरण है।

1.3.4.4 अनुकरण में विचारों के ढंग की अपेक्षा कार्य करने का ढंग अधिक होता है

टार्ड के अनुसार रीति-रिवाज, प्रधानकार्य करने के ढंग विचारों की अपेक्षा अधिक स्थाई होते हैं| विचारों का अनुकरण व्यवहारों की अपेक्षा कम समय तक चलता है | क्योंकि बाहरी व्यवहार, क्रिया आदि को बाहरी तौर पर देखा जा सकता है | इस कारण उनकी नकल उतारना तो आसान होता है, जबकि विचारों को तो मन मस्तिष्क से अनुभव करना पड़ता है। इस कारण विचारों का अनुकरण सरल नहीं होता है।

1.3.5 अनुकरण के सिद्धान्त (Principal of Imitation)

अनुकरण के बेगहाट (1973) तथा टार्डे (1903) के सिद्धान्तों के अतिरिक्त आज नए सिद्धान्तों का प्रतिपादन हो चुका है अत: अनुकरण के प्रचलित सिद्धान्त निम्न है :-

1.3.5.1 बेगहॉट का सिद्धान्त

अनुकरण एक जन्मजात प्रवृत्ति है | बेगहॉट का तो यह भी मानना है कि सभ्य व्यक्तियों की अपेक्षा आदिम जनजातियों के सदस्यों में अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक तीव्र होती थी क्योंकि उनके मूल स्वभाव पर सभ्यता का प्रभाव नहीं पड़ता है | इसी तरह बच्चों को आपने जन्मजात नकलची या नकल उतारने वाला कलाकार कहा है | बैगहाट ने आगे कहा है कि अधिक उन्नत व सुसभ्य समूह और व्यक्ति का अनुकरण पिछड़े हुए समूह और व्यक्ति करते है क्योंकि पिछड़े व्यक्ति या समाज पर उन्नत व्यक्ति या प्रगतिशील समाज का प्रभाव सरलता से पड़ता है |

1.3.5.2 टार्ड का सिद्धान्त

टार्ड के अनुसार अनुकरण को जन्मजात् आवृत्ति है और कहा है कि समाज का आकार या साकार अनुकरण है | समाज की उड़ाने का मुख्य साधन आविष्कार है परन्तु आविष्कार तभी सम्भव है जब अनुकरण के द्वारा हमें नये विचार प्राप्त होते है | अत: आविष्कार अनुकरण पर ही निर्भर नहीं करता, अपितु इनके विस्तार के लिए भी अनुकरण का ही सहारा लेना पड़ता है | इसके अतिरिक्त सामाजिक समानता व एकरूपता भी अनुकरण पर निर्भर करती है |

1.3.5.3 थार्नडाइक का सिद्धान्त

थार्नडाइक ने अपने पशु मनोविज्ञान सम्बन्धित प्रयोगों के आधार पर, अनुकरण एक सीखी हुई यांत्रिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा प्रेरणाओं को सन्तुष्ट किया जाता है | अत: हम उन व्यवहारों का अनुकरण कम करते है जो समाज द्वारा तिरस्कृत है और उन व्यवहारों का अधिक अनुकरण करते है जो समाज द्वारा पुरस्कृत होते हैं |

1.3.5.4 मिलर और डोलार्ड का सिद्धान्त

इनके अनुसार बच्चों में अनुकरण व्यवहार सर्वाधिक पाया जाता है | इन्होंने देखा कि लोग अनुकरण तब करते हैं जब अनुकरण उन्हें सन्तुष्टि दिलवाता है |

1.3.5.5 बन्डूरा साथियों का सिद्धान्त

बन्डूरा व साथियों ने पाया कि बालक उस मॉडल का अनुकरण अधिक करते है जिन्हें पुरस्कृत किया गया। उस व्यहार का अनुकरण नहीं करते जिसके व्यवहार के लिए दण्डित किया जाता है| साथ ही बालकों ने उस मॉडल का अनुकरण भी नहीं किया जिसमें पुरस्कार और दण्ड नहीं होता है |

अभ्यास प्रश्न :- 1

1. अनुकरण को परिभाषित कीजिए।
2. अनुकरण के प्रकारों को स्पष्ट कीजिए।
3. मैग्डुगल के अनुसार अनुकरण के नियम कौन से है? स्पष्ट कीजिए।
4. मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिये गये अनुकरण के सिद्धान्तों को स्पष्ट कीजिए।
5. अनुकरण का सामाजिक दृष्टि से महत्त्व को समझाइये।

1.4 सुझाव (Suggestion)

सामाजिक मनोविज्ञान में सुझाव शब्द का प्रयोग निश्चित अर्थ में होता है, जिसमें दो पक्ष होते है एक पक्ष जो सुझाव प्रस्तुत करता है व दूसरा पक्ष जिसे सुझाव दिया जाता है, और दूसरा पक्ष सामान्यत: उस सुझाव को ग्रहण या स्वीकार कर लेता है।

1.4.1 सुझाव की परिभाषा (Defination of Suggestion)

1. थाउलस **(1951)** के अनुसार, ''सामान्यत: सुझाव शब्द का प्रयोग राष्ट्रीय अनुनय को छोड़कर अन्य किसी ऐसी प्रक्रिया के लिए किया जाता है, जिसके द्वारा विचारों की एक व्यवस्था के प्रति एक मनोवृत्ति को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को सम्प्रेषित किया जाता है।''
2. किम्बल यंग **(1960)** के अनुसार, ''सुझाव शब्दों, चित्रों या ऐसे ही किसी माध्यम द्वारा किये गये प्रतिकात्मक सम्प्रेषण का ऐसा स्वरूप है, जिसका उद्देश्य उस प्रतीक को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करना होता है।''
3. ऑलपोर्ट के अनुसार, ''सुझाव का अर्थ किसी विश्वास अथवा क्रिया के प्रस्ताव को पूर्ण दृढ़ संकल्प के बिना ही स्वीकार कर लेना है ।''
4. आइजेनिक व साथियों **(1972)** के अनुसार, ''सुझाव सम्प्रेषण की वह प्रक्रिया है, जिसमें एक या अधिक व्यक्ति दूसरे एक या अधिक व्यक्तियों के बिना किसी आलोचनात्मक प्रत्युत्तर के निर्णय, मत, अभिवृत्तियाँ आदि या व्यवहार प्रतिमानों के बदलने के कारण होते हैं | यह प्रक्रिया प्रभावित होने वाले व्यक्तियों की जानकारी के बिना चलती रहती है ।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सुझाव सम्प्रेषण की एक प्रक्रिया है, जिसमें एक या अधिक व्यक्तियों द्वारा दिया हुआ प्रस्ताव उचित आधार (आलोचनात्मक प्रत्युत्तर) के बिना स्वीकार कर लिया जाता है |

1.4.2 सुझाव के स्वरूप (Forms of Suggestion)

सुझाव की प्रकृति के आधार पर सुझाव के निम्न चार स्वरूप है :-

1.4.2.1प्रत्यक्ष सुझाव

यह सुझाव का वह स्वरूप है, जिसमें सुझावकर्ता सुझाव को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है | इस सुझाव का धार्मिक, राजनैतिक और व्यापारिक क्षेत्र में अधिक महत्त्व है।

1.4.2.2अप्रत्यक्ष सुझाव

यह सुझाव का वह स्वरूप है, जिसमें सुझाव-कर्ता सुझाव को स्पष्ट रूप से व्यक्त न करके सुझाव के लिए भूमिका बाँधता है कि लोग उसके सुझाव को ग्रहण करले। यह सुझाव भी धार्मिक, राजनैतिक और व्यापारिक क्षेत्रों में अधिक उपयोगी है |

1.4.2.3 सकारात्मक सुझाव

सकारात्मक सुझाव वह सुझाव है जिसमें सुझाव दाता किसी कार्य को अच्छा कहकर या किसी कार्य की प्रशंसा करके उस कार्य को करने के लिए दूसरों को प्रेरित करता है | जैसे - पिता अपने पुत्र से यह कहे कि नियमित रूप से कक्षा में जाकर लेक्चर सुनना परीक्षा में अच्छे नम्बरों से पास होने के लिए जरूरी है तो यह एक सकारात्मक सुझाव है |

1.4.2.4 नकारात्मक सुझाव

नकारात्मक सुझाव वह सुझाव है जिसमें किसी कार्य को बुरा बताकर दूसरों को उसे न करने के लिए प्रेरित करता है जैसे कटे हुए और खुले में रखे फल मत खाइये।

1.4.3 सुझाव के प्रकार (Types of Suggestion)

1.4.3.1 विचारात्मक सुझाव

इस प्रकार का सुझाव मस्तिष्क में जन्म लेते है और सुझाव ग्रहणकर्ता इनसे प्रभावित हो गत्यात्मक क्रियाएँ करता है जैसे संगीत सम्मेलन में व तबलची के साथ-साथ ताल देना विचारात्मक सुझाव है |

1.4.3.2 प्रतिष्ठा सुझाव

प्रतिष्ठित या सम्मानित व्यक्तियों के द्वारा दिये गये सुझावों को प्रतिष्ठा सुझाव कहते है | प्रतिष्ठित् व्यक्ति बौद्धिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक या सामाजिक में से किसी भी क्षेत्र का हो सकता है |

1.4.3.3 आत्म सुझाव

यह वह सुझाव है जिसमें सुझाव दाता व सुझाव ग्रहणकर्ता एक ही व्यक्ति होता है अर्थात व्यक्ति स्वयं अपने आपको सुझाव देता है | इसलिए इस सुझाव को आत्म सुझाव कहते हैं |

1.4.3.4 सामूहिक सुझाव

जो सुझाव किसी मानव समूह से प्राप्त होता है उसे सामूहिक सुझाव कहते हैं | इसमें व्यक्ति यह अनुभव करता है कि उसे उस कार्य को करना चाहिए, जिसे समूह कर रहा है या करने को कह रहा है |

1.4.3.5 विरूद्ध सुझाव

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि जो सुझाव दिया जा रहा है उसके विपरित सुझाव ग्रहणकर्ता द्वारा उसको उल्टा ग्रहण करता है | जैसे छोटे बच्चे से यह कहा जाये कि पुस्तक को मत छूना तो उसे छूने के लिए उसकी लालसा बढ़ेगी । बच्चों के अतिरिक्त स्त्रियों में भी इस सुझाव की ग्रहणशीलता अधिक होती है |

1.4.4 सुझाव का सामाजिक जीवन में महत्त्व (Importance of Suggestion in Social Life)

हुलयालकर **(1956)** व साथियों का मानना है कि सामाजिक जीवन में सुझाव का बहुत महत्व है | व्यक्तियों के व्यवहार को बदलने का यह एक महत्वपूर्ण तरीका है, व्यक्ति को सामाजिकरण बनाने में इसका महत्वपूर्ण योगदान है | इसके द्वारा व्यक्तियों को बनाया, बिगाड़ा और फिर बनाया जा सकता है | अत: सामाजिक जीवन में सुझाव का निम्नांकित महत्व है :-

1.4.4.1 सुझाव सामाजिक एकरूपता या एकता को उत्पन्न करता है

सुझाव के द्वारा, विशेषकर सामूहिक संकेत के द्वारा, सभी लोग समूह द्वारा मान्य व्यवहारों की बात करते हैं, जिससे सामाजिक एकता व समानता पनपती है | सुझाव हमें प्रथा, परम्परा, धर्म, आदर्श, सामाजिक मूल्य आदि के माध्यम से मिलता रहता है जो हमें एकता के सूत्र में बाँध देते हैं | साथ ही समाज की सांस्कृतिक निरन्तरता भी बनी रहती है |

1.4.4.2 सुझाव सामाजिक नियन्त्रण का एक साधन है

समाज के प्रतिष्ठित् व्यक्ति, नेतागण, समाज-सुधारक, धर्मपरायण व्यक्ति आदि अपने सुझावों के द्वारा लोगों के व्यवहारों को नियंत्रित करते रहते हैं और उसी प्रकार के कार्य या व्यवहारों को करवाते हैं जो समाज के हित के हो।

1.4.4.3 सुझाव का व्यक्ति के सामाजिकरण में महत्वपूर्ण योगदान रहता है :-

सुझावों के द्वारा व्यक्तियों के विचार तथा व्यवहारों को सरलता से परिवर्तित किया जा सकता है| व्यक्ति उन कार्यों को करने के लिए अधिक प्रेरित होते है, जिन्हें परिवार के सदस्य, दोस्त व अध्यापकों द्वारा सिखाये जाते हैं | अत: बालकों को आयु के अनुसार समय-समय पर सुझावों के द्वारा समाज की अनेक बातों को सिखाया व सीखने के लिए प्रेरित किया जा सकता है, जो बालक के सामाजिकरण में योगदान देता है |

1.4.4.4 शिक्षा के क्षेत्र में सुझाव का महत्व

सुझाव के माध्यम से विद्यार्थी बहुत कुछ सीखते है | विशेषतया कम उम्र एवं कम बुद्धि के विद्यार्थियों पर सुझाव का प्रभाव अधिक पड़ता है | स्कूल में शिक्षकों का आचरण, प्रार्थना-सभा, विद्यालय भवन, आदर्श कथन आदि ऐसा वातावरण उत्पन्न कर देते हैं, जिससे बालकों

की सुझाव-ग्रहणशीलता बढ़ जाती है और वे धीरे-धीरे सरलता पूर्वक अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त करते रहते हैं |

1.4.4.5 सुझाव समूह प्रगति में सहायक

सामाजिक जीवन में व्यक्तिगत सुझावों की अपेक्षा सामूहिक सुझावों का अधिक महत्व है|सामूहिक सुझावों के पीछे सामूहिक शक्ति व्यक्तियों को संगठित करने और उनमें एकता की भावना बनाये रखने में महत्वपूर्ण है | समाज को उन्नति व अवनति की ओर ले जाने में सुझावों का महत्वपूर्ण स्थान है, इसके अतिरिक्त सामाजिक परिवर्तन व युद्धकाल में भी सुझावों का महत्व है |

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि सुझाव का सामाजिक जीवन में अत्यधिक महत्व है इसलिए सिडिस ने ठीक ही कहा है कि ''मनुष्य नि:सन्देह ही एक सामाजिक प्राणी है, पर वह सामाजिक इसलिए है कि वह सुझाव-ग्रहणशील भी है।''

1.4.5 सुझाव को प्रभावपूर्ण बनाने वाली परिस्थितियाँ (Conditions for Effective Suggestions)

1.4.5.1बुद्धि

जिस व्यक्ति में बुद्धि जितनी कम होती है उसमें सुझाव ग्रहणशीलता उतनी ही अधिक होती है| इसके विपरीत बुद्धि की मात्रा बढ़ती जाती है, सुझाव ग्रहणशीलता कम होती जाती है |

1.4.5.2 लिंग

सुझाव ग्रहणशीलता का लिंग से भी सम्बन्ध है | अनेक प्रयोगात्मक अध्ययनों में देखा गया है कि स्त्रियाँ पुरूषों की अपेक्षा अधिक सुझाव ग्रहणशील होती है | स्त्रियों में भी वो स्त्रियाँ जिनका बाहरी दुनिया से सम्पर्क कम होता है वो अधिक सुझाव ग्रहणशील होते हैं | इसके अतिरिक्त जो स्त्रियाँ धर्म, रीतिरिवाजों, परम्पराओं और प्रथाओं में अधिक विश्वास करती है, वो भी अधिक सुझावग्रहणशील होती है, जिन स्त्रियों में सुझाव ग्रहणशीलता अधिक होती है उनका स्वभाव पुरूषों की अपेक्षा अधिक सरल होता है |

1.4.5.3 आयु

सुझाव ग्रहणशीलता का आयु से भी सम्बन्ध है | कम आयु के लोग अधिक सुझाव ग्रहणशील है क्योंकि उनका मानसिक विकास कम हुआ होता है अत: मानसिक विकास के साथ-साथ सुझावग्रहणशीलता कम होती जाती है |

1.4.5.4 सुझावदाता की प्रतिष्ठा

अध्ययनों से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि सुझावदाता की प्रतिष्ठा जितनी अधिक होती है सुझाव पर इस प्रतिष्ठा का उतना ही अधिक प्रभाव पड़ता है | क्योंकि प्रतिष्ठित वैज्ञानिक को आदर्श व्यक्ति समझा जाता है | इनमें धार्मिक व्यक्ति, सामाजिक, नेता, साहित्यकार, तैजानिक कोई भी हो सकता है | इनके सुझावों को व्यक्ति बिना तर्क और शंका के स्वीकार कर लेते हैं |

1.4.5.5 अज्ञानता

किसी व्यक्ति को जो सुझाव दिया जा रहा है यदि वह उससे अनभिज्ञ है तो इस अनभिज्ञता का सुझाव ग्रहणशीलता पर प्रभाव अधिक पड़ता है | यदि व्यक्ति सुझाव से भलीभाँति परिचित है तो वह उस सम्बन्ध में अधिक तर्क कर सकता है और सही बात को ही स्वीकार करता है |

1.4.5.6 बाह्य वातावरण

जिस वातावरण में सुझाव ग्रहणकर्ता को सुझाव दिया जाता है उस वातावरण का प्रभाव भी सुझाव ग्रहणशीलता पर पड़ता है | अत: सुझाव देते समय वातावरण को भी ध्यान में रखना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 2

1. सुझाव के अर्थ को स्पष्ट कीजिए।
2. सुझाव के चार स्वरूप बताइए।
3. सुझाव के प्रकार के नाम बताइए।
4. सुझाव का सामाजिक जीवन में क्या महत्व है ?

1.5 सहानुभूति (Sympathy)

सामाजिक जीवन का आधार सहानुभूति है | जो जीवन की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति है| प्रत्येक व्यक्ति में कुछ कोमल भावनाएँ पनप जाती है, जिसकी सहायता से दूसरों की भावनाओं की अनुभूति स्वयं अपने में करने लगता है | किसी का करूण क्रन्दन हृदय को आद्र कर देता है और किसी का दु:ख मन में एक टीस उत्पन्न कर देता है | यही सहानुभूति है |

अत: सहानुभूति का अर्थ है दूसरों का दु:ख देखकर हम भी कष्ट का अनुभव करे या दूसरों के दु:ख में हम भी दु:खी हो । इस प्रकार दूसरों के दु:ख या कष्ट के प्रति दया, समभाव, कोमल आवेगों या उद्वेगों को अभिव्यक्त करना व क्रोध-घृणा, द्वेष को देखकर उसी प्रकार का व्यवहार की अभिव्यक्ति करना ही सहानुभूति है |

1.5.1 सहानुभूति की परिभाषा (Defintion of Sympathy)

मैग्डुगल **(1934)** के अनुसार, ''सहानुभूति शब्द का अर्थ है - दूसरे व्यक्तियों या प्राणीयों की भावना या संवेग को देखकर उसी प्रकार की भावनाया संवेग का अनुभव करना ।

अकोलकर **(1960)** के अनुसार :- ''उसी प्रकार के संवेग का अनुभव करना जिसका अनुभव हमारा साथी कर रहा है।''

जेम्स ड्रेवर **(1968)** के अनुसार :- ''दूसरे के भावों एवं संवेगों स्वाभाविक अभिव्यक्तिपूर्ण चिह्नों को देखते ही उसी प्रकार के संवेग का अनुभव करना जिसका अनुभव हमारा साथी कर रहा है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सहानुभूति वह प्रवृत्ति है, जिसमें व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों में भावों और संवेगों को देखकर उसी प्रकार को भावना और संवेग का अनुभव करता है ।''

1.5.2 सहानुभूति को जागृत करने की आवश्यक तत्व (Essential Elements for Arousing Sympathy)

सहानुभूति कोई मूलप्रवृत्ति नहीं है इसका आधार व्यक्ति का अपना अनुभव, ज्ञान, कल्पना आदि है | आलापोर्ट ने सहानुभूति को जागृत करने वाले निम्नांकित आवश्यक तत्त्वों का उल्लेख किया है :-

1.5.2.1 भावनाओं का पूर्व अनुभव

आलपोर्ट का मानना है कि किसी व्यक्ति की भावना से हम तभी सहानुभूति रख सकते है, जब हमने स्वतन्त्र रूप से उस भावना को पहले भी अनुभव किया हो। अनुभव की छाप जितनी गहरी होगी सहानुभूति की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी। अत: सहानुभूति तब तक जागृत नहीं हो सकती जब तक कि कुछ विशिष्ट भावनाओं का कोई पूर्व अनुभव हमें न हो। इसलिए बहुत छोटे बच्चों में सहानुभूति की अभिव्यक्ति देखने को नहीं मिलती।

1.5.2.2 वर्तमान परिस्थिति की प्रकृति का ज्ञान

पूर्व अनुभव के साथ-साथ हमें उस परिस्थिति का ज्ञान हो जिसमें वह व्यक्ति है, जिसके प्रति हमें सहानुभूति प्रकट करनी है | हम किसी व्यक्ति को रोते हुए देखते है तो उसके प्रति तब तक हमदर्दी नहीं होगी जब तक उसके रोने के कारण का पता न चल जाये कि वह इसलिए रो रहा है| इसलिए सहानुभूति को जागृत करने के लिए वर्तमान परिस्थिति की प्रकृति का ज्ञान आवश्यक है|

1.5.2.3 कल्पना-शक्ति

सहानुभूति की शीघ्रता एक व्यक्ति द्वारा दूसरे की परिस्थिति व भावना के प्रति कल्पना करने की तत्परता पर निर्भर करती है | इसमें व्यक्ति कल्पना के द्वारा दूसरे व्यक्ति की स्थिति में स्वयं को रखते हुए उसके समान भावनाओं का अनुभव करता है | अत: कल्पना द्वारा व्यक्ति किसी स्थिति, भावना, विचार आदि के साथ घुल-मिल जाता है यही सहानुभूति है |

1.5.2.4 परिस्थिति में रूचि की समानता

किसी परिस्थिति विशेष के प्रति दो व्यक्तियों की रूचि समान न होगी, तब तक उन्हें एक दूसरे से सहानुभूति नहीं होगी।

1.5.3 सहानुभूति के प्रकार (Types of Sympathy)

1.5.3.1 सक्रिय सहानुभूति

सक्रिय सहानुभूति वह है, जिसमें व्यक्ति दूसरे के प्रति सहानुभूति के साथ-साथ उसके प्रति कुछ क्रियात्मकता या प्रयत्न करता है | उदाहरण के लिए एक भूखे व्यक्ति को देखकर उसके प्रति सहानुभूति के साथ-साथ उसे भोजन करवाना या भोजन के लिए पैसे देना सक्रिय सहानुभूति है |

1.5.3.2 निष्क्रिय सहानुभूति

यह वह सहानुभूति है, जिसमें व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की स्थिति, परिस्थिति व दशा के प्रति सहानुभूति तो रखता है लेकिन उसके प्रति कोई क्रिया या कार्य नहीं करता है | अत: इसे निष्क्रिय सहानुभूति कह सकते हैं |

1.5.3.2 वैयक्तिक सहानुभूति

एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के प्रति प्रदर्शित सहानुभूति को वैयक्तिक सहानुभूति कहते है | जैसे किसी मरते हुए व्यक्ति के प्रति सहानुभूति।

1.5.3.4 सामूहिक सहानुभूति

जब किसी समूह विशेष के प्रति प्रदर्शित सहानुभूति को सामूहिक सहानुभूति कहते हैं, जैसे शरणार्थियों के प्रति सहानुभूति।

1.5.4 सामाजिक जीवन में सहानुभूति का महत्त्व (Importance of Sympathy in Social Life)

सामाजिक जीवन में सहानुभूति का अधिक महत्त्व है | चाहे मानव जगत हो या पशु जगत, यदि इसमें से सहानुभूति निकाल दी जाये तो शायद सामूहिक जीवन का आनन्द न ले पायेंगे। अत: सहानुभूति का निम्न महत्त्व है :-

1.5.4.1सामाजिक एकता और संगठन का आधार सहानुभूति

सहानुभूति का सम्बन्ध व्यक्ति के भावात्मक पक्ष से है हमारे मन-मस्तिष्क से है | इस कारण सहानुभूति के माध्यम से दूसरों को जल्दी अपने प्रति आकर्षित कर सकते हैं | अत: सहानुभूति वह अस्त्र है जिसकी सहायता से शत्रु पर भी पल भर में विजय प्राप्त की जा सकती है | इसलिए सहानुभूति मानव-जीवन का वह आधार है जिस पर सामाजिक एकता की नींव रखी जाती है |

मैग्डुगल **(1914)** के अनुसार, ''सहानुभूति वह सीमेन्ट है जो पशु समाजों को एक सूत्र में बाँधती है, एक समूह के सभी सदस्यों को शान्तिमय बनाती है, व्यवहारों में एक रूपता उत्पन्न करती है और उनके सामाजिक जीवन के कुछ मूल लाभों को भी प्रदान करता है।''

थाउलस **(1951)** ''सहानुभूति अधिकांश सामाजिक व्यवहार का स्रोत है, जो मानव जीवन में सरलता और एकरूपता का निर्माण करता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि सहानुभूति समाज में उपकारी कार्यों का मूल आधार है जो मित्रता व सामाजिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है | लेकिन सभी सहानुभूति में सक्रिय सहानुभूति अधिक महत्वपूर्ण है |

1.5.4.2 सहानुभूति मित्रता की जननी है

वैयक्तिक तथा राष्ट्रीय आधार पर जो बन्धुत्व पनपता है, उसकी प्रेरक शक्ति सहानुभूति है| सहानुभूति रखने वाला व्यक्ति पल भर में ही मित्र बन जाता है , जिसके साथ वह सहानुभूति कर रहा है | सहानुभूति से व्यक्तिक मित्रता के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय मित्रता भी पनपती है, जिससे विश्व-शान्ति की सम्भावना बढ़ जाती है |

1.5.4.3 सहानुभूति समाज में उपकारी कार्यों की आधारशिला है

उपकारी सेवायें सहानुभूति के कारण होती है | दु:खी जनों के प्रति सहानुभूति के कारण ही लोग धर्मार्थ औषधालय, अनाथ-आश्रम, अन्धे-गूँगे-बहरों के लिये स्कूल तथा आश्रम खोलते हैं | सहानुभूति मानव को सहनशील बनने तथा क्षमा प्रदान करने का प्रोत्साहन देती है, साथ ही बौद्धिक सहयोग की भावना भी पनपती है |

1.5.4.4 शिक्षा के क्षेत्र में सहानुभूति का महत्त्व

अध्यापक की छात्र के प्रति सहानुभूति शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करती है | अध्यापक कक्षा में उत्साह से पढ़ाता है तो, छात्र भी उत्साहित होता है | अर्थात अध्यापक का उत्साह छात्र को भी उत्साहित करता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सहानुभूति मूलप्रवृत्ति न होते हुए भी अनेक सामाजिक सद्गुणों जैसे सहयोग, संगठन व एकता को पनपाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है |

अभ्यास प्रश्न 3

1- सहानुभूति को परिभाषित कीजिए।

2- सहानुभूति के प्रकार को स्पष्ट कीजिए।

3- सामाजिक जीवन में सहानुभूति के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

1.6 सारांश

सामाजिक व्यवहार की समझ के अन्तर्गत सामाजिक आत्मीकरण का ज्ञानात्मक पक्ष, सुझाव, भावात्मक, पक्ष सहानुभूति तथा क्रियात्मक पक्ष अनुकरण है | अनुकरण सुझाव व सहानुभूति एक दूसरे से पृथक न ही अपितु एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है | इस इकाई के अन्तर्गत अनुकरण के प्रकार, महत्त्व, नियम व सिद्धान्त पर चर्चा के साथ-साथ सुझाव व सहानुभूति का अर्थ, परिभाषा प्रकार व महत्त्व को स्पष्ट किया गया है।

1.7 शब्दावली

- **अनुकरण -** अनुकरण एक प्रकार का सामाजिक और सीखा हुआ व्यवहार है, जिसमें दूसरों के व्यवहार को देखकर उसकी प्रतिकृति (Duplicate) अपने व्यवहार में उतारी जाती है।
- **सुझाव-** सुझाव सम्प्रेषण की एक प्रक्रिया है, जिसमें एक या अधिक व्यक्तियों द्वारा दिया हुआ प्रस्ताव उचित आधार (आलोचनात्मक प्रत्युत्तर) के बिना स्वीकार कर लिया जाता है।
- **सहानुभूति -** सहानुभूति का अर्थ है दूसरों का दु:ख देखकर हम भी कष्ट का अनुभव करे या दूसरों के दु:ख में हम भी दु:खी हो। इस प्रकार दूसरों के दु:ख या कष्ट के प्रति दया, समभाव, कोमल आवेगों या उद्वेगों को अभिव्यक्त करना व क्रोध-घृणा, द्वेष को देखकर उसी प्रकार का व्यवहार की अभिव्यक्ति करना ही सहानुभूति है |

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अनुकरण से आप क्या समझते हैं? इसके प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
2. अनुकरण का सामाजिक जीवन में महत्व को स्पष्ट करते हुए, इसके सिद्धान्तों का वर्णन करें।

3. सुझाव के प्रकार बताते हुए इसे प्रभावपूर्ण बनानी वाली परिस्थितियों का वर्णन करें।

4- सहानुभूति के आवश्यक तत्वों से आप क्या समझते हैं? इसके सामाजिक जीवन में महत्व की व्याख्या करें

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- एकहार्ट, के. डब्ल्यू. एवं एरमान्न, एम. डेविड **(1977)** सोशल रिसर्च मेथड्स : पर्सपेक्टिव, थियरी एण्ड एनलसिस, न्यूयार्क : रैण्डम हाउस |
- बघेला, डी.एस. **(1995)** सामाजिक मनोविज्ञान, भोपाल : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी|
- फिशर, आर.जे. **(1982)** सोशल साइकॉलोजी : ऐन अप्लाइड अप्रोच, न्यूयार्क : सेट मार्टिन्स प्रेस |
- जैन, उदय **(1987)** द साइकॉलोजिकल कान्सीक्वेन्सेज आव क्राउडिंग, न्यू देल्ही : सेज पब्लिकेशन्स |
- क्रेनो, डब्ल्यू. डी. एण्ड मेस्सी, एल.ए. **(1982)** सोशल साइकॉलोजी : प्रिन्सिपुल्स एण्ड थीम्स आव इण्टरपर्सनल बिहेवियर, होमवुड, इलीन्नायस : डोर्सी प्रेस |
- कूपर, सी.एल. एण्ड आल्डरफर, सी. (सम्पादक) **(1978)** ऐडवान्सेज इन एक्सपिरमेन्शल सोशल प्रासेसीज (1) न्यूयार्क : जान वाइली एण्ड सन्स |
- मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ **(1997)** सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा, इलाहबाद : किताब महलप्रसाद, नगीना **(1981)** समाज मनोविज्ञान, इलाहबाद : किताब महल |
- रस्तोगी, घनश्याम दास **(1980)** आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, नई दिल्ली : टाटा मेक्ग्रा हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड |
- शर्मा, कुमुद एवं त्रिवेदी, देवीदीन, सामाजिक मनोविज्ञान, लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी |
- श्रीवास्तव, पाण्डे सिंह **(1994)** आधुनिक समाज मनोविज्ञान, आगरा : हर प्रसाद भार्गव शैक्षिक पुस्तक प्रकाशन, कचहरी घाट |
- त्रिपाठी, डॉ. लाल बचन **(1992)** आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, आगरा : हर प्रसाद भार्गव प्रकाशन |

इकाई - 2

सामाजिक मनोविज्ञान के विषय - प्रकृत्ति, क्षेत्र एवं सार्थकता

Concerns of Social Psychology - Nature, Scope and Significance

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 सामाजिक मनोविज्ञान का अर्थ

2.4 सामाजिक मनोविज्ञान की परिभाषा

2.5 सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृत्ति

2.6 सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र

2.7 सामाजिक मनोविज्ञान की सार्थकता

2.8 सारांश

2.9 कठिन शब्दार्थ

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.1 प्रस्तावना

प्रत्येक व्यक्ति केवल प्राणीशास्त्रीय प्राणी ही नहीं, वरन एक सामाजिक प्राणी भी है , क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को अपने सामाजिक, शारीरिक, बौद्धिक तथा सांस्कृतिक अस्तित्व के लिए समाज पर निर्भर रहना पड़ता है | अत: समाज और व्यक्ति का एक दूसरे से अलग नहीं कर सकते क्योंकि समाज का अस्तित्व तब तक है जब तक कि उसमें व्यक्ति है | समाज में रहने वाले व्यक्ति आपस में एक दूसरे के प्रति कुछ न कुछ सम्बन्ध रखते हैं | समाज मनोविज्ञान इन्हीं सम्बन्धों का वैज्ञानिक अध्ययन है | इसीलिए सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति के सम्बन्ध में कहा गया है कि सामाजिक मनोविज्ञान समाजशास्त्र और मनोविज्ञान की सीमाभूमि (Border-Lard) पर स्थित एक ऐसा विज्ञान है जो इन दोनो की विशेषताओं को अपने में समेटता है | अत: समाज मेनाविज्ञान का विषय-विस्तार व्यापक और विस्तृत है | क्योंकि समाज मनोविज्ञान को एक ओर समाज की प्रकृति, संरचना, संगठन और अन्त:क्रियात्मक प्रक्रियाओं को समझना और सुलझाना पड़ता है, तो दूसरी ओर व्यक्ति के मानसिक व शारीरिक आधारों का भी अध्ययन करना होता है | इस कारण समाज-मनोविज्ञान के विषय-क्षेत्र के

अन्तर्गत जिसका आधार समाज मनोविज्ञान है | परन्तु अनेक मनोवैज्ञानिकों ने समाज-मनोविज्ञान के अध्ययनों को निरर्थक एवं तुच्छसिद्ध करने का प्रयत्न किया है, जिस कारण अधिकाधिक मनोवैज्ञानिक सामाजिक वास्तविकता की वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से क्षेत्र अध्ययनो की ओर उन्मुख होते जा रहे हैं, जिससे इसके अध्ययन की सार्थकता सिद्ध हो रही है |

प्रस्तुत इकाई में आप समाज-मनोविज्ञान की प्रकृति, क्षेत्र व सार्थकता का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

- सामाजिक मनोविज्ञान के अर्थ व परिभाषा को जान सकेंगे।
- सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृत्ति को समझ सकेंगे।
- सामाजिक मनोविज्ञान की वैज्ञानिक प्रकृत्ति को स्पष्ट कर सकेंगे।
- सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्रों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- सामाजिक मनोविज्ञान के क्लाइनबर्ग द्वारा बताये गये क्षेत्रों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- कैज-शैक के द्वारा दिये गये सामाजिक मनोविज्ञान के तीन क्षेत्रों को समझ सकेंगे।

2.3 सामाजिक मनोविज्ञान का अर्थ (Meaning of Social Psychology)

व्यक्ति सामाजिक प्राणी है, क्योंकि उसे अपने सामाजिक, शारीरिक, बौद्धिक तथा सांस्कृतिक अस्तित्व के लिए समाज पर निर्भर रहना पड़ता है | इसे बनाये रखने के लिए आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आस-पास के अनेक व्यक्तियों तथा समूह से अन्त:क्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है, व्यक्ति पर इन विचारों, क्रियाओं और व्यवहारों का निरन्तर प्रभाव पड़ता है और जो विज्ञान व्यक्ति के व्यवहारों पर सामाजिक परिस्थितियों के प्रभावों का विश्लेषण तथा अध्ययन करता है, उसे सामाजिक मनोविज्ञान कहते हैं |

2.4 सामाजिक मनोविज्ञान की परिभाषा (Definition of Social Psychology)

किम्बल यंग **(1960)** के अनुसार, ''सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्तियों की पारस्परिक प्रतिक्रिया और इससे प्रभावित व्यक्ति के विचारों, भावनाओं, उद्वेगों (संवेगों) और आदतों का अध्ययन है।''

कुप्पूस्वामी **(1961)** के अनुसार, ''समाज मनोविज्ञान ज्ञान का वह अंग है, जो सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्तियों की एक दूसरे के प्रति होने वाली अन्त:क्रिया से उत्पन्न सम्बन्धों का अध्ययन करता है।''

क्लाइनवर्ग **(1924)** के अनुसार, ''समाज मनोविज्ञान व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों से सम्बन्धित व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है।''

अकोलकर **(1960)** के अनुसार, ''समाज मनोविज्ञान व्यक्ति के सामाजिक वातावरण के विशिष्ट सन्दर्भ में व्यक्ति के मानसिक जीवन और व्यवहार का अध्ययन है।''

उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि समाज मनोविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है साथ ही विशेष रूप से पारस्परिक प्रतिक्रिया से प्रभावित हुए व्यक्ति के विचारों, भावनाओं और संवेगों का अध्ययन किया जाता है |

2.5 सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति (Natur of Social Psychology)

परिभाषाओं से स्पष्ट हुआ है कि सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन करता है, चूँकि व्यक्ति का व्यवहार अन्य नियन्त्रित, निर्देशित और प्रभावित होता है | इस अर्थ में सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्ति तथा समाज दोनों का ही अध्ययन है | इसलिए सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति के सम्बन्ध में सच ही कहा गया है कि सामाजिक मनोविज्ञान समाजशास्त्र और मनोविज्ञान की सीमाभूमि पर स्थित एक ऐसा विज्ञान है जो इन दोनों ही विज्ञान की विशेषताओं को अपने में समेटता है |

उक्त कथन सामाजिक मनोविज्ञान की वास्तविक प्रकृति का स्पष्ट अभिव्यक्त करता है | इनमें से कोई भी एक दूसरे से पूर्णतया पृथक या परे नहीं है | व्यक्ति एक दूसरे से सम्बन्धित है और इनमें आदान-प्रदान की एक प्रक्रिया या अन्त:क्रिया सदा ही चलती रहती है | इनके फलस्वरूप प्रथाओं, परम्पराओं, सामाजिक आदर्शों, विचारों और संस्थाओं का विकास होता है जो व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं को निरन्तर प्रभावित करते हुए उसके व्यवहारों को निर्धारित करते है | इस कारण व्यवहारों के निर्धारण में न तो मनोवैज्ञानिक न समाजशास्त्र अपितु व्यक्ति का व्यवहार इन दोनों के अन्त: क्रियात्मक प्रभावों का प्रतिफल है | सामाजिक मनोविज्ञान वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताओं का अपने स्वरूप निर्धारण में प्रयोग करता है | इसलिए सामाजिक मनोविज्ञान अच्छी प्रकृति में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करता है जो कि निम्नलिखित है-

2.5.1 वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग :

इस सन्दर्भ में कार्ल पियर्सन ने कहा है कि ''सम्पूर्ण विज्ञान की एकता इसकी पद्धति में निहित है, न कि इसकी विषय-सामग्री में इससे स्पष्ट है कि विज्ञान की मौलिक विशेषता है - वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग | सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में जो भी ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह वैज्ञानिक पद्धति की सहायता से है | इसमें निरन्तर प्रयोग किए जा रहे हैं | इसमें निम्नांकित पद्धतियों का प्रयोग किया जा रहा है :-

i.	समाजमिति	ii.	सामुदायिक अध्ययन विधि
iii.	सांख्यिकी पद्धति	iv.	व्यक्तिगत अध्ययन विधि
v.	प्रयोगात्मक विधि	vi.	सामाजिक सर्वेक्षण

उपरोक्त पद्धतियों के अतिरिक्त सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन का प्रारम्भ समस्या के चयन से होता है | साथ ही उपकल्पना का भी प्रयोग किया जाता है | सुविधा एवं सत्यता की जाँच हेतु यन्त्रों

का भी प्रयोग किया जाता है | इसलिए कहा जा सकता है कि सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है |

2.5.2 'क्या है' का अध्ययन :

अध्ययन की दृष्टि से दो प्रश्नों के पूर्ण उत्तरों का अध्ययन होता है :-

(अ) 'क्या है' का अध्ययन।

(ब) 'क्या होना चाहिए' का अध्ययन।

सामाजिक मनोविज्ञान ''क्या है'' का अध्ययन करता है, जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञान में नियमों एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, उसी प्रकार सामाजिक मनोविज्ञान, सामाजिक नियमों एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन है |

2.5.3 सार्वभौमिक सिद्धान्त

विज्ञानों की मौलिक विशेषता है - सार्वभौमिक सिद्धान्त। ये सिद्धान्त स्थान और परिस्थिति मे समान रूप से लागू होते है | सामाजिक मनोविज्ञान के नियम भी सार्वदेशिक होते है | इस दृष्टि से सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति को वैज्ञानिक कहा जा सकता है | उदाहरण के लिए भीड़ का यह नियम सार्वभौमिक है कि भीड़ में व्यक्ति का व्यवहार अकेले के व्यवहार से भिन्न होता है |

2.5.4 सिद्धान्तों का प्रमाणीकरण

विज्ञान की विशेषता है : नियमों का प्रमापीकरण। सामाजिक मनोविज्ञान के नियमों का परीक्षण एवं पुन:परीक्षण किया जा सकता है | सामूहिक इसका उदाहरण है | प्रत्येक समाज में सामूहिक तनाव, अन्धविश्वास, अज्ञात तथा पूर्वधारणाओं के कारण विकसित होते हैं |

2.5.5 कार्य-कारण सम्बन्ध

समाज में कोई भी कार्य होता है तो उसके पीछे किसी न किसी प्रकार का कारण होता है | इस प्रकार सामाजिक मनोविज्ञान में कार्य कारण सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है | उदाहरण के लिए बालक का समाजीकरण, भीड़ व्यवहार आदि के विषय में समाज मनोविज्ञान जानकारी प्राप्त करता है|

2.5.6 भविष्यवाणी

सामाजिक मनोविज्ञान कार्य कारण सम्बन्धों का अध्ययन करता है | अत: कार्य-कारण सम्बन्धों के कारण भविष्यवाणी करना अत्यन्त सरल हो जाता है | यही कारण है कि वर्तमान समाज में अनेक सामाजिक समस्याओं का समाधान करने के लिए सामाजिक मनोविज्ञान में भविष्यवाणी की सहायता ली जाती है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट होता है कि सामाजिक मनोविज्ञान प्रामाणिक निष्कर्षों व खोजों की कदापि अवहेलना नहीं करता है, अपितु इन निष्कर्षो तथा खोजों का वास्तविक सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहारों को यथार्थ रूप से समझने के काम में प्रयोग करता है | इसलिए यह सामाजिक विज्ञान है |

इस सन्दर्भ में एम. शेरिफ ने कहा है कि ''सामाजिक मनोविज्ञान केवल विभिन्न प्रकार की अवधारणाओं को अपना लेने के कारण ही ''सामाजिक'' नहीं हो गया है, अपितु वास्तविकता तो यह है कि सामान्य मनोविज्ञान की प्रमाणिक अवधारणाओं को सामाजिक क्षेत्र उपयोग में लाकर ही सामाजिक मनोविज्ञान बन पाया है ।'' यह कथन सामाजिक मनोविज्ञान की वास्तविक प्रकृति को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करता है |

अभ्यास प्रश्न : 1

1. सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृत्ति से क्या समझते है? स्पष्ट कीजिए।
2. सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृत्ति में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है, स्पष्ट कीजिए।
3. सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृत्ति में कौन-कौन सी पद्धतियों का प्रयोग किया गया है? बताइए।

2.6 सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र (Scope of Social Psychology)

प्रत्येक व्यक्ति के अलग-अलग विचार, भावनायें, विश्वास, आदर्श और कार्य विधियाँ होती है, अगर ध्यान से देखा जाय तो यह स्पष्ट होगा कि इन विषयों की दृष्टि से समूह के सदस्यों में काफी समानता होती है | इन समानताओं का क्या कारण है, इस प्रश्न का उत्तर देना सामाजिक मनोविज्ञान का ही कार्य है | यह विज्ञान इन्हीं समानताओं को जन्म देने वाली शक्तियों का विश्लेषण व विवरण प्रस्तुत करता है |

इस कार्य के लिए सामाजिक मनोविज्ञान को एक ओर समाज की प्रकृति, संरचना, संगठन और अन्त:क्रियात्मक प्रक्रियाओं को समझना और सुलझाना पड़ता है, तो दूसरी ओर व्यक्ति के मानसिक व शारीरिक आधारों का भी अध्ययन करना होता है | अत: सामाजिक मनोविज्ञान है | अत: सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र निम्न है :-

2.6.1 मूल प्रवृत्तियों व प्रेरणा का अध्ययन

मानव की अनेक शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व सांस्कृतिक आवश्यकताएँ होती है, सामाजिक प्राणी बनने के लिए इन आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है और इसके लिए कुछ क्रियायें करता है | अत: हम कह सकते हैं कि मानव की विभिन्न आवश्यकताएँ उसे व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती है | यह प्रेरक शक्ति आन्तरिक जन्म जात भी हो सकती है और सामाजिक शक्तियाँ भी। जन्मजात प्रवृत्तियों पर समाज का प्रभाव होता है और सामाजिक शक्तियों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव होता है | अत: सामाजिक मनोविज्ञान मानव की मूलप्रवृत्तियों तथा प्रेरणा (जिसमें शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक दोनों ही प्रकार की प्रेरणाएँ सम्मिलित है) का अध्ययन करता है |

2.6.2 प्रत्यक्षीकरण

प्रेरणा के साथ-साथ प्रत्यक्षीकरण का भी अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान करता है, क्योंकि व्यवहार किसी परिस्थिति विशेष में घटित होता है और उसके घटित होने से पूर्व व्यक्ति परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण करता है और आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए निर्णय करता है कि उसे व्यवहार करना है या नहीं। अत: प्रत्यक्षीकरण व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करने में सहायता प्रदान करता

है| इसलिए सामाजिक मनोविज्ञान के लिए इसका भी अध्ययन आवश्यक है | इसी सन्दर्भ में क्रेच एवं क्रेचफील्ड ने कहा है कि ''क्रिया में दिशा और अन्तर्वस्तु होती है और इन दोनों का निर्धारण व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण के द्वारा ही होता है।''

2.6.3 मनोवृत्तियों का अध्ययन

मनोवृत्तियाँ व्यक्ति के विविध अनुभवों के आधार पर पनपती है, जिनका विकास व्यक्ति के विकास के साथ-साथ होता है | व्यक्ति की इन मनोवृत्तियों को समझे बिना उसके व्यवहारों की वैज्ञानिक व्याख्या सम्भव नहीं है | इसलिए मनोवृत्तियों का अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान का एक विषय ही नहीं अपितु सामाजिक मनोविज्ञान की केन्द्रीय समस्या या विषय मानते हैं |

2.6.4 सामाजिक समूहों का अध्ययन

व्यक्ति सामाजिक प्राणी होने के कारण समूह में दूसरों के साथ रहता है और रहना पसन्द भी करता है | जब भी दो या दो से अधिक व्यक्ति एकत्रित हो जाते हैं तो एक दूसरे पर प्रभाव डालते है और एक सामाजिक समूह का निर्माण करते हैं | अत: समूह की प्रकृति व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है | इस कारण सामाजिक समूहों का अध्ययन भी सामाजिक मनोविज्ञान का एक विषय है |

2.6.5 मानव के सीखने की प्रक्रिया का अध्ययन

बालक जन्म के समय केवल रक्त, मांस हाड का एक जीवित पुतला मात्र होता है | अत: अपने साथ केवल माता-पिता के शारीरिक व मानसिक गुण व लक्षण लेकर जन्म लेता है, लेकिन सामाजिक गुण नहीं होते हैं | न वह बोल पाता है, न चल पाता है, न कपड़े पहन सकता है, न शिष्टाचार जानता है और नही उसका कोई मूल्य या आदर्श होता है | परन्तु समाज व संस्कृति के बीच पलते हुए उसमें ये सभी गुण धीरे-धीरे सीख जाता है | सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक क्षमताओं के साथ-साथ सामाजिक नियम, प्रथा, परम्परा, आदर्श, विचार, धर्म, अनुकरण, सुझाव, सहानुभूति, परिवार, स्कूल, कॉलेज तथा अन्य सामाजिक- सांस्कृतिक कारक भी योगदान देते हैं | सामाजिक मनोविज्ञान सीखने में योगदान देने वाले कारकों का अध्ययन करता है |

2.6.6 समाजीकरण का अध्ययन

सीखने की क्रिया के फलस्वरूप व्यक्ति सामाजिक व्यवहार करना सीख जाता है, जिससे सामाजिक प्राणी कहलाने के लिए आवश्यक गुण व लक्षण विकसित हो जाते है | इस विकास में समाज के सभी अंगों का योगदान रहता है | अत: जिस प्रक्रिया के द्वारा एक व्यक्ति सामाजिक प्राणी में रूपान्तरित हो जाता है, उसे समाजीकरण कहते है और इस प्रक्रिया में योगदान करने वाले कारकों के सन्दर्भ में सामाजिक मनोविज्ञान समाजीकरण का अध्ययन करता है |

2.6.7 व्यक्तित्व का विकास व निर्माण का अध्ययन

व्यक्ति के समाजीकरण के साथ-साथ उसके व्यक्तित्व का भी निर्माण और विकास होता है, जो संगठित रूप को अभिव्यक्त करता है | सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्तित्व के विकास व निर्माण के कारकों का अध्ययन करता है।

2.6.8 नेतृत्व का अध्ययन

प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करते हैं| परन्तु कुछ व्यक्तियों में प्रभावित करने की क्षमता व योग्यता अधिक होती है, जिसके कारण सामाजिक जीवन में नेता की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं जो न केवल व्यक्तियों का समूह अपितु सम्पूर्ण समाज को दिशा प्रदान करते हैं, इसलिए सामाजिक मनोविज्ञान के नेतृत्व के अध्ययन को अपने विषय-क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है|

2.6.9 सामूहिक व्यवहार का अध्ययन

व्यक्ति नेता के साथ-साथ भीड़ और श्रोतागण के व्यवहार से भी प्रभावित होता है | भीड़ के अन्दर व्यक्ति इस प्रकार का व्यवहार करता है, जिसकी अकेले में कभी अपेक्षा नहीं की जा सकती । सामाजिक मनोविज्ञान भीड़ का अध्ययन करता है और इस प्रश्न का उत्तर भी देता है कि भीड़ के सदस्य के रूप में व्यक्ति का व्यवहार उसके सामान्य व्यवहार से किस प्रकार भिन्न है|

2.6.10 जनमत का अध्ययन

आज प्रजातंत्र का युग है, जिसमें व्यक्ति स्वतंत्रता पूर्वक अपने विचारों या मतों का आदान-प्रदान करता है | इससे जनमत का निर्माण होता है | इस जनमत का प्रभाव केवल व्यक्ति के व्यवहार पर ही नहीं अपितु सरकार के व्यवहारों पर भी पड़ता है | इसलिए जनमत का अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है|

2.6.11 प्रचार-प्रसार का अध्ययन

वर्तमान युग फैशन का युग है जिससे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक के साथ-साथ धार्मिक जीवन का प्रत्येक पहलू प्रभावित होता है | ये सभी पक्ष व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करते है | अत: सामाजिक मनोविज्ञान ने इस विषय को अपने अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया है|

2.6.12 समाज पर नकारात्मक प्रभाव डालने वाले पक्षों का अध्ययन

पक्षपात, युद्ध, क्रान्ति, अन्तर्राष्ट्रीय तनाव, उग्र राष्ट्रीयता, वेश्यावृत्ति, भिक्षावृत्ति, आदि समाज के नकारात्मक पक्षों के उदाहरण है | इन सभी का प्रभाव समाज और व्यक्ति दोनों पर ही अत्यन्त रूप में पड़ता है | परन्तु व्यक्ति के व्यवहारों पर इनका प्रभाव स्पष्ट रूप से होता है | इसलिए सामाजिक मनोविज्ञान इनका भी अध्ययन करता है|

उपरोक्त क्षेत्रों के अतिरिक्त क्लाइनबर्ग ने अपनी रचना ''समाज मनोविज्ञान'' में सामाजिक मनोविज्ञान के निम्नलिखित क्षेत्र बताये है :-

1. बालक के समाजीकरण, संस्कृति और व्यक्तित्व के विकास का अध्ययन।
2. सामाजिक व्याधिकी का अध्ययन।
3. वैयक्तिक व सामूहिक भेद का अध्ययन।
4. अभिरूचि, मत, विचारों के आदान-प्रदान, प्रचार आदि का अध्ययन।
5. सामाजिक अन्त:क्रिया, नेतृत्व, समूह गति विज्ञान आदि का अध्ययन।
6. राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्ययन।

कैज और शैक ने सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन क्षेत्रों की चर्चा की है:-

1. सामाजिक उत्तेजक दशाएँ :-

   (अ) चेतन जगत

   (ब) अचेतन जगत

2. मनुष्य की प्रतिक्रियाएँ जो सामाजिक उत्तेजनाओं के कारण उत्पन्न होती है |

3. व्यक्ति पर सामाजिक पर्यावरण का प्रभाव ।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त ही विस्तृत है| इसमें व्यक्ति के व्यवहार के सभी रूपों का अध्ययन किया जाता है | परन्तु सद् विज्ञान विकासशील विज्ञान है, जिसके इसके अध्ययन क्षेत्रों का नित्य नवीन विकास हो रहा है, अत: इसके क्षेत्र को किसी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता है |

अभ्यास प्रश्न : 2

1. सामाजिक मनोविज्ञान के मूल प्रवृत्तियों व प्रेरणा क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए ।
2. सामाजिक मनोविज्ञान प्रेरणा के साथ-साथ प्रत्यक्षीकरण भी करता है, इस कथन को स्पष्ट कीजिए ।
3. क्लाइनबर्ग द्वारा निर्धारित समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र बताइये ।
4. कैज और शैक ने सामाजिक मनोविज्ञान के कौन-कौन से क्षेत्र बताए हैं? स्पष्ट कीजिए ।

2.7 सामाजिक मनोविज्ञान की सार्थकता (Significance of Social Psychology)

फिशर **(1982)** ने स्पष्ट किया है कि सामाजिक मनोविज्ञान का लक्ष्य विशिष्ट रूप से उन समस्याओं का अध्ययन होना चाहिए जिनके अध्ययन से उनकी उत्पत्ति तथा उनको निर्धारित करने वाले कारकों की वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त हो। ऐसी जानकारी का उद्देश्य सामाजिक वास्तविकता को समझना तथा उसकी समस्याओं का निराकरण करना है | इस दृष्टिकोण से सामाजिक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों का सर्वेक्षण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि सामान्यत: अधिकांश अध्ययन सामाजिक वास्तविकता का सही ज्ञान प्राप्त कराने में असफल रहे हैं | इन अध्ययनों के आधार पर ऐसा ज्ञान और कौशल प्राप्त नहीं हुआ है जो सामाजिक यथार्थ की सही व्याख्या कर सके।

स्मिथ **(1972)** ने स्पष्ट किया है कि प्रायोगिक सामाजिक मनोवैज्ञानिक अध्ययन ऐसी जानकारी प्राप्त कराने में असफल रहे हैं जिसके आधार पर मनुष्य को सामाजिक प्राणी के रूप में सही ढंग से समझा जा सके।

मैक्ग्वायर **(1972)** के अनुसार सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में किए जाने वाले प्रायोगिक अध्ययन इतने कृत्रिम होते हैं कि उनमें सामाजिक वास्तविकता के सही स्वरूप की जानकारी प्राप्त नहीं हो सकती ।

यह सही है कि सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में किसी सामाजिक व्यवहार की वैज्ञानिक व्याख्या करने के उद्देश्य से एक, दो, तीन या चार स्वतंत्र चरों को लेकर प्रायोगिक अध्ययनों के अभिकल्प (Design) बनाए जाते हैं | किन्तु वास्तविक जीवन में पाए जाने वाला गोचर बहुसंख्यक परिवत्यों

से एक साथ प्रभावित होने के कारण अत्यन्त जटिल होता है | यही कारण है कि अधिकाधिक मनोवैज्ञानिक सामाजिक वास्तविकता की वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से क्षेत्र अध्ययनों की ओर उन्मुख होते जा रहे हैं |

अनेक मनोवैज्ञानिकों ने सामाजिक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों को निरर्थक एवं तुच्छ सिद्ध करने का प्रयत्न किया है | उनके अनुसार अधिकांश सामाजिक मनोवैज्ञानिक अध्ययन बौद्धिक विलास के लिए अधिक और गम्भीर ज्ञान की प्राप्ति के लिए कम किये गये हैं |

रिंग **(1967)** के अनुसार बहुत से सामाजिक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में वस्तुत: ऐसे सामाजिक व्यवहारों को आश्रित चर के रूप में लिया गया है जो सामाजिक वास्तविकता की दृष्टि से निश्चय ही तुच्छ है |

मैक्वायर **(1967)** ने स्वीकार किया है कि सामाजिक मनोविज्ञान में आधारभूत अनुसंधान पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जाने लगा था और वैज्ञानिक होने के उत्साह में मनोवैज्ञानिक सामाजिक प्रक्रमों के प्रयोगशालीय अध्ययन को आवश्यकता से अधिक महत्व देने लगे थे।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि समस्त प्रयोगशालीय अध्ययन मात्र बौद्धिक विलास के लिए किये गये हैं | ऐसे अध्ययनों से प्राप्त जानकारी को आगे बढ़ाने के लिए उन पर क्षेत्र अध्ययन करना आवश्यक है | वस्तुत: सिद्धान्त उन्मुख अनुसंधान करने के लिए क्षेत्र अध्ययनों पर प्रारम्भ से ही बल देना सामाजिक मनोविज्ञान को तुच्छता के अभियोग से मुक्त रख सकता है |

मार्क**,** कुक एवं डायमण्ड **(1966)** क्षेत्र अध्ययनों के आधार पर सामाजिक अन्तर्क्रिया की वास्तविक विशेषताओं एवं समस्याओं को समझाने की दिशा में अत्यन्त सफलता प्राप्त होने लगी है | वस्तुत: प्रत्यक्षीकरण, अभिवृत्ति परिवर्तन, गुणारोपण, अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण, पारस्परिक मोल-भाव जैसे सामान्य सामाजिक प्रक्रमों के वैज्ञानिक अध्ययन से सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने अत्यन्त सार्थकता पूर्ण जानकारी प्राप्त की है | ऐसी जानकारी के आधार पर अनेक सामाजिक समस्याओं के समाधान की योजना भी बन सकती है | वस्तुत: पिछले दो दशकों में अपराध, निर्धनता, नगरीय ह्रास, ग्रामीण विकास, औद्योगिकी एवं कृषि जगत में नये उपायों की स्वीकृति एवं अस्वीकृति के कारकों का वैज्ञानिक अध्ययन पर बल दिया गया है, जिससे आधारभूत सामाजिक मनोविज्ञान की सार्थकता बढ़ी है |

2.8 सारांश

समाज मनोविज्ञान का विषय-विस्तार व्यापक और विस्तृत है | इसके अन्तर्गत समाज की प्रकृत्ति, संरचना, संगठन और अन्त:क्रियात्मक प्रक्रियाओं को समझना और सुलझाना पड़ता है | साथ ही व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक आधारों का भी अध्ययन करना होता है, जिससे सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र व्यापक एवं विस्तृत है, जिसमें व्यक्ति के व्यवहार के सभी रूपों का अध्ययन किया जाता है | व्यक्ति का व्यवहार अन्य कारकों से नियंत्रित, निर्देशित और प्रभावित होता है जो व्यक्ति व समाज दोनों का ही अध्ययन करता है | इसलिए यह समाजशास्त्र और मनोविज्ञान दोनों की विशेषताओं को अपने में समेटता है | जिससे इसके अध्ययन की सार्थकता भी सिद्ध होने लगी है, क्योंकि सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृत्ति में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाने लगा है |

2.8 शब्दावली

- **समाज मनोविज्ञान -** समाज मनोविज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है साथ ही विशेष रूप से पारस्परिक प्रतिक्रिया से प्रभावित हुए व्यक्ति के विचारों, भावनाओं और संवेगों का अध्ययन किया जाता है |

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृत्ति से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट करें।
2. सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्रों से क्या तात्पर्य है? विभिन्न क्षेत्रों का वर्णन करें।
3. विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा बताए गये सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्रों को स्पष्ट कीजिए।
4. सामाजिक मनोविज्ञान की सार्थकता को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- एकहार्ट, के. डब्ल्यू. एवं एरमान्न, एम. डेविड **(1977)** सोशल रिसर्च मेथड्स : पर्सपेक्टिव, थियरी एण्ड एनलसिस, न्यूयार्क : रैण्डम हाउस |
- बघेला, डी.एस. **(1995)** सामाजिक मनोविज्ञान, भोपाल : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी |
- फिशर, आर.जे. **(1982)** सोशल साइकॉलोजी : ऐन अप्लाइड अप्रोच, न्यूयार्क : सेट मार्टिन्स प्रेस |
- जैन, उदय **(1987)** द साइकॉलोजिकल कान्सीक्वेन्सेज आव क्राउडिंग, न्यू देल्ही : सेज पब्लिकेशन्स |
- क्रेनो, डब्ल्यू. डी. एण्ड मेस्सी, एल.ए. **(1982)** सोशल साइकॉलोजी : प्रिन्सिपुल्स एण्ड थीम्स आव इण्टरपर्सनल बिहेवियर, होमवुड, इलीन्नायस : डोर्सी प्रेस |
- कूपर, सी.एल. एण्ड आल्डरफर, सी. (सम्पादक) **(1978)** ऐडवान्सेज इन एक्सपिरमेन्शल सोशल प्रासेसीज (1) न्यूयार्क : जान वाइली एण्ड सन्स |
- मुकर्जी, रवीन्द्र नाथ **(1997)** सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा, इलाहबाद : किताब महल |
- प्रसाद, नगीना **(1981)** समाज मनोविज्ञान, इलाहबाद : किताब महल |
- रस्तोगी, घनश्याम दास **(1980)** आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, नई दिल्ली : टाटा मेक्ग्रा हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड |

- शर्मा, कुमुद एवं त्रिवेदी, देवीदीन, सामाजिक मनोविज्ञान, लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी |
- श्रीवास्तव, पाण्डे सिंह **(1994)** आधुनिक समाज मनोविज्ञान, आगरा : हर प्रसाद भार्गव शैक्षिक पुस्तक प्रकाशन, कचहरी घाट |
- त्रिपाठी, डॉ. लाल बचन **(1992)** आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, आगरा : हर प्रसाद भार्गव प्रकाशन |

इकाई - 3

सामाजिक व्यवहार के लिए उपागम – अवलोकन, सर्वेक्षण, वैयक्तिक अध्ययन, समाजमिति, प्रयोगात्मक

Approaches to Social Behaviour- Observation, Survey, Case Study, Sociometry, Experimental

इकाई की संरचना –

3.0 प्रस्तावना
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 अवलोकन
3.3 सर्वेक्षण
3.4 वैयक्तिक अध्ययन
3.5 समाजमिति
3.6 प्रयोगात्मक
3.7 सांराश
3.8 कठिन शब्दार्थ
3.9 निबंधात्मक प्रश्न
3.10 सन्दर्भ ग्रंथसूची

3.0 प्रस्तावना (Introducation)

समाज – मनोविज्ञान एक व्यक्ति के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन है। वह वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन करता हैं| समाज मनोविज्ञान अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की भॉति अनेक उपागमों का प्रयोग सामाजिक व्यवहार का पता लगाने हेतु एवं अनुसन्धान हेतु करता हैं | इनमें अवलोकन या प्रेक्षण, सर्वेक्षण, समाजमिति, वैयक्तिक अध्ययन तथा प्रयोगात्मक उपागम महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्ध हो रही हैं|

3.1 इकाई के उद्देश्य (Objevtives of Unit)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- सामाजिक व्यवहार के उपागमो के प्रकारों को जान सकेंगे।

- अवलोकन उपागम का महत्व, अर्थ, प्रकार तथा प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- सर्वेक्षण उपागम का महत्व, अर्थ, प्रकार तथा प्रक्रिया को समझ सकेंगे।
- वैयक्तिक अध्ययन, समाजमिति तथा प्रयोगात्मक उपागमों के अर्थ उपयोग, प्रकारों एवं प्रक्रम को स्पष्ट कर सकेंगे |

3.2 अवलोकन (Observation)

समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र में अवलोकन एक महत्वपूर्ण उपागम हैं | समाज मनोविज्ञान व्यवहार का अध्ययन करता हैं | व्यवहार का वास्तविक अध्ययन निरीक्षण द्वारा ही किया जा सकता है |इसमें मापन की जाने वाली घटना के आयामों का प्रत्यक्ष बोध होता है |

हम सभी तथ्यों, घटनाओं तथा अनुभवों को ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण करते हैं | शिशुओं, बालकों, प्रोढों एवं व्यक्ति के व्यक्तित्व के अनेक पक्षों का ज्ञान अवलोकन द्वारा ही प्राप्त होता है |

अवलोकन एक स्वाभाविक क्रिया हैं | व्यक्ति में देखने, समझने एवं निष्कर्ष निकालने की सहज प्रवृत्ति होती हैं | विश्व भर में सूचनाएँ प्राप्त करने का मूल साधन हैं | आदिकाल से मनुष्य अवलोकन के माध्यम से ज्ञान में तथा अनुभवों में वृद्धि करता आया हैं | एक अवलोकनकर्त्ता अपनी समस्त ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग इस कार्य में करता हैं तथा इसके माध्यम से प्राप्त तथ्यों से वह समस्या के समाधान को खोजने का प्रयास करता हैं |

अवलोकन का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Observation) -

किसी घटना अथवा कार्य को ध्यानपूर्वक देखना निरीक्षण हैं | अतः किसी परिस्थिति में किसी व्यक्ति के कार्य में बाह्य व्यवहार को देखना ही अवलोकन या निरीक्षण हैं | अवलोकन नेत्र के माध्यम से किया गया स्वाभाविक घटनाओं के सम्बन्ध में एक ऐसा क्रमबद्ध तथा विचारपूर्ण अध्ययन हैं जो कि उनके घटित होने के समय पर किया जाता है |

गुड तथा हैंट के अनुसार – "विज्ञान का आरम्भ अवलोकन से होता हैं तथा इसकी अंतिम पुष्टि के लिए अवलोकन में ही लौटना पड्ता है | विज्ञान के अतिरिक्त सामाजिक विज्ञानों, मनोविज्ञान, शिक्षा के क्षेत्र में इस उपागम का उपयोग बहुतायत से होता है, जिसके माध्यम से सामाजिक व्यवहारों, घटनाओं, संस्कृति के प्रतिरुपों अथवा मानव व्यवहार के मध्य सार्थक अन्तःसम्बन्धों के स्वरुप तथा विस्तार को ज्ञात किया जाता है | यद्यपि अवलोकन को मापन की एक वस्तुनिष्ठ प्रविधि के रुप में स्वीकार नहीं किया जाता, फिर भी अनेक प्रकार की परिस्थितियों में तथा अनेक प्रकार के व्यवहार के मापन में इस विधि का प्रयोग काफी प्रचुरता से किया जाता है |

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अवलोकन विधि प्राथमिक सामग्री के संग्रहण की प्रत्यक्ष विधि है| इसमें नेत्रों के माध्यम से नवीन तथा प्राथमिक तथ्यों एवं सूचनाओं का विचारपूर्ण संकलन किया जाता है इसके साथ ही इसमें अवलोकनकर्त्ता देखे जाने वाले व्यक्ति, घटना या समूह के सामाजिक एव व्यक्तिगत व्यवहारों का अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष निरीक्षण करता है |

अवलोकन का महत्व (Importance of Observation)

1. अवलोकन का सामाजिक व्यवहार एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में विशेष महत्व है।

2. छोटे बालक, अन्य भाषाभाषी, अशिक्षित व्यक्तियों तथा ऐसे व्यक्ति जो स्वयं को अभिव्यक्त नहीं करते, इनके व्यवहार का पता लगाया जा सकता है।
3. ऐसी परिस्थितियाँ जहॉ आंतरिक संरचना में अनेक तत्व, चर एवं प्रक्रियाएँ क्रियाशील होते हैं, जहॉ जटिल अंतःक्रिया होती है और जिससे उनका मापन अन्य परिक्षाओं से सम्भव नहीं है, वहॉ अवलोकन अधिक उपयोगी होता है।
4. सामाजिक व्यवहार का पता लगाने के लिए अन्य विधियों, जैसे प्रश्नावली एवं व्यक्तित्व परीक्षणों में जानकारी तो प्रयोज्य के माध्यम से मिलती है परंतु उनके प्रत्युत्तर कहाँ तक उन विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनका मापन किया जाना है, यह कहना कठिन है | जबकि इस प्रविधि द्वारा व्यवहारों का सीधा-सीधा अवलोकन करके आधार सामग्री को (जो घटना या व्यवहार जिस रुप में घटित हो रहा है) प्राप्त किया जा सकता है |
5. विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में, कक्षा में, अध्यापक के लोकतंत्रीय व्यवहार में, पशुपशियों के व्यवहार इत्यादि में इस प्रविधि का विशेष महत्व है।
6. अन्य विधियों में हमें विषयी पर निर्भर रहना पडता है कि वह उत्तर दे, सहयोग करे परंतु यहॉ अवलोकनकर्त्ता स्वयं अवलोकन कर तथ्य को प्राप्त कर सकता है।
7. शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोगात्मक या व्यावहारिक परिस्थितियों में अवलोकन प्रविधि अधिक महत्वपूर्ण है।
8. यह वर्णनात्मक अनुसन्धान का प्रमुख साधन है इससें यथार्थ एवं विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त होता है।
9. अवलोकन द्वारा एक व्यक्ति या समूह दोनों का ही अवलोकन किया जा सकता है तथा एक समय में एक या अनेक गुणों का निरीक्षण सम्भव हैं |

स्वमूल्यांकन प्रश्न– (Self Evaluation Question)-

1. "सामाजिक एवं सांस्कृतिक मनोविज्ञान में अवलोकन द्वारा निरीक्षण ही वास्तविक निरीक्षण है"। कथन पर विचार कीजिए।
2. सामाजिक व्यवहार के किन-किन पक्षों का अवलोकन द्वारा अध्ययन किया जा सकता है |

अवलोकन के प्रकार – (Type of Observation)

अवलोकन विधि को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया गया है –

अवलोकन \ प्रेक्षण के प्रकार

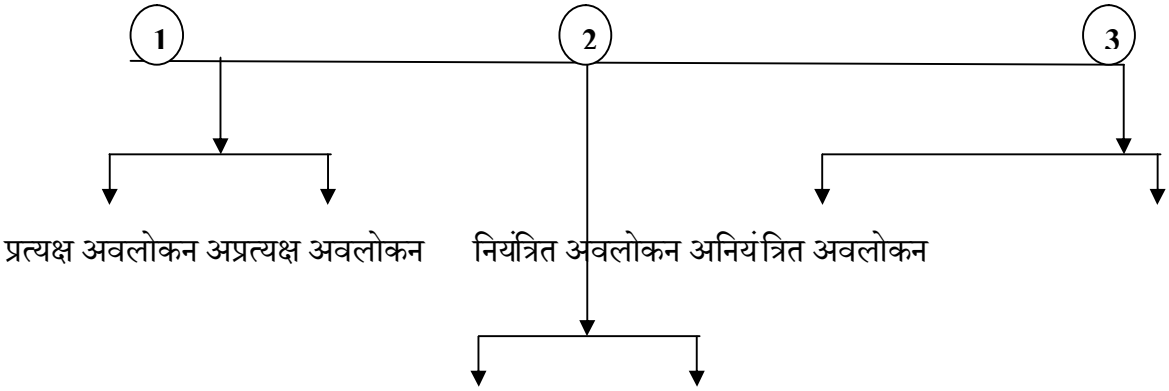

I. प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने के आधार पर अवलोकन दो प्रकार का होता है–

1. **प्रत्यक्ष अवलोकन (Direct Observation)** – इससें अभिप्राय किसी व्यवहार को उसी रुप में देखना है जैसा कि वह व्यवहार हो रहा है | इसमें निरीक्षणकर्ता व्यवहार का अवलोकन स्वयं करता है | पशुओं, बालक विकास तथा संस्कृति के पक्षों का अवलोकन प्रत्यक्ष ही किया जाता है |
2. **अप्रत्यक्ष अवलोकन (Indirect Observation)** – इस प्रकार के अवलोकन में किसी व्यक्ति के व्यवहार के सम्बन्ध में अन्य व्यक्तियों के अवलोकन के माध्यम से निष्कर्ष तक पहुँचा जाता है |

II. अवलोकनकर्त्ता का सहभागिता के आधार पर अवलोकन के दो प्रकार है –

1. **सहभागी अवलोकन (Participant Observation)** – इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता उस समूह का अंग होता है जिसका वह अवलोकन कर रहा होता है | वह समूह के सदस्य के साथ सदस्य की तरह रहकर अवलोकन करता है | समूह का अभिन्न अंग हो जाता है | विभिन्न जातियों, समुदायों के रहन-सहन का अवलोकन इसी प्रकार किया जाता है | वह समूह की सभी क्रियाओं में समूह के सदस्य के रुप में भागीदार बनता है साथ ही अवलोकन भी करता जाता है, इसीलिए इसे सहभागी अवलोकन कहा गया है। प्रेक्षणकर्ता जब तक उस समूह के वास्तविक जीवन का लगभग एक अभिन्न अंग नहीं बन जाता तब तक उसको उस समूह की मूल प्रक्रियाओं, स्थायीभावों, अभिवृत्तियों व मूल्यों का यथार्थ व परिशुद्ध उपलब्ध नहीं हो सकता ।
2. **असहभागी अवलोकन (Non-Participant Observation) -**

   इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्त्ता समूह के क्रियाकलापों में कोई भाग नहीं लेता बल्कि समूह से दूर रहकर क्रियाकलाप देखता है | वह व्यवहार का अवलोकन भी करता है जिसे पुष्ट करने के लिए कभी-कभी साक्षात्कार भी लिया जाता है ।

   यह अवलोकन अधिक वस्तुपरक है इसमें केवल उन्ही साक्ष्यों की खोज की जाती है जो अवलोकनकर्त्ता के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक है ।

ऐसे प्रेक्षण में प्रेक्षक की भूमिका प्रायः तटस्थ अवलोकनकर्त्ता की रहती है, परंतु फिर भी अवलोकनकर्त्ता को कुछ साधारण क्रियाकलापों में भाग लेने पर विशेष प्रतिबन्ध नहीं होते और

विशेष संवेदनशील अवसरों जैसे – धार्मिक समारोहों, कर्मकाण्डों, उत्सवों पर वह समूह के कार्य-कलापों का दूर से ही अवलोकन करता है | आवश्यकता पडने पर वह समारोह के पश्चात सम्बन्धित व्यक्तियों का साक्षात्कार करके अनौपचारिक रुप से जानकारी प्राप्त कर सकता है | इस प्रकार यह अर्द्धसहभागी प्रेक्षण (Semi-Participant Observation) का रुप ले लेता है | इससें परिणाम उपयुक्त प्राप्त होते हैं |

अवलोकन की जाने वाली परिस्थितियों के नियंत्रण के अनुसार अवलोकन के निम्न प्रकार हैं-

1. **अनियंत्रित अवलोकन (Uncontrolled Observation)** – अनियंत्रित प्रेक्षण एक सरल तथा सामान्यत्: निष्क्रिय प्रेक्षण होता है | इसमें अध्ययन के स्वाभाविक, सूक्ष्म तथा स्वतंत्र रुप को अधिक महत्व दिया जाता है | क्योंकि ऐसे अवलोकन में प्रायः सभी प्रकार के नियंत्रणों का पूर्ण अभाव रहता है | इसमें अवलोकन के उद्देश्य तथा परिकल्पनाएँ पूर्व निश्चित नहीं होते। प्रेक्षण के समय जो सामग्री या व्यवहार उपयुक्त, सार्थक एवं महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं उसी का अवलोकन कर लिया जाता है और अवलोकन के आधार पर कुछ परिकल्पनाएँ (Hypothesis) एवं कुछ सिद्धांतों (Theories) का प्रतिपादन किया जाता है| यदि निरीक्षणकर्ता एक अच्छा निरीक्षक है जो प्रदत्त सामग्री अथवा आंकडों के आधार पर अपने निष्कर्ष निकालता है तो उसके निष्कर्ष अत्यंत मूल्यवान सिद्ध हो सकते हैं |

2. **नियंत्रित अवलोकन (Controlled Observation)** – नियंत्रित अवलोकन अनियमित अवलोकन का संशोधित किया हुआ रुप है | यह एक क्रमबद्ध व्यवस्थित तथा वस्तुनिष्ठ अध्ययन है | इसके अंतर्गत सम्बन्धित प्रेक्षित व्यवहार अथवा सामाजिक स्थिति के गुणात्मक (Qualitative) अध्ययन के स्थान पर मात्रात्मक (Quantitative) अध्ययन किया जाता है।

पी. वी. यंग (P.V. Yung) के अनुसार – नियंत्रित प्रेक्षण साधारणतः ऐसी निश्चित एवं पूर्व निर्धारित योजनाओं के अनुसार सम्पन्न किया जाता है, जिसके अंतर्गत पर्याप्त प्रायोगिक प्रक्रिया भी सम्मिलित की जा सकती हैं |

इस प्रविधि में अनेक साधनों की सहायता से अवलोकन को नियंत्रित किया जाता है | इसमें अवलोकनकर्त्ता पर तो नियंत्रण होता ही है साथ ही अवलोकन करने वाली घटना अथवा तथ्य पर भी पूर्ण रुप से नियंत्रण स्थापित किया जाता है | इसमें दो प्रकार से नियंत्रण स्थापित कर अवलोकन किया जाता है -

1. अवलोकनकर्त्ता पर नियंत्रण (Control over Observer)

2. घटना पर नियंत्रण (Control over Phenomena)

इस प्रकार के अध्ययन में अनेक यांत्रिक साधनों जैसे – टेपरिकार्डर, मूवी कैमरा तथा अन्य वस्तुपरक विधियाँ जैसे – प्रेक्षण अनुसूची (Observation Schedules), पडताल सूची (Check List) तथा निर्धारण मापनियों (Rating Scales) आदि का व्यापक उपयोग किया जाता है।

सामाजिक स्थिति के अध्ययनों में व्यापक नियंत्रणों का उपयोग किया जाता है | इसका उद्धेश्य अवलोकन प्रक्रिया को कठोर, वस्तुनिष्ठ तथा मानकीकृत रुप प्रदान करना होता है | इस प्रकार के अध्ययन में सम्बन्धित स्थिति का स्वरुप अधिकांशतः **संरचित** रहता है | अतः कभी-कभी ऐसे

प्रेक्षण को **संरचित प्रेक्षण** (Structured Observation) भी कहते हैं | नियंत्रित प्रेक्षण को वस्तुपरक तथा कभी-कभी वैज्ञानिक प्रेक्षण भी कहा जाता है |

इस प्रकार के निरीक्षण के दो प्रकार हैं –

1. क्षैत्र अवलोकन (Field Observation)
2. प्रयोगात्मक निरीक्षण (Experimental Observaton)

स्वमूल्यांकन प्रश्न(Self Evaluation Question) –

1. नियंत्रित एवं अनियंत्रित अवलोकन में क्या अंतर है?
2. अवलोकन का कौनसा प्रकार अधिक विश्वसनीय और वैध सूचनायें उपलब्ध कराता है?
3. अवलोकन विधि प्राथमिक सामग्री के संग्रहण की अप्रत्यक्ष विधि है? (सत्य\असत्य)

अवलोकन प्रविधि की सीमाएँ (Limitations) -

1. अवलोकन द्वारा केवल प्रकट तथा बाह्य व्यवहार का ही पता लगाया जा सकता है।
2. इससें प्राप्त तथ्यों को सिद्ध या पुष्टि करना सम्भव नहीं हैं |
3. इसमें व्यक्ति-निष्ठता अधिक रहती हैं | वैयक्तिक विभिन्नताओं के कारण मूल्यांकन में अंतर होता है अथवा वस्तुनिष्ठता की कमी होती हैं |
4. प्रत्येक व्यवहार का सब स्थितियों में अवलोकन करना कठिन है जैसे- भावनाएँ, आंतरिक विचार इत्यादि का अवलोकन।
5. यह आवश्यक नहीं है कि हम जिस परिस्थिति में अवलोकन करना चाहते हैं उसमें विषयी उपलब्ध हो। कई बार विषयी उपलब्ध होने पर भी अवलोकन करने से मना कर देता है अथवा वह उचित व्यवहार को छिपा सकता है ।
6. अवलोकन का लेखन व्यवस्थित या ध्यानपूर्वक नहीं किया जा सकता, महत्वपूर्ण तथ्य छूटने की सम्भावना रहती हैं तथा कई बार अनावश्यक सूचनाओं का संकलन हो जाता है।
7. सामाजिक व्यवहारों का अंकन, व्यवस्थीकरण, विश्लेषण एवं व्याख्या में कठिनाई आती है।
8. विभिन्न अवलोकन विभिन्न विवरण देते हैं तथा एक ही तथ्य की अलग-अलग व्याख्याएँ देते हैं | अपनी ओर से अपना पक्ष भी जोड देते हैं | सही तथ्य के सत्यापन में भी कठिनाई आती है ।
9. अवलोकन के भाव, उसकी शारीरिक-मानसिक स्थिति, थकान, मनोवृत्तियों का प्रभाव भी अवलोकन पर पडता है ।
10. व्यक्तियों के व्यवहार समय, प्रेरणायें, निष्पत्ति तथा रुचि अल्पान्तर में ही परिवर्तित होते रहते हैं | कुछ विशिष्ट अवसरों पर किये गये अवलोकन को ही सामान्य मूल्यांकन का आधार मान लिया जाता है ।
11. प्रत्येक परिस्थिति में अवलोकन का प्रयोग करना सम्भव नहीं। कला, संगीत, शारीरिक शिक्षा, नागरिकता एवं सामाजिक समायोजन इत्यादि क्षेत्रों के लिए यह विधि उपयुक्त है ।
12. अवलोकन से प्राप्त निष्कर्षों की वैधता, विश्वसनीयता सीमित होती है तथा इसके आधार पर सीमित भविष्य-कथन ही किया जा सकता है ।

प्रेक्षण को निष्पक्ष प्रेक्षक, समस्या का स्पष्ट ज्ञान, अनुभवों को व्यवस्थित लेखन तथा प्रेश्रित

घटनाओं का परिमाणन (Quantification), सांख्यिकीय विश्लेषण तथा प्रेक्षणों एवं प्रेक्षकों की संख्या में वृद्धि आदि अधिक विश्वसनीय तथा वैज्ञानिक बना सकती है |

स्वमूल्यांकन प्रश्न(Self Evaluation Question)–

1. एक उत्तम अवलोकन की क्या विशेषताएँ होती है?
2. अवलोकन की सीमाएँ क्या है?

3.3. सर्वेक्षण (Survey)

सामाजिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्र में सर्वेक्षण किसी समस्या से सम्बन्धित सूचनाओं के संकलन का एक महत्वपूर्ण साधन या उपागम है |

सर्वेक्षण का अर्थ (Meaning of Survey) -

सर्वेक्षण शब्द अंग्रेजी के दो शब्द Sur + vey से मिलकर बना हैं | Sur (sor) का अर्थ over तथा vey (veeir) का अर्थ to look होता हैं इस प्रकार इसका मूल अर्थ "ऊपर देखना", "अवलोकन" अथवा "अंवेषण" होता हैं |

समाजशास्त्र शब्दकोष के अनुसार, "एक समुदाय के सम्पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पक्ष के सम्बन्ध में व्यवस्थित और पूर्ण सत्य संकलन और तथ्य विश्लेषण का नाम ही सर्वेक्षण हैं |"

कैलोग के अनुसार – "सामाजिक सर्वेक्षण प्रायः सहकारी प्रयास माने गए हैं जो कि किसी ऐसी सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग करते हैं जो इतनी गंभीर हैं कि जनमत को उभार सके तथा उनको हल करने की जनइच्छा को जागृत कर सकें।"

विटनी के अनुसार – "सर्वेक्षण एक व्यवस्थित प्रयास हैं जिससे कि एक सामाजिक संस्था, समूह या क्षेत्र की वर्तमान दशा का विश्लेषण, स्पष्टीकरण और प्रस्तुतीकरण किया जाता है |"

सर्वेक्षण के उद्देश्य (Objectives of Survey) -

सर्वेक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं –

1. सामाजिक पक्षों के बारे में वास्तविक तथ्यों को एकत्र करना।
2. कारणों एवं प्रभाव के मध्य के सम्बन्ध का पता लगाना।
3. वर्तमान स्तर को सुनिश्चित करना, वर्तमान स्तर तथा मान्य स्तर की तुलना करना तथा वर्तमान स्तर के विकास के लिए।
4. विभिन्न सामाजिक घटनाओं में सहचर्यात्मक सम्बन्ध खोजना।
5. व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के लिए उपयोगी तथ्यों की जानकारी का अध्ययन करना।
6. प्रचलित संस्थाओं, योजनाओं इत्यादि के प्रति व्यक्तियों की अभिवृत्ति व मतों का अध्ययन करना।
7. सामाजिक परिवर्तनों की दिशा बताना तथा नियोजन एवं नीति-निर्धारण में मार्गदर्शन करना।
8. सामाजिक घटनाओं के पूर्व-कथन करने की सामान्य क्षमता प्रदान करना।

सर्वेक्षण के प्रकार (Types of Survey)

सर्वेक्षण की विषय सामग्री, उद्देश्यो एवं विधियों के आधार पर इसका वर्गीकरण विद्धानों ने अलग-अलग दिया हैं-

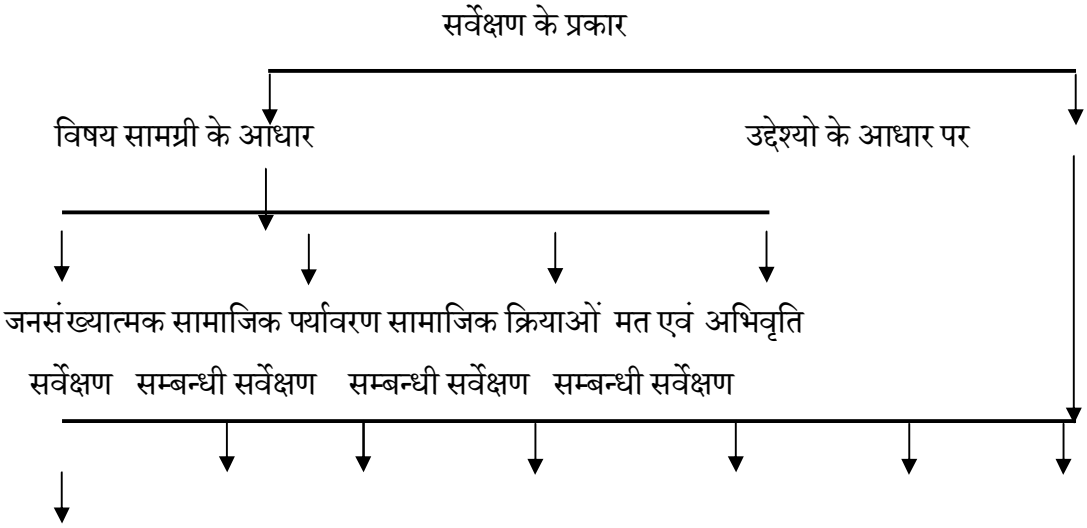

शिक्षा के क्षेत्र में सर्वेक्षण के निम्न प्रकार हो सकते हैं-

1. विद्यालय सर्वेक्षण (School Survey)
2. कार्य विश्लेषण सर्वेक्षण (Job Analysis Survey)
3. प्रलेखी विश्लेषण सर्वेक्षण (Documentary Analysis Survey)
4. जनमत सर्वेक्षण (Public Opinion Survey)
5. समुदाय सर्वेक्षण (Community Survey)
6. अनुवर्ती सर्वेक्षण (Follow-up Survey)
7. मूल्यांकन सर्वेक्षण (Appraisal Survey)

1. विद्यालय सर्वेक्षण (School Survey) – इसका सम्बन्ध विद्यालय जीवन के महत्वपूर्ण पक्षों से रहता है जैसे –

i. विद्यालय के भवन की स्थिति, रचना, विभिन्न कक्षाओं, भौतिक सुविधाओं का अध्ययन |
ii. विद्यालय प्रशासन एवं वित्तीय स्थिति सम्बन्धी समस्यायें |
iii. शैक्षिक पाठ्यक्रम, विद्यालय के उद्देश्य सम्बन्धी |
iv. विद्यार्थियों की उपलब्धि, शिक्षण पद्धति सम्बन्धी |
v. विद्यार्थियों की मानसिक योग्यताओं, अभिक्षमताओं, अभिरुचि तथा समायोजन सम्बन्धी |
vi. विद्यालय कर्मचारियों की योग्यताओं, कुशलताओं, मनोबल सम्बन्धी |
vii. विद्यालय अनुशासन, समायोजन, संगठन व प्रशासन सम्बन्धी |

विद्यालय सम्बन्धी सर्वेक्षण, विद्यालय में शिक्षकों, बाहरी विद्धानों, अनुसन्धानकर्त्ताओं, पुस्तक प्रकाशकों, बाहरी विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है |

2. प्रलेखी सर्वेक्षण (Documentary Analysis) – इस प्रकार का सर्वेक्षण अनेक प्रकार के अभिलेखों (Records) एवं प्रलेखों (Documents) का किया जाता हैजो पाठ्यक्रम की विविधताओं, विद्यार्थियों की निष्पतियों एवं उपलब्धियों, वार्षिक प्रतिवेदनों, वित्तीय स्थितियों का लेखा-जोखा, पत्र-पत्रिकाओं, सूचियों, दैनन्दियों. राजकीय निर्णयों, प्रशासकीय प्रलेखों इत्यादि से सम्बन्धित होता हैं जिनसे तथ्यात्मक सूचनाओं का संग्रह किया जाता है |

3. अनुवर्ती सर्वेक्षण (Follow-up Survey) – इन सर्वेक्षणों का उद्देश्य शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं, घटनाओं और स्थितियों का अध्ययन करना होता हैं जो शैक्षिक प्रगति पर प्रभाव डालती है | जैसे – शिक्षकों एवं विद्यार्थियों की अभिवृत्ति, पठन-पाठन विधियाँ, पदोंन्नति नियम इत्यादि। इनका मूल्यांकन भावी नियोजन एवं नीति-निर्धारण के लिए उपयोगी होने के साथ-साथ वर्तमान स्थिति की उपयुक्तता एवं अनुपयुक्तता का भी अंकन करता है |

4. कार्य विश्लेषण सर्वेक्षण (Job Analysis Survey) – इस प्रकार के सर्वेक्षण का लक्ष्य किसी एक विशेष कार्य के विभिन्न अंगो का विश्लेषण इसलिए किया जाता हैताकि उस कार्य को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक स्थितियों, तत्वों, अनुभवों, योग्यताओं और दक्षताओं का ठीक आंकन किया जा सके तथा इसके आधार पर उपयुक्त कार्य के लिए उपयुक्त व्यक्ति का मार्गदर्शन एवं चयन किया जा सके। कार्यकर्त्ताओं का व्यक्तिगत एवं सामूहिक निरीक्षण, विभिन्न अभिलेखों का परीक्षण, कार्यकर्ताओं से पूछताछ इत्यादि सर्वेक्षण किया जाता है |

5. मूल्यांकन सर्वेक्षण (Appraisal) – इस प्रकार के सर्वेक्षण में विद्यालय, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि, शिक्षक सम्बन्धी तत्वों का सतत एवं व्यापक मूल्यांकन किया जाता हैजिससे शैक्षिक प्रगति के सम्बन्ध में पूर्वकथन किया जा सके, साथ ही वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में भी अंकन किया जा सके।

6. जनमत सर्वेक्षण (Public Opinion Survey) – जनमत सर्वेक्षण राजनीति, समाजव्यवस्था, अर्थव्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था, मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति इत्यादि सभी क्षेत्रों में एक सशक्त एवं प्रभावी माध्यम है |

प्रश्नावली साक्षात्कार, इंटरनेट, मोबाइल, फोन इत्यादि के माध्यम से जनमत सर्वेक्षण करके किसी घटना, स्थिति इत्यादि से सम्बन्ध, प्रवृत्ति तथा अभिमत ज्ञात किए जाते हैं | इन्हें प्रवृति या ट्रेण्ड सर्वेक्षण भी कहा जा सकता है | परिवर्तन की दिशा जानना इनका मुख्य उद्देश्य होता है |

7. समुदाय सर्वेक्षण (Community Survey) – इस प्रकार के सर्वेक्षण में स्थानीय समुदाय के निम्नलिखित क्षेत्रों से सम्बन्धित सर्वेक्षण किये जाते हैं-

1. **समाज के किसी विशेष अंग का सर्वेक्षण जैसे** – विभिन्न जातियों का, महिलाओं का, विद्यार्थियों का सर्वेक्षण।
2. **समाज की किसी विशेष अवस्था या सेवा का सर्वेक्षण जैसे** – बीमा योजना, स्वास्थ्य सेवायें, बाल-अपराध, गृह एवं जातीय विभिन्नता का सर्वेक्षण।

3. **व्यापक सर्वेक्षण जैसे** – कानून एवं सरकारी व्यवस्था, किसी धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र, समुदाय आदि की समस्याओं का ऐतिहासिक सर्वेक्षण, समाज या समुदाय के प्रारुप को प्रभावित करने वाले भौगोलिक कारकों का अध्ययन, आर्थिक वातावरण का प्रभाव, सांस्कृतिक विशेषताओं का अध्ययन, जनसंख्या में लिंग, आयु, जाति,राष्ट्रीयता, शिक्षा, व्यवसाय, भाषा, जन्मदर, मृत्युदर, इनका समाज पर प्रभाव तथा किसी भी राष्ट्र, समाज या समुदाय पर शिक्षा का प्रभाव इत्यादि सर्वेक्षण।

स्वमूल्यांकन प्रश्न(Self Evaluation Question) –

1. सामाजिक व्यवहार के किन पक्षों के अध्ययन हेतु सर्वेक्षण का प्रयोग किया जाता है? विचार करें।
2. जनमत सर्वेक्षण और समुदाय सर्वेक्षण में क्या अंतर है ?

सर्वेक्षण के उपकरण (Tools of Survey) -

विभिन्न प्रकार के सर्वेक्षण करने के लिए प्रायः निम्न प्रकार के उपकरण काम में लिए जाते हैं –

1. प्रश्नावली (Questionnaire)
2. साक्षात्कार (Interview)
3. प्रत्यक्ष निरीक्षण (Direct Observation)
4. मानक परीक्षण (Standardized Tests)
5. निर्धारण मापनी (Rating Scales)
6. अभिलेख एवं प्रलेख (Records and Documents)

सर्वेक्षण प्रक्रिया (Survey Process) –

किसी भी प्रकार के सर्वेक्षण के लिए निम्नलिखित सोपानों का अनुसरण किया जाता है–

1. समस्या को निश्चित तथा स्पष्ट करना।
2. सर्वेक्षण उपकरणों का निर्माण।
3. आंकड़ों अथवा तथ्यों का संकलन।
4. प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण।
5. प्रतिवेदन लेखन अथवा प्रस्तुतीकरण |

सर्वेक्षण के गुण (Merits of Survey) -

1. सामाजिक सर्वेक्षण एक व्यावहारिक तथा तात्कालिक समस्या समाधान की प्रक्रिया है | यह एक व्यापक, विस्तृत अध्ययन की प्रविधि है |
2. सर्वेक्षण अध्ययन में अधिक सूचनायें कम खर्च पर तथा कम समय में प्राप्त की जा सकती है| अतः यह एक मितव्ययी उपागम है |
3. वैज्ञानिक रुप से किया गया सर्वेक्षण व्यक्तियों तथा स्थिति से सम्बन्धित परिशुद्ध, वस्तुपरक तथा विश्वसनीय आंकड़ों के संकलन में सहायक है |
4. सर्वेक्षण द्वारा अध्ययनकर्ता घटनास्थल पर उत्तरदाता के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आता हैं तथा उसे उसके विचारों एवं अन्य तत्वों का निकट से अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होता है |

सर्वेक्षण की सीमाएं (Limitations) –

1. सर्वेक्षण द्वारा केवल साधारण एवं व्यावहारिक समस्याओं का ही अध्ययन किया जा सकता है | गहन एवं गम्भीर अध्ययन के लिए यह उपयुक्त नहीं। इसका क्षेत्र व्यापक हैं परंतु अध्ययन गहन व सूक्ष्म नहीं ।
2. विस्तृत क्षेत्रों से चयनित इकाईयों से सम्पर्क करना कठिन और असुविधाजनक होता है |
3. व्यक्तियों से सूचनायें प्राप्त करने हेतु कुशल, दक्ष तथा व्यवहार कुशल अध्ययनकर्ता की आवश्यकता होती हैं अन्यथा व्यावहारिक कठिनाईयाँ आती है |
4. साक्षात्कार द्वारा आयोजित सर्वेक्षण में अध्ययनकर्ता के स्वयं के मत, पूर्वाग्रह एवं विचारों से पक्षपात आने की सम्भावना रहती है |

स्पष्ट हैं कि वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में सर्वेक्षण का प्रयोग बहुतायत से होता है | सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने का यह एक महत्वपूर्ण साधन है |

स्वमूल्यांकन प्रश्न(Self Evaluation Questions) -

1. सर्वेक्षण के लिए कौन से उपकरण आवश्यक होते हैं?
2. निम्नलिखित में से कौनसा प्रकार, समुदाय सर्वेक्षण का मुख्य उपकरण नहीं माना जा सकता –

   अ) अभिलेख निरीक्षण
   आ) साक्षात्कार
   इ) प्रश्नावली
   ई) प्रत्यक्ष निरीक्षण

3.4 वैयक्तिक अध्ययन (Case Study)

किसी व्यक्ति अथवा समूह का विस्तृत अथवा व्याख्यापूर्ण अध्ययन ही वैयक्तिक अध्ययन या केस अध्ययन कहलाता है |

यह प्रविधि समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है | एक व्यक्ति पर पडने वाले विभिन्न प्रभावों का अध्ययन इस विधि के माध्यम से किया जाता है | सामाजिक विज्ञानों के लिए वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का तर्क संगत मूल आधार जीव-विज्ञानों की विकासात्मक पद्धति है | सामाजिक विज्ञान में एक सामाजिक संरचना व संस्था के वास्तविक स्वरुप को समझने के लिए जीव(Organism) और पौधे (Plant) की ही भॉति उसके कारणात्मक उदगम और विकास से सम्बन्धित ऐतिहासिक एवं तार्किक वातावरण का भी अध्ययन करना होता है |

वैयक्तिक अध्ययन का अर्थ (Meaning of Case Study) –

वैयक्तिक अध्ययन /एकल अथवा केस अध्ययन में किसी एक केस (इकाई) का गहन अध्ययन किया जाता है | इस केस में एक व्यक्ति, परिवार, एक समाज, एक समुदाय, एक संस्था या एक कक्षा हो सकती हैं | जिसका मूल उद्देश्य किसी इकाई का अधिक गहराई से अध्ययन करना होता हैं जिससे प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से निष्कर्ष प्राप्त हो सकें।

"पी. वी. यंग" के शब्दों में – वैयक्तिक अध्ययन एक ऐसी पद्धति हैं जिसके द्वारा एक सामाजिक इकाई चाहे वह एक व्यक्ति, एक परिवार, संस्था, संस्कृति, समूह और एक समस्त समुदाय ही हो, के जीवन का अन्वेषण तथा विश्लेषण किया जाता है| इसका उद्देश्य उन कारकों को निर्धारित करना होता हैं जो कि सम्बन्धित इकाई के व्यवहार के विषम प्रतिरुपों तथा उनके इकाई के प्रति सम्बन्धों की व्याख्या उससे सम्बन्धित स्थानीय परिवेश के आधार पर प्रस्तुत करना होता है |

सर्वप्रथम इस विधि का प्रयोग 19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में व्यवस्थित रुप से हुआ । इसका कानून, चिकित्सा, मनोविज्ञान तथा शिक्षा के क्षेत्र में क्रमशः उपयोग किया जाने लगा ।

वैयक्तिक अध्ययन की विशेषताएं (Characteristics of Case Study)

समाजशास्त्र के क्षेत्र में इस पद्धति के माध्यम से एक सामाजिक इकाई के विकास प्रक्रम का क्रमबद्ध अध्ययन, मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रायः एक बालक (समस्याग्रस्त, प्रतिभाशाली या पिछडा हुआ) का अध्ययन किया जाता है | परंतु मूलतः सभी विषयों के वैयक्तिक अध्ययन का स्वरुप व योजना एक जैसी होती हैं | इस पद्धति की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं -

1. **एक समय पर एकल इकाई का ही अध्ययन** – वैयक्तिक अध्ययन विधि द्वारा एक समय पर एक इकाई (Single Unit) का अति गहन, विस्तृत, सूक्ष्म तथा अति विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है|
2. **क्रमबद्ध, गह्न एवं गुणात्मक अध्ययन** – वैयक्तिक अध्ययन विधि द्वारा एक समय पर एक इकाई का अध्ययन इकाई के विभिन्न चरणों में काल क्रमानुसार किया जाता है | आरम्भ से लेकर एक विशेष स्थिति तक वस्तुपरक तथ्यों के आधार पर गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है | ऐसे अध्ययन के स्वरुप परिणामाणात्मक न होकर गुणात्मक ही रहता है |
3. **दीर्घकालीन अध्ययन** – इस विधि में चूंकि एक इकाई का अध्ययन सूक्ष्म व गहन होता हैं अतः यह दीर्घकालीन विस्तार एवं धैर्यपूर्वक किया जाने वाला अध्ययन है |
4. **बहुपक्षीय अध्ययन** (Multiphasic)– इस विधि द्वारा एक इकाई के विकास तथा प्रस्तुत स्थिति से सम्बन्धित विभिन्न कारकों जैसे – जैविक कारक, उसका भौगोलिक एवं सामाजिक वातावरण, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि इत्यादि में उस इकाई का अध्ययन एवं विवेचन किया जाता हैअतः यहाँ अध्ययन एक पक्षीय न होकर बहुपक्षीय अध्ययन होता है | इसी प्रकार सामाजिक इकाई के अध्ययन के समय उसके उद्गम व विकास से सम्बन्धित समस्त सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक क्रियाकलापों, प्रक्रियाओं, वातावरण का विधिवत अध्ययन करना होता है | उसका वर्तमान स्वरुप क्या और क्यों हैं, यह जानने के लिए इस अध्ययन पद्धति का स्वरुप बहुपक्षीय रहता है |
5. **कार्य–कारण सम्बन्धों का अध्ययन** – एक इकाई से सम्बन्धित विभिन्न अंगों अथवा चरों के पारस्परिक अंर्तसम्बन्धों का विश्लेषण करके उसमें विधिवत रुप से कार्य-कारण सम्बन्धों को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है |

स्वमूल्यांकन प्रश्न(Self Evaluation Questions) -

1. व्यक्ति अध्ययन के अंतर्गत मुख्य रुप से निम्नलिखित में से किसका अध्ययन किया जाता है–

अ) एक व्यक्ति का अध्ययन

आ) एक विशेष समुदाय का अध्ययन

इ) एक विशेष समाज का अध्ययन

ई) उपरोक्त सभी

2. व्यक्ति अध्ययन में किसी समस्या का समाधान गहराई से किया जाता है

(सत्य \असत्य)

व्यक्ति अध्ययन के प्रकार (Types of Case Study)

विद्धानों के अनुसार – वैयक्तिक अध्ययन के निम्न प्रकार हो सकते हैं –

1. **अनुगामी प्रकार के व्यक्ति अध्ययन (Follow-up Type Case Study)** – व्यक्ति विशेष से सम्बन्धी अध्ययन जिसमें यह पता लगाने का प्रयास किया जाता है कि जो किसी कार्यक्रम को पूरा कर चुके हैं या भाग ले चुके हैं उस कार्य का व्यक्ति पर प्रभाव तथा कार्यक्रम की सफलता का पता लगाने हेतु वैयक्तिक अध्ययन किया जाता है |
2. **सामाजिक /सामूहिक वैयक्तिक अध्ययन (Community Case Study)** – किसी समाज, संस्था या समुदाय पर किया जाने वाला अध्ययन है | इन अध्ययन होने वाली इकाईयों की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ विशिष्ट होती हैं इसीलिए इनका अध्ययन किया जाता है| इस प्रकार के अध्ययन इकाई अध्ययन (Unity Study) कहलाते हैं |
3. **क्रियात्मक विश्लेषण व्यक्ति अध्ययन (Activity Analysis Case Study)**– इसके अंर्तगत किसी संस्था या संगठन के शीर्षस्थ पदाधिकारी के कार्य अथवा उनकी कार्य पद्धति का विश्लेषण किया जाता है |
4. **प्रवृत्तियों का अध्ययन (Study of Trends)** – यह वैयक्तिक अध्ययन प्रामाणिक तथ्यों के कालानुक्रमिक निर्धारण पर आधारित होती है | किसी संस्था इत्यादि में विभिन्न वर्षों में चलाई गई विभिन्न योजनाओं का अध्ययन इसमें किया जाता है |
5. **कारणों का तुलनात्मक वैयक्तिक अध्ययन (Comparative Case Study)**– इस अध्ययन में किसी घटना या परिणाम के लिये उत्तरदायी विभिन्न कारणों का तुलनात्मक विश्लेषण किया जाता है | जैसे – किसी विद्यार्थी की असफलता के कारण, संस्था के पतन के कारण इत्यादि । इसमें सफल व्यक्ति या संस्था के परिणामों से तुलना की जाती है |
6. **विषयवस्तु विश्लेषण (Content Analysis)** – लेख के माध्यम से विभिन्न सूचना के स्त्रोतों को प्राप्त करने के लिए लेख या विषयवस्तु विश्लेषण सम्बन्धी अध्ययन किया जाता हैजैसे- आत्मकथा, सन्दर्भ पुस्तकें, छपे हुए आवेदन पत्र, विभागीय प्रमाण एवं चित्रित सामग्री आदि ।

वैयक्तिक अध्ययन के स्त्रोत एवं उपकरण (Sources and Tools of Case Study) -

वैयक्तिक अध्ययन विधि का सम्बन्ध सामाजिक इकाईयों से होता है | यघपि प्रत्येक विशिष्ट इकाई से सम्बन्धित व्यक्तिगत अध्ययन पद्धति का स्वरुप मौलिक रुप से एक ही होता हैं परंतु उनके स्त्रोत भिन्न हो सकते हैं | स्त्रोत का तात्पर्य है – एक ऐसा साधन जो अध्ययन से सम्बन्धित इकाई के स्वरुप की तथा उसके अतीत व वर्तमान से सम्बन्धित पर्याप्त मात्रा में विश्लेषणात्मक वर्णन करता है |

यहॉ तीन मुख्य सामाजिक इकाईयों से सम्बन्धित स्त्रोतों का संक्षिप्त विवरण दिया गया हैं –

1. **व्यक्ति से सम्बन्धित वैयक्तिक अध्ययन** – किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप से सम्बन्धित समस्त पक्ष इसमें सम्मिलित किये जाते हैं जैसे- पारिवारिक पृष्ठभूमि, सामाजिक, आर्थिक विवरण, शैक्षणिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक पक्ष, व्यक्ति का बाल्यकाल, रहन-सहन, गम्भीर बीमारी या दुर्घटना का विवरण, व्यक्ति का पर्यावरण, मित्र, पडोस इत्यादि।

   इसके लिए उपकरणों में विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण, अवलोकन प्रपत्र, साक्षात्कार तथा विभिन्न जानकारियों के लिए व्यक्तित्व के प्रक्षेपी परीक्षणों, सम्मोहन इत्यादि का प्रयोग किया जाता है | व्यक्ति के आंतरिक भावों, दमित व कुण्ठित भावों के विश्लेषण हेतु मनोवैज्ञानिक विधियाँ या गहन साक्षात्कार का प्रयोग किया जाता है |
2. **समूह एवं समुदाय से सम्बन्धित अध्ययन** – किसी समूह अथवा समुदाय के वैयक्तिक अध्ययन के लिए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, विकास की विभिन्न अनुकूल स्थितियाँ, मौलिक संरचना, नियम, उसकी आर्थिक संस्थाएं, व्यवस्थाऐ, समस्यायें, कार्यकलाप के स्वरुप, उनकी भूमिका तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध इत्यादि से सम्बन्धित अभिलेख, अभिलिखित प्रमाण साक्ष्य इत्यादि को एकत्रित किया जाता है | एक समूह या समुदाय के उपरोक्त विभिन्न पक्षों का अध्ययन साक्षात्कार करके या सम्बन्धित समूह के व्यक्तियों के व्यवहारों के प्रेक्षण से किया जा सकता है |
3. **संस्था से सम्बन्धित अध्ययन** – समाज एवं समुदाय के विकास क्रम की तरह संस्था के भी विकास क्रम का अध्ययन किया जाता है | समय समय पर नवीन संस्थायें बनती भी है तथा पुरानी में समाज की आवश्यकता के अनुरुप परिवर्तन व संशोधन भी होते रहते है | अतः संस्था के वैयक्तिक अध्ययन में संस्था की उत्पत्ति से सम्बन्धित ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, मनोवैज्ञानिक वातावरण का अध्ययन, उसकी सामाजिक मान्यता, विकास की प्रेरक स्थितियाँ, विभिन्न कालों में उसकी स्थिरता तथा अनुकूलन क्षमता के प्रमाण, समाज में उसकी विशिष्ट भूमिका व योगदान के तर्क, उसकी जीवनी शक्ति का आधार तथा पतन या उत्थान के कारण इत्यादि स्त्रोतों को एकत्र करना आवश्यक है |

वैयक्तिक अध्ययन की सीमाएं (Limitations) -

अन्य विधियों की भाँति वैयक्तिक अध्ययन की भी कुछ सीमायें हैं –

1. यह अध्ययन पद्धति सामान्यतः केवल चयनित और बहुत ही कम इकाईयों का अध्ययन कर पाती है |
2. इसके माध्यम से सम्बन्धित इकाई के गहन अध्ययन के प्रति केवल गुणात्मक सामग्री ही उपलब्ध होती हैं, मात्रात्मक नहीं। अतः इसके आधार पर वस्तुपरक सामान्यीकरण करने में विशेष कठिनाई आती है |
3. इस विधि से प्राप्त सूचना या अभिलेखन दोषपूर्ण रहता हैं क्योकिं प्रायः व्यक्तिगत सम्पर्क या साक्षात्कार का स्वरुप विस्तृत तथा दीर्घकालीन होता है इतने अंतराल में अभिलेखन यथावत नहीं रहता। स्मृति के दोष, व्यक्तिगत पक्षपात एवं पूर्वाग्रहों के कारण भी अभिलेखन में दोष आ जाते है |

4. वैयक्तिक अध्ययन पद्धति का स्वरुप अतिसंवेदनशील होता है इसके लिए शोधकर्ता को दक्ष वैज्ञानिक दृष्टिकोण युक्त होना तथा पूर्व अनुभवों का होना आवश्यक होता हैं जो एक आम समस्या है |
5. अध्ययन की प्रक्रिया चूंकि अति जटिल, व्यापक, गहन एवं दीर्घकालीक होती है | अतः इसकी पुनरावृत्ति में विशेष कठिनाई होती हैं और विश्वसनीयता में भी कमी आती है |
6. इसमें वस्तुपरक आधार पर निश्चित एवं विश्वसनीय निष्कर्ष उपलब्ध नहीं हो पाते।

यघपि वैयक्तिक अध्ययन की अपनी निश्चित सीमायें हैं परंतु अध्ययन सम्बन्धी इकाईयों में वृद्धि करके, अध्ययन प्रक्रम की रुपरेखा को पूर्व सुनिश्चित करके, प्राप्त सूचनाओं को सांकेतिक भाषा में अंकन करके इसको अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है | वैज्ञानिक, तर्कसंगत एवं वैध सूचनाओं के संकलन हेतु दक्ष व कुशल अध्ययनकर्ता हो तथा आवश्यकता होने पर दो या अधिक शोधकर्ता अध्ययन को अधिक तुलनीय या विश्वसनीय बना सकते है |

स्वमूल्यांकन प्रश्न(Slef Evaluation Questions) -

1. व्यक्ति अध्ययन की उपयोगिता किन क्षेत्रों में अधिक है ? विचार करें।
2. व्यक्ति अध्ययन की प्रमुख सीमायें क्या है ?

3.5. समाजमिति (Socimetry)

समाजमिति एक महत्वपूर्ण प्रविधि हैं जिसका सामाजिक मनोविज्ञान में बहुत प्रयोग होता है | यह एक समूह की बनावट का अध्ययन करने और प्रत्येक समूह में सदस्य का स्तर मापने, समूह के अंतर्सम्बन्धों तथा सामाजिक वातावरण का पता लगाने की प्रविधि है |

समाजमिति अनौपचारिक सामाजिक स्थितियों व समूहों में व्यक्तियों के विशिष्ट अंतर-वैयक्तिक सम्बन्धों के परीक्षण, प्रेक्षण, अभिलेखन एवं मापन की एक अति महत्वपूर्ण विधि है | इसके अंतर्गत एक समूह से सम्बन्धित व्यक्तियों के एक विशेष आधार पर पारस्परिक आकर्षणों (Attractions), प्रतिकर्षणों (Repulseions) व उदासीनताओं (Indifferences) की प्रतिक्रियाओं के द्वारा सम्बन्धित समूह की संरचना, समरसता, (Cohesiveness) नेतृत्व, पूर्वाग्रह व मनोबल आदि के स्वरुप का अध्ययन एवं मापन किया जाता है |

1934 में इस तकनीकी का विकास **"जे. एल. मोरेनो"** ने एक पब्लिक स्कूल में सक्रिय समूहों के अध्ययन में किया था। औद्योगिक क्षेत्र में **"जैकब्स"** (1945) ने इस विधि के माध्यम से पर्यवेक्षकों, फोरमैनों तथा प्रबन्धकों का चयन किया और अनौपचारिक सामाजिक गुटों का भी पता लगाया। शिक्षा के क्षेत्र में **"न्यूकाम्ब"** (1947), **"ग्रीनलुण्ड"** (1953) इत्यादि ने भी विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के सम्बन्धों में इसको प्रयुक्त किया। इस प्रकार अनेक समाजशास्त्रियों व मनोवैज्ञानिकों ने अपने विभिन्न प्रकार के अध्ययनों में समाजमिति का प्रयोग किया।

समाजमिति का अर्थ -

विली तथा एण्ड्रू के अनुसार – "समाजमिति एक रेखाचित्र हैं जिसमें कुछ चिन्ह और अंक किसी सामाजिक समूह के सदस्यों द्वारा सामाजिक स्वीकृति या त्याग का ढंग प्रदर्शित करने के लिए प्रयुक्त होते है |"

ब्रौनफैनब्रेनर के अनुसार – "समाजमिति एक ऐसी विधि हैं जिसके द्वारा समूहों में व्यक्तियों की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति के विस्तार के मापन के आधार पर उनकी सामाजिक स्थिति, संरचना तथा विकास का अंवेषण, वर्णन तथा मूल्यांकन किया जाता है।"

समाजमिति प्रविधि का प्रयोग सामाजिक समूह के संगठन का अध्ययन करना, वैयक्तिक रुप से विद्यार्थियों के सामाजिक स्वीकृति का मूल्यांकन करना तथा समूह की सामाजिक संरचना का अध्ययन किया जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट हैं कि समाज के सामाजिक समूह का समाज में स्थान निर्धारण करने के लिए तथा इससे सम्बन्धित विभिन्न सूचनाओं की प्रगति के लिए सामाजिक समूहों का निरीक्षण किया जाता है तथा उसका निष्कर्ष अथवा विश्लेषण रेखाचित्र या रेखाचित्रों के माध्यम से किया जाता है। ओसे समाजमिति कहते हैं।

समाजमिति की विशेषताएं (Charecteristics of Sociomentery) -

1. इस विधि द्वारा एक समूह या अनेक समूहों में व्यक्तियों के विशिष्ट अंतर-वैयक्तिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।
2. इन अंतर्सम्बन्धों का अध्ययन एवं विश्लेषण उनके द्वारा किसी एक विशेष आधार पर व्यक्त किये गए आकर्षण(Attractions),प्रतिकर्षण (Repulsion) एवं उदासीनता (Indifference) के विकल्प के द्वारा किया जाता है।
3. इस विधि द्वारा व्यक्तियों के अंतर्सम्बन्धों के गुणात्मक स्वरुप को वस्तुपरक तथा मात्रात्मक स्वरुप प्रदान किया जाता है।
4. इस विधि का व्यक्तियों के अंतसम्बन्धों के अध्ययन में विशेष बल सामाजिक पक्ष से ही रहता हैं अन्य पक्षों से नहीं।
5. इस विधि द्वारा व्यक्तियों के अनौपचारिक सम्बन्धों का ही अध्ययन किया जाता हैं, औपचारिक सम्बन्धों का नहीं।
6. इसके द्वारा प्रायः छोटे समूहों का ही अध्ययन किया जाना उपयुक्त रहता हैं अधिक बडे समूहों का नहीं।

समाजमिति का उपयोग -

1. इस विधि का उपयोग विद्यालय, कक्षाओं, विभागों, समुदायों, कारखानों, कारीगरों, शिविरों, इत्यादि में व्यक्तियों के लोकप्रिय नेता अथवा स्टार के चयन, सम्प्रेषण के साधन, मनोबल के अध्ययन, समूह संरचना, सामूहिक समरसता व उसमें सक्रिय गुटों व शक्ति गुटों आदि के अध्ययन के लिए विशेष रुप से किया जाता है।
2. विद्यालय में समाजमिति के अनेक उपयोग हैं जैसे – कक्षा में समूहों को व्यवस्थित करने, कक्षा में सामाजिक वातावरण निर्मित करने, विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन को अच्छा बनाने इत्यादि।
3. विद्यार्थियों के सामाजिक सम्बन्धों (Social Relations) पर विद्यालय की गतिविधियो के प्रभाव का मूल्यांकन करने में।

4. उन विद्यार्थियों की सहायता करने में जो अपने साथियों में सर्वाधिक "एकाकी" हैं |

5. विद्यालय में सर्वाधिक उत्तम विद्यार्थी, परित्यक्त विद्यार्थी, सबसे लोकप्रिय विद्यार्थी, नेतृत्व, गुटबन्दी, सामाजिक स्तर एवं व्यक्तित्व गुणों का पता लगाने में उपयोगी है |

6. इस विधि द्वारा समूह की समरसता (Cohesivences) का ज्ञान होता है |

समाजमिति तकनीक के प्रकार (Types of Sociometry) -

1. **समाजमिति स्व-निर्धारण अथवा सम्बन्धात्मक विश्लेषण (Sociometric Self Rating or Relation Analysis) –**

   इस विधि को सर्वप्रथम **मोरिनो** (Moreno) ने 1942 में प्रयुक्त किया था। इसमें एक व्यक्ति को स्वयं को निर्धारित करने हेतु स्वयं प्रश्नों के उत्तर देने होते हैं जैसे – आपके अनुसार आपको समूह में सबसे अधिक कौन पसन्द करेगा या कौन व्यक्ति सबसे ज्यादा आपका विरोध करेगा। यह प्रायः साक्षात्कार या अनुसूची के माध्यम से पूछा जाता है |

2. **बताओ कौन प्रविधि (Guess Who Technique)** - इस प्रविधि में व्यक्तियों द्वारा अदा की जाने वाली भूमिकाओं की सूची का विवरण दिया होता है | जो इस शाब्दिक वर्णन या भूमिका के अनुकूल प्रतीत होते हैं, उसका अनुमान लगाकर उत्तर दिया जाता है | इसमें व्यक्ति अपना नाम भी दे देता हैं यदि उसे लगता हैं कि यह वर्णन उसका प्रतीत होता है |

   जैसे – 1. यह व्यक्ति हर समय चिंताग्रस्त रहता है |

   2. यह व्यक्ति दूसरों की सहायता को हर समय तत्पर रहता है |

3. **समूह वरीयता अभिलेख (Group Preference Record)**– इस प्रविधि में एक समूह के समस्त व्यक्ति एक-एक करके अन्य समस्त व्यक्तियों का किसी एक कसौटी के आधार पर पांच बिन्दु स्केल या तीन बिन्दु स्केल पर अपना विकल्प व्यक्त करते हैं | इस विधि की विशेषता यह हैं कि इसमें समूह के समस्त सदस्य सभी व्यक्तियों का निर्धारण करते हैं | व्यक्तियों की वरीयताओं (Preferences) को उनकी प्रबलता (Intensity) के आधार पर भार (Weighted) दिया जाता है |

4. **सामाजिक दूरी स्केल (Social Distance Scale)** – "बोगार्डस" (Bogardus) (1925) ने स्वीकार्यता के विभिन्न अंशो को व्यक्त करने के लिए सात पदों के स्केल का निर्माण किया जिनसे व्यक्तियों तथा समूहों में सामाजिक दूरी का मापन किया जाता था। सामाजिक दूरी स्केल में प्रत्येक व्यक्ति पूछे जाने वाले प्रश्नों में अन्य व्यक्ति के बारे में प्रतिक्रिया देता हैं | पूरे समूह के उत्तरों का वर्गक्रम ज्ञात करके सही स्थिति ज्ञात कर ली जाती है |

5. **सामाजिक स्वीकृति स्केल (Social Acceptance Scale)** – इससे व्यक्ति की समूह में स्वीकृति का पता चलता है | इसमें प्रत्येक व्यक्ति दूसरे प्रत्येक व्यक्ति को छः बिन्दु श्रेणी में से एक श्रेणी के लिए निर्धारित करता है |

6. **समूह सहभागिता मापनी (Group Participation Scale)** – इस स्केल के माध्यम से एक समूह के कार्य कलापों में सहभागिता की प्रभावकारिता का मापन किया जाता है |

7. **समयावधि अंकनविधि (Estimates of Time Method)** – इस विधि के द्वाराएक व्यक्ति के विकल्प की प्रबलता का आंकन इस आधार पर किया जाता हैकि एक व्यक्ति अपने समूह के दूसरे व्यक्ति के साथ अंतर्क्रिया में कितना समय व्यतीत करना पसन्द करेगा ।

8. **बहुसम्बन्धी समाजमिति सर्वेक्षण (Multi Relational Sociometric Survey Method)** – इसमें सम्बन्धित सूचना के अतिरिक्त कुछ अन्य आंकड़ों को सम्मिलित कर अध्ययन को बहुपक्षीय रुप प्रदान करना होता है तथा उससे सम्बन्धित आवश्यक जानकारी के प्रति बहु- सम्बन्धीय समाजमिति सर्वेक्षण करना होता है |

समाजमितीय पद्धति के गुण (Merits of Sociometry) -

1. इसके माध्यम से सामाजिक, सैनिक, शैक्षिक एवं औधोगिक क्षेत्रों में एक समूह के नेता की खोज की जा सकती हैं और नेतृत्व की कसौटियों की जानकारी प्राप्त होती है |
2. बहुसंख्यक समूह के व्यक्तियों के अल्पसंख्यक समूह के प्रति पूर्वाग्रहो का सफलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है |
3. किसी एक समूह में व्यक्तियों की पसन्द –नापसन्द स्थिति, प्रतिष्ठा, प्रभावकारिता की स्थिति, समूह की समरसता की स्थिति, समूह के मनोबल की स्थिति ज्ञात की जा सकती है |
4. इस प्रकार की विधि बाह्य समूहों तथा अन्य सांस्कृतिक समूहों के अध्ययन में संप्रेक्षण व साक्षात्कार विधियों की अपेक्षा अधिक सरल, सुविधाजनक तथा सूचनात्मक होती है |
5. यह विधि कम खर्च एवं कम समय साध्य है |

सीमायें (Limitations) -

1. समाजमिति उपागम एक पूर्ण वैज्ञानिक विधि न होकर केवल एक पूरक विधि है | इसके द्वारा प्राप्त परिणामों की पुष्टि अवलोकन तथा साक्षात्कार द्वारा करना आवश्यक हो जाता है |
2. इस विधि द्वारा प्राप्त आंकड़ों का मात्रात्मक रुप अपर्याप्त व कम ही रहता हैं इससें ऐसे आंकड़ों की सांख्यिकीय अभिक्रिया की प्रायः अपर्याप्त ही रहती हैं |
3. इस विधि के प्रयोग से कुछ व्यावहारिक समस्याओं के विश्लेषण तथा समाधान में आवश्यक जानकारी ही उपलब्ध होती हैं | इससें क्रमबद्ध सैद्धान्तिक ज्ञान ही प्राप्ति प्रायः कम ही होती है |
4. इस विधि के द्वारा जिस कटौती के आधार पर अंतरवैयक्तिक सम्बन्धों का विश्लेषण किया जाता हैप्रायः ऐसी कसौटी की समुचित व्याख्या सम्बन्धित व्यक्तियों के सामने प्रस्तुत नहीं की जा सकती, जिससे प्राप्त परिणामों में दोष आ जाना स्वाभाविक हो जाता है |

3.6. प्रयोगात्मक पद्धति (Experimental)

प्रयोगात्मक पद्धति एक वैज्ञानिक पद्धति हैं | वास्तव में प्रयोग, एक ऐसा प्रबल एवं कुशल यंत्र तथा उपकरण हैं, जिससे वैज्ञानिक जगत में विशेषतः भौतिक विज्ञानों में, एक घटना से सम्बन्धित चरों में कार्य कारण एवं प्रभाव सम्बन्ध को स्थापित करने में तथा उनके घटित होने के सम्बन्ध में कुशल भविष्यकथन करने में महान सफलता प्राप्त हुई हैं | इसी कारण से सामाजिक विज्ञानों में विशेषतः

मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रयोग आधारित गतिविधियों को महत्व मिला हैं और शिक्षा के क्षेत्र में भी इसकी आवश्यकता अधिक अनुभव की जा रही हैं |

अर्थ एवं परिभाषाएं – प्रयोगात्मक उपागम के अर्थ को समझने से पूर्व प्रयोग के अर्थ को समझना आवश्यक हैं-

बेवरीज के अनुसार – "प्रयोग में बहुधा किसी घटना को ज्ञात दशाओं में कराया जाता हैतथा बाह्य प्रभावों को यथासम्भव दूर करते हुए गहन निरीक्षण किया जाता हैजिससे घटना एवं दशाओं के सम्बन्ध को भली प्रकार प्रदर्शित किया जा सके।"

"चैपिन" के अनुसार – नियंत्रित दशाओं में किये गये निरीक्षण ही प्रयोग हैं |

"फ़ैस्टिंगर" के शब्दो में – "प्रयोग ऐसी स्थिति हैं जिसकी रचना अंवेषणकर्ता उन यथार्थ परिस्थितियों के अंतर्गत करता हैं, जिसका वह अध्ययन करना चाहता हैं तथा जिसमें वह कुछ चरों को नियंत्रित करता हैं और कुछ में हेर-फेर करता हैं, और फिर ऐसी स्थिति में वह स्वतंत्र चरों में किये गए हेर-फेर का परतंत्र चरों पर पडने वाले प्रभावों का प्रेक्षण व मापन कर सकता हैं |"

"ग्रीनवुड" के अनुसार – "प्रयोग कार्य कारण सम्बन्ध को व्यक्त करने वाली परिकल्पना के परीक्षण की विधि हैं जिसमें नियंत्रित परिस्थितियों में कार्य कारण सम्बन्ध का आंकलन करते हैं |"

प्रयोगात्मक विधि – यह कहा जा सकता हैं कि प्रयोग एक ऐसी विधि हैं जिसमें दो या अधिक चरों के प्रभावों का अध्ययन किया जाता है |

प्रयोग में आश्रित चर पर स्वतंत्र चर या प्रयोगात्मक चर के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है | अत: वह विधि जो प्रयोगों पर आधारित हो, प्रयोगात्मक विधि कहलाती हैं अथवा प्रयोग विधि पर आधारित अध्ययन ही प्रयोगात्मक विधि है |

अध्ययन में प्रयोगकर्ता के सामने एक स्पष्ट प्रश्न या समस्या होती हैं यह प्रश्न उपकल्पना पर आधारित होता है | प्रयोगों के आधार पर उपकल्पना को सिद्ध असिद्ध किया जाता है | मानवीय व्यवहार का अध्ययन ही प्रयोगात्मक विधि का उद्देश्य है | प्रयोगकर्ता नियंत्रित दशाओं में निरीक्षण करता हैं | प्रयोग का फल हमें बताता हैं कि किन दशाओं में एक विशेष प्रकार का सामाजिक व्यवहार प्रदर्शित होता है | इस प्रकार के व्यवहार का अध्ययन नियंत्रित दशाओं में होता है | मनुष्य के बाह्य एवं आंतरिक व्यवहारों, विभिन्न योग्यताओं, क्षमताओं, रुचियों तथा उच्च मानसिक प्रक्रियाओं के विषय में निश्चित एवं प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमें प्रयोगात्मक विधि का उपयोग करना पडता है |

"जे. एस. मिल" ने प्रयोगात्मक विधि की मूल अवधारणा का वर्णन किया है – "यदि दो परिस्थितियां सभी दृष्टि में समान हैं और उनमें से किसी एक परिस्थिति में कोई तत्व जोडा अथवा घटाया जाता हैदूसरी में नहीं, तो दोनो परिस्थितियों में आने वाला अंतर उसी विशेष तत्व के जोडने अथवा घटाने के कारण होगा।"

इस अवधारणा के कारण प्रयोगों में प्रभाव डालने वाली सभी स्थितियों पर नियंत्रण कर स्वतंत्र चर के अंतर का प्रभाव परतंत्र चर पर देखते हैं | इसी कारण सामाजिक विज्ञानों में इस तरह के नियंत्रण सम्बन्धी प्रयोगों को करना अत्यंत कठिन माना जाता है |

प्रयोगात्मक विधि में क्षेत्र प्रयोग तथा प्रयोगशाला आधारित प्रयोग सम्मिलित है | क्षेत्र अध्ययन प्रायः क्षेत्र प्रयोगों के लिए सम्बन्धित चरों को खोजते तथा स्पष्ट करते हैं और इस प्रकार क्षेत्र प्रयोग पर आधारित अध्ययनों से प्रयोगशाला में अध्ययन के लिए सम्बन्धित चरों की महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है | मनोविज्ञान एवं समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र में इस विधि द्वाराबहुत से अध्ययन किए जा रहे है |

मनोविज्ञान में प्रयोग दो प्रकार के हो सकते हैं –गुणात्मक तथा परिणामात्मक। गुणात्मक प्रयोगों का मुख्य उद्देश्य होता हैं – प्रयोगों द्वारा मनोवैज्ञानिक तथ्यों की व्याख्या करना, जबकि मात्रात्मक प्रयोगों का उद्देश्य मापन करना है मात्रात्मक प्रयोगों में मुख्यतः सांख्यिकीय विधियो का उपयोग किया जाता है |

प्रयोगात्मक विधि की कसौटी –

प्रयोगात्मक विधि एक वैज्ञानिक विधि हैं अतः इसकी कसौटी का आधार भी वैज्ञानिक विधि के अनुसार है |

1. वस्तुनिष्ठता
2. सत्यापन क्षमता
3. निश्चयात्मकता
4. भविष्यकथन क्षमता

प्रयोगात्मक विधि में वस्तुनिष्ठता का विशेष ध्यान रखा जाता हैइससें प्राप्त निष्कर्ष का उन्ही परिस्थितियों में सत्यापन किया जा सकता हैं तथा इसके आधार पर विश्वास के साथ भविष्यकथन किया जा सकता है |

स्व-मूल्यांकन प्रश्न(Self Evaluation Question) -

1. प्रयोग की आवश्यकता क्यों होती हैं विचार करे।
2. वस्तुनिष्ठता का प्रयोगात्मक विधि में विशेष ध्यान रखा जाता है | (सत्य \असत्य)

प्रयोगशाला विधि के उद्देश्य -

1. विभिन्न चरों में यथार्थ सम्बन्धों की खोज तथा अंतसम्बन्धों की खोज ।
2. पूर्व स्थापित सिद्धांतो पर आधारित परिकल्पनाओं तथा नवीन तथ्यों पर आधारित परिकल्पनाओं का परीक्षण करना ।
3. परिकल्पनाओं के परीक्षण द्वारा नये सिद्धांतों की रचना करना।
4. कुशल भविष्यकथन करने की क्षमता प्राप्त करना तथा उसकी विश्वसनीयता की जांच भी करना ।
5. सैद्धांतिक ज्ञान की व्यावहारिक जगत में अनुप्रयुक्ति करना ।

प्रयोगात्मक विधि की विशेषताएं -

1. प्रयोगात्मक विधि में प्रयोगकर्ता अपनी इच्छानुसार घटना का निर्माण कर सकता हैं, जिसके फलस्वरुप वह सही निरीक्षण के लिए पूर्ण रुप से तैयार रहता है |

2. प्रयोग द्वारा प्राप्त निष्कर्षों के सत्यापन के लिए प्रयोगकर्ता पूर्व परिस्थितियों में ही फिर से निरीक्षण कर सकता हैं तथा प्रयोग की परिस्थितियों की व्याख्या कर सकता हैं |

3. प्रयोगकर्ता व्यवस्थित रुप से दशाओं में परिवर्तन करके उनका निष्कर्ष पर पडने वाले प्रभाव का अध्ययन कर सकता है |

4. प्रयोगों के द्वारा प्रभावों का मापन शुद्धता से प्राप्त किया जा सकता है |यह अधिक वैध एवं विश्वसनीय विधि हैं |

5. प्रयोग विधि में प्रभावों तथा गतिविधि का वैज्ञानिक निरीक्षण होता हैं कार्यकारण सम्बन्धों का शुद्ध अध्ययन होता है |

6. प्रयोग नियंत्रित परिस्थितियों का उपयोग ही करता हैं | अतः जहाँ भी चरों पर नियंत्रण सम्भव हैं इस विधि को सफलतापूर्वक प्रयोग में लाया जा सकता है |

7. यह वस्तुनिष्ठ प्रक्रिया हैं इसमें निरीक्षणकर्ता की व्यक्तिगत धारणाओं का कोई प्रभाव नहीं पडता ।

8. प्रयोगात्मक विधि में अनेक दशाओं या चरों को चल मानकर उसका सामाजिक स्थिति पर प्रभाव ज्ञात कर सकते हैं जबकि अन्य किसी विधि में यह सम्भव नहीं। ‘

9. समाज मनोविज्ञान के प्रयोगात्मक अध्ययन करने में सांख्यिकी प्रविधियो का प्रयोग प्रदत्त सामग्री या आंकड़ों के विश्लेषण आदि में कर सकते हैं |

10. मूलभूत, प्रयोगात्मक एवं क्रियात्मक सभी अनुसंधानों तथा अध्ययनों में प्रयोगात्मक विधि का उपयोग किया जा सकता है |विभिन्न विज्ञानों की प्रकृति के अनुसार प्रयोगात्मकता की प्रकृति में भी भिन्नता होती है |

सीमाएं -

1. प्रयोग कृत्रिम परिस्थितियों में किए जाते हैं अतः सामाजिक व्यवहार का वास्तविक स्वरुप प्रायोगिक विधि से प्राप्त करना कठिन है |

2. प्रयोगात्मक दशाओं में प्रयोज्य का सहयोगी होना आवश्यक होता हैं, जो एक कठिनाई है |

3. प्रयोगकर्ता का वैज्ञानिक दृष्टिकोणयुक्त और अच्छा निरीक्षक न होना एक प्रायः बाधा बन जाती है |

4. मानव परिस्थितियों में सभी सम्बन्धित चरों पर नियंत्रण नहीं कर सकते। इस कारण सभी समस्याओं का प्रयोगात्मक अध्ययन भी नहीं किया जा सकता ।

5. सामाजिक विज्ञानों – जैसे शिक्षा एवं मनोविज्ञान में जिस सामग्री पर प्रयोग करना हैं इस विषय सामग्री को ढूढनें में कठिनाई आती है | उपयुक्त प्रयोज्यों के चयन में भी कठिनाई आती है |

6. प्रयोगात्मक विधि में अनेक चरों का एक साथ अध्ययन करने से चरों के स्वरुप में निर्बलता आती है |

7. प्रयोग के परिणामों को तोडमोड कर प्रस्तुत करने की प्रयोगकर्ता की इच्छा पर नियंत्रण रहना प्रायः कठिन रहता हैं क्योकिं प्रयोग की ऐसी स्थिति से उसकी संलग्नता अधिक गहरी रहती हैं और वह अपने परिणामो का अनुप्रयोग प्रयोगशाला की सीमा से बाहर भी करना चाहता है |

स्व-मूल्यांकन प्रश्न(Self Evulation Question) –

1. प्रयोगात्मक नियंत्रण को स्पष्ट करे।
2. प्रयोगात्मक विधि की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं ?

3.7. सांराश (Summary)

सामाजिक और सांस्कृतिक मनोविज्ञान अनेक विधियाँ का प्रयोग प्रदत सामग्री को एकत्र करने में करते है | इनमें निरीक्षण, क्षेत्र-निरीक्षण, प्रयोगात्मक, वैयक्तिक इतिहास, साक्षात्कार, समाजमिति, समूह-गति-विज्ञान, क्रियात्मक-अनुसन्धान इत्यादि मुख्य हैं | अवलोकन द्वारा मानव व्यवहार का प्रत्यक्ष निरीक्षण किया जाता है | प्रयोगात्मक द्वारा नियंत्रित परिस्थितियों में स्वतंत्र चरों के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है | व्यक्तिगत अध्ययन द्वारा किसी इकाई का गहन तथा व्यापक अध्ययन किया जाता हैतथा समूह के पारस्परिक सम्बन्धों तथा लोकप्रियता, एकाकीपन को जानने हेतु समाजमिति का प्रयोग किया जाता है | संक्षेप में अलग-अलग उपागम का प्रयोग सामाजिक व्यवहार के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है |

3.9 शब्दावली

- **अवलोकन विधि -** अवलोकन विधि प्राथमिक सामग्री के संग्रहण की प्रत्यक्ष विधि है| इसमें नेत्रों के माध्यम से नवीन तथा प्राथमिक तथ्यों एवं सूचनाओं का विचारपूर्ण संकलन किया जाता है इसके साथ ही इसमें अवलोकनकर्त्ता देखे जाने वाले व्यक्ति, घटना या समूह के सामाजिक एव व्यक्तिगत व्यवहारों का अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्धारा प्रत्यक्ष निरीक्षण करता है |
- **सर्वेक्षण -** एक समुदाय के सम्पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पक्ष के सम्बन्ध में व्यवस्थित और पूर्ण सत्य संकलन और तथ्य विश्लेषण का नाम ही सर्वेक्षण हैं |"
- **वैयक्तिक अध्ययन -** किसी व्यक्ति अथवा समूह का विस्तृत अथवा व्याख्यापूर्ण अध्ययन ही वैयक्तिक अध्ययन या केस अध्ययन कहलाता है |
- **समाजमिति -** समाज के सामाजिक समूह का समाज में स्थान निर्धारण करने के लिए तथा इससे सम्बन्धित विभिन्न सूचनाओं की प्रगति के लिए सामाजिक समूहों का निरीक्षण किया जाता है तथा उसका निष्कर्ष अथवा विश्लेषण रेखाचित्र या रेखाचित्रों के माध्यम से किया जाता है | इसे समाजमिति कहते हैं |

- **प्रयोगात्मक विधि -** प्रयोग में आश्रित चर पर स्वतंत्र चर या प्रयोगात्मक चर के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है | अत: वह विधि जो प्रयोगों पर आधारित हो, प्रयोगात्मक विधि कहलाती हैं अथवा प्रयोग विधि पर आधारित अध्ययन ही प्रयोगात्मक विधि है |

3.8. सन्दर्भ पुस्तके (Bibliography)

- Freemen F.S., : Psychological Testing (oxford) 1960.
- Young P.V., : Scientific Social Surveys and Research, (Prentice-Hall) .
- Goods & Hatt : Methods in Social Research (McGraw Hill).
- Kerlinger F.N., : Foundation of Behavioural Research (Holt).
- Kapil, H.K., : Research Methods in Behavioural Sciences.
- Mathur, S.S., : Social Psychology.
- Best, John. W.,: Research in Education.
- Roy, P.N., : An Introduction to Research Methods applied to Psychology, Sociology and Education.

इकाई - 4

अभिवृत्ति- अर्थ, प्रकृति एवं संघटक

Meaning, Nature & Components of Attitude

इकाई की रूपरेखा-

4.1 प्रस्तावना

4.2 अभिवृत्ति का उद्देश्य

4.3 अभिवृत्ति- परिभाषाएँ व अर्थ

4.4 अभिवृत्ति- प्रकृति एवं विशेषताएँ

4.5 अभिवृत्तियों के लक्षण

4.6 अभिवृत्ति एवं शील गुण में अन्तर

4.7 अभिवृत्ति एवं सम्बन्धित सम्प्रत्यय

4.7.1 अभिवृत्ति एवं मान

4.7.2 अभिवृत्ति एवं विश्वास

4.7.3 अभिवृत्ति एवं मत

4.8 अभिवृत्ति के संघटक

4.9 सारांश

4.10 कठिन शब्दार्थ

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.1 प्रस्तावना

अभिवृत्ति एक व्यक्ति की किसी दूसरे व्यक्ति अथवा वस्तु के प्रति विचारों, भावनाओं तथा क्रियाओं को निर्दशित करने वाली अभिगमित वृत्ति कही जा सकती है | इस अर्थ में अभिवृत्ति को किसी भी व्यक्ति अथवा वस्तु के प्रति अनुकूल अथवा प्रतिकूल तरीके से अनुक्रिया करने वाली सामान्य पूर्ववृत्ति माना जा सकता है | इसे व्यक्ति की प्रतिक्रिया के लिए तत्परता अथवा तैयारी के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है।

जब हम दूसरों के साथ संप्रेषण करते हैं, तब हमारा अधिकांश वार्तालाप व्यक्ति, घटनाओं, समस्याओं, वस्तुओं आदि के प्रति हमारी अभिवृत्तियों से सम्बन्धित होता है | हम उनके प्रति अपनी

राय, पसन्दगी या नापसंन्दगी तथा विशेष प्रकार से प्रतिक्रिया करने का मंतव्य प्रकट करते हैं | हमारा व्यवहार अभिवृत्तियों पर निर्भर करता है, व्यवहार ही नहीं व्यक्तित्व भी उसकी अभिवृत्तियों के अनुकूल ही ढलता है | जो कुछ भी व्यक्ति सीखता है, आदतें व रूचि विकसित करता है | सभी कुछ अभिवृत्तियों द्वारा प्रभावित होता है।

'अभिवृत्ति' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'एपटस शब्द' से हुई है जिसका अर्थ 'योग्यता' या 'सुविधा' है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- अभिवृत्ति का अर्थ व परिभाषा को समझ सकेंगे।
- अभिवृत्ति की प्रकृति एवं विशेषताएँ को समझ सकेंगे।
- अभिवृत्तियों के लक्षण को समझ सकेंगे।
- अभिवृत्ति एवं शील गुण में अन्तर को समझ सकेंगे।
- अभिवृत्ति एवं सम्बन्धित सम्प्रत्यय को समझ सकेंगे।
- अभिवृत्ति के संघटक को जान पाएंगे|

4.3 अभिवृत्ति-परिभाषाएँ व अर्थ

- जी.डब्ल्यू. आलपोर्ट (1933) के अनुसार, ''अभिवृत्ति मानसिक एवं स्नायविक तत्परता की वह अवस्था है जो अनुभवों द्वारा संगठित होती है तथा उन वस्तुओं एवं स्थितियों के प्रति जिनसे व्यक्ति सम्बन्धित होता है, उसकी प्रतिक्रिया को निर्देशित या गत्यात्मक रूप से प्रभावित करती है।''
- क्रेच तथा क्रचफील्ड (1948) के अनुसार, ''अभिवृत्ति को, व्यक्ति के व्यक्तिगत संसार के कुछ पहलुओं से सम्बन्धित अभिप्रेरणात्मक, संवेगात्मक, प्रत्यक्षात्मक तथा संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के स्थायी संगठन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''
- बोगार्डस ने अभिवृत्ति को, ''भावात्मक अथवा निषेधात्मक महत्व सहित वातावरण के कुछ तत्वों के पक्ष में या विरोध में प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्ति कहा है।''
- के.युंग के अनुसार, ''अभिवृत्ति आवश्यक रूप से एक प्रत्याशित प्रकार की प्रतिक्रिया कही जा सकती है यह किसी क्रिया का प्रारम्भ है जो आवश्यक नहीं कि पूर्ण हों।''
- ब्रिट के अनुसार- ''अभिवृत्ति नाडी सम्बन्धी एक मानसिक तत्परता की अवस्था है जो व्यक्ति से सम्बन्धित सभी वस्तुओं तथा परिस्थियितों के प्रति प्रतिक्रिया पर निर्देशात्मक अथवा गत्यात्मक प्रभाव डालती है।''

- वुडवर्थ के अनुसार- ''अभिवृत्तियाँ, मत, रूचि या उद्देश्य की थोड़ी बहुत स्थायी प्रवृत्तियाँ हैं जिसमें किसी प्रकार के ज्ञान की प्रत्याशा और उचित प्रक्रिया की तत्परता निहित है।''
- जेम्स ड्रेवर के अनुसार- ''व्यवहार को कोई एक दिशा प्रदान करने वाली प्रतिक्रिया के लिए आवश्यक तत्परता का नाम अभिवृत्ति है।''
- मकेशी एवं डॉयल के अनुसार- ''अभिवृत्ति को हम किसी वस्तु से जुड़े हुए प्रत्ययों, विश्वासों, आदतों और अभिप्रेरणाओं के संगठन के रूप में परिभाषित कर सकते हैं|''
- सोरेन्सन के अनुसार- ''अभिवृत्ति किसी वस्तु के प्रति विशिष्ट भावना हैं इसलिए इसमें उस वस्तु से जुड़ी हुई परिस्थितियों में एक निश्चित प्रकार के व्यवहार करने की प्रवृत्ति निहित होती है | यह आंशिक रूप से तार्किक और संवेगात्मक होती है तथा किसी भी व्यक्ति में जन्मजात न होकर उपार्जित होती है।''
- व्हिटेकर के अनुसार- ''अभिवृत्ति शरीर अथवा मस्तिष्क की पूर्व नियोजन अथवा तत्परता से वह अवस्था है जो सार्थक उद्दीपकों के प्रति पूर्व निश्चित तरीके से प्रतिक्रिया करने में सहायक होती है।''

इस प्रकार अभिवृत्ति एक ऐसी स्पष्ट एवं आवश्यक अवधारणा है जो व्यक्ति की वर्तमान प्रतिक्रियाओं को निर्धारित करती है | किसी उद्दीपक के प्रति हमारी प्रतिक्रियाएँ मानसिक तत्परता या अभिवृत्तियों पर निर्भर होती है | अत: अभिवृत्ति की धारणा एक अनुमानित मानसिक ढाँचे को मान्यता देती है | अभिवृत्ति व्यवहार को दिशा प्रदान करने वाली वह अर्जित प्रवृत्ति है जो व्यक्ति को किसी विशेष वस्तु या वस्तुओं के प्रति एक निश्चित प्रकार का व्यवहार करने को तत्परता करती है बशर्ते की वातावरण जन्य परिस्थितियों में कोई प्रतिकूल परिवर्तन ना हो।

अभ्यास प्रश्न-

1. अभिवृत्ति से आपका क्या तात्पर्य है **?**

2. विभिन्न मनोवैज्ञानिकों की दृष्टिकोण में अभिवृत्ति को परिभाषित कीजिए **?**

4.3 अभिवृत्तियों की प्रकृति एवं विशेषताएँ

- अभिवृत्तियों में व्यक्ति वस्तु सम्बन्ध होता है | किसी भी व्यक्ति का किसी अन्य व्यक्ति, वस्तु, संस्था, समूह आदि से कैसा सम्बन्ध है | यह अभिवृत्ति पर निर्भर करता है | जो कि व्यक्ति के व्यवहार एवं व्यक्तित्व को प्रभावित करती है |
- अभिवृत्तियाँ अनुभव से प्राप्त होती है | कोई भी अभिवृत्ति अर्जित होती है | उसे अनुभव द्वारा प्राप्त किया जाता है | इसलिए यह मूल अभिप्रेरणाओं से अलग होती है |
- अभिवृत्तियाँ स्थायी अवस्थाएँ हैं | मूल अभिप्रेरणाओं से स्थायित्व नहीं होता जबकि अभिवृत्तियाँ स्थायी होती है।
- अभिवृत्तियों में अभिप्रेरणा-प्रभावोत्पादकता विशेषता पाई जाती है | अभिवृत्तियों के विकास में अभिप्रेरणा का हाथ होता है | उदाहरण- किसी व्यक्ति का परिवार, जाति, राष्ट्र, धर्म के प्रति बनी अभिवृत्ति में निश्चित प्रेरणात्मक प्रभाव पूरी तरह स्पष्ट होता है |

- सम्बन्धित उद्दीपनों के अनुरूप ही अभिवृत्तियों की संख्या असीमित होती है | जितने प्रकार के उद्दीपन होंगे उतनी ही प्रकार की अभिवृत्ति हो सकती है | अभिवृत्ति में परिस्थिति अनुरूप परिवर्तन भी होता है | इसके कारण इनका स्वरूप लचीला होता है।
- अभिवृत्तियों का प्रसार क्षेत्र पूर्णत: सकारात्मक से पूर्णत: नकारात्मक हो सकता है | अभिवृत्ति में दिशा एवं परिमाण दोनों होते हैं | यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु या विचार के प्रति आकर्षित होकर उन्हें पाना चाहता है तो उसकी अभिवृत्ति की दिशा सकारात्मक मानी जाती है और अगर वह विकसित होकर दूर भागना चाहता है तो अभिवृत्ति की दिशा नकारात्मक होगी।

4.4 अभिवृत्तियों के लक्षण

- अभिवृत्तियों का प्रसार असीमित है | हमारी पसन्द, नापसन्द आदि सभी बातें अभिवृत्ति के अन्तर्गत आती है।
- यह बाहरी वस्तुओं के प्रति हमारी स्थिति है- पक्ष में या विपक्ष में।
- अभिवृत्तियों के व्यक्तिगत विभेद होते हैं जो परिस्थितिजन्य भी होते हैं |
- अभिवृत्तियाँ हमारे व्यवहार का आधार है | हमारे व्यक्तित्व के अनुसार ही बदलती रहती है।
- ये अव्यक्त भी हो सकती हैं और व्यक्त भी। सकारात्मक भी हो सकती है और नकारात्मक भी।
- अभिवृत्तियाँ हमारे सम्पूर्ण व्यवहार संगठन में समन्वित होती है।
- ये वातावरणजन्य है, न कि जन्मजात। हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, जनसंघ,काँग्रेस आदि के विषय में जन्म से ही किसी की पक्ष या विपक्ष में अभिवृत्ति नहीं होती। बल्कि ये वातावरण के अनुरूप बदलती रहती है।
- किसी वस्तु या परिस्थिति के प्रति अभिवृत्ति आवश्यक रूप से उसकी उपयोगिता पर आधारित होती है।
- विभिन्न संस्कृतियों में व्यक्त की अभिवृत्तियाँ अलग-अलग होती है | विभिन्न समुदायों की अभिवृत्तियाँ भी अलग-अलग होती है।
- अभिवृत्तियाँ पर्याप्त रूप से स्थायी होती है | पर इनमें परिवर्तन या संशोधन सम्भव है।
- अभिवृत्तियाँ एक व्यक्ति या वस्तु के प्रति हो सकती हैं या अनेक के प्रति। उदाहरणार्थ, पाकिस्तान के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति के चलते हम उसके अधिकांश व्यक्तियों को अपना शत्रु समझते है |
- इनके दो पक्ष है- जिसकी अभिवृत्ति है और जिसके प्रति है |

अभ्यास प्रश्न-

1. अभिवृत्ति की प्रमुख विशेषताएँ बताइए ?

2. अभिवृत्ति के लक्षणों का विश्लेषण कीजिए ?

4.5 अभिवृत्ति शील गुण में अन्तर

1. 'शीलगुण' विशेषणात्मक शब्द है जो व्यक्तित्व से सम्बन्धित गुण है | अभिवृत्तियाँ दूसरों के प्रति हमारी व्यवहार करने की प्रवृत्तियों की ओर संकेत करती है।
2. अभिवृत्तियाँ पक्ष या विपक्ष में होती है | शीलगुणों का इस प्रकार वर्गीकरण नहीं हो सकता।
3. शीलगुण अपेक्षाकृत अधिक सामान्यीकृत होतेहैं | उदाहराणार्थ, 'आदेशात्मक' एक सामान्य शीलगुण है | इन शीलगुणों से विभिन्न वस्तुओं के प्रति व्यक्ति का व्यवहार निर्धारित होगा।

अभिवृत्तियों के निर्धारक- निम्नलिखित प्रतिकारक अभिवृत्तियों के निर्धारण या परिवर्तन को प्रभावित करते हैं-

1. **सांस्कृतिक निर्धारण-**इस सम्बन्ध में कुछ अध्ययन हुए है | कार्लसन के अनुसार यहूदी एवं विद्यालयों के पूर्व-स्नातक विद्यार्थी ईश्वर एवं जन्म नियंत्रण कैथोलिक फासिज्म में विश्वास रखते हैं |
2. **मनोवैज्ञानिक निर्धारक**- तनाव, आवश्यकताएँ, संवेगात्मक अनुभव, प्रत्यक्षीकरण आदि अभिवृत्तियों को प्रभावित करते हैं | उदाहरणस्वरूप, किसी देश या स्थान से दूसरे देश या स्थान में जाने वाले शरणार्थियों की अभिवृत्ति काफी सीमा तक उनकी मानवीय व भौगोलिक सीमा द्वारा द्वारा निर्धारित होती है |
3. **कार्यात्मक निर्धारण**- इस सम्बन्ध में व्यक्ति के स्वभाव की चर्चा करना उपयुक्त है | इससे काफी सीमा तक वस्तुओं, व्यक्तियों एवं परिस्थितियों के प्रति व्यक्ति की अभिवृत्तियों का निर्धारण होता है।

4.6 अभिवृत्ति एवं संबंधितसम्प्रत्यय

अभिवृत्ति का सम्बन्ध कुछ खास-खास संप्रत्ययों से अधिक है | अत: इसकी समुचित जानकारी के लिए यह आवश्यक है कि अभिवृत्ति का यथोचित अन्तर उन सम्बन्धित संप्रत्ययों के साथ किया जाय। अभिवृत्ति के साथ कुछ इसी तरह से संप्रत्यय जैसे विश्वास, मान या मूल्य, मत आदि के सम्बन्धों का वर्णन निम्नांकित हैं-

4.6.1 अभिवृत्ति एवं मान

सामान्यत: मान से तात्पर्य एक ऐसे लक्ष्य से होता है जिसे प्राप्त करना समाज में काफी वांछित समझा जाता है | इसमें व्यक्ति में एक सकारात्मक या नकारात्मक भाव भी सम्मिलित होता है | वर्केल तथा कूपर ने मान को परिभाषित करते हुए कहा है, ''मान का अर्थ किसी वस्तु या विचार से संबंधित सकारात्मक या नकारात्मक भाव से होता है।''

अभिवृत्ति तथा मान में एक समानता है | अभिवृत्ति तथा मान दोनों ही अर्जित होते हैं | दूसरे शब्दों में, व्यक्ति किसी खास अभिवृत्ति तथा मान को अपने जीवनकाल में विकसित करता है | इस समानता के बावजूद भी इन दोनों में कुछ अन्तर है जो निम्नांकित हैं-

- अभिवृत्ति का सम्बन्ध किसी एक वस्तु से होता है चाहे वह वस्तु अमूर्त्त ही क्यों न हो परन्तु मान का सम्बन्ध किसी एक वस्तु से नहीं बल्कि उस वस्तु के सम्पूर्ण वर्ग से सम्बन्धित होता है | इसलिए सेकर्ड तथा बैकमेन ने कहा है ''मान तंत्र वस्तुओं के सम्पूर्ण वर्ग के प्रति एक उन्मुखता है।''
- अभिवृत्ति तथा मान दोनों में ही भावात्मक पक्ष प्रधान होते हैं | परन्तु मान में अभिवृत्ति की अपेक्षा भावात्मक पक्ष अधिक महत्वपूर्ण होते हैं |
- व्यक्ति के मान का निर्माण उनकी कई वैयकितक अभिवृत्तियों के मिलने के फलस्वरूप होता है |
- अभिवृत्ति मूलत: दो प्रकार की होती हैं- सकारात्मक तथा नकारात्मक । परन्तु मान कई प्रकार के होते हैं- धार्मिक मान, सामाजिक मान, आर्थिक मान, राजनैतिक मान आदि।
- मान का निर्माण चूँकि कई वैयक्तिक अभिवृत्तियों के मिलने से होता है, अत: यह अभिवृत्ति की तुलना में अधिक स्थिर तथा स्थायी होता है ।
- ब्रौनफेनब्रनर (1960) ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह स्पष्ट कर दिया है कि मान में आत्मीकरण का महत्त्व अभिवृत्ति में आत्मीकरण की अपेक्षा अधिक होता है ।

4.6.2 अभिवृत्ति तथा विश्वास-

'व्यक्ति द्वारा संसार के किसी पक्ष के बारे में प्रत्यक्ष एवं संज्ञान के स्थायी संगठन को विश्वास कहते हैं |'' उसी तरह मार्गन किंग विस्ज एवं स्कोपलर ने विश्वास को परिभाषित करते हुए कहा है, ''वस्तुओं के गुणों के बारे में जो विचार या संज्ञान होते हैं उन्हें ही विश्वास कहा जाता है ।'' विश्वास तथा अभिवृत्ति एक-दूसरे से काफी समान है | प्रमुख समानताएँ निम्नांकित हैं-

- अभिवृत्ति के समान विश्वास भी विभिन्न संघटकों का एक स्थायी संगठन है।
- अभिवृत्ति के समान विश्वास में भी संज्ञानात्मक संघटक होते हैं |
- इन समानताओं के बावजूद भी अभिवृत्ति तथा विश्वास में निम्नांकित अंतर हैं-
- अभिवृत्ति में संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा व्यवहारात्मक तीनों संघटक होते हैं जबकि विश्वास में भावात्मक संघटक बिल्कुल नहीं होता है तथा व्यवहारात्मक संघटक भी गौण होता है | (क्योंकि विश्वास कभी-कभी व्यक्ति में व्यवहार करने की तत्परता पैदा कर सकता है।) इसमें (विश्वास में) संज्ञानात्मक संघटक ही प्रधान होता है ।
- अभिवृत्ति में प्रेरणात्मक गुण होते हैं जिसके प्रेरित होकर व्यक्ति कुछ विशेष प्रतिक्रियाएँ करता हैं | परन्तु विश्वास में इस ढंग के प्रेरणात्मक गुण हमेशा देखने को नहीं मिलता है | उदाहरणार्थ, हमें विश्वास हैं कि सूर्य एक तरह का तारा ही है परन्तु उस विश्वास से हमें कोई क्रिया करने की प्रेरणा नहीं मिलती है।
- प्रत्येक अभिवृत्ति में विश्वास सम्मिलित होता है परन्तु प्रत्येक विश्वास का अभिवृत्ति से सम्बन्ध नहीं होता है ।
- अभिवृत्ति वास्तविक तथ्य पर अधिक आधारित होता है जबकि विश्वास वास्तविक तथ्य पर कम लेकिन काल्पनिक तथ्य पर अधिक आधारित होता है ।

- अभिवृत्ति में विश्वास की तुलना में परिवर्तन तेजी से आता है | ऐसा इसलिए होता है कि अभिवृत्ति का सम्बन्ध वास्तविक परिस्थितियों से अधिक होता है | परन्तु विश्वास एक बार कायम हो जाने पर उसे अविश्वास में बदलना कठिन है।
- अभिवृति का क्षेत्र विश्वास के क्षेत्र से अधिक बड़ा होता है क्योंकि अभिवृत्ति में प्रेरणात्मक, संवेगात्मक, संज्ञानात्मक, प्रत्यक्षणात्मक तथा व्यवहारात्मक सभी तरह की क्रियाओं का समावेश होता है जबकि विश्वास मूलत: संज्ञानात्मक एवं प्रत्यक्षणात्मक ही होता है।

4.6.3 अभिवृत्ति तथा मत-

अभिवृत्ति तथा मत में गहरा सम्बन्ध है | प्रत्येक अभिवृत्ति में एक मत निहित होता है | इस कारण इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध और भी बढ़ जाता है | इस सम्बन्ध के एक स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है कि मत तथा अभिवृत्ति के अर्थ को समझ लिया जाये। जहाँ तक अभिवृत्ति के अर्थ का प्रश्न हैं, इसे हम पहले ही बता चुके हैं | मत के अर्थ की व्याख्या करने के ख्याल से कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसे वैज्ञानिक रूप से परिभाषित करने की कोशिश की है | जैसे- सेकर्ड तथा बैकमैन के अनुसार, ''मत एक ऐसा विश्वास है जो कि व्यक्ति अपने वातावरण की कुछ वस्तुओं के प्रति रखता है।' चैपलिन के अनुसार, ''मत एक विश्वास है, विशेषकर ऐसा विश्वास जो अस्थायी होता है तथा जिसमें परिमार्जन की संभावना बनी होती है।''

इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि मत एक तरह का विश्वास ही है जो किसी वस्तु से सम्बन्धित होता है तथा जिसमें अस्थायीत्व का गुण होता है | मत में संज्ञानात्मक तत्त्व की भूमिका प्रधान होती है | जैसा कि हम जानते हैं, अभिवृत्ति में भी संज्ञानात्मक तत्त्व का महत्त्व होता है | इस समानता के बावजूद भी अभिवृत्ति तथा मत में निम्नांकित अंतर है-

- मत में सिर्फ संज्ञानात्मक तत्व होते हैं परन्तु भावात्मक तत्व नहीं होते हैं जबकि अभिवृत्ति में संज्ञानात्मक तत्व के अलावा भावात्मक तत्त्व भी होते हैं | दूसरे शब्दों में, अभिवृत्ति में संवेग या भाव होता है जबकि मत में संवेग या भाव नहीं होता है।
- व्यक्ति की क्रियाओं एवं व्यवहारों पर अभिवृत्ति का अधिक प्रभाव पड़ता है परन्तु मत या विचार का प्रभाव उतना अधिक नहीं पड़ता है।
- अगर हम किसी व्यक्ति की अभिवृत्ति के बारे में जानते हैं, तो यह कहना काफी आसान हो जाता है कि वह व्यक्ति अमुक परिस्थिति में किस तरह का व्यवहार करेगा। परन्तु किसी व्यक्ति के मत या विचार मात्र को जानकर ऐसा करना सम्भव नहीं है।
- अभिवृत्ति का निर्माण चेतन रूप से कम तथा अचेतन रूप से अधिक होता है | जैसे-जैसे किसी वस्तु या व्यक्ति के साथ अन्त: क्रियाएँ अधिक होती हैं, व्यक्ति में अचेतन रूप से धीरे-धीरे एक विशेष अभिवृत्ति का निर्माण होता जाता है | परन्तु मत या विचार का निर्माण मूल रूप से चेतन स्तर पर ही होता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. अभिवृत्ति एवं शीलगुण में प्रमुख अन्तर क्या है ?
2. अभिवृत्ति से सम्बन्धित सम्प्रत्ययों का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए ?

4.7 अभिवृत्ति के संघटक

सभी अभिवृत्तियों में मुख्यत: तीन प्रकार के संघटक पाये जाते हैं-

1. ज्ञानात्मक **2.** भावात्मक **3.** व्यवहारात्मक

1. **ज्ञानात्मक संघटक-** ज्ञानात्मक संघटक विश्वासों तथा मतों का विन्यास होता है जिसके द्वारा अभिवृत्ति अभिव्यक्त होती है | उदाहरणस्वरूप, किसी राजनैतिक दल से प्रति अभिवृत्ति के ज्ञानात्मक संघटक का तात्पर्य या विश्वास हो सकता है कि उस दल के ऐसा नेता है जो ईमानदार व विश्वसनीय है, योग्य व निस्वार्थ सेवा करने वाला है | ज्ञानात्मक संघटक का तात्पर्य यह भी हो सकता है कि इस दल का जनसाधारण द्वारा किस प्रकार मूल्यांकन किया गया है | किसी राजनैतिक दल के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति में यह विश्वास होता है कि सत्ता में आने के बाद यह दल किसी भी अन्य राजनैतिक दल की अपेक्षा देश को अच्छी सरकार दे सकेगा।

2. **भावात्मक संघटक-** भावात्मक संघटक का तात्पर्य किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के साथ सम्बन्धित संवेगों से होता है | संवेगों में किसी उद्दीपक के प्रति सुखद तथा दुखद भावनायें, पसन्द अथवा नापसंद आदि अच्छी या बुरी मन स्थिति, आकर्षण एवं वितृष्णा आदि हो सकते हैं | भावात्मक संघटक अभिप्रेरक कारक के रूप में कार्य करता है | यदि हम एक विशेष दल के प्रति धनात्मक प्रवृत्ति रखते हैं तो उसके किसी कार्यकर्त्ता से मिलना हमारे लिए सुखद होता है और मतदान में उस दल की विजय अथवा पराजय पर हमें प्रसन्नता अथवा दु:ख होता है।

3. **व्यवहारात्मक संघटक-** व्यवहारात्मक अथवा क्रियात्मक संघटक का तात्पर्य उस वास्तविक व्यवहार से है जो किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के प्रति किया जाता है | अनुकूल अभिवृत्ति की अवस्था में किसी व्यक्ति की सहायता करने या समर्थन करने की प्रवृत्ति होती है जबकि प्रतिकूल अभिवृत्ति की अवस्था में उस व्यक्ति को निरुत्साहित अथवा तुच्छ समझने की प्रवृत्ति होती है | व्यक्ति के द्वारा उसे दण्डित अथवा क्षतिग्रस्त भी किया जा सकता है।

क्रेच तथा क्रचफील्ड (**1962**) के अनुसार एक व्यक्ति के सामाजिक कार्य उसकी अभिवृत्ति को प्रदर्शित करते हैं | व्यक्ति की अभिवृत्ति सामाजिक वस्तुओं के धनात्मक एवं ऋणात्मक मूल्यांकन, संवेगों, भावनाओं और क्रिया-प्रवृत्तियों की स्थायी प्रणाली होती है | जैसे-जैसे एक व्यक्ति विकसित होतता है वैसे-वैसे विभिन्न वस्तुओं के प्रति उसके संज्ञान, भाव तथा क्रिया-प्रवृत्तियों ऐसी स्थायी प्रणाली में संगठित हो जाती हैं जिन्हें अभिवृत्तियों का नाम दिया जाता है | अभिवृत्ति एक ऐसी प्रणाली है जिसके तीनों संघटक अन्त: सम्बन्धित होते हैं | जब ये तीनों संघटक अभिवृत्ति नामक प्रणाली में समाविष्ट हो जाते हैं तो ये परस्पर आत्मनिर्भर बन जाते हैं |

4.8 सारांश

किसी एक विशेष वस्तु के प्रति व्यक्ति की अनुभूति व क्रिया-प्रवृत्तियाँ उस वस्तु के प्रति उस व्यक्ति के संज्ञानों को भी प्रभावित करती हैं और यदि उस वस्तु के प्रति संज्ञान परिवर्तित हो जाते हैं तो उस

वस्तु के प्रति व्यक्ति की अनुभूतियाँ व क्रिया-प्रवृत्तियाँ भी परिवर्तित हो जाती है | उदाहरणत: यदि कोई व्यक्ति किसी राजनैतिक दल के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति रखता है तो वह दल की किसी भी क्रिया का सकारात्मक मूल्यांकन करेगा उसके नेताओं को पसन्द करेगा तथा मतदान के दिनों में उसका प्रचार करेगा। इन तीनों संघटकों में से यदि किसी एक में परिवर्तन होता है तो यह परिवर्तित अन्य संघटकों को भी प्रभावित करेगा। प्राय: विद्यालयों में यह पाया गया है कि यदि बालक किसी एक विशेष अध्यापक के व्यवहार से बहुत प्रभावित होकर उसे पसन्द करता है (भावात्मक संघटक) तो वह उसका कहा मानता है एवं उसका बहुत विश्वास व आदर करता है (ज्ञानात्मक संघटक) तथा उसकी सभी कक्षाओं में उपस्थित रहने का प्रयत्न करता है एवं अपने व्यवहार में उन गुणों को उतारने का प्रयास भी करेगा (व्यावहारिक संघटक) | सामान्यत: लोग अभिवृत्ति के विभिन्न संघटकों में संगति बनाये रखना चाहते हैं तथा कोई भी असंगति तनाव तथा दुश्चिंता उत्पन्न करती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. अभिवृत्ति के तीन प्रमुख संघटक बताइए?

2. अभिवृत्ति के तीनों संघटकों में अर्न्तसम्बन्ध को उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए?

4.9 कठिन शब्द

- **अभिवृत्ति -** अभिवृत्ति एक ऐसी स्पष्ट एवं आवश्यक अवधारणा है जो व्यक्ति की वर्तमान प्रतिक्रियाओं को निर्धारित करती है | किसी उद्दीपक के प्रति हमारी प्रतिक्रियाएँ मानसिक तत्परता या अभिवृत्तियों पर निर्भर होती है |

- **मान -** मान से तात्पर्य एक ऐसे लक्ष्य से होता है जिसे प्राप्त करना समाज में काफी वांछित समझा जाता है | इसमें व्यक्ति में एक सकारात्मक या नकारात्मक भाव भी सम्मिलित होता है |

- **विश्वास**- व्यक्ति द्वारा संसार के किसी पक्ष के बारे में प्रत्यक्ष एवं संज्ञान के स्थायी संगठन को विश्वास कहते हैं |
- **मत** - मत एक तरह का विश्वास ही है जो किसी वस्तु से सम्बन्धित होता है तथा जिसमें अस्थायीत्व का गुण होता है | मत में संज्ञानात्मक तत्त्व की भूमिका प्रधान होती है |

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. अभिवृत्ति व शीलगुण में उदाहरण देते हुए अंतर स्पष्ट करें |

2. अभिवृत्ति की परिभाषा को उदाहरण देते हुए स्पष्ट करें |

4.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- **सौरेन्सन, हर्बट**, ''साइक्लोजी इन ऐजुकेशन, नई दिल्ली, टाटा मेग्राहिल (1977)
- कुप्पुस्वामी, बी 'एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल साइक्लोजी' बाम्बे, एशिया पब्लिकेशन हाऊस, 1971
- भार्गव, विवेक, शैक्षिक मनोविज्ञान, राखी प्रकाशन, आगरा, 2007
- सिंह, अरूण कुमार, समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली 1991
- बोरिंग, ई.सी., लैंगफील्ड, एच. एस, एवं बील्ड एच.पी. फाऊण्डेशन ऑफ साइक्लोजी, न्यूयॉर्क, जॉन बिली, 1961
- ट्रेवर्स, रॉबर्ट, एम. डब्ल्यू., एजुकेशनल साइक्लोजी, न्यूयॉर्क, मैकमिलन, 1973
- सिंह, रामपाल, सिंह, एस.डी. एवं शर्मा देवदत्त, नवीन व्यावहारिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक, मन्दिर, आगरा, 2005
- अस्थाना विपिन, अस्थाना श्वेता, मनोविज्ञान एवं शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, विनोद पुस्तक मन्दिर, 2005

इकाई - 5

अभिवृत्ति का विकास एवं निर्माण तथा अभिवृत्ति मापन

Development of Attitude & its Measurement

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 अभिवृत्ति विकास एवं निर्माण अधिगम आधारित

5.4 अभिवृत्ति निर्माण-समूह सम्बन्धन प्रभाव

5.5 अभिवृत्ति परिवर्तन- सांस्कृतिक कारक

5.6 अभिवृत्ति परिवर्तन- वैयक्तित्व एवं अन्य कारक

5.7 अभिवृत्ति निर्माण- सिद्धान्त

5.8 अभिवृत्ति का मापन

5.8.1 अप्रच्छन्न संरचित विधि

5.8.2 अप्रच्छन्न असंरचित विधि

5.8.3 प्रच्छन्न असंरचित विधि

5.8.4 प्रच्छन्न संरचित विधि

5.9 सारांश

5.10 कठिन शब्दार्थ

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.1 प्रस्तावना

मनुष्य के वातावरण में अन्त: क्रिया द्वारा व्यवहार का विकास होता है, अभिवृत्ति निर्माण इसका एक प्रमुख भाग है तथा इसके विकास में बहुत तरह के कारकों का प्रभाव पड़ता है | समाज मनोवैज्ञानिकों ने अभिवृत्ति के विकास को प्रभावित करने वाले बहुत-से कारकों से सम्बन्धित प्रयोगों के विश्लेषण किया है | विभिन्न प्रयोगों के आधार पर इन लोगों ने निष्कर्ष के रूप में कुछ ऐसे कारकों की ओर संकेत किया है जिससे अभिवृत्ति का विकास एवं निर्माण प्रभावित होता है | कुछ सामान्य कारक को

हम आगे समझने का प्रयास करते हैं- **पहला**- यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिस व्यक्ति, वस्तु तथा घटना से हमारे लक्ष्य की प्राप्ति होती है एवं आवश्यकता की पूर्ति होती है, उसके प्रति हमारी अभिवृत्ति अनुकूल होती है तथा जिस व्यक्ति, वस्तु एवं घटना से हमारे लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न होती है एवं आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती है, उनके प्रति हमारी अभिवृत्ति प्रतिकूल हो जाती है | रोजेनवर्ग ने अपने अध्ययन द्वारा इसे प्रमाणित किया है | इस अध्ययन में कॉलेज के 120 छात्रों ने भाग लिया। इस अध्ययन के निष्कर्ष में उन्होंने पाया की जो वस्तुएँ छात्रों के लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक थीं, उनके प्रति उनकी अनुकूल अभिवृत्ति बन गयी तथा जिन वस्तुओं से उन्हें लक्ष्य-प्राप्ति में सहायता नहीं होती थी उनके प्रति उन छात्रों की अभिवृत्ति प्रतिकूल बन गयी है | इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि लक्ष्य प्राप्ति एक महत्त्वपूर्ण कारक है जिससे व्यक्ति की अभिवृत्ति का निर्माण होता है। **दूसरा** यह है कि अभिवृत्ति के निर्माण में व्यक्ति को दिये गये आवश्यक सन्देशों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है | आधुनिक समाज में भिन्न-भिन्न माध्यमों से व्यक्ति को सन्देश दिये जाते हैं | इन माध्यमों में रेडियो, टेलीविजन, अखबार, पत्रिकाएँ आदि प्रधान हैं | इन माध्यमों से दिये गये सन्देशों के अनुसार व्यक्ति अपनी अभिवृत्ति विकसित करता है | इन माध्यमों के अलावा अन्य माध्यमों से भी व्यक्ति को सूचनाएँ मिलती हैं और इनके अनुसार व्यक्ति अपना अभिवृत्ति विकसित करता है | जैसे- माता-पिता, भाई-बहनों, साथियों एवं पड़ोसियों से भी व्यक्ति को सन्देश मिलता हैं और इसके अनुसार व्यक्ति अभिवृत्ति का विकास करता है | ये ध्यान देने योग्य है सभी तरह की सन्देशों का प्रभाव अभिवृत्ति के विकास पर समान रूप से नहीं पड़ता है | सन्देशों की प्रभावशीलता कई बातों पर निर्भर करती हैं जिसमें सन्देशों के स्रोत की विश्वसनीयता सबसे अधिक प्रधान है | मेयर्स के अनुसार यदि सूचना देने वाला स्रोत में व्यक्ति को पूरा विश्वास होता है तो वैसी परिस्थिति में दी गयी सूचना शत-प्रतिशत प्रभावकारी होती है एवं नयी अभिवृत्ति के विकास में सहायक होती हैं | **तीसरा** कि हमारे पूर्व अनुभव भी अभिवृत्ति निर्माण एवं विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं | यदि किसी वर्ग, जाति, धर्म आदि के विषय में हमारा सकारात्मक दृष्टिकोण है जब उससे जुड़े व्यक्तियों के प्रति हमारी अभिवृत्ति भी सकारात्मक होगी।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- अभिवृत्ति विकास एवं निर्माण अधिगम आधारित को समझ सकेंगे।
- अभिवृत्ति निर्माण-समूह सम्बन्धन प्रभाव को समझ सकेंगे।
- अभिवृत्ति परिवर्तन- सांस्कृतिक कारक को समझ सकेंगे।
- अभिवृत्ति परिवर्तन- वैयक्तित्व एवं अन्य कारक को समझ सकेंगे।
- अभिवृत्ति निर्माण- सिद्धान्त को समझ सकेंगे।
- अभिवृत्ति का मापन समझ सकेंगे।

5.3 अभिवृत्ति विकास एवं निर्माण अधिगम आधारित

सामाजिक अधिगम का प्रभाव भी अभिवृत्ति के विकास में काफी पड़ता है | जिस तरह से व्यवहार के भिन्न-भिन्न रूपों को व्यक्ति सीखता है, ठीक उसी तरह अभिवृत्ति के विकास में भी अधिगम की प्रक्रिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है | समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि अभिवृत्ति के विकास में अधिगम की तीन तरह की प्रक्रियाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है | वे तीन प्रक्रियाएँ हैं- क्लासिकी अनुबंधन, साधनात्मक अनुबंधन तथा अवलोकन अधिगम। अभिवृत्ति के विकास में अधिगम की इन तीनों क्रियाओं के महत्त्व की व्याख्या निम्नांकित हैं-

क. **क्लासिकी अनुबंधन** अधिगम का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है | इस सिद्धान्त के अनुसार जब कोई तटस्थ उद्दीपक को अनुक्रिया उत्पन्न करने वाले उद्दीपक के साथ बार-बार उपस्थित किया जाता है तो वैसी परिस्थिति में कुछ समय के बाद तटस्थ उद्दीपक में भी उसी तरह की अनुक्रिया करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है | समाज मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि क्लासिकी अनुबंधन के इस नियम द्वारा हम दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में अनेक नई-नई अभिवृत्तियों को सीखते हैं | उदाहरणार्थ, एक बच्चा अपने माता-पिता को जब बार-बार यह कहते सुनता है कि चीन के लोग मेहनती, ईमानदार होते हैं, तो धीरे-धीरे वह चीनी लोगों के प्रति एक अनुकूल अभिवृत्ति विकसित कर लेता है | प्रारंभ में 'चीन' शब्द उस बच्चे क लिए एक तटस्थ शब्द था जिसके प्रति किसी तरह की अभिवृत्ति नहीं थी। उसी तरह से जब बच्चा अपने परिवार से प्राय: यह सुनता है कि 'पाकिस्तान के लोग' गंदे एवं पिछड़े होते हैं, तो वह धीरे-धीरे 'पाकिस्तानी लोगों' के प्रति वैसी ही अभिवृत्ति विकसित कर लेता है | कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग करके भी यह दिखलाया कि क्लासिकी अनुबंधन के नियमानुसार किस तरह से अभिवृत्ति विकसित होती है | स्टॉटस तथा स्टाटॅस द्वारा किया गया प्रयोग काफी लोकप्रिय है | इन्होंने दो शब्द (जो दो राष्ट्रीयता बतलाते थे) को एक पर्दे पर प्रयोज्यों के सामने दिखलाया। वे दो शब्द थे- 'डच' तथा 'स्वेडिश'। इसमें से एक राष्ट्रीयता शब्द दिखलाने के बाद धनात्मक विशेषण जैसे- 'खुश', 'पवित्र', 'मेहनती' आदि शब्दों को प्रयोगकर्ता बोलकर प्रयोज्यों को सुनाते थे तथा दूसरा राष्ट्रीयता शब्द को दिखलाने के बाद ऋणात्मक विश्लेषण जैसे- गंदा, कुरूप, तीखा आदि प्रयोगकर्ता द्वारा बोलकर प्रयोज्यों को सुनाया जाता था। परिणाम में देखा गया कि वैसे राष्ट्रीयता शब्द के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति प्रयोज्यों में विकसित हो गयी जो धनात्मक विशेषण द्वारा युग्मित किये गय थे तथा जिस राष्ट्रीयता शब्द को ऋणात्मक विशेषण द्वारा युग्मित किया गया उसके प्रति ऋणात्मक अभिवृत्ति प्रयोज्यों में विकसित हो गयी । लोर्ह तथा स्टाटॅस 1973 द्वारा बाद में किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया कि क्लासिकी अनुबंधन द्वारा किसी खास भाषा या संस्कृति के लोगों में ही नहीं बल्कि सभी भाषा-भाषी या संस्कृति में पले व्यक्तियों में इस नियम द्वारा अभिवृत्ति का विकास होता है।

ख. **साधनात्मक अनुबंधन** का नियम अधिगम का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण नियम है जिससे अभिवृत्ति का विकास प्रभावित होता है | साधनात्मक अनुकूलन का नियम इस बात पर बल डालता है कि जिस अनुक्रिया के करने से व्यक्ति को पुरस्कार मिलता है, उसे वह सीख लेता है तथा जिस अनुक्रिया को करने से उसे दण्ड मिलता है, उसे वह दोहराना नहीं

चाहता है | बच्चों में ठीक वैसी ही अभिवृत्ति बहुत जल्द विकसित होती है जैसा कि उनके माता-पिता की होती है | इस का प्रधान कारण यह है कि माता-पिता के समान अभिवृत्ति दिखलाने पर उन्हें पुरस्कार दिया जाता है अर्थात उसके व्यवहारों की प्रशंसा करते हैं, उन्हें प्रोत्साहन स्वरूप ईनाम भी देते हैं | ठीक उसी तरह से अपने माता-पिता की अभिवृत्ति के विपरीत अभिवृत्ति दिखलाने पर उन्हें डाँट-फटकार और कभी-कभी शारीरिक दण्ड भी दिया जाता है | फलस्वरूप, वे इस तरह की विपरीत अभिवृत्ति नहीं विकसित कर पाते हैं | अभिवृत्ति निर्माण में साधनात्मक अनुकूलन के महत्त्व को दिखलाने के लिए कुछ प्रयोग भी किये गये हैं | जैसे- इन्सको एवं मैल्सन 1969 ने अपने प्रयोग में यह दिखलाया है कि जब प्रयोगकर्ता द्वारा प्रयोज्य को थोड़ा-सा भी शाब्दिक पुरस्कार दिया जाता है, तो वैसी परिस्थिति में प्रयोज्य बहुत ही जल्द एक अभिवृत्ति विकसित कर लेता है | करपेलमैन तथा हिमेलफार्ब 1971 ने भी इसी तरह के प्रयोगात्मक सबूत द्वारा अपने प्रयोग की पुष्टि की है।

ग. **अवलोकन द्वारा अधिगम** का नियम यह है कि मानव दूसरे की क्रियाओं को एवं उनके परिणामों को देखकर नयी अनुक्रिया करना सीख लेता है | इस नियम के प्रमुख प्रवर्तक बैण्डुरा है | समाज मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि अवलोकन द्वारा सीखने में बच्चे प्राय: वैसे अभिवृत्ति को भी अपने में विकसित कर लेते हैं जिन्हें उनके माता-पिता स्वयं सीखने के लिए अधिक प्रोत्साहित नहीं करते हैं | उदाहरणार्थ, यदि एक पिता अपने पुत्र को सच्चाई का सबक सिखलाता है परन्तु स्वयं झूठ बोलता है, तो पुत्र पिता की बातों को कम महत्त्व देते हुए स्वयं भी झूठ व बेईमानी करने की अभिवृत्ति विकसित कर लेता है क्योंकि वह अपने पिता की झूठी एवं कपटी क्रियाओं का अवलोकन निरन्तर करता है |

5.4 अभिवृत्ति निर्माण- समूह प्रभाव

व्यक्ति की अभिवृत्ति के निर्माण में समूह का भी प्रभाव पड़ता है | समूह से तात्पर्य व्यक्ति का किसी खास समूह के साथ संबंधकायम करने से होता है | यह निश्चित है कि जब व्यक्ति अपना संबंधकिसी खास समूह से जोड़ता है तो वह उस समूह के मूल्यों, मानदण्डों, विश्वासों, तौर-तरीकों को भी स्वीकार करता है | ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति इन मूल्यों एवं मानदण्डों के स्वरूप के अनुसार अपने में एक नयी अभिवृत्ति विकसित करता है | अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि समूह द्वारा व्यक्ति की अभिवृत्ति विकसित होती है | समाज मनोवैज्ञानिकों ने निम्नलिखित दो प्रकार के समूह से अभिवृत्ति विकास पर पडऩे वाले प्रभावों का अध्ययन किया है-

प्राथमिक समूह ऐसे समूह को कहा जाता है जिसमें सदस्यों की संख्या साधारणत: कम होती है तथा जिसके सदस्यों में घनिष्ठ एवं आमने-सामने का सम्बन्ध होता है | जैसे- परिवार, विद्यालय एवं खिलाडिय़ों का समूह आदि प्राथमिक समूह के उदाहरण हैं |चूँकि प्राथमिक समूह के सदस्यों में अधिक सहयोग, भाईचारा एवं सहानुभूति का गुण पाया जाता है, अत: इसका एक सदस्य ठीक वैसी ही अभिवृत्ति विकसित करता है, जैसा कि अन्य सदस्यों की होती है | भाई की अभिवृति का विकास बहन की अभिवृत्ति के अनुकूल, भाई-बहन की अभिवृत्ति का विकास माता-पिता की अभिवृत्ति के अनुसार प्राथमिक समूह के इसी प्रभाव के कारण होता है | बच्चा जब जन्म लेता है तो उस समय उसका मस्तिष्क एक कोरा कागज होता है | परिवार के अन्य सदस्यों विशेषकर अपने माता-पिता के व्यवहार एवं उनके साथ हुई अन्त:क्रियाओं से उत्पन्न अनुभवों के अनुसार वह एक खास अभिवृत्ति

विकसित करता है | जिन व्यक्तियों एवं घटनाओं के प्रति माता-पिता की अभिवृत्ति अनुकूल होती है, बच्चों में भी उन घटनाओं एवं व्यक्तियों के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति विकसित हो जाती है | दूसरी तरफ जिन चीजों के प्रति माता-पिता की अभिवृत्ति प्रतिकूल होती है, बच्चे भी उन चीजों के प्रति एक प्रतिकूल अभिवृत्ति विकसित कर लेते हैं | सिर्फ बच्चे ही नहीं बल्कि परिवार के अन्य सदस्य भी अपनी अभिवृत्ति उसी दिशा में विकसित कर लेते हैं | इस तरह से हम देखते हैं कि प्राथमिक समूह के प्रभाव के कारण समूह के सदस्यों की अभिवृत्ति में एकरूपता पायी जाती है |

क्रेच, क्रचफिल्ड तथा बैलेची के अनुसार प्राथमिक समूह के प्रभाव के कारण अभिवृत्ति में जो एकरूपता आती है, उसके निम्नंकित चार कारण हैं-

1. प्राथमिक समूह के सदस्यों पर अनुपालन के लिए अधिक सामूहिक दबाव होता है | इसके कारण ऐसे सदस्यों की अभिवृत्ति में समरूपता पायी जाती है।
2. प्राथमिक समूह एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है जहाँ किसी सदस्य की अभिवृत्ति अन्य सदस्यों की अभिवृत्ति के अनुकूल होती है | इससे भी सभी सदस्यों की अभिवृत्ति में समानता बढ़ती है।
3. किसी भी प्राथमिक समूह के सदस्यों को एक समान सूचनाएँ दी जाती है | फलत: उनके अभिवृत्तियों में एकरूपता आती है।
4. प्राथमिक समूह का नया सदस्य अन्य सदस्यों की अभिवृत्ति को समूह स्वीकृति प्राप्त करने के उद्देश्य से अपनाता है।

अभिवृत्ति के निर्माण एवं विकास में सन्दर्भ समूह का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है | सन्दर्भ समूह से तात्पर्य वैसे समूह से होता है जिसके साथ व्यक्ति आत्मीकरण कर लेता है चाहे वह उस समूह का सदस्य औपचारिक रूप से हो या न हो। प्राय: सन्दर्भ समूह के लक्ष्य, मूल्य आदि को अपनाकर वह अपने व्यवहार एवं चरित्र में ठीक वैसा ही परिवर्तन लाता है जैसा कि इन लक्ष्यों एवं मूल्यों से अपेक्षित है | सन्दर्भ समूह का प्रभाव अभिवृत्ति के निर्माण में काफी अधिक होता है | उदाहरणार्थ, जब एक गरीब व्यक्ति उच्च आय वाले परिवार को अपना सन्दर्भ समूह मानता है तो स्वभावत: उस व्यक्ति की अभिवृत्ति उनके अनुकूल हो जाती है | मेयर्स के अनुसार सन्दर्भ समूह व्यक्ति को नयी अभिवृत्ति के निर्माण में इसलिए सहायता प्रदान करता है क्योंकि संदर्भ समूह का वातावरण उसे समान अभिवृत्ति के लिए प्रोत्साहित करता है।

5.5 अभिवृत्ति परिवर्तन- सांस्कृतिक कारक

अभिवृत्ति के निर्माण एवं विकास में सांस्कृतिक कारकों का भी अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान बताया गया है | प्रत्येक संस्कृति का अपना मानदण्ड, मूल्य, परम्पराएँ, धर्म आदि होते हैं | प्रत्येक व्यक्ति का पालन-पोषण किसी न किसी संस्कृति में ही होता है | फलस्वरूप उसका समाजीकरण इन्हीं सांस्कृतिक कारकों द्वारा अधिक प्रभावित होता है | व्यक्ति अपनी अभिवृत्ति इन्हीं सांस्कृतिक प्रारूप के अनुसार विकसित करता है | एक समाज की संस्कृति दूसरे समाज की संस्कृति से भिन्न होती है | इसी सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण विभिन्न संस्कृति के व्यक्तियों की अभिवृत्ति में भिन्नता पायी जाती है | परन्तु एक ही संस्कृति के सभी लोगों की अभिवृत्ति करीब-करीब एक समान होती है | उसका सबसे अच्छा उदाहरण मुस्लिम संस्कृति तथा हिन्दू संस्कृति की तुलना करने पर हमें मिलता

है | मरने के बाद व्यक्ति का अन्तिम संस्कार किस ढंग से किया जाय इसमें भी हिन्दू एवं मुस्लिम संस्कृति में पले व्यक्तियों की अभिवृत्ति अलग-अलग होती है | मुसलमानों की अभिवृत्ति शव को दफना देने के प्रति अनुकूल एवं जला देने के प्रतिकूल होती है | सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव अभिवृत्ति के विकास में काफी पड़ता है |

5.6 अभिवृत्ति परिवर्तन- व्यक्तित्व एवं अन्य कारक

अभिवृत्ति के निर्माण एवं विकास में व्यक्तित्व गुणों का भी अधिक प्रभाव पड़ता है | व्यक्ति उन अभिवृत्तियों को जल्द सीख लेता है जो उसके व्यक्तित्व के गुणों के अनुकूल होती है | समाज मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न तरह की अभिवृत्तियों जैसे- धार्मिक अभिवृत्ति, राजनैतिक अभिवृत्ति तथा व्यक्तित्व कारकों के महत्त्व का अध्ययन किया है | जैसे- फ्रेंच 1947, ने अपने अध्ययन में धार्मिक अभिवृत्ति के विकास में व्यक्तित्व कारकों के महत्त्व को बताया है | इन्होंने अपने अध्ययन में पाया है कि अधिक संगठित धार्मिक अभिवृत्ति रखने वाले व्यक्तियों का शीलगुण कम संगठित धार्मिक अभिवृत्ति रखने वाले व्यक्तियों के शीलगुण से भिन्न होते हैं | अधिक संगठित अभिवृत्ति रखने वाले व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के गुण एवं दोषों को चेतना रूप में स्वीकार कर लिया करते थे जबकि कम संगठित अभिवृत्ति रखने वाले व्यक्ति अपने व्यक्तित्व से संबंधितऐसे तथ्यों को खुलकर स्वीकार नहीं किया करते थे। अत: ऐसे लोगों में दमन करने की प्रवृत्ति अधिक थी । मैकलोस्काई ने राजनैतिक अभिवृत्ति में व्यक्तित्व कारकों के महत्त्व को दिखाया है | उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि कम पढ़े-लिखे तथा मन्द बुद्धि के लोगों में अनुदार अभिवृत्ति अधिक पायी जाती है | इन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर यह भी बताया कि अधिक से अधिक अनुदार अभिवृत्ति रखने वाले व्यक्ति अधिक शक्की, झगडालू अपनी कमजोरी या गलती के लिए दूसरों पर दोष लगाने वाले, वैरपूर्ण तथा अपूर्णता भाव से भी ग्रस्त हो हैं | ऐडोरनो तथा उनके सहयोगियों ने संजातिकेन्द्रवाद जैसी अभिवृत्ति है जिसमें व्यक्तित्व शीलगुणों के महत्त्व का अध्ययन किया है | संजाति केन्द्रवाद एक ऐसी अभिवृत्ति है जिसमें व्यक्ति अपने समूह या वर्ग को अन्य सभी समूहों या वर्गों की तुलना में श्रेष्ठ समझता है | इन्होंने अपने अध्ययन में संजातिकेन्द्रवाद को मापने के लिए मापनी बनाई जिसे एफ-स्केल कहा गया। इस स्केल पर आये प्राप्तांक के आधार पर इन्होंने प्रयोज्य के दो समूह तैयार किए- अधिक संजातिकेन्द्रवाद की अभिवृत्ति दिखलाने वाला समूह तथा कम संजातिकेन्द्रवाद की अभिवृत्ति दिखलाने वाले व्यक्ति सामाजिक रूप से अवांछनीय विचारों का खुलकर विरोध करते थे, सामाजिक मूल्यों के प्रति काफी आदर दिखलाते थे, व्यक्तिगत सम्बन्धों में प्रभुत्व एवं शक्ति का प्रयोग अधिक पसन्द करते थे इनका व्यक्तित्व संगठन अधिक दृढ़ था । कम संजाति केन्द्रवाद दिखलाने वाले व्यक्तियों में इनके विपरीत गुण देखे गये ।

प्रत्येक समाज में कुछ रूढिवादिता होती है इनके फलस्वरूप भी व्यक्ति की अभिवृत्ति का विकास प्रभावित होता है | रूढिवादिता से तात्पर्य किसी वर्ग या समुदाय के लोगों के बारे में स्थापित सामान्य प्रत्याशाओं तथा सामान्यीकरण से होता है | जैसे- हमारे समाज में महिलाओं के प्रति एक रूढिवादिता है कि वे पुरूषों की अपेक्षा धार्मिक एवं सहनशील होती है | फलस्वरूप, महिलाओं के प्रति एक विशेष प्रकार की अभिवृति सामान्य लोगों में पायी जाती है | उसी तरह से हिन्दू समाज में एक महत्त्वपूर्ण रूढिक्रृति है कि गाय पूजनीय है परन्तु मुस्लिम समदाय में उस प्रकार की रूढिक्रृति नहीं पायी जाती है | फलस्वरूप, गाय के प्रति हिन्दुओं की अभिवृत्ति मुस्लिम की अभिवृत्ति की

अपेक्षा अधिक अनुकूल होती है | इसी तरह के कई ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि रूढिवादिता द्वारा समाज की अभिवृत्ति का विकास एवं निर्माण होता है ।

उपरोक्त कारकों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अभिवृत्ति का विकास एवं निर्माण बहुत-से कारकों द्वारा प्रभावित होता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. अभिवृत्ति के विकास एवं निर्माण के प्रमुख कारक बताइए ?
2. व्यक्तित्व एवं सांस्कृतिक कारकों का अभिवृत्ति निर्माण पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

5.7 अभिवृत्ति निर्माण के सिद्धान्त

क. आसन प्रतिक्रिया सिद्धान्त - यह अभिवृत्ति निर्माण की एक अवयवी व्याख्या प्रस्तुत करता है | प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति प्रतिक्रिया करता है एवं दूसरे उसके प्रति। इस अन्तर प्रतिक्रिया में दूसरों के प्रति उसकी अभिवृत्ति का निर्माण हो जाता है | अभिवृत्तियाँ उद्दीपक-प्रतिक्रिया एवं मासपेशियों की तत्परता के फलस्वरूप उत्पन्न होती है |

ख. मानसिक वृत्ति सिद्धान्त - इसके अनुसार कुछ अभिवृत्तियाँ पूर्व निश्चित होती है | अत: हमारे स्वभाव का अंश बन जाती है | यह चेतन एवं सप्रयास होती है | यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि पूँजीवाद खराब व्यवस्था में है तो उसका तात्पर्य है कि उसकी मानसिक अभिवृत्ति पूँजीवादी विरोधी है।

अभ्यास प्रश्न-

1. अभिवृत्ति निर्माण के प्रमुख सिद्धान्त बताइए ?

5.8 अभिवृत्ति का मापन

अभिवृत्ति मापन से तात्पर्य व्यक्ति में अभिवृत्ति की दशा एवं उसकी मात्रा का पता लगाने से होता है | अभिवृत्ति की दिशा से यह पता चलता है कि अभिवृत्ति धनात्मक है या ऋणात्मक है तथा उसकी मात्रा से तात्पर्य इस बात से होता है कि अभिवृत्ति यदि धनात्मक है तो कितनी मात्रा में या ऋणात्मक है तो कितनी मात्रा में। अभिवृत्ति मापन में समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा दो महत्त्वपूर्ण पूर्वकल्पनाएँ की जाती है जो निम्नांकित हैं-

1. अभिवृत्ति मापन में यह पूर्वकल्पना कर ली जाती है कि व्यक्ति की अभिवृत्ति किसी वस्तु या घटना के प्रति एक परिस्थिति व अन्य परिस्थिति में समान होगी । उदाहरण- अगर कोई व्यक्ति राजनीति को नापसंद करता है तो हर परिस्थिति में वह इसे नापसंद ही करेगा । इस प्रकार अभिवृत्ति में समानता नहीं रहने पर अभिवृत्ति को मापना संभव नहीं है ।
2. अभिवृत्ति को सीधे मापना संभव नहीं है | फलत: इसका मापन अक्सर परोक्ष रूप से होता है| इसलिए इस बात की पूर्वकल्पना की जाती है कि व्यक्ति के व्यवहारों एवं कथनों द्वारा ही उसकी अभिवृत्ति के बारे में अन्दाजा लगाया जा सकता है | समाज मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों ने अभिवृत्ति मापन के लिए जितनी विधियों का प्रतिपादन किया है, उसे कैपबेल ने निम्नांकित चार विस्तृत भागों में विभाजित किया है-

5.8 अप्रच्छन्न विधियाँ

5.8.1. अप्रच्छन संरचित विधि

5.8.2. अप्रच्छन्न असंरचित विधि

5.8 प्रच्छन्न विधियाँ -

5.8.3. प्रच्छन्न असंरचित विधि

5.8.4. प्रच्छन्न संरचित विधि

इन चारों तरह की विधियों का वर्णन निम्नलिखित है-

1. **अप्रच्छन्न संरचित विधि-** इस विधि में भिन्न प्रकार के आत्म-रिपोर्ट आते हैं | आत्म-रिपोर्ट विधि में अभिवृत्ति मापने के लिए अभिवृत्ति वस्तु से सम्बन्धित कुछ प्रश्न दिये जाते हैं जिसे व्यक्ति पढक़र स्वयं ही उसका उत्तर देता है | इस तरह की प्रश्नावली को अभिवृत्ति मापनी या अभिवृत्ति प्रश्नावली कहा जाता है | अभिवृत्ति मापनी में दिये गये प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर व्यक्ति की अभिवृत्ति मापी जाती है।

   अभिवृत्ति का मापन करने के लिए अभिवृत्ति प्रश्नावली या अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग समाजशास्त्रियों एवं समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है | ऐसी मापनियों को निम्नांकित 6 भागों में बाँटा गया है-

   इन सभी मापनी विधियों का विवरण इस प्रकार है-

थस्टन मापनी विधि- अभिवृत्ति मापने के लिए एल.एल. थस्टन ने सबसे पहले अभिवृत्ति मापनी का प्रयोग किया। इन्होंने अपने महत्वपूर्ण शोध-पत्र जिसका शीर्षक था 'अभिवृत्ति मापी जा सकती है' सन् 1928 में प्रकाशित किया । उसमें उन्होंने एक विशेष मापनी विधि का विस्तृत वर्णन किया जो आज थस्टन मापनी विधि के नाम से लोकप्रिय है | सामाजिक अभिवत्ति को मापने के लिए थस्टन विधि सबसे अधिक लोकप्रिय है | समदृष्टि अन्तराल विधि के सहारे बाद में अर्थात 1929 में थस्टन एवं चेभ ने गिरजाघर के प्रति अभिवृत्ति मापने के लिए एक मापनी भी तैयार की। इस मापनी विधि का प्रयोग युद्ध, निग्रो प्रजाति, जन्मनिरोध आदि जैसी सामाजिक समस्याओं के प्रति अभिवृत्ति मापने में किया गया ।

थस्टन तथा चेभ ने अभिवृत्ति मापने के लिए मापनी बनाने में निम्नांकित कदमों को ध्यान में रखने की सिफारिश की है-

1. किसी क्षेत्र की अभिवृत्ति से सम्बन्धित महत्वपूर्ण कथनों की एक सूची तैयार की जाती है जो स्पष्ट भाषा में लिखी होती है | कथनों की इस सूची में अनुकूल कथन तथा प्रतिकूल कथन दोनों ही होते हैं| इस प्रथम अवस्था में कथनों की संख्या कितनी होनी चाहिए, इसके बारे में कोई निश्चित सुझाव तो थस्टन ने नहीं दिया है परन्तु उनके द्वारा विभिन्न तरह की अभिवृत्ति मापनियों को बनाने के लिए आरम्भ में लिये गये कथनों की संख्या 100 से अधिक होनी चाहिए ।
2. तैयार किये गये सभी कथनों को निर्णायकों के एक समूह को दे दिया जाता है | निर्णायकों की संख्या कितनी होगी, इसके बारे में कोई निश्चित नियम नहीं है | कथनों की सूची को

निर्णायकों को देकर उनसे आग्रह किया जाता है कि वे प्रत्येक कथन को दिये गये 11 श्रेणी में से किसी एक श्रेणी में रखते हुए छाँटते जायें। इस 11 श्रेणी में एक छोर पर अनुकूलता, दूसरे छोर पर प्रतिकूलता तथा बीच में तटस्थता की बिन्दुएँ होती हैं|

3. तीसरे सोपान में सभी कथनों को जब सभी निर्णायकों द्वारा 11 श्रेणी में छाँट लिया जाता है तो प्रत्येक कथन का मापनी मूल्य ज्ञात किया जाता है | ग्यारह बिन्दु मापनी पर निर्णायकों द्वारा जो निर्णय या कोटि दिये जाते हैं, उसका औसत ज्ञात किया जाता है | यही औसत प्रत्येक कथन का मापनी मूल्य कहलाता है।

4. इसके बाद प्रत्येक कथन के लिए प्राप्त निर्णय के आधार पर मान ज्ञात किया जाता है जिसे संक्षेप में **क्त** कहा जाता है | क्त का मान अधिक होने से यह पता चलता है कि उस कथन को ग्यारह-बिन्दु मापनी में छाँटने के सम्बन्ध में निर्णायकों में सहमति नहीं है, फलत: ऐसे कथनों को रद्द कर दिया जाता है | क्त का मान कम होने से यह पता चलता है कि करीब-करीब सभी निर्णायकों ने अमुक कथन को एक ही श्रेणी में रखा है।

5. इसके बाद के सोपान में कथनों की आन्तरिक संगति ज्ञात की जाती है | इसके लिए बचे हुए सभी कथनों को प्रयोज्यों के एक समूह को दे दिया जाता है और उनसे यह कहा जाता है कि उन कथनों के आगे सही का निशान लगाते जाएँ जिनसे वे सहमत हों। कथन विशेष से सहमति प्रकट करने वाले प्रयोज्य यदि किसी ऐसे कथन के आगे भी टिक लगा देते हैं जिनका मापनी मूल्य सहमति प्रकट करने वाले कथन के मापनी-मूल्य से काफी भिन्न होता है, तो इस कथन विशेष को आन्तरिक रूप से असंगत मानकर छाँट दिया जाता था। परन्तु यदि किसी कथन-विशेष से सहमति प्रकट करने पर प्रयोज्य ने समान मापनी मूल्य के कथन को टिक किया या चिह्नित किया तो उस कथन को आन्तरिक रूप से संगत मान लिया जाता है और उसे मापनी में रख दिया जाता है।

6. इस प्रकार, करीब 25 से 30 आन्तरिक रूप से संगत कथनों को चुन लिया जाता है और उसे अधिकतम सहमति से न्यूनतम सहमति के क्रम में प्रस्तुत किया जाता है।

थस्टन विधि द्वारा तैयार की गई अभिवृत्ति में इस तरह के कुल 25 से 30 कथन होते हैं | जिस व्यक्ति की अभिवृत्ति की माप करनी है उसे इन सभी कथनों को दे दिया जाता है और जिन कथनों से वे सहमत होते हैं उन पर सही का चिह्न तथा जिन कथनों में से असहमत होते हैं उन पर गलत का चिह्न लगाने के लिए उनसे कहा जाता है | सभी सहमत कथनों के मापनी मूल्य का एक औसत ज्ञात किया जाता है जिसके आधार पर उस व्यक्ति की अभिवृत्ति मापी जाती है | यह औसत मान जितनी ही अधिक होता है (अधिकतम ग्यारह हो सकता है) व्यक्ति की अभिवृत्ति उतनी ही अनुकूल मानी जाती है तथा जितना ही औसत मान कम होता है व्यक्ति की अभिवृत्ति प्रतिकूल मानी जाती है | (न्यूनतम एक हो सकता है) |

मापनी के सकारात्मक पक्ष-

क. इस विधि में कथनों की छँटनी ग्यारह बिन्दु में रखकर की जाती है | फलस्वरूप, इससे बनने वाली मापनी में अभिवृत्ति मापने की क्षमता अधिक तीव्र होती है।

ख. यह विधि सरल एवं सुगम है | इस विधि से पता लगाया जा सकता है कि व्यक्ति की अभिवृत्ति अध्ययन की जाने वाली वस्तु या विषय के अनुकूल है या प्रतिकूल है।

मापनी के नकारात्मक पक्ष-

क कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे एडवडर्स का कहना है कि थस्टन ने अपनी मापनी विधि में अत्यधिक भेदमूलक कथनों को चुनने का कोई वैज्ञानिक तरीका नहीं बतलाया है | ऐसा सम्भव है कि दो या दो से अधिक कथनों का मापनी मूल्य करीब-करीब समान हो परन्तु वे भेदमूलक क्षमता में एक-दूसरे से काफी भिन्न हो। थस्टन विधि में सबसे अधिक भेदमूलक क्षमता वाले कथन को चुनने का कोई प्रावधान नहीं है।

ख थस्टन विधि द्वारा अभिवृत्ति मापनी बनाने में काफी समय लगता है तथा साथ-ही-साथ धन भी खर्च होता है | थस्टन ने स्वयं इस बात पर बल दिया है कि एक वैध अभिवृत्ति मापनी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि निर्णायकों की संख्या अधिक-से-अधिक हो। स्वभावत: ऐसी परिस्थिति में समय और धन दोनों ही काफी लगेगा।

थस्टन विधि के कई नकारात्मक पक्ष है | इसलिए बाद में मनोवैज्ञानिकों ने अभिवृत्ति मापनी की अन्य विधियों का प्रतिपादन किया है।

लिकर्ट मापनी विधि- थस्टन विधि के कुछ अवगुणों को दूर करने के ख्याल से रेन्सिस लिकर्ट 1932 ने अभिवृत्ति मापनी की एक नयी विधि का प्रतिपादन किया जिसे संकलित रेटिंग्स विधि कहा जाता है | इसे लिकर्ट विधि भी कहा जाता है | अभिवृत्ति मापने में इस विधि का प्रयोग सबसे अधिक किया गया है तथा इसे अल्ब्रेक, थॉमस तथा चादविक ने तुलनात्मक रूप से अधिक आसान, कम समय तथा धन में तैयार हो जाने वाली मापनी बतलाया है | थस्टन विधि के समान ही लिकर्ट विधि द्वारा अभिवृत्ति मापनी बनाने में कुछ खास सोपान है जिनका विवरण निम्नांकित हैं-

क. इस विधि द्वारा अभिवृत्ति मापनी के निर्माण के प्रथम सोपान में अभिवृत्ति से सम्बन्धित बहुत से कथन तैयार किये जाते हैं | इनमें से कुछ कथन अनुकूल अभिवृत्ति दिखलाने वाले होते हैं तथा कुछ कथन प्रतिकूल अभिवृत्ति दिखलाने वाले होते हैं | प्रत्येक कथन के साथ 5 बिन्दु की उत्तर श्रेणी भी बना सकते हैं- पूर्णत: सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत तथा पूर्णत: असहमत।

ख. इन कथनों को प्रयोज्य के समूह को दे दिया जाता है जो प्रत्येक कथन को इन पाँच बिन्दु उत्तर श्रेणियों में से किसी एक श्रेणी में रखकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं |

ग. इसके बाद प्रत्येक कथन पर प्रयोज्य द्वारा की गई प्रतिक्रियाओं का अंकन किया जाता है | किसी वस्तु के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति दिखलाने वाले कथनों पर पूर्णत: सहमत, अनिश्चित, असहमत एवं पूर्णत: असहमत के लिए क्रमश: 5, 4, 2 तथा 1 अंक दिया जाता है तथा प्रतिकूल अभिवृत्ति दिखलाने वाले कथनों पर पाँच श्रेणियों के लिए क्रमश: 1, 2, 3, 4 तथा 5 अंक दिया जाता है | प्रत्येक कथन पर प्रयोज्य द्वारा प्राप्त अंकों को एक साथ जोडक़र एक कुल प्राप्तांक ज्ञात किया जाता है | इस मापनी पर कुल प्राप्तांक द्वारा अनुकूल अभिवृत्ति तथा कुल प्राप्तांक में कमी के द्वारा प्रतिकूल अभिवृत्ति का पता चलता है।

घ. निर्माण के चौथे सोपान में कथनों का एकांश विश्लेषण किया जाता है | एकांश विश्लेषण एक ऐसे सांख्यिकीय विश्लेषण की विधि है, जिसके सहारे मूलविभेदक कथनों को अन्य सामान्य कथनों से अलग कर लिया जाता है | ऐसा करने के लिए प्रत्येक कथन पर प्राप्त अंक तथा सभी वाक्यांशों पर प्राप्त कुल अंक के बीच सहसम्बन्ध ज्ञात किया जाता है | ऐसे कथन जिनका सहसम्बन्ध अधिक आता है, उनका चयन कर लिया जाता है तथा ऐसे कथन जिनका सहसम्बन्ध निम्न होता है या ऋणात्मक होता है, उसे हटा दिया जाता है।

ङ. वाक्यांश विश्लेषण करने के बाद के जो कथन अन्तिम रूप में चुन लिये जाते हैं, उन्हें लेकर मापनी तैयार की जाती है जिसे लिकर्ट मापनी की संज्ञा दी जाती है | लिकर्ट मापनी में प्राय: कथनों की संख्या लगभग 20 होती है।

लिकर्ट मापनी द्वारा अभिवृत्ति मापने की विधि बहुत कुछ थस्टन विधि के ही समान है | जिस व्यक्ति की अभिवृत्ति मापनी होती है, उसे लिकर्ट मापनी दे दी जाती है और व्यक्ति प्रत्येक कथन को पढक़र अपनी प्रतिक्रिया 5 श्रेणी अर्थात पूर्णत: सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत, पूर्णत असहमत में से किसी एक के रूप में करता है | बाद में ऊपर बताई गई विधि द्वारा इन प्रतिक्रियाओं का अंकन किया जाता है और प्रत्येक वाक्यांश पर प्राप्त अंक को एक साथ जोड़ दिया जाता है जो व्यक्ति का कुल प्राप्तांक कहलाता है | कुल प्राप्तांक अधिक होने से किसी वस्तु के प्रति व्यक्ति की अभिवृत्ति अनुकूल तथा कम होने से व्यक्ति की अभिवृत्ति प्रतिकूल समझी जाती है।

सकारात्मक पक्ष-

क. लिकर्ट विधि का सबसे महत्वपूर्ण गुण यह है कि इस विधि में वाक्यांश विश्लेषण पर मूलभेदक कथनों या वाक्यांशों को चुनने का वैज्ञानिक प्रावधान है | थस्टन विधि में इस विधि में इस ढंग का प्रावधान नहीं है | यही कारण है कि लोगों द्वारा लिकर्ट विधि को थस्टन विधि से अधिक श्रेष्ठ माना जाता है।

ख. लिकर्ट विधि में निर्णायकों का प्रयोग न करके प्रयोज्य का प्रयोग किया जाता है | अत: कथनों का अन्तिम चयन निर्णायकों की अपनी अभिवृत्ति के प्रभाव से ग्रसित नहीं होता है।

ग. लिकर्ट विधि द्वारा अभिवृत्ति मापनी बनाने में समय तथा धन की बचत होती है | अत: लिकर्ट विधि में व्यवहारिकता का भी गुण है।

घ. लिकर्ट विधि में अधिक लचीलापन है तथा साथ-ही-साथ इससे प्राप्त आँकड़ों द्वारा विभिन्न तरह के क्रमसूचक सांख्यिकीय विश्लेषण आसानी से किया जा सकता है | लचीलापन से यहाँ तात्पर्य यह है कि इसमें इस बात की छूट होती है कि वह जितना चाहे कथनों या वाक्यांशों की संख्या घटा सकता है या बढ़ा सकता है | इस तरह के घट-बढ़ से लिकर्ट विधि द्वारा बनाई गई मापनी पर कोई अन्तर नहीं आता है क्योंकि प्रत्येक एकांश द्वारा मापन में समान योगदान समझा जाता है | थस्टन विधि में ऐसी बात नहीं है क्योंकि प्रत्येक वाक्यांश का मापनी मूल्य अलग-अलग होता है।

नकारात्मक पक्ष-

क. लिकर्ट विधि द्वारा अभिवृत्ति मापते समय इस बात की संभावना होती है कि प्रयोज्य सही मनोदशा को छिपाकर गलत प्रतिक्रिया करे। परन्तु यह कोई ठोस अवगुण नहीं है क्योंकि

ऐसी बात की संभावना उन सभी मापनियों तथा परीक्षणों में बनी होती है जिनके कथन का स्वरूप शाब्दिक होता है।

ख. लिकर्ट विधि द्वारा बनाई गई अभिवृत्ति मापनी से अभिवृत्ति की दिशा का तो पता चलता है परन्तु मात्रा का पता नहीं चलता है | दूसरे शब्दों में इस विधि से यह तो पता चलता है कि व्यक्ति की अभिवृत्ति अनुकूल है या प्रतिकूल है परन्तु यह पता नहीं चलता है कि अनुकूलता तथा प्रतिकूलता की मात्रा कितनी है।

ग. कुछ लोगों का कहना है कि लिकर्ट विधि में निर्णायकों की जगह पर प्रयोज्यों का प्रयोग किया जाता है | निर्णायक प्राय: विशेषज्ञ होते हैं | अत: कथनों के चयन में उनके द्वारा किया गया योगदान अधिक महत्वपूर्ण एवं वैज्ञानिक होता है | परन्तु वाक्यांश के चयन में प्रयोज्यों द्वारा किया गया योगदान इतना महत्वपूर्ण नहीं होता है क्योंकि वे उतने कुशल एवं प्रशिक्षित नहीं होते हैं |

लिकर्ट विधि के कुछ नकारात्मक पक्ष होने के बावजूद भी यह विधि थस्टन विधि की तुलना में अपनी सरलता एवं सुगमता के कारण लोकप्रिय है।

बोगार्डस सामाजिक दूरी मापनी विधि- बोगार्डस पहले ऐसे समाजशास्त्री थे, जिन्होंने अभिवृत्ति को सामाजिक दूरी के रूप में मापने की सिफारिश की। जब हम लोग दूसरे धर्म, जाति, प्रजाति, राष्ट्रीयता के लोगों के बारे में सोचते हैं, तो इनमें से कुछ लोग हमारी सामाजिक घनिष्ठता में पूर्व अनुभव के आधार पर कम दूरी पर होते हैं परन्तु कुछ लोग अधिक दूरी पर होते हैं | इसे ही सामाजिक दूरी देते हैं| जिस धर्म, जाति आदि के लोगों के प्रति सामाजिक दूरी अधिक होती है, उसके प्रति व्यक्ति की अभिवृत्ति ऋणात्मक होती है तथा जिस धर्म, जाति आदि के लोगों के प्रति सामाजिक दूरी कम होती है, उसके प्रति व्यक्ति की अभिवृत्ति धनात्मक होती है | उदाहरण- उत्तर भारत में दक्षिण भारतीयों के प्रति ऋणात्मक अभिवृत्ति होने का एक कारण यह भी है कि उत्तर भारत के लोगों की सामाजिक दूरी दक्षिण भारतीयों से अधिक समझी जाती है।

बोगार्डस ने भिन्न-भिन्न राष्ट्रीयता के लोगों के प्रति अभिवृत्ति मापने के लिए सामाजिक दूरी मापनी का निर्माण किया। इस मापनी का मूल आधार यह है कि राष्ट्रीयता के लोग एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं | फलस्वरूप उनमें सामाजिक दूरी कम होती है और उनकी अभिवृत्ति एक दूसरे के प्रति धनात्मक होती है | दूसरी तरफ कुछ राष्ट्रीयता के लोगों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होता है | फलस्वरूप, उनमें सामाजिक दूरी होती है और उनकी अभिवृत्ति एक-दूसरे के प्रति ऋणात्मक होती है।

बोगार्डस ने सामाजिक दूरी मापनी बनाते समय सात ऐसे कथनों को सम्मिलित किया है जिससे किसी विशेष राष्ट्रीयता के लोगों के प्रति स्वीकृति की मात्रा का बोध होता है | इसी स्वीकृति की मात्रा के आधार पर अभिवृत्ति की दिशा और मात्रा का बोध होने की पूर्वकल्पना की जाती है | किसी राष्ट्रीयता के लोगों को पहले कथन से विभूषित करने का अर्थ यह होता है कि उन लोगों के साथ घनिष्ठ संबंधहै या ऐसा संबंधस्थापित करने के लिए व्यक्ति तत्पर है | इसका मतलब तब यह हुआ कि इस राष्ट्रीयता के लोगों के प्रति व्यक्ति की अभिवृत्ति अनुकूल और साथ-ही-साथ अनुकूलता की मात्रा भी अधिकतम है | जैसे-जैसे पहले से व्यक्ति सातवें कथन की ओर एक के बाद एक करके बढ़ता है, स्वीकृति की मात्रा कम होती जाती है | फलस्वरूप अभिवृत्ति में अनुकूलता की मात्रा भी

कम है | अन्तिम कथन में अनुकूलता की मात्रा करीब-करीब समाप्त हो जाती है और यदि किसी राष्ट्रीयता के लोगों को इस अन्तिम कथन से विभूषित किया गया तो इसका मतलब स्पष्ट है कि उन लोगों के प्रति व्यक्ति की अभिवृत्ति प्रतिकूल है | बोगार्डस द्वारा सामाजिक दूरी मापनी में सम्मिलित किये गये सात कथन निम्नांकित हैं-

बोगार्डस के मापनी के सात कथन-

1. विवाह द्वारा निकट संबंधी के रूप में।
2. अपने क्लब में जिगरी दोस्त के रूप में।
3. अपने मुहल्ले में पड़ोसी के रूप में।
4. अपने पेशे में नौकरी देकर।
5. अपने देश में नागरिक के रूप में।
6. अपने देश में केवल अतिथि के रूप में।
7. अपने देश से निकाल बाहर करूँगा।

सकारात्मक पक्ष-

क. इस मापनी द्वारा किसी एक राष्ट्र या धर्म के प्रति विभिन्न प्रजातियों, धर्मों तथा राष्ट्रों के लोगों की अभिवृत्तियों को मापना व तुलना करना काफी सरल है।

ख. यह मापनी भारत जैसे विस्तृत देश में जहाँ मानव जातीय पूर्वाग्रह की समस्या काफी जटिल है और भी अधिक उपयोगी सिद्ध होती है | जाति पूर्वधारणा का अध्ययन करने में यह मापनी काफी लाभदायक एवं उपयोगी सिद्ध हुई है।

ग. सामाजिक दूरी के द्वारा अभिवृत्ति मापने की यह विधि अपने आप में स्पष्ट व अनुकूल है।

घ. क्रेच, क्रचफिल्ड एवं बैलेची के अनुसार इस मापनी में थोड़ा-सा परिवर्तन करके किसी भी श्रेणी के व्यक्तियों के प्रति अभिवृत्ति का मापन किया जा सकता है।

नकारात्मक पक्ष-

क. बोगार्डस मापनी में जिन सात श्रेणियों को चुना गया है, उसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है।

ख. बोगार्डस के सात श्रेणियों के बीच की दूरी समान नहीं है जिससे अभिवृत्ति की मात्रा का सही विश्लेषण सम्भव नहीं हो पाता।

ग. इस मापनी की वैधता अपेक्षाकृत कम है | फलत: इससे प्राप्त सांख्यिकीय निष्कर्ष सटीक नहीं होते।

1. गटमैन संचयी मापनी विधि- इस विधि का प्रतिपादन द्वितीय विश्वयुत्र में अमेरिकन सिपाहियों की अभिवृत्ति का अध्ययन करने के सिलसिले में गटमैन ने किया तथा 1950 में इस विधि का प्रकाशन औपचारिक रूप से किया गया। इस विधि को 'संचयी मापनी' या 'स्केलोग्राम विश्लेषण' भी कहा जाता है | इस विधि का सार तत्व यह है कि इसमें अभिवृत्ति मापने के लिए एक ऐसी मापनी तैयार की जाती है जिसके सभी कथनों द्वारा एक ही भाग या क्षेत्र का मापन होता है | इस तरह की

मापनी को एक विमीय मापनी भी कहा जाता है | गटमैन के अनुसार एक विमीय मापनी की मुख्य विशेषता यह होती है कि किसी कथन विशेष पर व्यक्ति की अनुक्रिया के बारे में सभी कथन पर प्राप्त अंकों के कुल योग जिसे कुल प्राप्तांक कहा जाता है, के आधार पर बतलाया जा सकता है | उसका मतलब यह हुआ कि अगर मापनी एक-विमीय है तो उच्चतम कुल प्राप्तांक करने वाला व्यक्ति मापनी के प्रत्येक कथन पर अपने से कम कुल प्राप्तांक करने वाला व्यक्ति से ऊपर होगा। एक विमीय मापनी के इन गुणों के नीचे के उदाहरण में दिखाया गया है-

1. मेरा वजन 65 किलो से अधिक है।	सहमत	असहमत
2. मेरा वजन 55 किलो से अधिक है।	सहमत	असहमत
3. मेरा वजन 45 किलो से अधिक है।	सहमत	असहमत

इस उदाहरण में यदि व्यक्ति कथन संख्या 1 से 'सहमत' होता है तो इसका मतलब यह हुआ कि वह बाकी दो कथनों से भी सहमत है | अत: मात्र कथन संख्या एक ही अनुक्रिया जानकर बाकी सभी कथनों पर की अनुक्रियाओं को पुनरूत्पादित किया जा सकता है | इसे गटमैन ने 'पुनरावर्तनीयता गुणांक' कहा है | चूँकि ऊपर के उदाहरण में कथन संख्या एक की अनुक्रिया के आधार पर बाकी किसी भी कथन पर व्यक्ति की अनुक्रिया का पुनरूत्पादन शत-प्रतिशत सही- किया जा सकता है, अत: यहाँ पुनरावर्तनीयता गुणांक पूर्ण अर्थात एक (1) है परन्तु ऊपर के सभी कथन ऐसे हैं जिनसे किसी प्रकार की अभिवृत्ति की माप नहीं होती है | गटमैन ने यह बतलाया है कि जब हम किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति अभिवृत्ति मापने के लिए मापनी बनाते हैं तो उसमें 'पूर्ण पुनरावर्तनीयता गुणांक' अर्थात 1 का होना संभव नहीं है | अत: उन्होंने 10 प्रतिशत या 10 की छूट दी और बतलाया कि अगर मापनी में पुनरार्वतनीयता गुणांक 1-.10 = .90 भी है तो इसे अभिवृत्ति का एक-विमीय मापनी कह सकते हैं |

1. **मापनी-विभेदन विधि-** इस विधि का प्रतिपादन एडवार्डस तथा किलपैट्रिक ने किया। इस विधि में थस्टन, लिकर्ट तथा गटमैन द्वारा बतलाये गये सोपानों को मिलाकर एक नयी मापनी तैयार की गई है | अत: इस विधि की मापनी की मौलिकता उतनी अधिक नहीं है | इस विधि द्वारा अभिवृत्ति मापनी बनाने में निहित प्रमुख सोपान निम्नांकित हैं-

   क. अभिवृत्ति क्षेत्र से सम्बन्धित सारे वाक्यांशों को तैयार कर लिया जाता है जिसका उत्तर 'सहमत'- 'असहमत' जैसे श्रेणियों में देना होता है।

   ख. थस्टन विधि के समान इन वाक्यांशों को कुछ निर्णायकों को इस प्रार्थना के साथ दे दिया जाता है कि वे इन्हें अनुकूलता की मात्रा के अनुसार विभिन्न श्रेणियों में हटा दिया।

   ग. असंगत कथनों को अस्पष्ट समझकर हटा दिया जाता है | बाकी बचे हुए एकांशों को 6-अनुक्रिया विकल्प में तैयार किया जाता है | ये 6 श्रेणियाँ इस प्रकार की होती हैं- 'पूर्णत: सहमत', 'सहमत', 'थोड़ा सहमत', 'थोड़ा असहमत', 'असहमत' तथा 'पूर्णत:' असहमत।

   घ. इसके बाद इन सभी ऐसे कथनों को प्रयोज्यों के एक नये समूह पर क्रियान्वित किया जाता है| प्रत्येक प्रयोज्य अपनी अभिवृत्ति की अनुकूलता के अनुसार प्रत्येक कथन पर अपनी प्रतिक्रिया इन 6 विकल्पों में से किसी एक विकल्प को चुनकर करता है | इसके बाद प्रत्येक

व्यक्ति की अनुक्रियाओं का अंकन करके उन्हें एक साथ जोडक़र कुल प्राप्तांक ज्ञात कर लिया जाता है और इसी कुल प्राप्तांक के आधार पर लिकर्ट विधि के समान कथन विश्लेषण किया जाता है | इस प्रकार कुछ कथनों का चयन किया जाता है।

इस मापनी-विभेदन प्रविधि में थस्टन विधि, लिकर्ट विधि तथा गटमैन विधि का एक अनुपम संगम देखने को मिलता है | ऐसे तो यह विधि काफी व्यापक लगती है परन्तु अभिवृत्ति मापन के क्षेत्र में इसकी लोकप्रियता बहुत अधिक नहीं रही है |

1. **शब्दार्थ-विभेदक मापनी-** शब्दार्थ-विभेदक मापनी का प्रतिपादन औसगुड, सुसी तथा टानेनवॉम द्वारा किया गया। मूलत: इस मापनी का प्रतिपादन किसी भी क्षेत्र के गुणार्थक अर्थ को मापने के लिए किया गया था। गुणार्थक अर्थ से तात्पर्य किसी भी क्षेत्र के द्वारा व्यक्ति में उत्पन्न की गई संवेगात्मक प्रतिक्रिया से होता है | उदाहरण के लिए , गन्दगी शब्द सुनकर यदि किसी व्यक्ति के मन में कुछ खास-खास संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ जैसे 'बीमारी', 'बदबू' आदि उत्पन्न होती है, तो इसे हम 'गंदगी' का गुणार्थक अर्थ कहेंगे। औसगुड एवं उनके सहयोगियों का कहना था कि चूँकि किसी वस्तु के गुणार्थक द्वारा उस व्यक्ति की अभिवृत्ति का भी पता चल जाता है | अत: गुणार्थक अर्थ को मापकर व्यक्ति की अभिवृत्ति को माप सकते हैं |

शब्दार्थ विभेदक मापनी में वस्तुओं के गुणार्थक को मापने के द्विध्रुवीय विशेषण की एक शृंखला तैयार की जाती है जो प्राय: 7 बिन्दु मापनी द्वारा पृथक रहती है | इन विशेषणों द्वारा अभिवृत्ति वस्तु के प्रति अभिवृत्ति की तीन मूल शाखाओं को बतलाया जाता है-

क शक्ति- किसी वस्तु के प्रति कितनी शक्ति या भौतिक आकर्षण है।

ख मूल्यांकन- किसी वस्तु में कितनी अनुकूलता या प्रतिकूलता है।

ग क्रिया- किसी वस्तु में गति होने की मात्रा कितनी है |

शक्ति को कुछ विशेषण युग्म जैसे ताकतवर-कमजोर, ऊँचा-नीचा, किशोर-वृद्ध आदि द्वारा शब्दार्थ विभेदक मापनी में दिखलाया जाता है | मूल्यांकन को इसी तरह कुछ खास विशेषण युग्म जैसे होशियार-कमजोर, स्वच्छता-गंदगी, लम्बाई-मोटाई आदि द्वारा मापनी में दिखलाया जाता है | क्रिया को कुछ अन्य विशेषण युग्मों जैसे जीवित-मृत, जल्दी-धीरे, कठोर-सरल द्वारा दिखलाया जाता है | इन तीनों तरह के विशेषण-युग्मों को मिलाकर करीब 40 से 50 युग्म तैयार कर लिये जाते हैं | अभिवृत्ति को 7 बिन्दु मापनी के बीच में लिख दिया जाता है तथा प्रयोज्य जिसकी अभिवृत्ति मापी जा रही है, से यह कहा जाता है कि वस्तु को ध्यान में रखकर दिये गये 7 बिन्दु मापनी के किसी बिन्दु पर जहाँ आप ठीक समझते हों, चिह्न लगाते जायें। शब्दार्थ-विभेदक मापनी का एक उदाहरण जिसमें नेताओं के प्रति अभिवृत्ति मापने का नमूना दिखलाया गया है | जैसे- नेता अच्छा-बुरा, ईमानदार-बेईमान, सक्रिय-निष्क्रिय, सरल-कठोर, सच्चा-झूठा, तेज-धीरे।

5.8.2. अप्रच्छन्न असंरचित विधि

इस विधि द्वारा भी अभिवृत्ति की माप सीधे अर्थात अप्रच्छन्न रूप से होती है | इस विधि को असंरचित इसलिए कहा जता है क्योंकि इसमें आने वाली प्रविधियाँ जैसे सर्वे साक्षात्कार तथा जीवन-सम्बन्धी टिप्पणियाँ या लेख विश्लेषण आदि हैं जिनमें शोधकर्ता या प्रयोगकर्ता को एक

निश्चित औपचारिक नियम को नहीं मानना पड़ता है | जैसा कि उन्हें थस्टन मापनी, लिकर्ट मापनी, गटमैन मापनी आदि के बनाने में मानना पड़ता है | अप्रच्छन्न असंरचित विधि में सम्मिलित की गई कुछ प्रमुख प्रविधियों का वर्णन इस प्रकार है-

1. **सर्वे साक्षात्कार**- कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों जैसे क्रेच, क्रचफिल्ड एवं बैलेची ने यह बतलाया है कि सभी अभिवृत्ति मापनियों का एक सामान्य दोष यह है कि उनके द्वारा अभिवृत्ति की माप तभी की जा सकती है जब व्यक्ति जिसकी अभिवृत्ति की माप की जाने वाली है, सामने उपस्थित हो। परन्तु सामाजिक अभिवृत्ति शोध में ऐसी अनेक परिस्थितियाँ भी आती हैं जिनमें शोधकर्ता व्यक्तियों से दूर-दराज में होता है और उनकी अभिवृत्तियों को मापना भी आवश्यक समझता है | इस तरह की माँग को पूरा करने के लिए समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा सर्वे साक्षात्कार का प्रतिपादन किया गया है।

सर्वे साक्षात्कार में शोधकर्ता बड़ी जनसंख्या से प्रतिनिधि प्रतिदर्श को चुनकर पहले से निर्मित्त प्रश्नों को उनसे एक-एक करके पूछता है | प्राय: वह दो तरह के प्रश्नों का निर्माण करता है- निश्चित-वैकल्पिक प्रश्न तथा मुक्तोतर प्रश्न। निश्चित-वैकल्पिक प्रश्न में व्यक्ति को दिये गये निश्चित वैकल्पिक में से प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देना होता है | वह अपनी ओर से कुछ जोड़ या घटा नहीं सकता है | जबकि मुक्तोत्तर में उन्मुक्त उत्तर दिए जा सकते हैं |

2. जीवन-संबंधित टिप्पणियाँ एवं लेख विश्लेषण- इस विधि में चिट्ठी, 'आत्मकथा', जीवनी, लिखित या मौखिक साक्षात्कार में व्यक्त किये गये मतों का विश्लेषण करके अभिवृत्ति का मापन किया जाता है | लिखित साक्षात्कार में व्यक्ति को किसी-वस्तु से संबंधितलेख लिखने के लिए दिया जाता है जिसका विश्लेषण करके व्यक्ति की अभिवृत्ति का मापन किया जाता है | कैम्पबेल के अनुसार इस विधि का सामान्य दोष यह बतलाया गया है कि इसमें व्यक्ति कभी-कभी जानबूझकर अपने उन अनुभवों को व्यक्त नहीं करता है जो जीवन में नकारात्मकता से सम्बन्धित होते हैं | फलस्वरूप किसी वस्तु के बारे में उनके सही मत का पता नहीं चलता है | अत: यह अभिवृत्ति मापने की एक अत्यन्त आत्मनिष्ठ विधि है जिस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है | इस सभी अवगुणों के कारण इस विधि का प्रयोग अभिवृत्ति मापन में बहुत ही कम होता है।

5.8.3 प्रच्छन्न असंरचित विधियाँ

प्रच्छन्न असंरचित विधि अभिवृत्ति मापन की यह विधि दोनों तरह की विधियों से भिन्न है | पहले दोनों तरह की विधियों में अर्थात अप्रच्छन्न संरचित विधि तथा अप्रच्छन्न असंरचित विधि में व्यक्ति की अभिवृत्ति सीधे मापी जाती है | दूसरे शब्दों में व्यक्ति को पता होता है कि उसकी अभिवृत्ति की मापा जा रहा है | परन्तु प्रच्छन्न विधि में व्यक्ति को यह पता नहीं होता है कि उनकी अनुक्रियाओं द्वारा उसकी अभिवृत्ति की मापा जायेगा। अत: इस विधि में अभिवृत्ति की माप परोक्ष रूप से होती है।

प्रच्छन्न असंरचित विधि में अभिवृत्ति मापन की उन विधियों को सम्मिलित किया गया है जो अभिवृत्ति का मापन अस्पष्ट एवं असंरचित परिस्थिति के प्रति अनुक्रिया द्वारा परोक्ष रूप से करती है | प्रक्षेपी प्रविधि इसका सबसे प्रमुख उदाहरण है | मूलत: इस विधि का प्रयोग व्यक्तित्व के गुणों एवं आवश्यकताओं को मापने के लिए किया जाता है | रोर्शाक परीक्षण, शब्द-साहचर्य परीक्षण आदि प्रक्षेपी प्रविधि के कुछ उदाहरण है | इन प्रक्षेपी प्रविधियों के समान ही समाज मनोवैज्ञानिकों ने अभिवृत्ति मापने के लिए कुछ प्रविधियों का प्रतिपादन किया है | जैसे प्रोशैन्सकी ने मजदूरों के प्रति

अभिवृत्ति मापने के लिए एक प्रक्षेपी परीक्षण का निर्माण किया जिसमें कई कार्ड पर ऐसी तस्वीरें बनाई गई जिसमें ऐसा लगता है कि संघर्षात्मक परिस्थिति में व्यक्ति कुछ कर रहा हो। प्रत्येक तस्वीर को देखकर व्यक्ति को एक कहानी लिखना होता है | इसके तीन निर्णायकों द्वारा प्रत्येक कहानी में मजदूरों के प्रति दिखलाई गयी अभिवृत्ति में अनुकूलता या प्रतिकूलता की मात्रा के अनुसार उसे विभिन्न श्रेणियों में छाँट दिया जाता है | प्रोशैन्सकी ने निर्णायकों द्वारा व्यक्त की गई अभिवृत्ति तथा तस्वीर के प्रति दी गयी अनुक्रियाओं में काफी सहमति पायी गयी जिससे साबित होता है कि प्रोशेन्सकी की विधि द्वारा व्यक्ति की अभिवृत्ति को मापा जा रहा था।

प्रक्षेपी विधि द्वारा अभिवृत्ति मापने का सबसे बड़ा गुण यह बतलाया गया है कि इसमें व्यक्ति द्वारा किसी प्रकार की नकली अनुक्रिया नहीं की जाती है क्योंकि व्यक्ति को यह पता ही नहीं होता है कि उसके अनुक्रिया द्वारा उसकी अभिवृत्ति को भी मापा जा रहा होगा। अभिवृत्ति मापन के रूप में प्रक्षेपी प्रविधि के दो अवगुण हैं | पहला अवगुण तो यह है कि कभी-कभी व्यक्ति द्वारा तैयार की गई कहानी इतनी अस्पष्ट होती है कि निर्णायकों के लिए किसी प्रकार का निर्णय लेना संभव नहीं हो पाता है | दूसरा अवगुण यह है कि कहानी के आधार पर अभिवृत्ति की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता के बारे में निर्णय करते समय निर्णायक अपने व्यक्तिगत पूर्वग्रह द्वारा अत्यधिक प्रभावित हो जाते हैं | फलस्वरूप उनके द्वारा मापी गयी अभिवृत्ति पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता है।

5.8.4 प्रच्छन्न संरचित विधि

इस विधि में भी अभिवृत्ति का मापन परोक्ष रूप से होती है फिर भी यह विधि प्रच्छन्न असंरचित विधि से एक महत्त्वपूर्ण अर्थ में भिन्न है | प्रच्छन्न संरचित विधि में अभिवृत्ति मापने के लिए जिस परिस्थिति का उपयोग किया जाता है वह स्पष्ट होता है तथा उसकी एक अर्थपूर्ण संरचना होती है जबकि प्रच्छन्न असंरचित विधि में परिस्थिति अस्पष्ट एवं अर्थहीन संरचना की होती है | प्रच्छन्न संरचित विधि का एक अच्छा उदाहरण हेमोन्ड का त्रुटि-पसन्द प्रविधि है | इस विधि द्वारा उन्होंने मजदूर और मालिक के संबंधोंके प्रति अभिवृत्तियों को मापा था। इस प्रविधि में कुछ ऐसे वाक्यांश तैयार किये जाते हैं जो किसी वस्तु के सम्बन्ध में तथ्यपूर्ण आँकड़ा देते हैं परन्तु वास्तव में वे सभी आँकड़े गलत होते हैं | उस व्यक्ति को जिसकी अभिवृत्ति का माप करना होता है, उन गलत आँकड़ों मे से किसी एक को जिसे वह अधिक सही एवं उचित समझता है, चुनकर उत्तर देना होता है | दिये गये उत्तरों के आधार पर उसकी अभिवृत्ति का मापन किया जाता है | सार्वजनिकरण के प्रति व्यक्ति की अभिवृत्ति को मापने के लिए इस प्रविधि के उदाहरण के रूप में एक-दो वाक्यांश इस प्रकार तैयार किये जा सकते हैं-

1. सार्वजनीकरण के फलस्वरूप भारत सरकार को प्रतिवर्ष नुकसान होता है:-

   15 करोड़, 10 करोड़, 8 करोड़

2. सार्वजनीकरण द्वारा उत्पादन की मात्रा प्रति वर्ष कम होती जाती है :-

   5 प्रतिशत की दर से, 10 प्रतिशत की दर से, 15 प्रतिशत की दर से

इस ढंग से कई कथन तैयार कर लिये जाते हैं और प्रत्येक कथन द्वारा कुछ तथ्यपूर्ण आँकड़ें प्रस्तुत किये जाते हैं जो वास्तव में सभी के सभी गलत होते हैं परन्तु प्रयोज्य को उसका पता नहीं होता है और वह आँकड़ों को सही समझकर जवाब देता है | उपर्युक्त दोनों वाक्यांशों में यदि पहले कथन का

उत्तर 15 करोड़ तथा दूसरे कथन का उत्तर 10 प्रतिशत की दर से कोई व्यक्ति देता है तो स्पष्ट है कि उस व्यक्ति की अभिवृत्ति, सार्वजनीकरण के प्रति प्रतिकूल है | कुबेनी ने त्रुटि-पसन्द प्रविधि द्वारा राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा के प्रति लोगों की अभिवृत्ति का माप सफलतापूर्वक किया है।

5.9 सारांश

सारंश में यह कहा जा सकता है कि अभिवृत्ति मापन के लिए दो प्रकार की विधियाँ है- अप्रच्छन्न विधि तथा प्रच्छन्न विधि। इन दोनों विधियों के कुछ सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्ष है | फिर भी सामान्य रूप से प्रच्छन्न विधि अप्रच्छन्न विधि से कुछ अर्थों में लाभदायक हैं | क्रेच, क्रचफिल्ड तथा बैलेची ने प्रच्छन्न विधि के दो लाभ बतलाये हैं जो अप्रच्छन्न विधि में नहीं है | पहला लाभ यह है कि कुछ खास-खास परिस्थितियों में जैसे यौन व्यवहार के प्रति अभिवृत्ति मापने में जहाँ व्यक्ति अपनी अभिवृत्ति लोगों को नहीं बतलाना चाहता है, प्रच्छन्न विधि की वैधता अप्रच्छन्न विधि से अधिक होती है | दूसरा लाभ यह बतलाया गया है कि प्रच्छन्न विधि से अभिवृत्ति का माप करने में स्वयं अभिवृत्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है | इन लाभों के बावजूद भी अप्रच्छन्न विधि जैसे- थस्टन विधि, लिकर्ट विधि तथा गटमैन विधि द्वारा ही अभिवृत्ति मापने का सिलसिला अधिक लोकप्रिय है | इस लोकप्रियता का मुख्य कारण यह है कि इन विधियों द्वारा अभिवृत्ति मापन में अधिक संगति का होना है तथा साथ-ही-साथ ये विधियाँ आपस में सहसम्बन्धित भी है।

5.10 कठिन शब्द

- **अभिवृत्ति मापन** - अभिवृत्ति मापन से तात्पर्य व्यक्ति में अभिवृत्ति की दशा एवं उसकी मात्रा का पता लगाने से होता है |

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. अभिवृत्ति मापन की दो प्रमुख विधियाँ कौनसी है ?
2. थस्टन एवं लिकर्ट मापनी में प्रमुख अन्तर बताइए ?
3. गटमैन संचयी मापनी विधि पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?
4. प्रच्छन्न असंरचित एवं संरचित विधि के अन्तर को उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए ?

5.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- सौरेन्सन, हर्बट, ‘‘साइक्लोजी इन ऐजुकेशन, नई दिल्ली, टाटा मेग्राहिल (1977) |
- कुप्पूस्वामी, बी ‘एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल साइक्लोजी’ बाम्बे, एशिया पब्लिकेशन हाऊस, 1971|
- भार्गव, विवेक, (2007)शैक्षिक मनोविज्ञान, राखी प्रकाशन, आगरा |
- सिंह, अरूण कुमार, समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा,(1991) मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली |

- बोरिंग, ई.सी., लैंगफील्ड, एच. एस, एवं बील्ड एच.पी. फाऊण्डेशन ऑफ साइक्लोजी, (1961)न्यूयॉर्क, जॉन बिली |
- ट्रेवर्स, रॉबर्ट, एम. डब्ल्यू., एजुकेशनल साइक्लोजी,(1973) न्यूयॉर्क, मैकमिलन |
- सिंह, रामपाल, सिंह, एस.डी. एवं शर्मा देवदत्त, नवीन व्यावहारिक मनोविज्ञान,(2005) विनोद पुस्तक, मन्दिर, आगरा |
- अस्थाना विपिन, अस्थाना श्वेता, मनोविज्ञान एवं शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन,(2005) विनोद पुस्तक मन्दिर |

इकाई - 6

अभिवृत्ति परिवर्तन- कारक एवं सिद्धान्त

Attitude Change: Theories & Factors

इकाई की रूपरेखा-

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 अभिवृत्ति परिवर्तन- महत्त्वपूर्ण कारक

6.2.1 अभिवृत्ति परिवर्तन में संदर्भ समूह का प्रभाव

6.2.2 अभिवृत्ति परिवर्तन में प्रचार के माध्यमों की भूमिका

6.2.3 अभिवृत्ति परिवर्तन में प्रभावी संचरण का महत्त्व

6.2.4 अभिवृत्ति परिवर्तन में सूचना माध्यम का महत्त्व

6.2.5 अभिवृत्ति परिवर्तन में व्यक्तिगत गुणों का प्रभाव

6.2.6 अभिवृत्ति परिवर्तन में संगति का प्रभाव

6.2.7 अभिवृत्ति परिवर्तन में सांस्कृतिक कारकों की भूमिका

6.3 अभिवृत्ति परिवर्तन- बाधक तत्व

6.4 अभिवृत्ति परिवर्तन- प्रमुख सिद्धान्त

6.5 सारांश

6.6 कठिन शब्दार्थ

6.7 निबंधात्मक प्रश्न

6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 प्रस्तावना

किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति यदि आज आपकी अभिवृत्ति प्रतिकूल है तो सम्भव है कुछ दिनों के बाद अभिवृत्ति बदलकर अनुकूल हो जाये। परन्तु इतना तो ज्ञातव्य है कि परिस्थिति में परिवर्तन होने से व्यक्ति की अभिवृत्ति में परिवर्तन होता है।

अभिवृत्ति परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं- संगत परिवर्तन तथा असंगत परिवर्तन। किसी एक व्यक्ति की अभिवृत्ति किसी व्यक्ति या घटना के प्रति अनुकूल से परिवर्तित होकर और अधिक अनुकूल हो सकती है | उसी तरह से उसकी अभिवृत्ति प्रकिूल से बदलकर और अधिक प्रतिकूल भी हो सकती है| अभिवृत्ति में ये दोनों तरह के परिवर्तन संगत परिवर्तन के उदाहरण है | अत: अभिवृत्ति में संगत परिवर्तन वैसे परिवर्तनों को कहा जाता है जिसमें (अभिवृत्ति में) परिवर्तन पहले की ही दिशा में होती

है | असंगत परिवर्तन वैसे परिवर्तन को कहा जाता है जिसमें अभिवृत्ति अनुकूल से बदलकर प्रतिकूल या प्रतिकूल से बदलकर अनुकूल हो जाती है | स्पष्ट है कि असंगत परिवर्तन में अभिवृत्ति की दिशा बदल जाती है | अभिवृत्ति परिवर्तन से तात्पर्य इन दोनों या दोनों में किसी भी तरह के परिवर्तन से होता है | अन्य बातें समान रहने पर, अभिवृत्ति में संगत परिवर्तन लाना असंगत परिवर्तन की अपेक्षा हमेशा आसान है | अगर व्यक्ति की वर्तमान अभिवृत्ति के तत्वों में अधिक शक्ति, आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध, स्थिरता तथा संगति हो, तो वैसी परिस्थिति में अभिवृत्ति में संगत परिवर्तन लाना असंगत परिवर्तन की अपेक्षा तुलनात्मक रूप से अधिक आसान होता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि अभिवृत्ति परिवर्तन में जो संगत या असंगत परिवर्तन होते हैं, अलग-अलग नियमों द्वारा निर्धारित होते हैं |

6.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- अभिवृत्ति परिवर्तन और उसके महत्त्वपूर्ण कारक को समझ सकेंगे।
- अभिवृत्ति परिवर्तन के बाधक तत्व को समझ सकेंगे।
- अभिवृत्ति परिवर्तन के प्रमुख सिद्धान्त को समझ सकेंगे।

6.2 अभिवृत्ति परिवर्तन- महत्त्वपूर्ण कारक

अभिवृत्ति परिवर्तन कई कारकों द्वारा प्रभावित होता है | जिनका विश्लेषण निम्नांकित है-

6.2.1 अभिवृत्ति परिवर्तन में सन्दर्भ समूह का प्रभाव

व्यक्ति के संदर्भ समूह में परितर्वन कर देने पर उनकी अभिवृत्ति में भी परितर्वन हो जाता है | न्यूकाम्ब ने एक अध्ययन कर इसे स्पष्ट किया है | उन्होंने वेन्निगटन महाविद्यालय की महिला छात्राओं पर कई वर्षों तक अध्ययन किया। कॉलेज के प्रथम वर्ष में ऐसी छात्राओं की अभिवृत्ति की मापा गया और पाया गया कि इनकी अभिवृत्ति में अनुदारता अधिक थी। न्यूकाम्ब के अनुसार ऐसा स्वभाविक ही था क्योंकि वे सभी धनी परिवार से आई थी और उनके माता-पिता स्वयं ही अधिक अनुदार थे। कॉलेज का वातावरण ऐसा था कि उदार अभिवृत्ति को अधिक प्रोत्साहन मिलता था। यहाँ तक कि कॉलेज के अधिकारियों का छात्राओं में उदारता की अभिवृत्ति उत्पन्न करना भी प्रमुख उद्देश्यों में से एक था। कॉलेज के अन्तिम वर्ष यानी चौथे साल में जब इन छात्राओं की अभिवृत्ति मापी गयी तो यह देखा गया कि अधिकतर छात्राओं की अभिवृत्ति अनुदार से बदलकर उदार हो गयी थी। न्यूकाम्ब के अनुसार ऐसा इस कारण सम्भव हो सका क्योंकि छात्राओं का सन्दर्भ समूह अब बदलकर कॉलेज हो गया था जहाँ उदार अभिवृत्ति की प्रधानता थी।

समूह सम्बन्ध में परिवर्तन का असर अभिवृत्ति परिवर्तन पर सीधा पड़ता है | यदि व्यक्ति पुराने या वर्तमान समूह के सम्बन्ध तोडक़र एक नये समूह से सम्बन्ध जोड़ लेता है तो स्वभावत: वह अपनी अभिवृत्ति में नये समूह के नियमों के अनुसार परिवर्तन लाता है |

जब भी समूह संबंधमें परिवर्तन होता है, व्यक्ति की अभिवृत्ति की परिवर्तनशीलता दो बातों पर निर्भर करती है- समूह की विशेषता तथा समूह मे व्यक्ति की सदस्यता की विशेषता। समूह की विशेषता से तात्पर्य समूह के मानदण्ड, विश्वास तथा मूल्य आदि से होता है | यदि किसी व्यक्ति के लिए नया समूह, जिसमें वह सम्बन्ध चाहता है, का मानदण्ड अधिक आकर्षक है, समूह का विश्वास स्वीकार के योग्य है तथा समूह का मूल्य या मान महत्त्वपूर्ण है, तो वैसी परिस्थिति में वह अपनी अभिवृत्ति में इस नये समूह के मानदण्डों, विश्वासों एवं मूल्यों के अनुसार जल्द ही परिवर्तन कर लेता है | समूह में व्यक्ति की सदस्यता की विशेषता से तात्पर्य नये समूह में व्यक्ति की सदस्यता की स्थिति एवं उसके महत्त्व से होता है।

6.2.2 अभिवृत्ति परिवर्तन में प्रचार माध्यमों की भूमिका

अभिवृत्ति परिवर्तन में प्रचार का महत्व कितना है, यह सभी को विदित है | रेडियो, सिनेमा, दूरदर्शन तथा समाचार पत्र आधुनिक युग में प्रचार के प्रमुख साधन है | सरकार तथा विज्ञापनकार दोनों ही व्यक्तियों की अभिवृत्ति में परिवर्तन लाने के लिए प्रचार साधनों का काफी उपयोग करते हैं | प्रचार का रूप लिखित अथवा मौखिक तथा प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कुछ भी हो सकता है | अभिवृत्ति परिवर्तन में लिखित प्रचार की अपेक्षा मौखिक प्रचार तथा अप्रत्यक्ष प्रचार की अपेक्षा प्रत्यक्ष प्रचार अधिक प्रभावकारी सिद्ध हुआ है | भारत सरकार अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं जैसे- वयस्क शिक्षा, दहेज-प्रथा, परिवार कल्याण या परिवार नियोजन, हरिजन एवं पिछड़ी जातियों की समस्याएँ आदि के प्रति विभिन्न तरह के प्रचार द्वारा जनता की अभिवृत्ति में वांछित परिवर्तन करने में सफल हो सकी है | मेयर्स तथा बेरोनप एवं बर्न ने अपने-अपने प्रयोगात्मक अध्ययन के आधार पर यह बताया है कि प्रचार व्यक्तियों की अभिवृत्ति में परिवर्तन लाने में उस परिस्थिति में सबसे अधिक प्रभावकारी होता है यदि लोग प्रचारक को विश्वासी एवं निर्भर योग्य समझते हों तथा उसके द्वारा किये गये प्रचार के खिलाफ में दूसरा विरोधी प्रचार न हो। व्यक्ति को प्रचार एवं शिक्षा के लिए साधनों के अलावा व्यक्ति स्वयं भी अन्य व्यक्तियों के साथ अन्त:क्रिया करके भिन्न-भिन्न तरह की सूचनायें प्राप्त करता है | इन सूचनाओं के फलस्वरूप व्यक्ति अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन लाता है | इन अतिरिक्त सूचनाओं के फलस्वरूप अभिवृत्ति में होने वाली परिवर्तनशीलता मूल रूप से इस बात पर निर्भर करती है कि उस परिस्थिति का स्वरूप क्या है जिसमें व्यक्ति को सूचनाएँ दी गयी हैं |

6.2.3 अभिवृत्ति परिवर्तन में प्रभावी संचरण का महत्व

अभिवृत्ति परिवर्तन के अनेकों कारकों में प्रभावी संचारण एक प्रधान कारण है | प्रभावी संचारण से तात्पर्य वैसे तथ्यों एवं सूचनाओं का संचारण से होता है जो सुनने वाले व्यक्तियों के लिए आकर्षक एवं मनमोहक होते हैं और व्यक्ति की अभिवृत्ति पर सीधा प्रभाव डालते हैं | प्राय: ऐसे संचारण को जब व्यक्ति स्वीकार करता है, तो इससे उसकी अभिवृत्ति में परिवर्तन आ ही जाता है | इस ढंग का प्रभावी संचारण का अच्छा उदाहरण हमें टेलीविजन एवं रेडियो द्वारा किये गये विज्ञापनों में मिलता है| अधिकांशत: रेडियो तथा टेलीविजन से हमें कहा जाता है कि अपने स्वास्थ्य की रक्षा करना है तो आप अमुक साबुन का ही प्रयोग करें क्योंकि उसमें मैल में छिपे कीटाणुओं को मारने की शक्ति सबसे अधिक है | यह प्रभावी संचारण का एक उदाहरण है।

प्रभावी संचारण द्वारा अभिवृत्ति में होने वाला परिवर्तन मूलत: चार कारकों पर निर्भर करता है- संचारण का स्रोत, संचारण का विषय एवं विशेषता, संचार का माध्यम तथा श्रोतागण की विशेषता। अभिवृत्ति परिवर्तन में इन चारों कारकों के महत्त्व का विवरण इस प्रकार हैं-

अभिवृत्ति परिवर्तन करने के लिए जो तथ्य एवं सूचना दूसरे व्यक्ति को दी जा रही है, उसका स्रोत (अर्थात सूचना देने वाला व्यक्ति) कैसा है, इस पर अभिवृत्ति की परिवर्तनशीलता अधिक निर्भर करती है | होभलैंण्ड, जैनिस एवं केली का विचार है कि सूचना देने वाला व्यक्ति अर्थात संचारक की कुछ खास-खास विशेषताएँ होती हैं जिनसे उनके द्वारा दी गयी सूचनाएँ अभिवृत्ति परिवर्तन के लिए काफी प्रभावी सिद्ध होती है | ऐसी विशेषताओं में संचारक की विश्वसनीयता, आकर्षकता, शक्ति आदि प्रमुख है।

इस तरह के संचारक विशेषज्ञ एवं भरोसे योग्य दोनों ही होते हैं | फलस्वरूप उनके द्वारा दी गयी किसी प्रकार की सूचना पर श्रोतागण अधिक विश्वास करते हैं और अपनी अभिवृत्तियों में आसानी से परिवर्तन करते हैं | होभलैंड तथा विश ने एक प्रयोग किया जिसमें कॉलेज के छात्रों को एक ही तरह की सूचनाएँ पढने के लिए दी गई। परन्तु कुछ छात्रों से कहा गया कि इन तथ्यों एवं सूचनाओं का स्रोत एक विश्वसनीय व्यक्ति है तथा कुछ छात्रों से कहा गया कि इन तथ्यों एवं सूचनाओं का स्रोत एक कम विश्वसनीय व्यक्ति है | परिणाम में देखा गया है कि अधिक विश्वसनीय स्रोत होने पर 23 प्रतिशत छात्रों की अभिवृत्ति मे परिवर्तन आया परन्तु कम विश्वसनीय स्रोत होने पर मात्र 7 प्रतिशत छात्रों की अभिवृत्ति में परिवर्तन आया।

व्यक्ति को दी गयी सूचनाओं का स्वरूप भी एक महत्वपूर्ण कारक है जिस पर अभिवृत्ति निर्भर करती है | कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर यह स्पष्ट कर दिया है कि जब कोई तथ्य या सूचना ऐसी होती है जिससे व्यक्ति में ऋणात्मक संवेग जैसे डर उत्पन्न होता है और साथ ही साथ उस डर को कम करने का उपाय भी उनके सामने होता है, तो इससे अभिवृत्ति में परिवर्तन आसानी से होता है | लेभेन्थाल एवं रोजर्स तथा न्यूवॉर्न ने अपने प्रयोगों के आधार पर इस तथ्य की पुष्टि की है | सरकार की ओर से गुटखा खाने वालों को यह चेतावनी दिया जाना कि गुटखा खाने से कैंसर होता है, डर उत्पन्न कर अभिवृत्ति में परिवर्तन करने वाली सूचना का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं |

जब दी जाने वाली सूचना का सिर्फ एक पक्ष अर्थात धनात्मक या ऋणात्मक पक्ष पर ही संचारक बल देता है, तो इसे एकतरफा संचारण कहा जाता है | परन्तु यदि संचारक सूचना के दोनों पक्षों पर बल डालता है अर्थात उसके लाभ और हानि दोनों को ही वह बतला देता है, तो इसे दो-तरफा संचारण कहा जाता है |

किसी व्यक्ति या घटना के बारे में पहली दी गयी सूचनाएँ उसी व्यक्ति या घटना के बारे में बाद में दी जाने वाली सूचनाओं की अपेक्षा अभिवृत्ति में जल्द परिवर्तन लाती है क्योंकि पहले दी गयी सूचनाओं का आधार व्यक्ति के मस्तिष्क पर अपेक्षाकृत अधिक होता है | पहले दी गयी सूचना के प्रभाव को प्राथमिकता तथा बाद में दी गयी सूचना के प्रभाव को अभिनवता की संज्ञा दी जाती है |

6.2.4 अभिवृत्ति परिवर्तन में सूचना माध्यम का महत्त्व

रेडियो, टेलीविजन, अखबार, इन्टरनेट एवं सामाजिक मीडिया आदि सूचना के सामूहिक माध्यम के उदाहरण हैं जिनमें संचारक जनता को सामूहिक रूप से किसी बात की सूचना देता है | इनमें संचारक

एवं सामान्य व्यक्तियों के बीच में सीधा सम्बन्ध या आमने-सामने का सम्बन्ध नहीं होता है | व्यक्तिगत प्रभाव में संचारक प्रत्येक व्यक्ति से व्यक्तिगत रूप से मिलकर अपनी बात को समझाता है | लेजार्सफेल्ड, बेरेलसन तथा गाडेट ने अपने प्रयोग के आधार पर बतलाया है कि किसी विशेष राजनैतिक पार्टी के प्रति वोट देने की अभिवृत्ति में परिवर्तन के लिए सामूहिक माध्यम से दी गयी सूचना, व्यक्तिगत रूप से दी गयी सूचना के अपेक्षा कम प्रभावकारी होता है | उसी तरह से एल्डरभेल्ड एवं डोज ने अपने अध्ययन में पाया कि जब सूचनाएँ सामूहिक माध्यम के सहारे दी गयी तो किसी विशेष पार्टी के प्रति वोट देने की अभिवृत्ति में मात्र 19 प्रतिशत परिवर्तन हुआ। परन्तु जब उसी ढंग की सूचनाएँ व्यक्तिगत रूप से सभी लोगों को दी गयी तो इससे उनकी अभिवृत्ति में 75 प्रतिशत परिवर्तन हुआ। इन अध्ययनों से स्पष्ट हुआ कि अभिवृत्ति परितर्वन के लिए सामूहिक माध्यम में दी गयी सूचनाएँ व्यक्तिगत रूप से दी गयी सूचनाओं की अपेक्षा कम प्रभावकारी होती है।

समाज मनोवैज्ञानिकों ने सूचना ग्रहण करने के इन दोनों माध्यमों का तुलनात्मक अध्ययन करके यह दिखलाया है कि जब व्यक्ति कोई अनुभव सक्रिय रूप से क्रियाशील होकर प्राप्त करता है, तो इससे अभिवृत्ति में परिवर्तन तेजी से होता है | परन्तु जब उसे कोई अनुभव दीवार पर कुछ लिखा देखकर या इश्तहार पढक़र प्राप्त होता है, तो इससे व्यक्ति की अभिवृत्ति में परिवर्तन कम होता है | क्राफार्ड ने अपने अध्ययन के आधार पर इस तथ्य की पुष्टि की है | क्राफोर्ड के अनुसार निष्क्रिय रूप से दी गयी सूचनाओं पर व्यक्ति ज्यादा ध्यान नहीं देता है।

6.2.5 अभिवृत्ति परिवर्तन में व्यक्तिगत गुणों का प्रभाव

कुछ लोग अनुनयन किये जाने पर अपनी अभिवृत्ति में तुरन्त परिवर्तन कर लेते हैं तथा कुछ लोगों पर प्रभावी अनुनयन का भी कोई असर नहीं पड़ता है | जिन व्यक्तियों में आत्म-सम्मान अधिक होता है उनमें आत्मविश्वास अधिक होता है | फलस्वरूप ऐसे व्यक्तियों पर अनुनयन का प्रभाव कम पड़ता है और उनकी अभिवृत्ति में परिवर्तन आसानी से नहीं होता है | मेयर्स के अनुसार आक्रमणकारी स्वभाव के व्यक्ति में हठधर्मिता अधिक पायी जाती है एवं वे संकुचित विचार के होते हैं | फलत: इनकी अभिवृत्ति में भी परितर्वन लाना आसान नहीं होता।

श्रोतागण की उम्र का भी प्रभाव उनकी अभिवृत्ति परिवर्तनशीलता पर पडता है | सीयर्स ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बताया है कि जैसे-जैसे व्यक्ति की आयु बढ़ती जाती है, उसकी अभिवृत्ति में परिवर्तन एक खास दिशा में होता जाता है | दूसरे शब्दों में उनकी अभिवृत्ति में उदारता में कमी आ जाती है तथा अनुदारता बढ़ती जाती है | यही कारण है कि प्रौढ़ व्यक्तियों की सामाजिक अभिवृत्ति एक वयस्क की सामाजिक अभिवृत्ति की अपेक्षा अधिक अनुदार होती है | हमार देश में सह-शिक्षा के प्रति अधिकतर बूढ़े व्यक्तियों की अभिवृत्ति उसी कारण नकारात्मक होती है | कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तियों के व्यक्तित्व में परिवर्तन लाकर उनकी अभिवृत्तियों में परिवर्तन लाने की कोशिश की है | मनोवैज्ञानिकों का यह भी दावा है कि व्यक्तित्व संरचना में परिवर्तन लाने से व्यक्ति की अभिवृत्ति में होने वाला परिवर्तन अपेक्षाकृत अधिक स्थायी होता है | एक्सलाईन द्वारा किये गये अध्ययन से उपर्युक्त तथ्यों को पूर्ण समर्थन मिलता है | इस अध्ययन में सात वर्षीय कुछ ऐसे श्वेत समस्यात्मक बच्चों को लिया गया जो प्रजातीय अभिवृत्तियों से काफी पीडित थे अर्थात ऐसे बच्चे निग्रो बच्चों के प्रति काफी आक्रामक थे या काफी असामाजिक व्यवहार करते थे। श्वेत बच्चों के व्यक्तित्व में खेल चिकित्सक द्वारा परिवर्तन लाया गया, जिसके बाद यह भी देखा गया कि निग्रो

बच्चों के प्रति उदारता एवं प्रेम बढ़ गया। काज तथा उनके सहयोगियों ने भी एक अध्ययन किया जिसमें निग्रो के प्रति अभिवृत्ति परिवर्तन लाने के लिए तथ्यपूर्ण सूचना अपील तथा आत्म-सूझ विधि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया और उन्होंने पाया कि निग्रो बच्चों के प्रति श्वेत प्रयोज्यों की प्रतिकूल अभिवृत्ति में तथ्यपूर्ण सूचना अपील विधि द्वारा कोई परिवर्तन नहीं हुआ परन्तु आत्म-सूझ विधि द्वारा विशेषकर वैसे श्वेत व्यक्तियों की अभिवृत्ति में परितर्वन हुआ जिनमें आत्म-रक्षात्मकता का शीलगुण कम था। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि व्यक्त्वि परिवर्तन द्वारा भी व्यक्ति की अभिवृत्ति में परिवर्तन होता है।

6.2.6 अभिवृत्ति परिवर्तन में संगति का प्रभाव

अभिवृत्ति परिवर्तन में संगति का भी महत्त्व काफी अधिक है | संगति से तात्पर्य वैसे सम्पर्क से होता है जिसमें व्यक्तियों को कुछ ऐसे व्यक्तियों के साथ लाचारी में अन्त:क्रिया करना पड़ता है जिनके साथ वह अन्त:क्रिया करना नहीं चाहता है | उदाहरणार्थ, दो भिन्न जातियों के व्यक्तियों को एक ही कमरे में यदि एक साथ रहने को कहा जाये, तो यह संगति का उदाहरण होगा। समाज मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे अनेकों अध्ययन किये हैं जिसमें यह देखा गया है कि संगति में व्यक्तियों को एक-दूसरे को समझने का मौका गहन रूप से मिलता है | फलस्वरूप एक-दूसरे के प्रति उनकी अभिवृत्ति में धीरे-धीरे अपने आप ही परिवर्तन आने लगता है | आधिक सम्पर्क से वर्तमान अभिवृत्ति में सकारात्मक तथा नकारात्मक परिवर्तन दोनों ही हो सकते हैं | दोनों के साथ रहने पर सम्भव है कि उसकी अभिवृत्ति नकारात्मक से बदलकर स्वीकारात्मक हो जाय या संभव है कि नकारात्मक से और अधिक नकारात्मक हो जाय। कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति को कुछ ऐसी क्रियाएँ या व्यवहार लोगों के सामने करना होता है जिसे वह नहीं करना चाहता है क्योंकि ऐसी क्रियाएँ उसकी निजी अभिवृत्ति के विपरीत होती है | ऐसा पाया गया है कि इस तरह की भूमिका करते-करते व्यक्ति की निजी अभिवृत्ति परिवर्तित होकर किये गये व्यवहार के अनुकूल हो जाती है, अर्थात वह आम अभिवृत्ति के समान हो जाती है |

6.2.7 अभिवृत्ति परिवर्तन में सांस्कृतिक कारकों की भूमिका

प्रत्येक समाज की एक संस्कृति होती है जिसमें व्यक्ति का व्यक्तित्व विकास होता है | संस्कृति के मूल्यों, मानदण्डों आदि में परिवर्तन होने से व्यक्ति में पहले से चली आ रही अभिवृति परिवर्तित होकर बदलते हुए सांस्कृतिक मूल्यों एवं मानदण्डों के अनुसार विकसित हो जाती है | आधुनिक भारतीय समाज ने शिक्षा के कारण सांस्कृतिक मूल्यों में काफी परिवर्तन आया है | शायद यही कारण है कि आजकल एक औसत भारतीय की अभिवृत्ति हरिजनों के प्रति, औरतों द्वारा नौकरी किये जाने के प्रति, अन्य समान सामाजिक समस्याओं के प्रति अब उतनी नकारात्मक नहीं रह गयी जितना कि 30-40 वर्ष पहले थी। फैल्डमैन तथा मेयर्स ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों में पाया है कि भिन्न-भिन्न संस्कृति में पले व्यक्तियों की अभिवृत्ति एक ही तरह की सामाजिक समस्या के प्रति एक समान नहीं होती है और इस सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण उनकी अभिवृत्तियों में परिवर्तन का प्रयास भी एक समान का परिणाम नहीं देता है | एक खास संस्कृति में पले व्यक्तियों की अभिवृत्ति में किसी सामाजिक समस्या के प्रति अभिवृत्ति में परिवर्तन करना कठिन हो जाता है | मेयर्स ने अपने अध्ययनों में पाया कि यहूदी छात्रों में ईश्वर, युद्ध तथा संतति-नियमन के प्रति अभिवृत्ति में आसानी से परिवर्तन

लाया जा सकता था परन्तु कैथोलिक या ईसाई छात्रों ने इन सब विषयों के प्रति अभिवृत्ति में परिवर्तन लाना एक दुष्कर कार्य के समान था।

6.3 अभिवृत्ति परिवर्तन- बाधक तत्व

तीन तत्वों को अभिवृत्ति परिवर्तन में सबसे प्रमुख बाधक तत्व माना हैं- प्रतिघात, पूर्व चेतावनी एवं अभिवृति टीका। इन तीनों तत्वों का वर्णन निम्नांकित हैं-

- **प्रतिघात की स्थिति-** जब कोई व्यक्ति अपने विचार या मत को स्वीकार कराने के ख्याल से किसी दूसरे व्यक्ति पर अधिक बल डालता है तो प्राय: देखा जाता है कि दूसरा व्यक्ति उनके द्वारा बताये गये विचारों का ठीक विपरीत विचार या मत बना लेने की ठान लेता है | इसे ही समाज मनोविज्ञान में प्रतिघात की संज्ञा दी जाती है | प्रतिघात की परिस्थिति में संचारक द्वारा बताई गई दिशा में व्यक्ति की अभिवृत्ति में परिवर्तन नहीं होता है | समाज मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रतिघात की स्थिति में वांछित दिशा में अभिवृत्ति परिवर्तन इसलिए नहीं होता क्योंकि ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपने विचारों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता खतरे में पाता है | व्यक्ति को ऐसा महसूस होता है कि संचारक अनावश्यक रूप से हमारे विचारों का गला घोंट कर अपने विचारों को मान लेने के लिए बाध्य कर रहा है | अत: संचारक द्वारा बतलायी गयी दिशा के ठीक विपरीत दिशा में वह अपनी अभिवृत्ति बना लेता है | प्रतिघात का उदाहरण हमारे दैनिक जीवन में काफी मिलता है | जब टी.वी. या रेडियो पर कोई विशेष कम्पनी का ही माल खरीदने पर अधिक बल डालता है तो प्राय: व्यक्ति सचेत होकर यह सोचने लगता है, ''आखिर बात क्या है, वह दूसरी कम्पनी के माल के बारे में कुछ नहीं कह रहा है |
- **पूर्व चेतावनी-** कई समाज मनोवैज्ञानिकों का विचार है जब व्यक्ति किसी समस्या या विषय को महत्वपूर्ण समझता है और पहले से उसे किसी तरह यह पता चल जाता है कि अमुक सूचना या संचारण का उद्देश्य उनकी अभिवृत्ति में मात्र परिवर्तन करना है, तो वैसी सूचनाओं या संचारणों का प्रभाव व्यक्ति पर कम पड़ता है या यों कहें कि न के बराबर पड़ता है | इसे ही समाज मनोविज्ञान में पूर्व चेतावनी की संज्ञा दी गयी। आज समाज मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि पूर्व चेतावनी से अभिवृत्ति परिवर्तन में काफी बाधा पहुँचती है | बरोन एवं बर्न ने टिप्पणी करते हुए ठीक ही कहा है, ''जब हम लोग यह जान लेते हैं कि कोई भाषण, अभिलेखित सन्देश या लिखित अपील हमारे विचारों को बदलने के लिए ही तैयार किया गया है, तो प्राय: इससे हम लोग बहुत ही कम प्रभावित होते हैं |''कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों जैसे- सियालडिनी एवं पेटी तथा पेटी एवं कैकिओपो ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों से इस तथ्य की पुष्टि की है कि प्रभावी संचारण के उद्देश्य से पूर्व परिचित हो जाने पर (अर्थात पूर्व चेतावनी की स्थिति में) व्यक्ति को अपनी स्मृति से वैसे तथ्यों की संग्रह कर लेने का समय अधिक मिल पाता है जिससे वह प्रभावी संचारण को गलत साबित कर सके। यही कारण है कि पूर्व चेतावनी की स्थिति में अभिवृत्ति परिवर्तन काफी कम होता है | इस तरह से पूर्व चेतावनी व्यक्ति को पहले से शस्त्र सज्जित कर देती है, ताकि वह अपनी अभिवृत्ति पर प्रभावी संचारण के पडने वाले प्रभाव से प्रभावित ना हो सके।

- **अभिवृत्ति टीका-** यदि किसी व्यक्ति की अपनी अभिवृत्ति के विपरीत विचारों से हल्के-फुल्के ढंग से यदि पहले ही अवगत करा दिया तो बाद में उसकी अभिवृत्ति में परिवर्तन करने के लिए जो प्रभावी संचारण किया जाता है, उसका उसकी अभिवृत्ति पर कोई असर नहीं पड़ता है | ऐसा इसलिए होता है कि व्यक्ति को पहले अपनी अभिवृत्ति के विपरीत विचारों का 'टीका' लगा दिया जाता है तथा उसे अभिवृत्ति परिवर्तन का कीड़ा सिद्धान्त कहा जाता है | इससे उसमें ऐसे विचारों को सहने की शक्ति तीव्र हो जाती है | मैकगुरी ने इस तरह की मानसिक स्थिति को 'अभिवृत्ति टीका' की संज्ञा दी है | 'अभिवृत्ति टीका' की वैधता को दिखलाने के लिए अनेकों प्रयोग पहले किये गये हैं और आज भी किये जा रहे हैं | इन अध्ययनों में मैकगबुरी तथा पपोजियार्गिस द्वारा किया गया अध्ययन काफी महत्वपूर्ण एवं प्रचलित हैं | इस अध्ययन में प्रयोज्यों के तीन समूह बनाये गये- सहायक रक्षा समूह, खण्डन रक्षा समूह तथा नियंत्रित समूह । सहायक रक्षा समूह के छात्रों को विभिन्न विषयों एवं समस्याओं से सम्बन्धित उनकी अभिवृत्ति के समर्थन में कुछ सूचनाएँ दी गयी। खण्डन रक्षा समूह के छात्रों को उन्हीं विषयों एवं समस्याओं से सम्बन्धित उनकी अभिवृत्ति के विपरीत कुछ कमजोर तर्क दिये गये जिन्हें बाद में प्रयोगकर्ता द्वारा खण्डित किया गया । इस तरह से इस समूह को अपनी अभिवृत्ति के विपरीत विचारों द्वारा हल्का झटका दिया गया। नियंत्रित समूह को किसी तरह का संचारण नहीं दिया गया । दूसरे शब्दों में, इन्हें न तो अपनी अभिवृत्ति को समर्थन देने वाले तथ्यों को और न ही उसे खण्डित करने वाले तथ्यों को दिया गया । कुछ दिनों के बाद तीनों समूह के प्रयोज्यों को इन समस्याओं एवं विषयों से सम्बन्धित ऐसी सूचनाएँ एवं संचारण दिये गये जो उनकी अभिवृत्ति के बिल्कुल विपरीत थे। परिणाम में देखा गया कि खण्डन रक्षा समूह के छात्र अन्य दोनों समूहों के छात्रों की तुलना में ऐसी विपरीत सूचनाओं एवं संचारणों से कम प्रभावित हुए । फलस्वरूप विपरीत सूचनाओं एवं संचारणों की दिशा में ऐसे छात्रों में अन्य दोनों समूहों के छात्रों की अपेक्षा अभिवृत्ति में परिवर्तन कम हुआ। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अभिवृत्ति टीका भी अभिवृत्ति परिवर्तन में एक प्रमुख बाधक तत्व है।

निष्कर्ष यह है कि अभिवृत्ति के लिए किया गया प्रभावी संचारण हमेशा प्रभावकारी नहीं होता क्योंकि प्रतिघात पूर्वचे तावनी एवं अभिवृत्ति टीका की परिस्थिति ऐसी होती है जिनमें वैसे संचारण का प्रभाव बिल्कुल ही कम हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. अभिवृत्ति परिवर्तन में महत्वपूर्ण कारकों का विश्लेषण कीजिए ?
2. अभिवृत्ति परिवर्तन में संचार के माध्यमों की भूमिका स्पष्ट कीजिए ?
3. अभिवृत्ति परिवर्तन में व्यक्तिगत एवं सांस्कृतिक कारक ही क्यों महत्वपूर्ण है ?

6.4 अभिवृत्ति परिवर्तन- अभिवृत्ति संगठन के सिद्धान्त

अभिवृत्ति परिवर्तन या अभिवृत्ति की व्याख्या करने के लिए जितने भी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है उन्हें चार मुख्य श्रेणियों में बाँटा जाता है | प्रत्येक श्रेणी में कई मनोवैज्ञानिकों ने शोध एवं

प्रयोग करके भिन्न-भिन्न तरह के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है | इन चारों प्रमुख श्रेणियों एवं प्रत्येक श्रेणी के भीतर आने वाले प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन इस प्रकार हैं-

1. संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त- इस श्रेणी में आने वाले प्रमुख सिद्धान्त अग्रांकित है-

- हाईडर का संतुलन सिद्धान्त
- न्यूकाम्ब का ए-बी एक्स सिद्धान्त
- फेस्टिंगर का संज्ञानात्मक असंवादित सिद्धान्त
- रोजेनवर्ग का भावात्मक-संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त
    1. सामंजस्य सिद्धान्त

2. सामाजिक सीखना सिद्धान्त- इस श्रेणी में आने वाले प्रमुख सिद्धान्त अग्रांकित हैं-

    - क्लासिकी अनुबन्धन मॉडल पर आधारित सिद्धान्त
    - साधनात्मक अनुबन्धन मॉडल पर आधारित सिद्धान्त

3. कार्यात्मक सिद्धान्त- इस श्रेणी में निम्नांकित प्रमुख सिद्धान्त रखे गये हैं-

    - काज तथा स्टोटलैण्ड का सिद्धान्त
    - स्मिथ, ब्रुनर एवं ह्वाईट सिद्धान्त

4. विविध सिद्धान्त- इस श्रेणी में आने वाले प्रमुख सिद्धान्त निम्नांकित हैं-

    - केलमैन का त्रिप्रक्रिया सिद्धान्त
    - आत्मसात्करण विरोध सिद्धान्त
    - अनुकूलन स्तर सिद्धान्त

6.4.1. संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त

संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त द्वारा अभिवृत्ति परितर्वन तथा अभिवृत्ति विकास दोनों की व्याख्या होती है | सिद्धान्त की इस श्रेणी में कई सिद्धान्त आते हैं | एक बात इन सभी सिद्धान्त में सामान्य पायी जाती है- व्यक्ति की वर्तमान अभिवृत्ति के भिन्न-भिन्न तत्वों या भिन्न-भिन्न अभिवृत्तियों के बीच असंगति होने से उसमें एक दुखद मानसिक स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो व्यक्ति को असंगति कम करके इस दुखद मानसिक स्थिति को दूर करने के लिए प्रोत्साहित करता है | इसके फलस्वरूप व्यक्ति की अभिवृत्ति में परिवर्तन आता है | संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्तों के अनुसार मानव एक सक्रिय सूचना संसाधक के रूप में कार्य करता है जो इस बात का विश्लेषण करता है कि एक ही अभिवृत्ति के भिन्न-भिन्न तत्वों के बीच या भिन्न-भिन्न तरह की अभिवृत्तियों के बीच उपस्थित असंगति को दूर करके उसमें सामंजस्य लाया जा सकता है | इस श्रेणी में आने वाले प्रमुख सिद्धान्तों की व्याख्या निम्नांकित है-

1. हाईडर का संतुलनसिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन हाईडर द्वारा (1946-1958) में किया गया। इस सिद्धान्त को हाईडर का संतुलन सिद्धान्त या पी-ओ-एक्स मॉडेल भी कहा जाता है | फेल्डमैन के अनुसार हाईडर का संतुलन सिद्धान्त संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्तों का जनक है।

इस सिद्धान्त द्वारा अभिवृत्ति परिवर्तन मॉडल में तीन तत्व होते हैं | पहला तत्व व्यक्ति या प्रत्यक्ष करने वाला होता है जिसे हाईडर ने संकेत के रूप में कहा है | दूसरा तत्व कोई दूसरा व्यक्ति होता है जिसे संकेत के रूप में कहा गया है | तीसरा तत्व कोई वस्तु या व्यक्तित्व होता है जिसे हाईडर ने ड्ग कहा है | इस तरह से हाईडर मॉडेल में क्क-ह्न-ड्ग तीन तत्त्व होते हैं | इन तत्त्वों से बनने वाले युग्मों के बीच दो तरह के सम्बन्ध होते हैं- इकाई सम्बन्ध तथा भावात्मक सम्बन्ध। तत्वों के युगों में इकाई सम्बन्ध का निर्माण तत्त्वों की समानता, स्वामित्व एवं समान सदास्यता के आधार पर होता है | तत्त्वों के युग्मों में भावात्मक सम्बन्ध का निर्माण तत्त्वों के बीच पसन्दगी या नापसन्दगी पर आधारित होता है | हाईडर ने अपने सिद्धान्त में यह बताया है कि तत्त्वों के युग्मों के बीच चाहे भावात्मक सम्बन्ध हेा, या इकाई सम्बन्ध हो, वे धनात्मक (यानी +) हो सकते हैं या ऋणात्मक (यानी -) हो सकते हैं |

हाईडर ने अपने सिद्धान्त में यह भी बतलाया है कि तत्वों के बीच संतुलित अवस्था होती है या इसके अभाव में असंतुलित अवस्था होती है | संतुलित अवस्था में व्यक्ति में सुखद भावना होती है और उसमें किसी प्रकार का तनाव आदि नहीं होता है | असंतुलित अवस्था में व्यक्ति में दुखद भावना होती है और उसकी मानसिक स्थिति तनावयुक्त होती है | ऐसी अवस्था व्यक्ति को यानी क्क को ड्ग या ह्न के साथ अपने सम्बन्ध में परिवर्तन करने के लिए प्रेरित करती है ताकि असंतुलित अवस्था संतुलित अवस्था में परिणत हो जाये। हाईडर ने यह भी बताया है कि तत्त्वों के बीच किस ढंग का सम्बन्ध रहने पर क्क के लिए असंतुलित अवस्था होती है तथा किस ढंग का संबंधरहने पर क्क के लिए संतुलित अवस्था होती है | अगर क्क, ह्न तथा ड्ग के बीच के सम्बन्धों को चिह्न द्वारा अर्थात धनात्मक यानी + तथा ऋणात्मक, यानी - के रूप में लेकर गुणा करने पर यदि परिणाम धनात्मक आता है तो ऐसी स्थिति में संतुलित अवस्था होगी परन्तु यदि परिणाम ऋणात्मक आता है तो ऐसी स्थिति में असंतुलित अवस्था उत्पन्न होगी। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि ऐसी अवस्था जिसमें तीन धनात्मक सम्बन्ध हो या एक धनात्मक तथा दो ऋणात्मक सम्बन्ध हो तो इससे हमेशा एक सन्तुलित अवस्था ही उत्पन्न होगी। परन्तु यदि अवस्था ऐसी है जिसमें तीन ऋणात्मक सम्बन्ध हो या एक ऋणात्मक तथा दो धनात्मक सम्बन्ध हो तो इससे हमेशा असंतुलित अवस्था उत्पन्न होगी। हाईडर मनोवृत्ति परिवर्तन के लिए असंतुलित अवस्था को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं क्योंकि इस अवस्था के तनाव को कम करने के लिए व्यक्ति अपने सम्बन्धों में परिवर्तन कर संतुलित होने का प्रयास करता है |

हाईडर के सिद्धान्त के कुछ सकारात्मक पक्ष-

क संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्तों में हाईडर का सिद्धान्त सबसे पहला ऐसा सिद्धान्त है जो अभिवृत्ति परिवर्तन एवं अभिवृत्ति विकास दोनों की व्याख्या करता है।

ख इस सिद्धान्त का असर अभिवृत्ति परिवर्तन के क्षेत्र में किये जाने वाले शोधों पर काफी अधिक हुआ है और एकाध अध्ययन को छोडक़र अनेकों अध्ययनो में इस सिद्धान्त की वैधता उचित ठहरायी गयी है |

नकारात्मक पक्ष-

क. फेल्डमैन के अनुसार इस सिद्धान्त द्वारा तत्त्वों के बीच भावात्मक सम्बन्धों की मात्रा में जो अन्तर होता है उसकी व्याख्या करना एक कठिन कार्य है।

ख. हाईडर के सिद्धान्त से इस बात का भी पता नहीं चलता है कि व्यक्ति अपनी असंतुलित अवस्था को दूर करने के लिए कई विधियों में से कब कौन-सी विधि अपनायेगा। लेभेन्थाल के अनुसार असंतुलित अवस्था तीन विधियों द्वारा दूर की जा सकती है- (1) अभिवृत्ति में परिवर्तन लाकर (2) सम्बन्धों को अस्वीकार करके तथा (3) अभिवृत्ति में ऐसे गुणों का समावेश करके जो संतुलित सम्बन्ध के अनुकूल हो। हाईडर के सिद्धान्त में इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता है कि व्यक्ति इनमें से किस विधि द्वारा अपनी असंतुलित अवस्था का दूर करेगा।

ग. काइस्लर, कोलिन्स तथा मिलर ने इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा है कि हाईडर मॉडल में तत्वों के बीच का सम्बन्ध तो पूर्णत: संतुलित होता है या पूर्णत: असंतुलित होता है | इसमें सन्तुलन या असंतुलन की मात्रा की कोई चर्चा नहीं है जबकि सच्चाई यह है कि संतुलन या असंतुलन की मात्रा कम या ज्यादा हो सकती है | मात्रा की व्याख्या नहीं होने से अभिवृत्ति परिवर्तन की वैज्ञानिक व्याख्या नहीं हो पाती है।

फेस्टिगर का संज्ञानात्मक-असंवादिता सिद्धान्त-

संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त की श्रेणी में फेस्टिंगर का संज्ञानात्मक असंवादिता सिद्धान्त एक सबसे प्रमुख महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना गया है | इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 1957 में लिओन फेस्टिंगर ने अपनी पुस्तक 'ए थियोरी ऑफ कॉगनिटीव डिसोनेन्स' में किया। इस सिद्धान्त के प्रतिपादन के पहले समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्ति की अभिवृत्ति एवं उसके बाह्य व्यवहारों में सम्बन्ध स्थापित करने का कोई सफल प्रयास नहीं किया गया था। फेस्टिंगर ने अपने इस सिद्धान्त में उन परिस्थितियों की भी विशेष व्याख्या करने की कोशिश की है जिसमें व्यक्ति की अभिवृत्ति एवं उसके द्वारा दिखलाये गये व्यवहारों में ताल-मेल होता है।

फेस्टिंगर ने अपने इस सिद्धानत में अभिवृत्ति को एक संज्ञानात्मक तत्व माना है जो किसी व्यक्ति, घटना या वातावरण के प्रति एक मत या विश्वास है | फेस्टिंगर का सामान्य मत यह है कि व्यक्ति की भिन्न-भिन्न तरह की अभिवृत्तियाँ प्राय: एक-दूसरे से संगत होती हैं और व्यक्ति इन्हीं अभिवृत्तियों के अनुकूल व्यवहार करता है | उनके भिन्न-भिन्न तरह के व्यवहार भी आपस में एक-दूसरे के साथ संगत होते हैं | परन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि व्यक्ति में दो या दो से अधिक ऐसी अभिवृत्ति या संज्ञानात्मक तत्व एक ही साथ सक्रिय हो जाते हैं जो आपस में विरोधी होते हैं | ऐसी स्थिति में व्यक्ति में एक विशेष मानसिक स्थिति उत्पन्न होती है जिसे संज्ञानात्मक असंवादिता की संज्ञा दी जाती है | संज्ञानात्मक असंवादिता की अवस्था की मुख्य विशेषता यह है कि इससे व्यक्ति में तनाव एवं दुखद अनुभव उत्पन्न होते हैं जो व्यक्ति को असंवादिता की स्थिति दूर करने के लिए प्रेरित करते हैं | इस तरह से फेस्टिंगर ने अपने सिद्धान्त में असंवादिता का प्रयोग दो या दो से अधिक संज्ञानात्मक तत्वों के बीच असंगति बतलाने के लिए किया है | संज्ञानात्मक तत्वों के बीच असंगति जिससे असंवादिता उत्पन्न होती है, का एक उदाहरण इस प्रकार हैं- एक गुटखा खाने वाला व्यक्ति यदि यह समझता है

कि गुटखा खाने से गले का कैंसर हो जाता है तो यह एक असंवादिता का उदाहरण होगा जहाँ दो संज्ञानात्मक तत्व एक-दूसरे के विरोधी है | पहला संज्ञानात्मक तत्व है 'मैं गुटखा खाता हूँ' तथा दूसरा संज्ञानात्मक तत्व (जो पहला संज्ञानात्मक तत्व का विरोधी है) गुटखा खाने से गले का कैंसर हो जाता है।'

प्रासंगिक सम्बन्ध दो तरह के होते हैं- संवादी सम्बन्ध तथा असंवादी या असंवादित सम्बन्ध। संवादी सम्बन्ध में दोनों संज्ञानात्मक तत्व एक-दूसरे के साथ बिना किसी तरह का विरोधाभास उत्पन्न किये व्यक्ति में मौजूद रहते हैं | जैसे 'मैं झूठ नहीं बोलती हूँ' तथा 'झूठ बोलने वाले व्यक्ति मुझे पसन्द नहीं है।' ये दोनों संज्ञानात्मक तत्त्व एक-दूसरे के साथ बिना किसी तरह का विरोधाभास उत्पन्न किये व्यक्ति में मौजूद है | अत: यहाँ सम्बन्ध संवादी है | असंवादी सम्बन्ध में दोनों संज्ञानात्मक तत्वों में असंगति पायी जाती है | जैसे- व्यक्ति गुटखा खाता है तथा जानता है कि गुटखा खाने से गले का कैंसर होता है असंवादी सम्बन्ध का उदाहरण है | संवादिता तथा असंवादिता सिर्फ प्रासंगिक संज्ञानात्मक तत्वों के सम्बन्धों में पाया जाता है।

क. असंवादी तत्त्वों की संख्या संवादी तत्वों की संख्या की अपेक्षा बढ़ने से असंवादिता की मात्रा अधिक होती है।

ख. संवादी तत्वों की संख्या असंवादी तत्वों की संख्या से अधिक होने पर असंवादिता कम होती है।

ग. असंवादिता की मात्रा भिन्न-भिन्न संज्ञानात्मक तत्वों के महत्व पर निर्भर करती है।

घ. जब असंवादी तत्वों एवं संवादी तत्वों का समानुपात बराबर होता है तो असंवादिता की मात्रा अधिकतम होती है और ऐसी परिस्थिति में इसका मान एक (1) बराबर होता है।

ङ. असंवादी तत्वों के बीच विभिन्नता की मात्रा बढ़ने से असंवादिता की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

असंवादिता की स्थिति व्यक्ति में तनाव, असुखद भाव एवं बेचैनी पैदा करता है | अत: व्यक्ति इसे दूर करने के लिए प्रयत्नशील हो जाता है | प्राय: वह अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन लाकर असंवादिता की परिस्थिति को दूर करता है।

क. किसी एक संज्ञानात्मक तत्व में परिवर्तन कर देने से परिस्थिति दूसरे संज्ञानात्मक तत्व के अनुरूप हो जाती है | फलस्वरूप असंवादिता अपने आप दूर हो जाता है | उदाहरणस्वरूप, यदि कोई व्यक्ति गुटखा खाता है और यह भी सोचता है कि इससे गले का कैंसर हो सकता है तो वह करने का निश्चय करके असंवादिता को दूर कर सकता है।

ख. संज्ञानात्मक तत्वों के बीच असंवादिता को दूर करने के लिए व्यक्ति सामाजिक वातावरण के कुछ पहलुओं में भी परिवर्तन ला सकता है | उदाहरणार्थ, गुटखा खाने से गले का कैंसर होता है, जैसे विचार से उत्पन्न असंवादिता को वह उन व्यक्तियों से सम्पर्क करके भी दूर कर सकता है जो उपयुक्त विचार के विरोध में एवं तथ्य देते हुए कहते हैं कि यह बिल्कुल ही गलत है क्योंकि बहुत से डॉक्टर भी तो गुटखा खाते हैं |

ग. असंवादिता की मात्रा को दूर करने के लिए परिस्थिति में व्यक्ति एक या एक से अधिक संज्ञानात्मक तत्व को जोड़ लेता है | जैसे- उपर्युक्त उदाहरण में अपनी असंवादिता को दूर

करने के लिए व्यक्ति एक नया संज्ञानात्मक तत्व यह जोड़ सकता है कि गुटखा खाने से ताजगी आ जाती है | अत: यह स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है या वह यह भी सोच सकता है कि सभी गुटखा खाने वालों को कैंसर नहीं हो जाता है।

फेस्टिंगर के असंवादिता सिद्धान्त के आधार पर समाज मनोवैज्ञानिकों ने निम्नांकित दो महत्वपूर्ण प्राक्कल्पनाओं का निर्माण किया है।

क. अगर किसी व्यक्ति को अपनी अभिवृत्ति के विपरीत कुछ कहने या करने के लिए बाध्य किया जाता है तो वह अपनी अभिवृत्ति में इस ढंग का परिवर्तन लाता है जो उसके अर्थात स्वयं द्वारा किये गये व्यवहार के अनुकूल होता है।

ख. अपनी अभिवृत्ति के विपरीत व्यवहार करने के लिए जितना अधिक दबाव डाला जाता है | अभिवृत्ति में परिवर्तन उतना ही कम होता है।

फेस्टिंगर के असंवादिता सिद्धान्त के **सकरात्मक पक्ष** निम्नलिखित हैं-

क. यह सिद्धान्त काफी व्यापक है तथा इसके द्वारा भूमिका-निर्वाह, उत्पन्न अनुपालन तथा निर्णय निर्माण आदि परिस्थितियों में व्यक्ति में होने वाले अभिवृत्ति की व्याख्या सफलतापूर्वक होती है।

ख. इस सिद्धान्त द्वारा अभिवृत्ति परिवर्तन के अलावा अभिवृत्ति निर्माण की भी व्याख्या होती है।

ग. इस सिद्धान्त द्वारा अभिवृत्ति की दिशा के अतिरिक्त अभिवृत्ति परिवर्तन की मात्रा का भी पता चलता है।

घ. अभिवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या करने के लिए यही एक ऐसा सिद्धानत है जिसका शोध-मूल्य सबसे अधिक है | 1978 में ग्रीनवाल्ड तथा रोनिस ने अपनी समीक्षा जिसका शीर्षक था 'संज्ञानात्मक असंवादिता के 20 वर्ष' में यह बतलाया है कि इस सिद्धान्त ने समाज मनोविज्ञान के भीतर एवं बाहर अत्यन्त ही उत्तेजक बल के रूप में कार्य किया है जिससे काफी शोध एवं प्रयोग करने का प्रोत्साहन मिला है।

नकारात्मक पक्ष-

क. फेस्टिंगर के सिद्धान्त का मूल आधार असंवादिता है | आलोचकों का मत है कि इस आधार को मापना संभव नहीं है | फेस्टिंगर ने भी अपने सिद्धान्त में असंवादिता को मापने का कोई तरीका नहीं बताया हैं | असंवादिता के कम या अधिक होने का निर्माण विभिन्न प्रयोगात्मक अवस्थाओं में उत्पन्न असंवादिता की मात्रा की तुलना करके किया जाता है | इसका कोई वस्तुनिष्ठ माप नहीं बताया गया है।

ख. चैपनिस तथा चैपनिस ने इस सिद्धान्त की कटु आलोचना करते हुए कहा है कि सिद्धान्त के समर्थन् में जितने भी प्रयोग किये गये हैं, उनमें से अधिकतर प्रयोग कार्य-प्रणाली अस्पष्टता से ग्रसित हैं | रोजेनवर्ग ने यह बतलाया है कि अधिकतम ऐसे प्रयोग में प्रयोज्य यह अनुभव करता है कि उसकी ईमानदारी एवं सत्यनिष्ठा की जाँच की जा रही है | फलत: उसे अभिवृति में परिवर्तन बताये जा रहे दिशा में कर देना चाहिए। अत: आलोचकों के अनुसार इन

प्रयोगों में प्रयोज्यों में अभिवृत्ति परिवर्तन असंवादिता कम करने के कारण नहीं बल्कि अपनी ईमानदारी एवं सत्यनिष्ठा की चुनौती के कारण करता है।

ग. अभी हाल में किये गये शोधों में जिसमें असंवादिता के शारीरिक पहलुओं पर बल डाला गया है, क्रोएल तथा कूपर ने यह बतलाया है कि संज्ञानात्मक तत्वों में परिवर्तन के अलावा अन्य विधि भी है जिनके सहारे असंवादिता को कम किया जा सकता है | इस खोज से फेस्टिंगर के मूल विचारों को ठेस पहुँचती हैं |

घ. असंवादिता सिद्धान्त की व्याख्या को बेम के आत्म-प्रत्यक्षण सिद्धान्त से भी काटने की कोशिश की गयी है | बेम के इस सिद्धान्त के अनुसार असंवादिता प्रयोग में व्यक्ति अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन असंवादिता से उत्पन्न आन्तरिक प्रेरणात्मक स्थिति के कारण नहीं करता है बल्कि अपने व्यवहारों का आत्म-मूल्यांकन करने के फलस्वरूप अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन लाता है | फेस्टिंगर तथा कार्लस्मिथ के प्रयोग में 20 डालर पाने वाले प्रयोज्य तो यह स्पष्ट रूप से समझते हैं कि उन्हें झूठ बोलने के लिए भरपूर इनाम मिल रहा है| अत: वास्तविक अभिवृत्ति में परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है | परन्तु 1 डॉलर पाने वाला प्रयोज्य यह सोचता है कि इतना कम इनाम के लिए वह झूठ क्यों बोलेगा । अत: सचमुच में जो वह अब कह रहा है उसी को सही मान ले। फलस्वरूप अभिवृत्ति में परिवर्तन अधिक होता है | इस तरह बेम ने यह साबित करने की कोशिश की है कि अभिवृत्ति परिवर्तन का कारण असंवादिता नहीं बल्कि आत्म-प्रत्यख अर्थात अपने व्यवहार को अपने ही ढंग से प्रत्यक्षण करना है।

ङ. इस सिद्धान्त का प्रतिपादन टेडेशकी, स्केन्कर तथा वोनोमा द्वारा किया गया। फेस्टिंगर के अनुसार व्यक्ति असंवादिता को दूर करके अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन करता है | दूसरे शब्दों में, असंगत संज्ञानात्मक तत्वों को संगत बनाकर अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन करता है | टेडेशकी एवं उनके सहयोगियों ने इसे स्वीकार नहीं किया है और कहा है कि संगति व्यक्ति का एक सामाजिक गुण है | वह हमेशा अपनी अभिवृत्ति एवं व्यवहार में संगति पसन्द करता है | क्योंकि संगत व्यवहार को समाज पुरस्कृत करता है तथा असंगत व्यवहार को समाज दण्डित करता है | परिणामस्वरूप, हम लोग व्यवहार के अनुकूल अभिवृत्ति में परिवर्तन किसी तरह की असंवादिता के कारण नहीं बल्कि अपने समाजीकरण के फलस्वरूप करते हैं |

च. हिमेलफार्व एवं एगली के अनुसार फेस्टिंगर का असंवादिता सिद्धान्त अभिवृत्ति परिवर्तन के सामाजिक सीखना सिद्धान्त एवं सामान्य बोध सिद्धान्त के दृष्टिकोण से प्रतिकूल एवं दोषपूर्ण दिखता है | फेस्टिंगर के अनुसार अभिवृत्ति की मात्रा तथा पुनर्बलन की मात्रा में नकारात्मक सम्बन्ध है जो स्पष्टत: सामाजिक सीखना सिद्धान्त एवं सामान्य बोध सिद्धान्त के दृष्टिकोण के विपरीत है | इन सिद्धान्तों के अनुसार पुनर्बलन की मात्रा अधिक होने से बताई गई दिशा में अभिवृत्ति परिवर्तन की मात्रा अधिक होनी चाहिए परन्तु असंवादिता सिद्धान्त में ऐसा नहीं होता है |

इन आलोचनाओं के बावजूद भी फेस्टिंगर का असंवादिता सिद्धान्त एक महत्वूर्ण सिद्धान्तों में से एक है | मैकगुरी के शब्दों में हम इस प्रकार कह सकते हैं, ''असंवादिता अध्ययनों के सम्पूर्ण सेट के लिए

विभिन्न प्रकार की वैकल्पिक व्याख्याओं की जरूरत है जबकि असंवादिता सिद्धान्त अकेले ही उनमें से अधिकतर की व्याख्या कर लेता है।''

रोजेनबर्ग का भावात्मक-संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्त-

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन रोजेनवर्ग द्वारा किया गया। इस सिद्धान्त में उन्होंने अभिवृत्ति के दो तत्त्व अर्थात संज्ञानात्मक तत्व तथा भावात्मक तत्व के बीच के संबंधों पर अधिक बल डाला है | वे यह जानना चाहते थे कि जब अभिवृत्ति में परिवर्तन होता है तो इन दोनों तत्वों का संबंध आपस में किस प्रकार का होता है?

रोजेनवर्ग ने अपने सिद्धान्त में भावात्मक तत्त्व को सामान्य ढंग से ही परिभाषित किया है परन्तु संज्ञानात्मक के सामान्य अर्थ को थोड़ा विस्तृत किया है | इनके अनुसार संज्ञानात्मक तत्त्व से मतलब अभिवृत्ति वस्तु के प्रति सिर्फ संज्ञान से नहीं बल्कि उस वस्तु तथा व्यक्ति के अन्य महत्वपूर्ण मूल्यों के बीच संबंधोंके बारे में एक विश्वास से भी होता है | भावात्मक तत्व से इनका तात्पर्य अभिवृत्ति वस्तु के प्रति व्यक्ति में उत्पन्न धनात्मक भाव यानी सुखद भाव या ऋणात्क भाव यानी दुखद भाव से होता है | रोजेनवर्ग का विचार था कि अभिवृत्ति वस्तु के प्रति व्यक्ति में जो भाव होता है, वह उस वस्तु के प्रति व्यक्ति में पाये जाने वाले विश्वास से सहसंबंधित होता है | दूसरे शब्दों में अभिवृत्ति के भावात्मक तत्त्व, संज्ञानात्मक तत्त्व से संबंधित होते हैं | इसका मतलब यह हुआ कि अगर अभिवृत्ति वस्तु के प्रति व्यक्ति में अधिक सुखद भाव हैं तो यह भाव इस विश्वास से संबंधित होता है कि इससे व्यक्ति को महत्वपूर्ण मूल्यों की प्राप्ति होगी। दूसरी तरफ यदि अभिवृत्ति वस्तु के प्रति व्यक्ति में अधिक दुखद भाव हैं तो यह इस विश्वास से सम्बन्धित होता है कि इससे व्यक्ति को महत्वपूर्ण मूल्यों की प्राप्ति में बाधा होगी।

रोजेनवर्ग ने संज्ञानात्मक तत्त्वों को मापने के लिए एक विशेष प्रविधि का भी वर्णन किया है जिसमें एक संज्ञानात्मक सूचांक ज्ञात किया जाता है जो यह बतलाता है कि व्यक्ति की अभिवृत्ति उसके मूल्यों से कहाँ तक संगत है | अगर किसी व्यक्ति में किसी अभिवृत्ति वस्तु के प्रति तीव्र धनात्मक भाव हैं तो ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति में संज्ञानात्मक सूचांक भी अधिक होगा। दूसरी तरफ यदि अभिवृत्ति वस्तु के प्रति तीव्र ऋणात्मक भाव है तो संज्ञानात्मक सूचांक भी कम होगा। जिन वस्तुओं को व्यक्ति अधिक महत्त्व देता है अर्थात जिन वस्तुओं का मूल्य व्यक्ति के लिए अधिक होता है, उसके प्रति व्यक्ति की अभिवृत्ति के भावात्मक तत्व तथा संज्ञानात्मक सूचांक के बीच सम्बन्ध अधिकतम होता है | रोजेनवर्ग के इस सिद्धान्त के **सकारात्मक पक्ष** निम्नलिखित है-

क. रोजेनवर्ग के इस सिद्धान्त द्वारा अभिवृत्ति के संगठन तथा विघटन दोनों की व्याख्या हो जाती है | इस सिद्धान्त के अनुसार जब तक अभिवृत्ति के संज्ञानात्मक तत्व तथा भावात्मक तत्व में संगति होती है, अभिवृत्ति संगठित होती है परन्तु जैसे ही भावात्मक तत्व तथा संज्ञानात्मक तत्व में असंगति होती है | अभिवृत्ति विघटित हो जाती है।

ख. रोजेनवर्ग ने अपने सिद्धान्त में वैयक्तिक मूल्य तंत्र को अधिक महत्वपूर्ण मानकर उसे अभिवृत्ति परिवर्तन से जोडने का सफल प्रयास किया है | प्रत्येक व्यक्ति का मूल्य तंत्र भावात्मक तत्व के परिवर्तन द्वारा प्रभावित होकर संज्ञानात्मक तत्व में भी परिवर्तन लाने में सफल होता है जिससे अभिवृत्ति परिवर्तन की सफल व्याख्या हो पाती है।

ग. रोजेनवर्ग के इस सिद्धान्त द्वारा अभिवृत्ति में हुए परितर्वन की मात्रा की भी व्याख्या हो पाती है | यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप से यह बतलाता है कि जिस हद तक भावात्मक तत्व में असंगति होगी, अभिवृत्ति में उस सीमा तक परिवर्तन होगा। इस तरह से इस सिद्धान्त को हाईडर के अभिवृत्ति परिवर्तन सिद्धान्त से कुछ श्रेष्ठ माना जा सकता है क्योंकि हाईडर के सिद्धान्त द्वारा अभिवृत्ति परिवर्तन की मात्रा की व्याख्या नहीं होती है ।

नकारात्मक पक्ष-

क. इस सिद्धान्त का सबसे प्रमुख दावा यह है कि भावात्मक तत्त्व में परिवर्तन होने से संज्ञानात्मक तत्त्व में परिवर्तन हो जाता है | इसे कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने खण्डित किया है और कहा है कि हमेशा ऐसा नहीं होता है | संज्ञानात्मक तत्व में पहले परिवर्तन होता है और बाद में भावात्मक तत्व में। दूसरे शब्दों में, संज्ञानात्मक तत्व में परिवर्तन भावात्मक तत्व में परिवर्तन का परिणाम नहीं बल्कि कारण होता है | कार्टराइट, स्मिथ आदि ने अपने प्रयोगात्मक तथ्यों के आधार पर इस आलोचना का पूर्णरूपेण समर्थन किया है ।

ख. इस सिद्धान्त में अभिवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या करने के लिए भावात्मक तत्त्व तथा संज्ञानात्मक तत्व की असंगति की मात्रा पर अधिक बल डाला गया है | परन्तु अभिवृत्ति का तीसरा तत्व अर्थात व्यवहारत्मक तत्व के बारे में कुछ नहीं कहा गया है | क्या अभिवृत्ति परितर्वन में व्यवहारत्मक तत्व की कोई भूमिका नहीं होती है? इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर हमें रोजेनवर्ग के सिद्धानत में नहीं मिलता है ।

ग. इस सिद्धान्त में अभिवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या करने के लिए भावात्मक तथा संज्ञानात्मक तत्व की संगति को ही मूल प्रेरक माना गया है | स्पष्टत: तब इस सिद्धान्त में अभिवृत्ति परिवर्तन के अन्य नियमों जैसे सीखना एवं पुनर्बलन नियमों की काफी उपेक्षा की गयी है।

इन नकारात्मक पहलुओं के बावजूद भी रोजेनवर्ग का सिद्धान्त संज्ञानात्मक संगति के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

1. सामंजस्य सिद्धान्त-

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन औसगुड तथा टाटेनवॉम द्वारा किया गया। इस सिद्धान्त द्वारा अभिवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या में मौलिक परिवर्तन के लिए व्यक्ति में दबाव उत्पन्न होता है | इसका मतलब यह हुआ कि जब अभिवृत्ति के संज्ञानात्मक तत्वों से असंगति उत्पन्न होती है तो इससे व्यक्ति में अभिवृत्ति परिवर्तन करके असंगति से उत्पन्न तनाव को दूर करने की प्रबलता बढ़ जाती है | सामंजस्य सिद्धान्त के अनुसार दो संज्ञानात्मक तत्व जो आपस में संबंधितहोते हैं, दोनों में परिवर्तन होता है ताकि सामंजस्य में वृद्धि हो सके तथा अभिवृत्ति परिवर्तन का स्वरूप स्थिर हो सके। इसे और भी स्पष्ट करते हुए इस प्रकार कहा जा सकता है- सिद्धान्त के अनुसार यदि दो अभिवृत्ति वस्तु जो संज्ञानात्मक तत्व के दो विभिन्न बिन्दु पर होकर भी आपस में संबंधितहोते हैं तो वह अभिवृत्ति कम दृढ़ होगी और उसमें परिवर्तन अधिक होगा तथा वह अभिवृत्ति जो अधिक दृढ़ होगी उसमें परितर्वन कम होगा। दूसरे शब्दो में, किसी नयी सूचना या विरोधी विचार या मत के होने से दृढ़ अभिवृत्ति में कम तथा कमजोर अभिवृत्ति में अधिक परिवर्तन होगा । इस परिवर्तन का परिणाम व्यक्ति के संज्ञानात्मक क्षेत्र में एक सामंजस्य स्थापित करना होता है | इस तरह से इस सिद्धान्त में संज्ञानात्मक परिवर्तन या संगतता में वृद्धि होती है |

6.4.2. सामाजिक अधिगम सिद्धान्त

अभिवृत्ति परिवर्तन के सामाजिक अधिगम सिद्धान्त का विकास क्लासिक अनुबन्धन तथा साधनात्मक अनुबन्धन के पुनर्बलन नियमों पर आधारित है |

1. क्लासिकी अनुबन्धन नियम का जन्म पैवलव के प्रयोगात्मक कार्यों के फलस्वरूप हुआ था। इस नियम के आधार पुनर्बलन था। इस नियम के अनुसार यदि एक स्वाभाविक उद्दीपक जैसे भोजन के साथ दूसरा तटस्थ उद्दीपक जैसे- घंटी की आवाज बार-बार उपस्थित किया जाता है तो कुछ प्रयास के बाद इस तटस्थ उद्दीपक के द्वारा ही स्वाभाविक अनुक्रिया जैसे लार निकलना जो सिर्फ स्वाभाविक उद्दीपक के प्रति होती थी, उत्पन्न होने लगती है | ऐसा इसलिए होता है कि क्योंकि साहचर्य के आधार पर तटस्थ उद्दीपन में स्वाभाविक उद्दीपक का गुण उत्पन्न हो जाता है | क्लासिकी अनुबन्धन के इस नियम का उपयेाग अभिवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या में स्टाटस तथा स्टाटस द्वारा किया गया। इन दोनों प्रयोगकर्ताओं ने अपने प्रयोग में सफलतापूर्वक क्लासिकी अनुबन्धन के नियमों द्वारा अभिवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या करने की कोशिश की है।
2. अभिवृत्ति परिवर्तन में क्लासिकी अनुबंधन के नियमों के अलावा साधनात्मक अनुबन्धन के नियमों को भी महत्वपूर्ण बतलाया गया है | साधनात्मक अनुबंधन का सार तत्व यह है कि मानव व्यवहार उसके परिणमों पर आधारित होता है | मानव किसी व्यवहार को करेगा या नहीं, यह इस बात पर आधारित होता है कि उस व्यवहार का परिणाम उस पर लाभप्रद है या दण्डात्मक है | यदि लाभप्रद होगा, तो व्यक्ति उस व्यवहार को बार-बार करना पसंद करता है और यदि वह दण्डात्मक होगा तो व्यक्ति उस व्यवहार को नहीं करना चाहेगा। थॉर्नडाइक एवं स्कीनर ने अनेकों प्रयोग करके यह दिखला दिया है कि प्राणी का व्यवहार उसके परिणामों पर आधारित होता है।

6.4.3. कार्यात्मक सिद्धान्त

कार्यात्मक सिद्धान्त भी अभिवृत्ति के प्रमुख सिद्धान्त में से है जिसकी बुनियाद मनोविश्लेषिक शोध है| कार्यात्मक सिद्धान्तों की एक महत्वपूर्ण पूर्वकल्पना यह है कि प्रत्येक अभिवृत्ति व्यक्ति के एक खास उद्देश्य को पूरा करती है | इस उद्देश्य या कार्य के अनुसार ही व्यक्ति अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन करता है | कार्यात्मक सिद्धान्त इस बात पर भी बल डालता है कि किसी अभिवृत्ति में परितर्वन करने के पहले व्यक्ति को यह पता होना चाहिए कि इस अभिवृत्ति का महत्व या कार्य उसके लिए क्या है? ऐसे तो कई मनोवैज्ञानिकों ने अभिवृत्ति के इस कार्यात्मक सिद्धान्त की व्याख्या की है परन्तु काज एवं स्टाटलैंड तथा काज द्वारा प्रस्तुत किया गया सिद्धान्त अन्य कार्यात्मक सिद्धान्त से अधिक श्रेष्ठ है | अत: इनके सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या निम्नांकित है-

1. काज ने अपने कार्यात्मक सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए कहा कि अभिवृत्ति का एक प्रेरणात्मक आधार होता है जिसके द्वारा अभिवृत्ति-परिवर्तन की व्याख्या संभव होती है | इस प्रेरणात्मक आधार को अभिवृत्ति के कार्यों के रूप में समझा जा सकता है | काज तथा स्टॉटलैण्ड के अनुसार अभिवृत्ति द्वारा निम्नांकित चार प्रमुख कार्य किये जाते हैं-

क. **साधनात्मक समाज उपयोगी कार्य-** इस तरह के कार्य से तात्पर्य यह होता है क व्यक्ति अपने व्यवहारों द्वारा पुरस्कार पाने की कोशिश करता है तथा दण्ड पाने की संभावना से

अपने आप को दूर करता है | फलस्वरूप वह उन वस्तुओं या व्यक्तियों के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति बना लेता है जिससे उसे पुरस्कार मिलता है तथा उन वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रतिकूल अभिवृत्ति विकसित कर लेता है जिससे उसे दण्ड मिलता है | अत: एक वस्तु या व्यक्ति के प्रति खास अभिवृत्ति विकसित कर कोई भी व्यक्ति पुरस्कार प्राप्त करता है या दण्ड से अपने आप को छुटकारा दिलाता है।

ख. **अहम रक्षात्मक कार्य-** एक खास अभिवृत्ति विकसित करके व्यक्ति अपने आप को वातावरण के दुखदायी तत्वों या अपने बारे में खरी सच्चाई से उत्पन्न दुखदायी अनुभवों से अपने आप को बचा लेता है | उदाहरणस्वरूप, बहुत कोशिश करने के बाद भी यदि किसी बच्चे को अपने परिवार से उचित छूट नहीं मिलती, तो इससे उत्पन्न दु:खद अनुभव से अपने आप को बचाने के लिए बच्चा अपने परिवार के प्रति अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन कर लेता है और अब वह यह कहता है ''उसका परिवार संकुचित दृष्टिकोण का है जहाँ उसका व्यक्तित्व निर्माण प्रभावित हो रहा है।''

ग. **मूल्य द्योतक कार्य-** जब व्यक्ति अपने व्यक्तिगत मूल्यों के अनुकूल अभिवृत्ति में परिवर्तन कर लेता है तो उसे सबसे अधिक संतुष्टि होती है | अत: अभिवृत्ति का एक कार्य यह भी है कि यह व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत मूल्यों के अनुकूल व्यवहार एवं मनोदशा में परिवर्तन करने के लिए प्रेरित करता है | उदाहरणार्थ, जिस व्यक्ति में धार्मिक मूल्य अधिक होता है उसमें मंदिर व मस्जिद में जाने, कुरान या गीता प्रवचन सुनने एवं सुनाने, पूजा कराने आदि की प्रेरणा अधिक होती है और इन कार्यों के प्रति वह एक अनुकूल अभिवृत्ति बनाये रखता है।

घ. **ज्ञान कार्य-** किसी वस्तु या घटना के प्रति एक उचित अभिवृत्ति विकसित कर व्यक्ति अपने भंडार को बढ़ाता है | यदि इस भण्डार के अनुभवों में कहीं कोई असंगति होती है, तो अनुभव के तत्त्वों में परिवर्तन कर व्यक्ति उसमें तुरंत ही सुधार कर लेता है।

काज एवं उनके सहयोगियों का कहना है कि अभिवृत्ति के अन्तिम दोनों कार्य अर्थात मूल्य द्योतक कार्य एवं ज्ञान कार्य द्वारा अभिवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या अभिवृत्ति के संगति सिद्धान्तों की व्याख्या के करीब-करीब समान ही है | मूल्य द्योतक कार्य व्यक्ति के मूल्य जो एक तरह का संज्ञानात्मक तत्त्व ही है तथा व्यवहारों के बीच संगति पर बल डालता है | यदि इन दोनों में संगति समाप्त हो जाती है तो व्यक्ति अपने अभिवृत्ति में परिवर्तन करके पुन: दोनों में संगति स्थापित कर लेता है | उसी तरह ज्ञान कार्य इस बात पर बल डालता है कि ज्ञान भंडार के अनुभवों के तत्त्वों में यदि असंगति पायी जाती है तो इससे व्यक्ति में दु:खद मनोस्थिति उत्पन्न होती है जिसे वह अपने अभिवृत्ति का ज्ञान कार्य में परिवर्तन करके दूर कर लेता है | अभिवृत्ति के ज्ञान कार्य की यह व्याख्या फेस्टिंगर द्वारा अपने संज्ञानात्मक असंवादिता सिद्धान्त में अभिवृत्ति परिवर्तन के लिए दी गयी व्याख्या के अनुकूल है।

परन्तु अभिवृत्ति के प्रथम दो कार्यों अर्थात साधनात्मक समाज उपयोगी कार्य तथा अहम् रक्षात्मक कार्य द्वारा अभिवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या कुछ नये ढंग से होती है | काज के अनुसार वैसी अभिवृत्ति जिसके द्वारा साधनात्मक समाज उपयोगी कार्य होता है, उसे परिवर्तित करने के लिए दो परिस्थितियों में से एक का होना अनिवार्य है-

1. अभिवृत्ति और उसके संबंधित क्रियाओं से व्यक्ति को अब उतना संतोष नहीं मिलता हो जितना कि पहले मिलता था।

2. व्यक्ति का आकांक्षा स्तर पहले से ऊँचा हो गया हो।

इन दोनों में किसी एक परिस्थिति के उत्पन्न होने से व्यक्ति अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन कर लेगा। अगर अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन नहीं लाता है तो उसे अभिवृत्ति से सम्बन्धित क्रिया करने के बाद मिलने वाले पुरस्कार से उसे कोई खास सन्तोष नहीं होगा।

अहम् रक्षात्मक अभिवृत्ति की उत्पत्ति उन परिस्थितियों में होती है जहाँ व्यक्ति को किसी प्रकार का धमकी भरा अनुभव प्राप्त होते हैं | कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि अन्य तीन तरह की अभिवृत्तियों में अर्थात (समायोजी अभिवृत्ति, मूल्य-द्योतक अभिवृत्ति तथा ज्ञान-कार्य सम्बन्धित अभिवृत्तियों में) परिवर्तन लाने के लिए जो विश्वासोत्पादक संचार किये जाते हैं, उसका प्रभाव अहम् रक्षात्मक अभिवृत्ति में परिवर्तन पर उतना अधिक नहीं पड़ता है | इसका कारण स्पष्ट है- जब व्यक्ति वातावरण में मिलने वाली धमकी के फलस्वरूप अहम-रक्षात्मक अभिवृत्ति विकसित कर लेता है तो वह सामान्यत: किसी भी तरह के संचार के फलस्वरूप या तर्क-वितर्क में आकर उसमें परिवर्तन नहीं करना चाहता है क्योंकि ऐसा करने से उसे पुन: धमकी भरा अनुभव का सामना करना पड़ सकता है | अत: कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों के अनुसार काज द्वारा बतलायी गयी चार तरह की अभिवृत्तियों में से तीन की अभिवृत्तियों अर्थात समाज उपयोगी अभिवृत्ति, मूल्य द्योतक अभिवृत्ति तथा ज्ञान-कार्य अभिवृति में तो परिवर्तन लाना सम्भव है परन्तु अहम् रक्षात्मक अभिवृत्ति में परिवर्तन लाना सम्भव नहीं है।

सकारात्मक पक्ष-

क इस सिद्धान्त में अभिवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या अभिवृत्ति के प्रेरणात्मक आधारों के रूप में की गयी है जो अपने आप में एक नवीनतम कदम है।

ख इस सिद्धान्त में अभिवृत्ति परिवर्तन विशेषकर अहम-रक्षात्मक अभिवृत्ति में परिवर्तन लाने के लिए कुछ विशेष शर्तों का भी वर्णन किया गया है जिस पर अन्य सिद्धान्तकारों का ध्यान अब तक नहीं गया था।

नकारात्मक पक्ष-

क इस सिद्धान्त में मौलिकता की कमी है | मूल्य-द्योतक तथा ज्ञान-कार्य सम्बन्धी अभिवृत्ति में परिवर्तन की जो व्याख्या की गयी वह फेस्टिंगर के संज्ञानात्मक असंवादिता के सिद्धान्त से एक 'उधार ली गयी व्याख्या' के समान है।

ख इस सिद्धान्त को प्रयोगात्मक समर्थन अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा काफी कम है | फलत: इस सिद्धान्त के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं उन्हें कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा तत्परता के साथ स्वीकार नहीं किया गया है।

इन नकारात्मक पहलुओं के बावजूद इन सिद्धान्त की उपयोगिता काफी अधिक है।

6.4.4. विविध सिद्धान्त

1 . केलमैन का त्रिप्रक्रिया सिद्धान्त-

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन केलमैन द्वारा किया गया। केलमैन ने इस सिद्धान्त में उन प्रक्रियाओं का वर्णन किया है जिनमें अभिवृत्ति में परिवर्तन तेजी से होता है | इतना ही नहीं, इन्होंने उन कारकों का भी वर्णन किया है जिनसे अभिवृत्ति में स्थायी परिवर्तन तथा अस्थायी परिवर्तन आते हैं | इन्होंने अभिवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या को सामाजिक प्रभाव की तीन मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के रूप में किया है | वे तीन प्रक्रियाएँ हैं- अनुपालन, आत्मीकरण तथा आन्तरीकरण। अभिवृत्ति परिवर्तन में इस तीनों तरह की प्रक्रियाओं की भूमिका इस प्रकार हैं-

क. **अनुपालन-** अनुपालन एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति में अभिवृत्ति परिवर्तन होता है | जब व्यक्ति किसी समूह या अन्य व्यक्ति के विचार या भाव के बारे में मन से असहमत होने पर भी दण्ड के भय के कारण या किसी तरह के पुरस्कार पाने की लालच में आकर इसे स्वीकार कर लेता है तो इसे अनुपालन की संज्ञा दी जाती है | केलमैन के अनुसार, अनुपालन की प्रक्रिया उस समय स्पष्ट रूप से होती है जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति या समूह के प्रभाव को इसलिए स्वीकार कर लेता है क्योंकि वह उनसे एक अनुकूल प्रतिक्रिया की उम्मीद करता है | अनुपालन की स्थिति में व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार प्रभाव डालने वाले व्यक्ति के व्यवहार एवं विचार के समरूप बाहर से दिखाई देता है परन्तु भीतर से ऐसी समरूता नहीं होती है | अत: अनुपालन के कारण अभिवृत्ति में जो परिवर्तन होता है, वह अस्थायी होता है।

ख. **आत्मीकरण-** आत्मीकरण में एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या समूह के व्यवहारों को किसी बाहरी दबाव जैसे डर या किसी तरह के लोभ आदि के कारण नहीं बल्कि उसे अपने व्यक्तित्व का ही एक अंश मानकर स्वेच्छा से स्वीकार कर लेता है | केलमैन के अनुसार आत्मीकरण स्पष्ट रूप से उस समय स्थापित होते दीख पड़ता है जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के व्यवहारों को इसलिए स्वीकार कर लेता है क्योंकि वह व्यवहार उस व्यक्ति या समूह के साथ एक संतोषजनक आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करने में मदद करता है | आत्मीकरण के कई रूप होते हैं | पहला रूप तो वह होता है जहाँ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति (जो प्रभाव डालने वाला व्यक्ति होता है) के बिल्कुल ही समान होना पसंद करता है | बच्चों में इस रूप की अधिकता होती है क्योंकि वे प्राय: अपने माता-पिता के व्यवहारों का हू-ब-हू नकल उतारने की कोशिश करते हैं |

आत्मीकरण अनुपालना से निम्नांकित अर्थों में भिन्न होता है-

क. अनुपालन में व्यक्ति पर बाहरी दबाव पड़ता है परन्तु आत्मीकरण में कोई ऐसा दबाव व्यक्ति पर नहीं पड़ता है।

ख. अनुपालन में व्यक्ति का विचार एवं मत बाहर से कुछ और भीतर से कुछ और होता है | दूसरे शब्दों में, इसमें व्यक्ति के निजी मत तथा आम मत में समरूपता नहीं होती है जबकि आत्मीकरण में इन दोनों तरह के मतों में समरूपता होती है।

ग. अनुपालन में व्यक्ति प्रभाव डालने वाले व्यक्ति को अपना नहीं समझता है बल्कि इसे अपने ही भिन्न ही समझता है परन्तु आत्मीकरण में व्यक्ति प्रभाव डालने वाले व्यक्ति को अपना लेता है।

आत्मीकरण में चूँकि व्यक्ति स्वेच्छा से दूसरे के व्यवहारों एवं विचारों को अपना लेता है इसलिए इस प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति की अभिवृत्ति में तुरंत परिवर्तन हो जाता है | परन्तु अभिवृत्ति में ऐसा परिवर्तन भी स्थायी नहीं होता है और वह तब तक ही बना रहता है जब तक कि व्यक्ति का सम्बन्ध प्रभाव डालने वाले व्यक्ति के साथ बना हुआ है | सम्बन्ध बिगड़ते ही व्यक्ति की अभिवृत्ति पुन: अपनी पुरानी जगह पर आ जाती है।

ग. आन्तरीकरण- आन्तरीकरण में व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों को स्वेच्छा से इसलिए स्वीकार कर लेता है क्योंकि वह व्यवहार उसके व्यक्तिगत मूल्य तंत्र के उम्मीदों के अनुरूप होता है | केलमैन के अनुसार आन्तरीकरण व्यक्ति में वहाँ स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है जहाँ दूसरे व्यक्ति का व्यवहार अपने मूल्य-तंत्र द्वारा उम्मीद किये गये व्यवहारों के अनुरूप होता है | चूँकि यहाँ स्वीकार किया जाने वाले व्यवहार व्यक्ति के मूल्य तंत्र के अनुकूल होता है, अत: ऐसे व्यवहार के अनुसार अभिवृत्ति में परिवर्तन करने में व्यक्ति काफी संतोष एवं गर्व महसूस करता है।

सकारात्मक पक्ष-

क. इस सिद्धान्त का सबसे बड़ा गुण यह है कि अभिवृत्ति में होने वाले स्थायी एवं अस्थायी दोनों तरह के परिवर्तनों की व्याख्या इसके द्वारा होती है | अनुपालन एवं आत्मीकरण की प्रक्रिया द्वारा अस्थायी परिवर्तन तथा आन्तरीकरण की प्रक्रिया द्वारा स्थायी परिवर्तन की व्याख्या होती है।

ख. इस सिद्धान्त में निश्चित रूप से उदारता का गुण है क्योंकि इस सिद्धान्त में केलमैन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अभिवृत्ति परिवर्तन में कई कारकों का योगदान होता है | इस तरह से यह सिद्धान्त उन सिद्धान्तों से श्रेष्ठ है जिसमें अभिवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या एक ही कारक के रूप में की गयी है।

ग. कुछ हद तक केलमैन का सिद्धान्त सीखना के नियम को भी अपने में सम्मिलित कर अभिवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या करने में सक्षम है।

नकारात्मक पक्ष-

क इस सिद्धान्त में इस बात की व्याख्या नहीं हो पाती है जब व्यक्ति को अतिरिक्त सूचनाएँ दी जाती है तो उससे अभिवृत्ति परिवर्तन क्यों हो जाता है | इस सिद्धान्त द्वारा यह भी पता नहीं चलता है कि विश्वसोत्पादक संचार द्वारा अभिवृत्ति में परिवर्तन क्यों हो जाता है।

ख मेयर्स के अनुसर केलमैन के त्रिप्रक्रिया सिद्धान्त को अभिवृत्ति परिवर्तन का सिद्धान्त मानना अधिक वैज्ञानिक नहीं दिखाई पड़ता है | इसका कहना है कि इसे यदि सामाजिक प्रभाव का सिद्धान्त कहा जाये तो वह अधिक युक्तिसंगत होगा।

आत्मसात्करण-विरोध सिद्धान्त-

आत्मसात्करण-विरोध सिद्धान्त के प्रतिपादन का आधार शेरीफ तथा होभलैंड द्वारा समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र में किए गए शोध है | इन दोनों मनोवैज्ञानियों ने थस्टन द्वारा अभिवृत्ति मापने के लिए विकसित मापनी से संबंधित उस पूर्वकल्पना को चुनौती दिया जिसमें यह कहा गया था कि निर्णायकों की अपनी अभिवृत्ति का प्रभाव अभिवृत्ति कथनों को विधि के विभिन्न श्रेणियों या अंतरालों में छाँटने पर नहीं पड़ता है | शेरीफ तथा होभलैंड ने इसके विपरीत विचार व्यक्त किये और उसे साबित करने की कोशिश की। इसके अलावा शेरीफ ने निर्णय मापनी जिनका उपयोग स्वत: चालित प्रभाव प्रयोग में किया गया था, में भी कार्य करके इस सिद्धान्त को विकसित करने का उत्तम आधार तैयार किया।

आत्मसात्करण-विरोध के सिद्धान्त के अनुसार अभिवृत्ति परिवर्तन के उद्देश्य से जब भी व्यक्ति को कोई सूचना दी जाती है तो इसकी प्रभावशीलता इस बात पर आधारित होती है कि व्यक्ति ने उस सूचना को किस तरह से या किस संदर्भ में स्वीकार किया है | इस प्रक्रिया में दो स्तरीय तथ्य होते हैं-

1. सूचना प्राप्तिकर्ता संबंद्ध विषय के बारे में दी गयी सूचना का मूल्यांकन उसके बारे में अपने पास पहले से मौजूद रहे तथ्यों के प्रकाश में करता है।

2. इस मूल्यांकन के आधार पर सूचना प्राप्तिकर्ता उस सूचना द्वारा प्रस्तावित तथ्य के प्रकाश में अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन करके उसे आत्मसात् कर लेगा या वह उस सूचना की अस्वीकृत कर देगा तथा अपनी अभिवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं करेगा।

   (अ) स्वीकरण का विस्तार- इस श्रेणी में उन सूचनाओं को रखा जाता है जो सूचना प्राप्तिकर्ता के मन में पहले से मौजूद तथ्यों के अनुकूल होती हैं और उसके प्रकाश में व्यक्ति अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन करता है।

   (ब) अवचनबद्धता का विस्तार- इस श्रेणी में वैसी सूचनाओं को रखा जाता है जो सूचना प्राप्तिकर्ता के पास मौजूद तथ्यों से भिन्न होता है जिसके कारण व्यक्ति उसको ठीक ढंग से आत्मसात तो नहीं कर पाता है परन्तु साथ ही साथ उसे अस्वीकृत भी नहीं कर पाता है।

   (स) अस्वीकरण का विस्तार- इस श्रेणी में उन सूचनाओं को रखा जाता है जो सूचना प्राप्तिकर्ता के पास मौजूद तथ्यों से बिल्कुल मेल नहीं खाते हैं | फलस्वरूप, वह उसे अस्वीकृत कर देता है और परिणामत: ऐसी सूचनाओं से सूचना प्राप्तिकर्ता की अभिवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

आत्मसात्करण-विरोध सिद्धान्त के अनुसार अभिवृत्ति परिवर्तन के बारे में पूर्वकथन करने के लिए यह तय किया जाता है कि सूचना प्राप्तिकर्ता की वर्तमान स्थिति या वर्तमान अभिवृत्ति जिसे आन्तरिक स्थिरण बिन्दु कहा जाता है तथा दी गई सूचना से उत्पन्न अभिवृत्ति में कितना अन्तर है | जब कोई सूचना स्वीकारण के विस्तार के क्षेत्र में भीतर आती है, तो स्पष्टत: अभिवृत्ति में परिवर्तन होता है परन्तु यदि कोई सूचना स्वीकरण के इस विस्तार से बाहर खासकर अस्वीकरण के विस्तार के क्षेत्र में आती है तो उससे अभिवृत्ति में परिवर्तन नहीं होता है बल्कि यह भी देखा गया है कि ऐसी सूचना जो अस्वीकरण के विस्तार के क्षेत्र में होती है, से कभी-कभी सूचना प्राप्तकर्ता की प्रारंभिक अभिवृत्ति और भी दृढ़ या मजबूत हो जाती है।

इस सिद्धान्त के अनुसार जब कोई प्रभावोत्पादक सूचना स्वीकरण के विस्तार के क्षेत्र में होता है तो जैसे-जैसे सूचना प्राप्तिकर्ता की प्रारंभिक स्थिति या अभिवृत्ति तथा दी गई सूचना से उत्पन्न अभिवृत्ति की स्थिति में अन्तर बढ़ता जाता है अभिवृत्ति परिवर्तन की मात्रा भी बढ़ती जाती है | यदि सूचना स्वीकरण के विस्तार से बाहर जाता है जैसे अवचनबद्धता विस्तार के क्षेत्र में चला जाता है तो उससे अभिवृत्ति परिवर्तन में कमी होती है तथा सूचना अस्वीकरण के विस्तार के क्षेत्र में होता है तो अभिवृत्ति परिवर्तन शून्य हो जाता है।

6.5 सारांश

अभिवृत्ति परिवर्तन के विभिन्न सिद्धान्तों के सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों का अध्ययन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समाज मनोवैज्ञानिकों की अभिवृत्ति परिवर्तन की सैद्धान्तिक व्याख्या करने में अभी पूर्ण सफलता नहीं मिल पायी है | बहुत से प्रतियोगी सिद्धान्तों का होना अपने आप में इस बात का द्योतक हैं कि अभिवृत्ति परितर्वन से सम्बन्धित ऐसी बहुत-सी समस्याएँ हैं जिनका समाधान करना बाकी है | सौभाग्य की बात यह है कि समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा अभिवृत्ति परिवर्तन की व्याख्या करने के लिए बहुत सारे प्रयोगशाला प्रयोग एवं प्रयोगशाला के बाहर भी प्रयोग एवं शोध किये जा रहे हैं जिनसे यह उम्मीद की जात रही है कि कुछ इस ढंग के सिद्धान्त अवश्य ही विकसित हो सकेगा। जिसके द्वारा अभिवृत्ति परिवर्तन की एक ऐसी सम्पूर्ण व्याख्या हो पायेगी।

6.6 कठिन शब्द

- **संगत परिवर्तन** - अभिवृत्ति में संगत परिवर्तन वैसे परिवर्तनों को कहा जाता है जिसमें (अभिवृत्ति में) परिवर्तन पहले की ही दिशा में होती है |
- **असंगत परिवर्तन** - असंगत परिवर्तन वैसे परिवर्तन को कहा जाता है जिसमें अभिवृत्ति अनुकूल से बदलकर प्रतिकूल या प्रतिकूल से बदलकर अनुकूल हो जाती है |

6.7 निबंधात्मक प्रश्न

1. अभिवृत्ति परिवर्तन में संज्ञानात्मक संगति सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए ?
2. अधिगम पर आधारित अभिवृत्ति परिवर्तन के सिद्धान्त बताइये ?
3. अभिवृत्ति परिवर्तन के बाधक तत्वों का विश्लेषण कीजिए ?

6.8 संदर्भ सूची

- सौरेन्सन, हर्बट, ''साइक्लोजी इन ऐजुकेशन, नई दिल्ली, टाटा मेग्राहिल (1977)
- कुप्पास्वामी, बी 'एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल साइक्लोजी' बाम्बे, एशिया पब्लिकेशन हाऊस, 1971
- भार्गव, विवेक, शैक्षिक मनोविज्ञान, राखी प्रकाशन, आगरा, 2007

- सिंह, अरूण कुमार, समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली 1991
- बोरिंग, ई.सी., लैंगफील्ड, एच. एस, एवं बील्ड एच.पी. फाऊण्डेशन ऑफ साइक्लोजी, न्यूयॉर्क, जॉन बिली, 1961
- ट्रेवर्स, रॉबर्ट, एम. डब्ल्यू., एजुकेशनल साइक्लोजी, न्यूयॉर्क, मैकमिलन, 1973
- सिंह, रामपाल, सिंह, एस.डी. एवं शर्मा देवदत्त, नवीन व्यावहारिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक, मन्दिर, आगरा, 2005
- अस्थाना विपिन, अस्थाना श्वेता, मनोविज्ञान एवं शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, विनोद पुस्तक मन्दिर, 2005

इकाई - 7

पूर्वाग्रह का अर्थ और विशेषता, पूर्वाग्रह के प्रकार

Meaning & Chacteristics of Prejudice, Types of Prejudice

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 पूर्वाग्रह का अर्थ और विशेषता, पूर्वाग्रह के प्रकार

7.4 पूर्वाग्रह का अर्थ

7.5 पूर्वाग्रह की परिभाषा

7.6 पूर्वाग्रह का विकास

7.7 पूर्वाग्रह की विशेषताएं

7.8 पूर्वाग्रह के प्रकार

7.9 सारांश

7.10 कठिन शब्दार्थ

7.11 अभ्यास प्रश्न

7.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई पूर्वाग्रह, परिभाषा, इसके उद्देश्य, पूर्वाग्रह का विकास, पूर्वाग्रह की विशेषताएं, पूर्वाग्रह के प्रकार का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- पूर्वाग्रह का अर्थ बता सकेंगे एवं परिभाषित कर सकेंगे।
- पूर्वाग्रह का उद्देश्य बता सकेंगे।
- पूर्वाग्रह का विकास कैसे होता है जान सकेंगे |
- पूर्वाग्रह के प्रकार भी बता सकेंगे।

7.3 पूर्वाग्रह का अर्थ और विशेषता, पूर्वाग्रह के प्रकार

व्यक्ति के समाजीकरण के लिए हम उसमे न केवल दूसरे व्यक्तियों, समूहों और समूची मानवता के प्रति स्वीकारात्मक संबंध स्थापित करने की प्रवृत्तियों का विकास करते हैं बल्कि हम इसमें दूसरे व्यक्तियों और समूहों के प्रति शत्रुवत प्रवृत्तियों की भी सवंर्धित करते हैं | व्यक्ति जिस समाज/समूह में पलता है वही उसमें दूसरे समूहों के प्रति शत्रुपत अभिवृत्तियों निर्माण करने का उत्तरदायी है | यह एक ऐसा तथ्य है जिसे गत 3 या 4 दशकों के किए गए अनेक अध्ययनों ने स्पष्ट कर दिया है | समूह व्यक्तियों को पूर्वाग्रही बनाता है | यह उन्हें इस तरह से पूर्वाग्रही बनता है कि लोग यह नहीं समझते कि उन्हें भी पूर्वाग्रही बनाया गया है | वे इसे एक सामान्य व्यवहार की भांति समझते हैं | यह समाजीकरण का एक ऐसा आश्चर्यजनक लक्षण है कि इस प्रक्रिया के द्वारा किसी भी विचार, भावना या किसी कलाप को इस प्रकार बनाया जा सकता है जैसे कि वह पूर्णतया सामान्य हो और स्वभाविक भी हो।

युद्धप्रिय समूह अपने बच्चों को ऐसे वातावरण में पालते हैं जिसमें उन्हें यह सिखाया जाता है कि शत्रु से घृणा करना, शत्रुओं को धोखा देना तथा शत्रु को नष्ट करना एक सामान्य समाज अनुमोदित प्रक्रिया है, जो व्यक्ति स्वयं को सामाजिक प्रतिमान के अनुरूप नहीं ढालता और शत्रु से घृणा नहीं करता, वह सामाजिक पथभ्रष्ट के रूप मे देखा जाता है तथा समूह की सुरक्षा के लिये खतरा समझा जाता है | उसे दण्ड दिया जा सकता है | यह बात पूर्णतया अवश्य ध्यान में रखने की है कि समूह बच्चों को प्यार करने के साथ साथ दूसरों से घृणा करना भी सीखाता है | अर्थात प्रत्येक व्यक्ति जिस प्रकार दूसरे लोगों से प्रेम करना सीखता है उसी प्रकार उनसे घृणा करना भी सीखता है | इसलिए यह बात समूह तथा व्यक्ति पर भी निर्भर है कि वे दूसरे व्यक्तियों तथा समूहों से प्रेम करना सीखें, घृणा करना न सीखें।

7.4 पूर्वाग्रह का अर्थ

पूर्वाग्रह शब्द अंग्रेजी (prejudice) की उत्पत्ति लैटिन भाषा की (prejudiciu,) संज्ञा से हुई है जिसका अर्थ होता है - वह निर्णय जो पूर्व निश्चियों पर आधारित है | अंग्रेजी भाषा में इस शब्द का अर्थ पूर्व निर्णय किया जाता है, अर्थात वह निर्णय जो तथ्यों की अपेक्षित परीक्षा से पूर्व कर लिया गया हो यानि कि एक अपरिपक्व या जल्दी से लिया गया निर्णय आज पूर्वाग्रह का अर्थ इस प्रकार किया जाता है कि यह केवल एक अपरिपक्व निर्णय ही नहीं बल्कि इसमें प्रतिकूल अभिवृति भी होती है।

7.5 पूर्वाग्रह की परिभाषा

समाज मनोविज्ञान में पूर्वाग्रह की परिभाषा अनेक विद्वानों द्वारा दी गई है | यंग के अनुसार पूर्वाग्रह एक व्यक्ति की अन्य व्यक्ति के प्रति पूर्व निर्धारित अभिवृत्तियों या विचार है जो कि सांस्कृतिक मूल्यों और अभिवृत्तियों पर आधारित होते है | इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि पूर्वाग्रह पूर्व निर्धारित अभिवृत्ति या विचार है, यह अभिवृत्ति या विचार सांस्कृतिक मूल्यों तथा अभिवृत्तियों पर ही निर्भर रहता है | यंग पूर्वाग्रह के निर्माण को इस प्रकार व्यक्त करते हैं | पूर्वाग्रह रूढि किंवदन्तियों एवं पौराणिक कथाओं इत्यादि का मिश्रण होता है जिसमें कि एक समूह के बल या प्रतीकों का प्रयोग

एक व्यक्ति या समूह जोकि एक समष्टि समझा जाता है उसके वर्गीकरण विशेषीकरण एवं परिभाषित करने के लिए किया जाता है।

Predetermined attitude or idea of a person towards another based upon collateralized values and attitueds - K. Yong. A Handbook of psychology.

सेकर्ड तथा वैकमैन (Secord and Backman 1974) के अनुसार ''पूर्वाग्रह एक अभिवृत्ति है जो व्यक्ति को किसी समूह या उसके सदस्यों के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल ढंगों से सोचने में प्रत्यक्षण करने, अनुभव करने तथा क्रिया करने के लिए पहले से तत्पर बना देती है।

फेलुमेन (Feldman, 1985)के अनुसार, 'किसी समूह के सदस्यों के प्रति ऐसी स्वीकारात्मक निर्णय या मूल्यांकन को पूर्वाग्रह कहा जाता है जो मुख्य की सदस्यता पर आधारित होता है न कि सदस्यों के विशेष गुणों पर।

मेयर (Mayer) के अनुसार, ''पूर्वाग्रह किसी समूह एवं उसके सदस्यों के प्रति एक अनुचित नकारात्मक अभिवृत्ति को कहा जाता है।

पूर्वाग्रह की ऊपर दी गयी परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समाज मनोवैज्ञानिकों ने पूर्वाग्रह को एक तरफ की अभिवृत्ति माना है। परन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसे स्वीकारात्मक अभिवृत्ति माना है तथा कुछ लोगों ने इसे नकारात्मक अभिवृत्ति माना है | जैसे बेरान तथा बर्न और मेयर्स ने इसे सिर्फ नकारात्मक अभिवृत्ति के अलावा स्वीकारात्मक अभवृत्ति भी माना है | नकारात्मक अभिवृत्ति के रूप में पूर्वाग्रह होने पर व्यक्ति दूसरे समूह के सदस्यों के प्रति घृणा दिखलाता है एवं विवेकहीन विचारों को व्यक्त करता है | उदाहरणार्थ - भारतीय समाज में हरिजन के प्रति उच्च जाति के लोग प्राय: नकारात्मक रूप से पूर्वाग्रहित होते हैं | यही कारण है कि वे प्राय: हरिजनों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं तथा उसके प्रति अधिक भेदभाव व्यक्त करते हैं।

1. Prejudice is an attitude that predisposes a person to thin, perceive. Feel and act in favourable and unfavourable ways towards a group or its individual members."
2. Prejudice refers to positive or negative evaluation or judgment of members of a particular group which are based primarily on the fact of their membership ion the group and not necessarily because of parther characteristics of individual members.
3. Prejudice an unjustifiable negative attitude towards a group towards its individual members.

पूर्वाग्रह का अधिकतर प्रयोग इस नकारात्मक अभिवृत्ति के ही संदर्भ में किया जाता है।

पूर्वाग्रह चाहे स्वीकारात्मक हो या नकारात्मक, यह एक अभिवृति है ओर अभिवृत्ति के तीनों संघटक अर्थात संज्ञानात्मक संघटन, भावनात्मक संघटन तथा व्यवहारात्मक संघटन मौजूद होते है | पूर्वाग्रह की स्थिति में संज्ञानात्मक संघटन से तात्पर्य किसी व्यक्तियों, वस्तु के प्रति उन विचारों एवं विश्वासों से होता है जो एक तरफा तथा अनुचित होते है | जैसे उच्च जातियों का यह विचार है कि हरिजन गन्दे, अछूत होते है, संज्ञानात्मक संघटन का उदाहरण है | पूर्वाग्रह के इस विवेकहीन पक्ष की

अभिव्यक्ति प्राय: स्थिर कुरीतियों के रूप में व्यक्त की जाती है | संक्षेप में स्थिर कुरीतियों से तात्पर्य किसी समूह के व्यक्तियों के बारे में विश्वासों एवं विचरों का एक दृढ एवं अतसरलीकृत सेट से ही होता है | पूर्वाग्रह के भावनात्मक संघटन में दूसरे समूह के सदस्यों को नकारात्मक मूल्यांकन किया जाता है जिसमें प्राय: घृणा, डर, एवं विद्वेष का भाव होता है | उच्च जातियों द्वारा हरिजनों का घृणा एवं विद्वेष दिखलाना इस भावात्मक संघटन का उदाहरण है | पूर्वाग्रह का व्यवहारात्मक संघटन में व्यक्ति दूसरे समूह के सदस्यों के प्रति खुल कर विभेद, अलगाव तथा अन्य दूसरे तरह के अप्रिय व्यवहार करता है | उच्च जातियों के लोगों द्वारा विशेषकर गांव में हरिजनों को अपने कुओं से पानी नहीं लेने देना, गांव से अलग झुग्गी झोपड़ी में रहने के लिए उन्हें बाध्य करना, पवित्र स्थानों पमें प्रवेश नहीं करने देना आदि पूर्वाग्रह के व्यवहारात्मक संघटक के उदाहरण है।

अत: स्पष्ट है कि पूर्वाग्रह के अर्थ के बारे में समाज मनोवैज्ञानिकों में विभिन्नता होने के बावजूद भी इसका प्रयोग एक सामान्य ढंग से किया गया है | इस प्रकार पूर्वाग्रह के बारे में मूलत: निम्नांकित तथ्य मिलते हैं -

1- पूर्वाग्रह एक तरह की अभिवृति है जो तथ्यों पर आधारित नहीं होती है।

2- पूर्वाग्रह को कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने सिर्फ नकारात्मक अभिवृत्ति के रूप में परिभाषित किया है परन्तु कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने इसे स्वीकारात्मक अभिवृति के रूप में भी परिभाषित किया है | इस मतभेद के बावजूद भी अधिकतर समाज मनोवैज्ञानिकों ने इसका प्रयोग नकारात्मक अभिवृत्ति के रूप में ही किया है।

3- पूर्वाग्रह चाहे स्वीकारात्मक हो या नकारात्मक इसमें अभिवृति को तीनों संघटन अर्थात संज्ञानात्मक संघटन, भावात्मक संघटक तथा व्यवहारात्मक संघटक होते हैं।

4- पूर्वाग्रह के संज्ञानात्मक संघटन की अभिव्यक्ति रूढियुक्तियेां के रूप में होती है जो एक तरह का अति सामान्यीकरण है।

5- पूर्वाग्रह के संज्ञानात्मक या भावात्मक संघटक के रूप में व्यक्ति में घृणा एवं विद्वेष की भावना होती है।

6- पूर्वाग्रह के व्यवहारात्मक संघटक के रूप में व्यक्ति पूर्वाग्रहित समूहों या व्यक्तियों के प्रति विभेद, अलगाव तथा अन्य अप्रिय व्यवहारों को दिखाता है।

7- इस तरह से पूर्वाग्रह का प्रभाव व्यक्ति के चिन्तन, प्रत्यक्षण, भाव एवं व्यवहार सभी पर पड़ता है।

7.6 पूर्वाग्रह का विकास

पहले यह समझा जाता था कि एक समूह के सदस्यों में दूसरे समूह के सदस्यों के प्रति कोई विशिष्ट विरोध की भावना पाई जाती है | जब कभी हम किसी लक्षण की किसी समूह या विशेष के समस्त सदस्यो में व्यापक रूप से विद्यमान पाते हैं तो हामरी प्रवृत्ति उस समूह को कुछ स्वाभाविक की भांति देखने की होती है | परिणामत: किसी समूह में पाए जाने वाले किसीर गुण की व्यापक उपस्थिति के लिए कुछ अन्य कारण भी हो सकते है | यह सत्य है कि मानव प्राणी भी दूसरों से प्रेम करने का अभिलाषी है और वह जब यह अनुभव करता है कि उसे कुछ उदेश्यों की प्राप्ति करने के प्रयत्नों से

रोका जा रहा है, तो वह लड़ने के लिए भी तैयार हो जाता है। इस दृष्टि से यह कथन सत्य है कि मानव प्राणीयों में विरोधी बनने की एक मूल प्रवृत्ति होती है, लेकिन यह कथन सत्य नहीं कि मानव प्राणीयों का कोई समूह मानव प्राणीयों के किसी अन्य समूह विशेष के प्रति मूलत: विरोधी होता है | यही वह स्थिति है जहां त्रुटि उत्पन्न होती है।

बालक अपने समूह के सदस्य के रूप में पूर्वाग्रह कैसे ग्रहण करता है या सीखता है - 1 युवा बच्चों के प्रेक्षण से पता चलता है कि वे दूसरे समूहों के बालकों के साथ बिना किसी भेदभाव के खेलते है, यहां तक कि जो बालक भिन्न भाषी होने के कारण परस्पर बात करने में असमर्थ रहते हैं, वे भी एक दूसरे के साथ सामंजस्यपूर्ण ढंग से खेलेंगे। जब बच्चे बडे होने लगते हैं तभी वे दूसरे समूहों के बच्चो को अपने से भिन्न समझने लगते हैं | अत: कहा जाता है कि जैसे जैसे बच्चों की आयु बढती है वे भेदभाव करने में अधिकाधिक सक्षम होते जाते हैं तथा इस प्रकार से दूसरे बच्चों के प्रति उनका व्यवहार भिन्न हो जाता है | क्लार्क तथा क्लार्क ने एक परीक्षण किया, उन्होंने 3 से 7 वर्ष की आयु के 233 नीग्रो बच्चों को लिया और उन्हें 4 गुडियाएं दी जिनमें दो भूरे रंग तथा काले बालों वाली थीं और दो श्वेत रंग तथा पीले बालों वाली थी। परीक्षणकर्ता ने बच्चों से कहा कि वे उसे उस गुडिया को दे जो श्वेत बच्चे की तरह लगती है और वह गुड़िया जो अश्वेत बच्चे की तरह दिखाई देती हों। तीन वर्षीय बच्चों की आयु के बच्चों में से 80 प्रतिशत पांच वर्ष की आयु के बच्चों में से 93 प्रतिशत तथा 7 वर्ष की आयु के बच्चों में से 100 प्रतिशत बच्चों ने वांछित गुडियाएं सही रूप में दी। इस प्रकार 3 वर्ष के बच्चे भी ठीक प्रकार से रंग भेद कर सके तथा उपयुक्त उत्तर दे सके। बच्चे प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक रूप से श्वेत बालकों तथा नीग्रो बालकों में अंतर बतला सकते है | फिर भी आयु में उनमें किसी प्रकार की वरीयता, पूर्वाग्रह की भावनाएं नहीं आती। यह केवल तभी होता है जबकि वे बड़े होते है और उन्हें समाज में कुछ अनुभव प्राप्त होते है, इसलिए वे दूसरे समूहों के बच्चों से पूर्वाग्रह रखने लगते हैं |

1. होरोविट्ज तथा हीरोविट्ज (Horoiwitzerd Hrivirts 1938), ने दक्षिण प्रदेश के एक समुदाय के कुछ श्वेत बालकों को साक्षात्कार किया जिन्होंने बताया कि उन्हें नीग्रो बच्चों से उचित अन्तर न बरतने के कारण सज मिली थी। इसी प्रकार भारत में विभिन्न जाति समूहों और भिन्न भिन्न मतांलंबीसमूहों के बच्चों को माता पिता द्वारा यह सिखाया जाता है कि वे समूह में व्याप्त सामाजिक प्रतिमानों के अनुसार ठीक प्रकार का व्यववहार अपनाएं। किसी हरिजन बालक के साथ जब कोई सवर्ण हिन्दू बालक खेलता है तो उसे घर में घुसने से पहले नहाना पड सकता है | इस प्रकार माता पिता समझाकर, धमकी देकर और वास्तविक दंड द्वारा अपने बच्चों को में पूर्वाग्रह का निर्माण करते हैं | अत: व्यस्क व्यक्ति को अपने समूह के सदस्यों से अपने आपको बचाने के लिए दूसरे समूहों के सदस्यों के प्रति सामाजिक प्रतिमान के अनुसार व्यवहार करना पड़ता है। इस प्रकार पूर्वाग्रह से परिचित होने से पहले ही बालक पूर्वाग्रह का विकास कर लेता है और चूंकि यह स्थिति उसके अपने समूह के सामाजिक प्रतिमान के अनुकूल होती है इसलिए इस प्रकार के व्यवहार को पूर्वाग्रहित व्यवहार कदापि नहीं समझता।
2. भिन्न भिन्न सामाजिक प्रतिमानों के अनुसार पूर्वाग्रह भिन्न भिन्न होता है।

3. किसी समूह सदस्यों में विभिन्न समहों के सदस्यों के प्रति भेद करने की योग्यता में वैयक्तिक अंतर पाए जाते हैं | कुछ हिन्दु सदैव सचेत रहते हैं कि अमुक व्यक्ति हिन्दू है | दूसरी ओर बहुत से हिन्दू दूसरे लोगों से मेलजोल करते समय उनके धर्म का महत्व नहीं देते। वे उन्हें केवल मानव प्राणी समझते है, किसी समूह विशेष का सदस्य नहीं मानते। आलपोर्ट तथा (Appprot and Kramer 1946) ने एक अध्ययन किया था। उन्होंने किसी विद्यालय के 200 पुरूष तथा महिला छात्रों को 20 चित्र दिखलाए जिनमें से आधे यहूदियो के थे तथा आधे गैर यहूदियों के इन छात्रों को इससे पूर्व, उनकी सामीवाद विरोधी अभिवृति को मापने के लिए एक जांच की गई थी। छात्रों से कहा गया था कि वे उन 20 चित्रों को यहूदियों तथा गैर यहूदियों के अनुसार वर्गीकृत कर दें। प्रत्युतरों से पता चला कि जो छात्र सभी विरोधी थे उन्होंने यहूदियों के बारे मे उन छात्रों की अपेक्षा अधिक सही निर्णय दिए, जिनके पूर्वाग्रह अपेक्षाकृत कम मात्रा में थे। इसलिए सामी विरोधी व्यक्ति के लिए यहूदियों के लक्षणों में भेद करना सीखना तथा उन्हें पहचानना बहुत आवश्यक है | जिस व्यक्ति की प्रवृत्ति पहले से ही सामीवाद विरोधी होती है वह बहुत ज्यादा अभिप्रेरित हो जाता है तथा लोगों को भी उसी अभिवृत्ति की प्रसंग परिधि मे समझने लगता है।

4. विभिन्न जाति समूहों, प्रजाति समूहों तथा राष्ट्रीय समूहों में शारीरिक लक्षणों की दृष्टि से प्रेक्षणीय अन्तर दिखलाई पड़ते है | ये प्रेक्षणीय लक्षण बताये जाते हैं तथा इन पर जोर दिया जाता है | इससे भेद भाव करने की क्रिया महत्वपूर्ण बन जाती है तथा मानवता की अन्त:स्थ एकता उपेक्षित कर दी जाती है | भारत मे इन शारीरिक लक्षणों के अंतर से भी अधिक हम वस्तुत: विभिन्न जाति तथ मतानुयायी समूहों में कुछ सांस्कृतिक व्यवहारों द्वारा भेदभाव की नीति को बढावा देते है, उदाहरणार्थ, हिन्दुओं तथा मुसलमानों की पौशाक भिन्न भिन्न होती है | इसी भांति हिन्दुओं में भी विभिन्न जातियां भिन्न भिन्न प्रकार की पौशाक पहनती है | इस प्रकार शारीरिक लक्षणों के अन्तरों के अतिरिक्त वेशभूषा और सज्जा में भी कुछ विशेष अन्तर घटित कर लेते हैं जो समूहों के अन्तरों की ओर बढ़ावा देते है | बच्चे इन अंतरों को समझने लगते हैं, वे उन भेदभाव के प्रति सामाजिक प्रतिमानों के अनुसार उपयुक्त तरीके से क्रिया करना भी सीख लेते हैं।

5 प्रथाओं तथा रहन सहन के तरीकों में भिन्नता के कारण भी पूर्वाग्रह के अन्तर को उस समय बहुत ज्यादा तूल दिया गया जबकि कांग्रेस दल तथा मुस्लिम लीग में लम्बे समय से संघर्ष चल रहा था। इसका कारण यह था कि उस समय सन 1930 व 1940 के दौरान हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच लगातार हमले हो रहे थे।

इस प्रकार प्रत्येक समूह के बच्चे दूसरे समूहों के बच्चों और व्यस्कों से भेद भाव रखना सीख लेते हैं | माता पिता और दूसरे नेता लोग बच्चों को इस प्रकार के अन्तर का ज्ञान कराने तथा उपयुक्त रूप से प्रतिक्रिया करने मे भी बडी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है | यह बात भी सही है कि जब कोई समूह दूसरे समूह से भय का अनुभव करता है, तब पूर्वाग्रह बढ जाता है | पूर्वाग्रह समूह विशेष का सामाजिक प्रतिमान बन जाता है और सारे व्यस्कों तथा बच्चों को इस सामाजिक प्रतिमान का पालन करना पडता है | यदि वे इन सामाजिक प्रतिमानों के अनुरूप नहीं चलते, तो उन्हें दैड दिया जाता है | अन्य कई कारणों मे एक कारण यह भी है कि अल्पसंख्यक समूह असुरक्षित अनुभव करते है तथा

बहुसंख्यक समूह के विरूद्ध दृढ़ पूर्वाग्रह अपना लेते है | अल्पसंख्यक ऐसे अवसर जुटाते हैं कि बहुसंख्यक उनके प्रति विरोध अपनाएं।

7.7 पूर्वाग्रह की विशेषताएं

मनोवैज्ञानिकों द्वारा पूर्वाग्रह की व्याख्या भिन्न भिन्न दंगों से की गयी है फिर भी किये गये वर्णन एवं उनके प्रयोगों एवं शोधों से हमें कुछ इस प्रकार के सामान्य तथ्य मिलते है जिनके आधार पर हमें पूर्वाग्रह के स्वरूप या उसकी विशेषताओं के बारे में ज्ञान होता ह। ऐसी प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित हैं-

1 पूर्वाग्रह विवेकहीन होता है -

पूर्वाग्रह का स्वरूप कुछ ऐसा होता है कि इसमें विवेक, तर्क, एवं संगति का कोई स्थान नहीं होता है | अनेक प्रकार के विरोधी तथ्य एवं सूचनाओं को व्यक्ति के समाने प्रस्तुत करने पर भी वह पूर्वाग्रह पर आडिग रहता है।

2 पूर्वाग्रह अर्जित होता है

आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिक ने पूर्वाग्रह को अर्जित प्रक्रिया माना है, बच्चा जब जन्म होता है तो उसमें दूसरे समूह, धर्म, जाति के लोगों के प्रति न तो स्वीकारात्मक पूर्वधारणा होती है | न ही नकारात्मक पूर्वधारणा। जैसा वह परिवार के सदस्यों से अर्थ, समूह, धर्म तथा जाति के लोगों के बारे में सुनता है उसी के अनुसार वह उनके बारे में पूर्वधारणा विकसित कर लेता है | अत: समाज मनोवैज्ञानिकों ने पूर्व धारणा को अर्जित प्रक्रिया कहा है।

3 पूर्वाग्रह में संवेगात्मक रंग होता है -

पूर्वाग्रह में संवेगात्मक रंग होता है और वह किसी समूह धर्म, जाति के लोगों के या तो अनुकूल होते है या प्रतिकूल होता है | यदि पूर्वाग्रह अनुकूल हुई तो व्यक्ति दूसरे समृद्ध धर्म या जाति के लोगों के प्रति अधिक स्नेह एवं प्रेम दिखलाता है | परन्तु यदि पूर्वाग्रह प्रतिकूल हुई तो व्यक्ति दूसरे धर्म, जाति या समूह के व्यक्तियों के प्रति घृणा विद्वेष आदि संवेग मुख्य रूप से दिखलाता है | अमेरिका में श्वेत लोगों का निग्रो के प्रति नकारात्मक या प्रतिकूल पूर्वधारणा तथा भारत में उच्च जाति के लोगों का निम्न जाति के लोगों के प्रति प्रतिकूल पूर्वधारणा में इस तरह की संवेगात्मक प्रतिक्रिया अधिक देखने को मिलती है | स्पष्ट है कि पूर्वाग्रह अनुकूल हो या प्रतिकूल उसमें संवेगात्मक रंग निश्चित रूप से होता है।

4 पूर्वाग्रह पूर्णरूपेण किसी समूह की ओर संचालित है -

पूर्वाग्रह की एक विशेषता यह भी है कि इसका निशाना कोई व्यक्ति विशेष नहीं होता है | बल्कि पूरे समूह की ओर वह संचालित होता है | यही कारण है कि पूर्वधारणा सामाजिक मानक का एक अंश के समान दिखाती है | अमेरिका मे प्राजातीय पूर्व धारणा से ग्रसित गोर द्वारा एक निग्रो के प्रति इसलिए घृणा की जाती है कि वह एक विशेष समुदाय अर्थात निग्रो समुदाय का सदस्य है | जातिय पूर्वधारणा से ग्रसित उच्च जाति के लोग एक हरिजन से इसलिए घृणा करते है क्योंकि हरिजन का संबंधखास समूह से होत है | वैयक्तिक गुणों की श्रेष्ठता के बावजूद भी जो भी व्यक्ति उस समूह का सदस्य होगा सबके प्रति उच्च जाति के लोगों में उसी प्रकार की प्रतिकूल पूर्वाग्रह होगी।

5 पूर्वाग्रह दृढ़ तथा स्थिर समान्यीकरण पर आधारित होता है

पूर्वाग्रह में दृढता पायी जाती है तथा यह स्थिर समान्यीकरण पर आधारित होती है | पूर्वाग्रहित व्यक्ति के सामने उसके विश्वास एवं विचार के विरोधी विचार भी यदि प्रस्तुत किये जाते हैं तो यह है कि पूर्वधारणा का संबंधकुछ दृढ़ एवं स्थिर विचारों, अन्धविश्वासों एवं सामाजिक रीति रिवाजों से होता है न कि विवेक, तर्क एवं बुद्धि से । स्पष्ट है कि पूर्वाग्रह काफी दृढ़ एवं स्थिर विचारों पर आधारित होता है ।

6 पूर्वाग्रह का कार्यात्मक स्वरूप होता है

पूर्वाग्रह का स्वरूप कार्यात्मक होता है क्योंकि इसमें कुछ फायदा भी व्यक्ति को होता है | उदाहरणार्थ, पूर्वाग्रह विद्वेष को उचित ठहराने में संतुष्टि प्रदान करता है | इसके द्वारा दमित इच्छाओं की संतुष्टि होती है आत्मसम्मान एवं प्रतिष्ठा के भाव के मजबूत करने में मदद मिलती है कुण्ठा एवं आक्रमणकारी व्यवहारों को विद्वेषपूर्ण कार्यों द्वारा व्यक्त करने का मौका मिलता है | स्पष्ट है कि पूर्वाग्रह का कार्यात्मक महत्व भी व्यक्ति की जिन्दगी मे होता है ।

7 पूर्वाग्रह का संबंधवास्तविकता से नहीं होता है -

पूर्वाग्रह चाहे अनुकूल हो या प्रतिकूल इसका संबंध वास्तविकता से नहीं होता है | पूर्वाग्रह सुनी सुनाई बातों एवं पुराने रीति रिवाजों पर आधारित होता है | इसका संबंधवास्तविक हालातों से नहीं होता है | गांव में उच्च जाति के लोग अभी भी हरिजनों के हाथ का छुआ खाना पानी नहीं स्वीकार करते है, क्योंकि विश्वास है कि इससे धर्म भ्रष्ट होता है | तथा आत्म, अपवित्र हो जाती है, परन्तु वे लोग यह नहीं बता पाते है कि आखिर वे ऐसा क्यों सोचते हैं आग्रह करने पर वे यही कहेंगे कि ऐसा ही उनके पूर्वज करते थे । स्पष्ट है कि पूर्वाग्रह का संबंध रीति रिवाज तथा पूर्वजों द्वारा किये गये विश्वासों से होता है | किसी वास्तविकता से नहीं ।

7.8 पूर्वाग्रह के प्रकार

पूर्वाग्रह के अनेक प्रकार होते हैं | इनको किसी बंधन में बांधना सरल नहीं है।कुछ प्रमुख प्रकार के पूर्वाग्रहों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है -

1 **प्रजातीय पूर्वाग्रह -** प्रजातीय पूर्वाग्रह में व्यक्ति दूसरी प्रजाति के लोगों के प्रति पूर्वग्रहित होता है | अत: प्रजाति पूर्वाग्रह में पूर्वाग्रह का आधार एक प्रजाति होता है | अमेरिका के श्वेत लोग अब निग्रो को कम बुद्धि का एवं असभ्य समझते हैं | भारत में प्रजातीय पूर्वाग्रह का उदाहरण मिलता है । यद्यपि इन प्रजातीय पूर्वाग्रहों की गहराई में जाकर देखें तो हम पायेंगे कि इसमें सच्चाई कम है ।

2 **यौन पूर्वाग्रह -** यौन पूर्वाग्रह के विकास के विकास का आधार यौन होता है | यौन, पूर्वाग्रह का अध्ययन अमेरिका मे काफी किया है, इन्होंने निष्कर्ष निकाला कि करीब 30-40 वर्ष पहले अमेरिका मे यौन पूर्वाग्रह काफी तीव्र था जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं को कमजोर दूसरों पर निर्भर, मुलायम दिल वाली मद सहानुभूति दिखलो वाली एवं नेतृत्वगुण रहित समझा जाता था। पुरूषों को मेहनती, नेतृत्व गुणों से ओत-प्रोत, प्रभुत्वशाली तथा स्वतंत्र समझा जाता था। यहां तक कि स्वयं महिलाओं भी महिलाओं को उपयुक्त गुणों से पूर्वाग्रहित समझती

थीर, अब अमेरिका में महिलाआं और पुरूषों की करीब करीब समान देखा जाने लगा है | फल स्वरूप यौन पूर्वाग्रह करीब करीब समाप्त ही हो गया है | भारत में महिलाओं को कमजोर, दूसरो पर निर्भर रहने वाली, कम बुद्धि की विनग्र घर मे रहने वाली कठपुतली आदि समझते है और उसी अनुसार व्यवहार कीरते है, परन्तु खुशी की बात यह है कि अब धीरे धीरे महिलाओं के प्रति इस तरह की पूर्वाग्रहों में भी कमी आ रही है।

3 **जाति पूर्वाग्रह -** भारत विभिन्न जातियों का देश है प्राय: देखा गया है कि एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों को अपने से तुच्छ एवं गिरा हुआ समझते हैं तथा उनके प्रति भेदभाव दिखलाते हैं, यही जाति के लोग आपस में एक दूसरे को एक समाज का सदस्य मानते हैं चाहे वे किसी क्षेत्र, व्यवसाय, या वर्ग के हो। फलस्वरूप जाति के नाम पर एकता बनी रहती है | इसका परिणाम होता है कि उनकी पूर्वाग्रह अपनी जाति के लोगों के लोगों के प्रति स्वीकारात्मक होती है | परन्तु इनकी पूर्वाग्रह अन्य जाति के लोगों के प्रति नकारात्मक होती और उनके प्रति शत्रुता एवं विद्वेष बढ जाता है जिसकी मात्रा अधिक होने से जातीय दंगों का जन्म हो जाता है।

4 **भाषापूर्वाग्रह-** भारत में बहुत जाति के लोग रहते है, साथ ही उनकी भाषा भी अलग अलग होती है जिससे भाषा पूर्वाग्रह का जन्म होता है, इस तरह की पूर्वधारणा मे एक भाषा बोलने वाले सभी व्यक्ति अपने को एक ही समूह का सदस्य मानकर आपस में कुछ एकता दिखलाते है तथा दूसरी भाषा बालेने वाले लोगों को अपने से कुछ समझकर उनके प्रति कुछ विद्वेष भाव भी दिखलाते हैं | आये दिन हम अखबारों में भाषा को लेकर दलगत मनमुटाव की खबरें पढ़ते हैं | अभी भी दक्षिण भारत के लोग हिन्दी भाषा के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति बनाये हुए है और उन्हें इस बात का भय हमेशा बना रहता है कि कही इस भाषा को उन पर थोप ना दिया जाये।

5 **साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह-** साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह से तात्पर्य है किसी विशेष सम्प्रदाय समुदाय के प्रति दूसरे समुदाय या सम्प्रदाय के लोगों की अभिवृत्ति से होता है | भारत में हिन्दु एवं मुस्लिम की अभिवृत्तियां एक दूसरे के प्रति अधिक तीक्ष्ण है, फलस्वरूप इनमें से एक समुदाय के लोग दूसरे समुदाय के लोगों के प्रति अधिक पूर्वाग्रहित है | समय समय पर हिन्दु मुस्लिम में साम्प्रदायिक दंगे तथा पंजाब में हिन्दू एवं सिक्खों के साम्प्रदायिक दंगे इसी तरह के पूर्वाग्रह के ही परिणाम है।

6 **क्षेत्रीय पूर्वाग्रह-** भारत में क्षेत्रीय पूर्वाग्रह के भी उदाहरण मिलते है | प्राय: यह देखा गया है कि शहर में रहने वाले व्यक्ति अपने को अधिक बुद्धिमान चतुर व आधुनिक समझते हैं तथा देहात में रहने वाले व्यक्ति को वह नासमझ तथा बेवकूफ समझते हैं | इतना ही नहीं शहरी क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों के भी पूर्वाग्रह आपस में कुछ अलग अलग होते हैं | दिल्ली और मुम्बई जैसे महानगरों में रहने वाले व्यक्तियों को छोटे शहर में रहने वाले व्यक्ति प्राय: अधिक चालक समझते हैं |

7 **राजनीति से संबंधित पूर्वाग्रह -** भिन्न भिन्न राजनैतिक पार्टी वाले लोगों में राजनीति के आधार पर पूर्वाग्रहित निर्णय प्रचलित है | एक पार्टी विशेष के लोग अपनी पार्टी के लोगों को आदर्शवादी सिद्धान्तों और लक्ष्यों वाले समझते हैं जबकि दूसरी पार्टी के लोगों को दुराचारी, भ्रष्टाचारी आदि निम्न कोटि का समझते हैं | इस प्रकार के एक दूसरे के प्रति पूर्वाग्रहित निणयों का आधार राजनैतिक है |

8 **वर्ग से संबंधित पूर्वाग्रह -** भारतीय समाज में आर्थिक आधार पर दो वर्ग है, अमीर या गरीब वर्ग। इसी प्रकार व्यवसाय के आधार पर उद्योगपति व श्रमिक वर्ग ।इन दो प्रकार के वर्गों मे कटुतापूर्व संबंध चले आए है | फलस्वरूप दो वर्गों में पूर्वग्रहित निर्णय भी कटुतापूर्ण रहे हैं | श्रमिक वर्ग उद्योगपति वर्ग को अपनी कमाई का अधिकांश भाग हड़पने वाले आसान के रूप में देखता है | दूसरी ओर उद्योगपति श्रमिक वर्ग को मात्र टुकड़ो पर पलने वाले इन्सान के रूप में देखता है।

7.9 सारांश

पूर्वाग्रह से तात्पर्य व्यक्ति में किसी व्यक्ति, वस्तु, तथ्य, घटना या अन्य व्यक्ति के बारे में एक पूर्व निर्णय से होता है | यह केवल एक अपरिपक्व निर्णय ही नहीं बल्कि इसमे प्रतिकूल अभिवृत्ति होती है| बालक अपने समूह के सदस्यों के रूप में पूर्वाग्रह करना सीखता है | पूर्वाग्रह की कुछ विशेषताएं जैसे पूर्वाग्रह विवेकहीन होती है, एवं उसका वास्तविकता से संबंध नहीं होता है | समाज मनोवैज्ञानिकों ने कई प्रकार बताये जिनमें प्रजातीय, यौन, जाति, भाषा सामाजिक धर्म, क्षेत्रीय तथा राजनीति से संबंधितपूर्वाग्रह होते हैं।

7.10 कठिन शब्द

- **पूर्वाग्रह** - पूर्वाग्रह पूर्व निर्धारित अभिवृत्ति या विचार है, यह अभिवृत्ति या विचार सांस्कृतिक मूल्यों तथा अभिवृत्तियों पर ही निर्भर रहता है |

7.11 अभ्यास प्रश्न (निबंधात्मक प्रश्न)

1 पूर्वाग्रह की उपयुक्त परिभाषा दें और उसकी विशेषताएं बताइये।
2 पूर्वाग्रह के प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3 जातीय पूर्वाग्रह से आप क्या समझते हैं।
4 कौनसे पूर्वाग्रह समाप्त हो रहे हैं।
5 पूर्वाग्रह कैसे विकसित होते हैं।

7.12 संदर्भ ग्रथ

- सिंह अरूण कुमार, 2010 समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोतीलाल बनारस दास – दिल्ली-7
- माथुर, एस.एस. समाजमनोविज्ञान विनोद पुस्तक, मंदिर आगरा |
- लाल बच्चन, त्रिपाठी - आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान |
- कुय्युस्वामी बी समाज मनोविज्ञान एक परिचय हरियाणा हिन्दी शोध अकादमी चण्डीगढ |

इकाई - 8

पूर्वाग्रह के कारण, पूर्वाग्रह, विभेदन और स्थिर धारणा में अंतर

Causes of Prejudice, difference between prejudice, discrimination and stereotype

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 पूर्वाग्रह के कारण

8.4 विभेदन का अर्थ व परिणाम

8.5 रूढ़ियुक्तियां

8.6 पूर्वाग्रह, विभेदन और स्थिर धारणा में अंतर

8.7 निबंधात्मक प्रश्न

8.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.1 प्रस्तावना

दशाब्दियों पहले यह समझा जाता था कि एक समूह के सदस्यों के प्रति कोई विशिष्ट विरोध की भावना पाई जाती हैं | जब कमी हम किसी लक्षण की किसी समूह विशेष के समस्त सदस्यों में व्यापक रूप से विद्यमान देखते हैं तो हमारी प्रवृत्ति इस समूह को कुछ 'स्वाभाविक' की भांति देखने की होती है । किसी समूह में पाए जाने वाले किसी गुण की व्यापक उपस्थिति के लिए कुछ अन्य कारण भी हो सकते हैं | सत्य है कि मानव प्राणी भी दूसरों से प्रेम करने का अभिलाषी है और जब वह अनुभव करता है कि उसे कुछ लक्ष्यों की प्राप्ति करने के प्रयत्नों से रोका जा रहा है तो वह लड़ने के लिए भी तैयार हो जाता है | इस दृष्टि से यह कथन ठीक है कि मानव प्राणीयों में विरोध बनने की एक मूल प्रवृत्ति होती है | लेकिन यह कथन सत्य है कि मानव प्राणीयों का कोई समूह मानव प्राणीयों के किसी अन्य समूह विशेष के प्रति मूलत: विरोधी होता है | यही वह स्थिति है, जहां त्रुटि उपन्न होती है ।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- पूर्वाग्रह के कारणों को समझ सकेंगे।
- रूढ़ियुक्तयां (स्थिर धारणा) का अर्थ समझ सकेंगे।
- पूर्वाग्रह, विभेदन और स्थिर धारणा में अंतर को समझ सकेंगे।

8.3 पूर्वाग्रह के कारण

जैसा कि हम जानते हैं, पूर्वाग्रह के कई प्रकार होते हैं, सभी व्यक्तियों में सभी तरह के पूर्वाग्रह नहीं होते हैं, किसी में जाति पूर्वाग्रह अधिक तो किसी भी धार्मिक पूर्वाग्रह अधिक मजबूत होता है | प्रश्न यह उठता है कि व्यक्ति में विभिन्न प्रकार के पूर्वाग्रहों का विकास क्यों होता है तथा इसका फैलाव कैसे होता है | समाज मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है, इसके अलावा समाजशास्त्रियों इतिहासज्ञों मानवशास्त्रियों ने पूर्वधारणा के संभावित कारणों का अध्ययन किया है | ऑलपोर्ट ने अपनी बहुतचर्चित पुस्तक 'पूर्वधारणा का स्वरुप' (The nature of prejudice) में इन सभी विशेषज्ञों द्वारा बतलाये गये पूर्वधारणा के कारणों को एकत्रित करके कुछ विशेष सिद्धान्त या उपागम का वर्णन किया है जो आज के समाजशास्त्रियों एवं समाज मनोवैज्ञानिको को भी मालूम है क्योंकि इन लोगों ने भी पूर्वग्रह का अध्ययन उन्हीं सैद्धान्तिक उपागमों के भीतर किया है | ऑलपोर्ट ने पूर्वाग्रह ने पूर्वाग्रह का अध्ययन उन्हीं सैद्धान्तिक उपागमों के भीतर किया है | ऑलपोर्ट ने पूर्वाग्रह के कारणों को निम्नांकित पांच सैद्धान्तिक उपागमों को बताया है -

(अ) ऐतिहासक उपागम

(ब) सामाजिक सांस्कृतिक उपागम

(स) परिस्थितिजन्य उपागम

(द) मनोगतिकी उपागम

(य) संज्ञानात्मक

उन सभी प्रमुख कारणों का वर्णन हम 5 उपागमों के अन्तर्गत करेंगे |

(अ) ऐतिहासक उपागम

इस उपागम में पूर्वाग्रह का कारण बहुत पहले से चली आ रही विशेष प्रकार की अभिवृत्तियां होती है| इस तरह की अभिवृत्तियों का कारण मनुष्यों का आपस में संबंध बिगड़ने, आर्थिक संघर्ष, अन्याय व अत्याचार की गत अनुभूतियों होती है | इस तरह की ऐतिहासिक घटनाओं के कारण व्यक्तियों में एक विशेष अभिवृत्ति विकसित हो जाता है जो पूर्वधारणा का रूप धीरे धीरे ले लेती है | हमारे समाज में व्याप्त यौन पूर्वाग्रह जिसमें औरतों को कमजोर, दूसरे पर निर्भर रहने वाली एवं एक घरेलू कठपुतली समझा जाता है, की मुख्य कारण ऐतिहासिक घटनाएं है | जिसमें महिलाओं पर कई तरह के अत्याचार किये गये और उसे अपना कर्तव्य समझकर सहती रही। इसी तरह से अनेक ऐसे पेश जिनमें ऐतिहासिक रूप में अनेक ऐसे पेशे है जिनमें ऐतिहासकि रूप में पुरूषों के लिए अच्छा तथा महिलाओं के लिए बुरा समझा जाता है | जैसे ट्रक ड्राइवर का पेशा महिलाओं के लिए ठीक नहीं समझा जाता है और ऐसी महिलाओं के प्रति समाज के लोग पूर्वग्रहित होते हैं | इस तरह पूर्वाग्रह का कारण ऐतिहासिक अभिवृत्ति है जिसके अनुसार हम लोग यह सोचते हैं कि ट्रक चलाने में अधिक

शारीरिक ऊर्जा की जरूरत होती है जो महिलाओं में नही होती है अमेरिका में श्वेत अमेरिका निग्रो अमेरिका के प्रति नकारात्मक रूप से पर्वग्रहित होते है | जिसके पीछे एक विशेष ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है जिनमें निग्रो की दासता का इतिहास, सामाजिक एवं शैक्षणिका अलगाव नियुक्तियों में विभेद आदि प्रधान है | हमारे देश में हरिजनों के प्रति उच्च जाति के लोगों की नकारात्मक अभिवृत्ति ऐसी ही ऐतिहासिक घटनाओं पर बहुत कुछ आधारित है | इसी तरह समाज में धनी लोगों का पूर्वाग्रह गरीब लोगों के प्रति नकारात्मक होती है और उसके पीछे भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि कुछ वैसी है।

स्पष्ट है कि ऐतिहासिक उपागम में पर्वाग्रह का कारण ऐतिहासिक घटनाओं के फलस्वरूप व्यक्तियों में उत्पन्न होने वाली सामाजिक अभिवृत्ति है | तथापि ऐतिहासिक उपागम द्वारा पूर्वाग्रह के कारण की व्याख्या ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से संतोषजनक ढंग से होती है फिर भी उसमे कुछ प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल पाता है, जैसे कुछ धनी लोग गरीबों के प्रति पूर्वग्रहित होते है और कुछ लोग क्यों नहीं होते हैं।

(ब) सामाजिक सांस्कृतिक उपागम

इस उपागम मे पूर्वाग्रह के उद्भव विकास एवं सम्प्रेषण में समाजशास्त्रीय एवं सांस्कृतिक कारणों पर बल डाला है, प्रमुख कारक है,

1 **जाति -** भारतीय समाज विभिन्न वर्गों के अलावा कई जातियों में भी बंटा हुआ है | भारतीय मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों द्वारा कई अध्ययन किये है जिनसे मालूम होता है कि उच्च जाति के लोग निम्न जाति के लोगों के प्रति अधिक प्रर्वाग्रही होते हैं।प्रसार 1979 ने अपने अध्ययन मे पाया कि जाति पूर्वाग्रह उच्च जाति के हिन्दुओं में निम्न जाति के हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक होता है | अनेक अध्ययन के अनुसार हिन्दू ब्राह्मणों में जाति पूर्वाग्रह की मात्रा सबसे अधिक होती है | सिंह एवं भूषण (1969) ने अपने अध्ययन में पाया कि ब्राह्मण, कायस्थ एवं राजपूतों में अपनी जातियों को ऊंचा समझने की प्रवृत्ति निम्न जाति लोगों में अपनी जाति के व्यक्तियों के प्रति स्वीकारात्मक पूर्वाग्रह अधिक होती है।

2 **शिक्षा -** पूर्वाग्रह पर शिक्षा का प्रभाव अधिक पड़ता है, समाज में व्यक्तियों को शिक्षा औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों रूप से दी जाती है | अनौपचारिक शिक्षा परिवार में सदस्यों द्वारा विशेषकर माता पिता द्वारा दी जाती है | माता पिता उन्हें इस बात की शिक्षा देते हैं कि किस समूह के बच्चों के साथ उन्हें खेलना चाहिए, कौन समूह ठीक है और किस समूह से उन्हें दूर रहना चाहिए। यदि माता पिता यह सिखलाते हैं कि उन्हें हरिजनों के बच्चों के साथ नहीं खेलना चाहिए, तो ऐसी स्थिति में इन बच्चों में हरिजनों के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति विकसित हो जाती है | औपचारिक शिक्षा स्कूल या कॉलेज में व्यक्तियों को दी जाती है, यह शिक्षा अधिक होने से व्यक्तियों में किसी समस्या या अन्य व्यक्तियों के बारे में सही पृष्ठभूमि में सोचने शक्ति विकसित होती है | परिणामस्वरूप ऐसे व्यक्तियों को पूर्वाग्रही करना आसान नहीं होता है | भारत व विदेशों में किये गये अध्ययनों से स्पष्ट होता है, वैसे वैसे पूर्वाग्रह की मात्रा में कमी आती है | अर्थात आलपोर्ट (1954), विलियम्स (1964) में अपने अपने अध्ययनों में पाया कि शिक्षित लोगों मे अशिक्षित लोगों की अपेक्षा पूर्वग्रह की मात्रा कम होती है | सिन्हा एवं सिन्हा (1960) ने पटना विश्विद्यालय के एक हजार छात्रो की पूर्वधारणा का अध्ययन किया और पाया कि हरिजन के प्रति स्नातकोत्तर छात्रों की

पूर्वधारणा की मात्रा स्नातक कक्षा के छात्रों की पूर्वधारणा की मात्रा कम पाई जाति है (1972) ने दो हजार उत्तरी भारतीयों की पूर्वधारणा का अध्ययन कर पाया कि औपचारिक शिक्षा की स्तर अधिक ऊंचा होने से व्यक्तियों में हरिजनों के प्रति अभिवृत्ति काफी उदार हो जाती है अर्थात ये लोग हरिजनों के प्रति पूर्वाग्रही कम होते गए।

(स) परिस्थितिजन्य उपागम

समाजशास्त्रियों तथा कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों में पाया कि पूर्वाग्रह पर सामाजिक वर्ग का भी प्रभाव पड़ता है | सामाजिक वर्ग से तात्पर्य है कि ऐसे व्यक्तियो के वर्ग या समूह से होता है जिनका सामाजिक आर्थिक स्तर करीब करीब समान होता है | विलियम्स 1964 ने अध्ययन में पाया कि उच्च वर्गीय श्वेत अमेरिकन, यहूदी के प्रति अधिक पूर्वाग्रही होते है तथा निम्न वर्गीय श्वेत अमेरिकन, नीग्रो के प्रति उच्च वर्गीय गोरे अमेरिकन की अपेक्षा अधिक पूर्वाग्रही होते हैं। भारत में उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर तथा मध्यम सामाजिक आर्थिक स्तर के लोगों में निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर के लोगों के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति होती है |

धार्मिक समूहन

भारत मे व विदेशो में भी लोगों के बीच कई तरह के धार्मिक समूहन पाये जाते हैं | किसी धर्म को मानने वाले व्यक्तियों में उस धर्म के प्रति अटूट विश्वास होता है, परिणामरूप उस धर्म के नियमों, रीति रिवाजों और यहां तक कि अन्धविश्वासों को भी संघर्ष स्वीकार कर लेता है | धार्मिक विश्वास और अंधविश्वास की कड़ी इतनी मजबूत हो जाती है कि उसे विशेष धर्म के समक्ष अन्य सभी उसे तुच्छ लगते हैं, परिणामस्वरूप अन्य धर्म के लोगों के प्रति उनकी अभिवृत्ति नकारात्मक हो जाती है, इससे पूर्वाग्रह का जन्म होता है | सिंह (1980) चौधरी (1958) हसन एवं सिंह (1973) द्वारा किये गये अध्ययन मे पाया गया है कि हिन्दुओं की तुलना में मुसलमानों मे पूर्वाग्रह अधिक होता है तथा परम्परागत, सामाजिक राजनैतिक अभिवृत्तियां अधिक तीव्र होती है | ट्रियाडिस एवं ट्रियाडिस (1960) ने कैथोलिक्स, प्रोटेस्टैन्टस तथा यहूदी मे प्रजातीय पूर्व धारणा का अध्ययन किया और पाया कि कैथोलिक्स धर्म मानने वाले व्यक्तियों में इस तरह की पूर्वग्रह सबसे अधिक, उसे कम प्रोटेस्टैन्ट धर्म मानने वाले व्यक्तियों में और सबसे कम यहूदियों मे पाया जाता है।

शहरी ग्रामीण क्षेत्र -

कई अध्ययनो से स्पष्ट हुआ है कि ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों में पूर्वाग्रह तथा रूढिवादिता की मात्रा शहरी क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों से अधिक होती है | चटर्जी एवं उनके सहयोगियो ने अपने अध्ययन में पाया कि ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों की अपेक्षा, शहरी क्षेत्र के छात्रों मे धार्मिक एव यौन पूर्वाग्रह अधिक होता है | अन्य अध्ययनों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि ग्रामीण क्षेत्रो मे रहने वाले अभिवृत्ति अधिक उदार होती है | अत: पूर्वाग्रह की मात्रा कम होती है।

सामाजिक संघर्ष

समाजिक समूहों के बीच में संघर्ष होने से भी पूर्वाग्रह होता है | किसी समूह या राष्ट्र के साथ संघर्ष होने पर लोगों की अभिवृत्ति राष्ट्र के प्रति प्रतिकूल हो जाती है ओर राष्ट्र के प्रति अधिक पूर्वाग्रही हो जाते है | सिन्हा एवं उपाध्याय (1960) ने अपने अध्ययन में पाया कि चीनी लोगों के प्रति पटना विश्वविद्यालय के छात्रों की रूढियुक्तियां की माप की गई और पुन: उनकी रूढियुक्तियों की माप उस

समय की गई जब दोनों देशो के बीच तनाव अधिकतम सीमा तक पुहंच गई थी। परिणाम मे पाया कि संघर्ष के पहले चीनीयों को ईमानदार, दोस्ताना, बहादुर, प्रगतिशील आदि के रूप में प्रत्यक्ष किया गया है | परन्तु बाद में उन्हें आक्रमणकारी, धोखेबाज, स्वार्थी, निर्दयी आदि के रूप में प्रत्यक्ष किया गया।

फैल्डमेन (1986) फिशर (1982) तथा मेयर्स (1988) ने परिस्थितिजन्य उपागम में तीन कारकों को महत्वपूर्ण माना है।

1 सामाजिक सीखना

समाजीकरण द्वारा बच्चे अपने माता पिता, भाई बहिनों एवं पड़ौसियों से दूसरे व्यक्तियो/समूहों के प्रति उचित व्यवहार करना, विश्वास आदि सीखता है | उनमें वैसी ही अभिवृत्ति ही अभिवृत्ति विकसित होती है | यही कारण है यदि माता पिता यदि किसी जाति या वर्ग के प्रति पूर्वाग्रही होते हैं तो उनकी संतान में उसी ढंग की पूर्वाग्रह विकसित हो जाती है या होने की संभावना काफी अधिक हो जाती है | बच्चे अपने माता पिता के पूर्वाग्रह चार तरीकों से अपना सकते है -1) वे अन्य व्यवहार सीखलाने के समान अपने बच्चों को सीधे किसी व्यक्ति या वर्ग के प्रति खास पूर्वाग्रह विकसित करने की राय दे सकते है | 2) वे अपने बच्चों के अन्तर समूह क्रियाओं पर नियंत्रण करके 3) वे अन्य लोगों के साथ मिलने जुलने का एक खास ढंग अपनाकर भी बच्चों के पूर्वाग्रह विकसित कर सकते है | 4) वे एक खास ढंग से बच्चों के पालन पोषण अभ्यास (Child –reading practices) जैसे उदार तरीका (permissive pratice) या सख्त तरीक अपनाकर भी बच्चों में पूर्वाग्रह विकसित कर सकते है।काली प्रसाद (1964) हसन (1977) एवं सिंह (1980) ने भी अपने अध्ययनों में पाया कि बच्चों में पूर्वाग्रह का विकास, उनके माता पिता द्वारा पालन पोषण में अपनाई गई विधियों से काफी प्रभावित होता है जैसे पालन पोषण में संख्त एवं अधिकारवादी तरीका अपनाने से बच्चों में पूर्वाग्रह का विकास तेजी से होता है | काज (1976) ने पाया कि 3-4 साल की उम्र मे ही श्वेत बच्चे निग्रो के प्रति अपने माता पिता की पूर्वाग्रही अभिवृत्ति को सीखकर उनके प्रति विभेद कर प्रारंभ कर देते हैं।

सेवा की प्रतियोगिता

वर्तमान में चाहे राजकीय क्षेत्र या गैर राजकीय क्षेत्र जीविका प्रमुख माध्यम है | अधिकतर व्यक्ति प्रतिष्ठित नौकरी प्राप्त करने के लिए हर तरह के प्रयास करता है | इसके लिए स्वभावत: अच्छे साधनों की भी जरूरत होती है | भारत में उच्च जातियों के पास अच्छे साधन निम्न जातियों की तुलना में अधिक है।

स्वभावत: उच्च जाति के व्यक्ति अधिकतर राजकीय या अराजकीय सेवा की परीक्षा में सफल होते है| ऐसी स्थिति में सरकार ने आरक्षण की नीति अपनाकर निम्न जाति के लोगों के लिए सेवा में कुछ स्थान सुरक्षित किये है | अत: उच्च जाति के लोग ऐसा सोचते हैं कि उनका हक छीनकर निम्न जाति के लोगों को दिया जा रहा है | अत: उच्च जाति के लोग निम्न जाति के लोगों के प्रति पूर्वाग्रही होते जा रहे हैं।

(द) मनोगतिकी उपागम

इस उपागम में उन मनोवैज्ञानिक कारकों के अध्ययन पर बल दिया जाता है जो व्यक्तित्व को पूर्वाग्रही करता है | ऐसे प्रमुख कारक निम्नांकित हैं -

1 कुण्ठा एवं आक्रामकता

कुण्ठा से भी व्यक्ति में पूर्वाग्रह की उत्पत्ति होती है | इस सिद्धान्त के अनुसार जब व्यक्ति अपने लक्ष्य के बीच में उत्पन्न बाधा के कारण नही पहुंच पाता है तो इसमें कुण्ठा उत्पन्न होती है | इस कुण्ठा से वह बाधक स्रोत के प्रति आक्रमक हो जाता है | चूंकि बाधक स्रोत व्यक्ति से अधिक सबल और मजबूत होता है, फलस्वरूप वह अपना आक्रामकता तथा वैर भाव एक कमजोर प्रोत की ओर विस्थापित कर लेता है | इस विस्थापित आक्रामकता के कारण कमजोर स्रोत पूर्वाग्रह का निशाना बनता है।

2 असुरक्षा एवं चिन्ता -व्यक्ति में पूर्वाग्रह असुरक्षा की भावना तथा चिन्ता से भी विकसित होती है | जिस व्यक्तित में अपनी नौकरी, सामाजिक स्तर आदि के बारे में असुरक्षा की भावना नहीं होती है, वह हमेशा अन्य व्यक्तियों या समूहों के प्रति एक स्पष्ट एवं वस्तुनिष्ठ विचार विकसित करता है | फलस्वरूप उसमें पूर्वाग्रह जल्दी नहीं विकसित होती है, बल्कि जिन व्यक्तियों में असुरक्षा की भावना अधिक होती है | वह हमेशा ऐसे व्यक्ति की ताक में रहता है जिस पर असुरक्षा का इल्जाम लगाया जा सके, ऐसे व्यक्तियों में पूर्वाग्रह तेजी से विकसित होती है | आलपोर्ट (1952) गफ (1951) लिण्डेज (1950) ने अपने अपने अध्ययनों में पाया कि जिन व्यक्तियों में असुरक्षा भावना अधिक होती है, उनमें पूर्वाग्रह की मात्रा भी अधिक होती है।

जब व्यक्ति में चिन्ता अधिक होती हे तो उसमें पूर्वाग्रह की मात्रा भी बढ़ जाती है अर्थात चिन्ता तथा पूर्वाग्रह में धनात्मक सहसंबंध है | रोकीक (1960) में अध्ययन मे पाया कि पूर्वाग्रह प्रयोज्य, अपूर्वाग्राही प्रयोज्यों की अपेक्षा अधिक चिन्तित थे। सिंह (1980) तथा इनायतुल्लाह (1980) ने अपने अध्ययनों में चिन्ता तथा पूर्वाग्रह के बीच धनात्मक सहसंबंधबताया है।

(य) संज्ञानात्मक

इस उपागम में पूर्वाग्रह की व्याख्या पूर्वाग्राही व्यक्तियों द्वारा पूर्वाग्रह के लक्ष्य के बारे में किया गया प्रत्यक्षण तथा उसके बारे में प्राप्त सूचनाओं के संसाधन के आधार पर किया जाता है। संज्ञानात्मक उपागम के अनुसार दो कारको के रूप में पूर्वाग्रह की व्याख्या की जाती है -

1 आरोपण सिद्धान्त

इस सिद्धान्त की व्याख्या के अनुसार पूर्वाग्रही व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति या समूह के प्रति किये गये नकारात्मक व्यवहार के कारण उस व्यक्ति या समूह में विदित व्यक्तिगत गुणों को माना जाता है परन्तु जब उसके द्वारा कोई धनात्मक व्यवहार किया जाता है तो पूर्वाग्रही व्यक्ति उसकी प्रशंसा न करके उनका कारण भाग्य, अधिक प्रयासख् अपवादात्मक व्यवहार आदि बतलाकर अपने आपको संतुष्ट कर लेता है | उदाहरण उच्च जाति के लोग प्राय: हरिजनों के प्रति पूर्वाग्रही होते हैं | यदि कोई हरिजन चोरी, डकैती आदि काण्ड में पकड़ा जाता है, तो उच्च जाति के लोग यही कहते हैं कि इन्हीं कारणों के लिए उनका जन्म इस कुल में हुआ है | जबकि कोई हरिजन बडा पदाधिकारी बण जाता है या समाज सुधारक तो वे लोग उसकी प्रशंसा न करके प्राय: कहते है कि संयोगवश हुआ है |

2 अत: समूह सदस्यों एवं बाह्य समूह सदस्यों में विभिन्नता

कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने पूर्वाग्रह का कारण अत: समूह सदस्यों एवं बाह्य समूह सदस्यों के गुणों में विभिन्नता बतलाता हैं |

डाउनिंग तथा मोनाकों (1982) के अनुसार अन्त: समूह के सदस्यों एवं बाह्य समूह के सदस्यों के बीच जितना ही कम सम्पर्क होता है, बाह्य समूह के सदस्यों के प्रति पूर्वाग्रह उतनी ही मजबूत होती है| इसीलिए एक जाति विशेष का व्यक्ति अपनी जाति के लोग के प्रति कम पूर्वाग्रही होता है परन्तु अन्य जाति के लोगों के प्रति अधिक पूर्वाग्रही होता है।

8.4 विभेद का अर्थ

पूर्वाग्रह (पूर्वधारणा) की व्यवहारात्मक व अभिव्यक्ति विभेद है | विभेद में किसी खास समूह में सदस्यता के कारण उस समूह के सदस्यों के साथ धनात्मक या ऋणात्मक ढंग से व्यवहार किया जाता है | विभेद के कारण पूर्वग्रहित समूह के सदस्य दूसरे समूह और उसके सदस्यों पर अधिकार जमाए रखते है | सामाजिक अन्तर की संकल्पना को सर्वप्रथम समाज वैज्ञानिक पार्क ने प्रेक्षित तथ्य का वर्णन करते समय स्थापित किया। उसने कहा कि भिन्न भिन्न समूहों के सदस्यों में सापेक्ष धनिष्ठता तथा सोच समझ का रूप भिन्न भिन्न होता है।

ऑलपोर्ट ने क्रिया कलापों की श्रृंखला का वर्णन करने के लिए पांच स्थितियां दर्शाई है जो पूर्वग्रहित विश्वासों तथा अभिवृत्तियों से उत्पन्न होती है | पूर्वाग्रह से उत्पन्न होने वाली क्रिया की पांचों अवस्थाओं का वर्णन किया जा रहा है।

1 परिहार -

पूर्वाग्रह सामाजिक अन्तर की ओर ले जाता है । पूर्वाग्रह से समूह के प्रति सामाजिक अन्तर ही उत्पन्न नहीं होता बल्कि चरम सीमा पर पहुंचते ही यह परिवार की ओर भी उन्मुख करता है | अत: परिहार सामाजिक अन्तर की अत्यधिक अभिव्यक्ति के रूप में घटित हो सकता है | ऑलपोर्ट के अनुसार पूर्वाग्रह रखने वाला व्यक्ति जिस समूह को पसन्द नहीं करता, उस की कोई प्रत्यक्ष हानि नहीं करता। वह समंजन तथा विरक्ति का सारा भार अपने ऊपर ले लेता है | अत: जब हम किसी समूह को पसन्द नही करते तो उससे विरक्त होने का प्रयत्न कर सकते हैं | यह दूसरे समूह के प्रति प्रतिरोध की एक नम्र अभिव्यक्ति है जबकि दूसरी ओर यह अत्यधिक सामाजिक अन्तर का निर्माण करती है | फिर भी यह नापसंदगी प्रकट करने का एक सभ्य तरीका है | सही रूप में समाजीकरण ऐसा होना चाहिए जिससे व्यक्ति विभिन्न मानव समूहों के प्रति प्रेम का व्यवहार कर सके। किन्तु यदि समाजीकरण में कोई कमी है और इस स्तर के आचरण तथा भावना का विकास नहीं हुआ है तो यह संभव है कि व्यक्ति समूह के विरूद्ध पूर्वाग्रह को अपना ले । परिहार पूर्वाग्रह की सबसे कम हानिकारक अभिव्यक्ति है क्योंकि इससे दूसरे समूह के सदस्यों की न तो कोई हानि ही होती है और न ही उन पर कोई चोट पहुचती है।

2 प्रतिवाग्मिता

जब हम किसी दूसरे समूह से पूर्वाग्रह रखने लगते है तो उसके विरूद्ध बात करते हैं विशेषकर उनसे जिनसे हमारी विचारधार मिलती है | यह भी संभव है कि हम इसी प्रकार की बातें उन लोगों से भी करना शुरू कर दें जिनका किसी भी समूह से कोई संबंधनही है अर्थात जो अजनबी है।

परिहार की अपेक्षा यह अधिक प्रतिरोधी किया है क्योंकि इससे दूसरे समूह को वस्तु बेवक्त बदनाम करके उसे चोट पहुंचाई जाती है | उदाहरणार्थ मुस्लिम लोग ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विरूद्ध स्वयं को एक राजनैतिक समूह के रूप में ही तैयार नहीं किया बल्कि कांग्रेस तथा उन हिन्दुओं के भी

खिलाफ बोलना शुरू किया जो भारत में बहुसंख्यक थे। इसी प्रकार की प्रवृत्ति हमें व्यक्तियों के सामाजिक संबंधोंमें भी देखने को मिलती है | जब दो मित्रों के बीच कोई गलतफमी पैदा हो जाती है, तो वे केवल एक दूसरे से कतराने लगते हैं लेकिन यदि प्रतिरोधी बहुत ज्यादा बढ जाता है, तो वे अपने अन्य मित्रों के सामने अपने मन मुटाव को रख देते हैं |

3 विभेदन

जब प्रतिरोध और अधिक बढ जाता है तो विभेदन प्रारंभ हो जाता है | उदाहरणार्थ एक समूह के सदस्य दूसरे समूह के सदस्यों को रोजगार पर लगाने में बाधा उत्पन्न कर सकते हैं | दक्षिण भारत मे कुछ राज्यों में हम इस विभेदन की विभिन्न जातिय समूहों में क्रियान्वित होते हुए देखते हैं जब तक हमारे नगर तथा कस्बे छोटे रहे और जब तक जनसंख्या का दबाव बहुत ज्यादा नहीं रहा, तब तक निवास, क्षेत्र का विभाजन संतोषजनक ढंग से चलता रहा। लेकिन जैसे जैसे जनसंख्या बढती गई वैसे वैसे विभेदनात्मक प्रवृत्तियां अधिक बल पकड़ती गई । उदाहरणार्थ मकानो की कमी के कारण तथा ब्राह्मणों के मकान कस्बे या नगर के अच्छे निवास क्षेत्रों में होने के कारण तथा दूसरी जातियां समझती थीं कि उनके साथ विभेदन का व्यवहार किया जा रहा है ।

कुप्पुस्वामी (1956) ने एक अध्ययन में यह प्रश्न पूछा था यदि आपका मकान खाली होता है तो आप निम्न जाजियों मे किसको किराये पर देगे - ब्राह्मण, उच्च जातीय, गैर ब्राह्मण, निम्न जातिय गैर ब्राह्मण , हरिजन, मुस्लिम, ईसाई। यह देखने में आया कि 43.69 ब्राह्मण, 54.5 प्रतिशत गैर ब्राह्मण, 61.19 प्रतिशत मुस्लिम तथा 48.19 प्रतिशत ईसाई ने किसी भी मकान देने के पक्ष में थे । इसके विपरीत 36.39 प्रतिशत ब्राह्मण, 34.19 प्रतिशत गैर ब्राह्मण, 16.79 प्रतिशत मुस्लिम तथा 6.89 ईसाई वर्ग ने कहा कि वे मकान केवल अपनी जाति के लोगों को ही किराये पर चढायेगे। किराए पर मकान देने संबंधीयह विभेदनात्मक व्यवहार गत कुछ शताब्दियों से ब्रह्मणों तथा अन्य हिन्दु जातियों के बीच तनाव उत्पन्न करने वाला एक मुख्य कारण रहा है | इसी से रोजगार पाने मे विभेदन को प्रश्न मिला है | इसी प्रकार स्कूल/कॉलेज में प्रवेश के लिए जाति के आधार पर प्रवेश होना चाहिए या नहीं? प्रश्न का उत्तर जानना चाहा ।

इस प्रकार पूर्वाग्रह स्वयं विभेदन में प्रकट हो जाता है ताकि दूसरे समूहों के सदस्यों को रोजगार पाने तथा आवास सुविधाएं देने, शिक्षा प्राप्ति की सुविधाएं देने तथा राजनैतिक अधिकार आदि से वंचित रखा जा सके ।

4 शारीरिक आक्रमण

जब संवेग उग्र हो उठते है तो दूसरे समूह के सदस्यों या उनकी सम्पति के विरूद्ध हिंसा जन्म ले सकती है | उदाहरणार्थ भारत में सन (1930) तथा (1940) के दौरान जीवन पद्धति के प्रति अनवरत रूप से हिंसा और सम्पत्ति को नष्ट भ्रष्ट किया जाता रहा क्योंकि साम्प्रदायिक झगड़ों में शारीरिक आक्रमण होता था । इसी भांति हम देखते हैं कि भारत में सन (1940) तथा (1950) के दौरान विद्यार्थियों के समूह विश्वविद्यालय की सम्पत्ति या सार्वजनिक सम्पत्ति के विरूद्धात्मक कार्यों में लगे रहे ।

5 उन्मूलन -

यह किसी सारे समूह के सम्पूर्ण उन्मूलन की ओर ले जाने वाली प्रतिरोध की अत्यधिक अभिव्यक्ति है | हिटलन के अधीन जर्मनियो ने अपने देश में यहूदियों का उन्मूलन करने के लिए प्रयत्न किये। इसी प्रकार सन 1947-48 में भारत विभाजन से पूर्व तथा बाद में हिन्दुओं ने मुसलमानों तथा मुसलमानों में हिन्दुओं का उन्मूलन करना चाहा। यह प्रतिरोध की अत्यधिक हिंसक अभिव्यक्ति है।

इस प्रकार किसी समूह या व्यक्ति के प्रति पूर्वाग्रह तार्किक दृष्टि से परिहार तथा प्रतिवाग्मिता से लेकर शारीरिक आक्रमण तथा अन्त में उन्मूलन तक ले जाया जा सकता है | यही कारण है कि किसी समूह के विरूद्ध हाथापाई को रोका जाता है | यदि इसे रोका नहीं जाता तो किसी समूह पर लगातार आक्रमण करने से अन्तत: शारीरिक क्रिया की नौबत आ जाएगी, जो अन्त में उन्मूलन की ओर ले जाएगी। अत: हिंसा को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि प्रतिवाग्मिता पर रोक लगाई जाए तथा प्रतिवाग्मिता को तभी रोका जा सकता है जब लोगों के दिमागों में घृणा के प्रति प्रत्यक्ष अवरोध की भावना विद्यमान हो। दूसरे लोगों तथा सम्पूर्ण मानवता के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करना कठिन है, किन्तु हमारे लिए यह कदापि कठिन नहीं कि हम अन्य व्यक्तियों तथा समूहों से घृणा करना छोड दे। यदि हम उनसे घृणा नहीं करेगे तो उनके विरूद्ध बातें नहीं करेंगे और जब उनके विरूद्ध नहीं बोला जाएगा तो हाथापाई की नौबत नहीं आएगी।

उन्होंने संकेत किया था कि लोगों के दूसरे समूहों के बारे में हमारे दिमागों में अति सरल चित्र है | इन चित्रो को लिपमेन ने स्थिर रूपों की संज्ञा दी है।

हम स्टील का कोई गिलास खरीदने जाते हैं, तो सब गिलासों को बिल्कुल एक जैसी शक्ल का तथा एक समान आकार का देखते है, क्योंकि स्टील का गिलास को उस रूप में ढाला गया है | लिपमैन का कथन है कि हमारे दिमाग में दूसरे लोगों के बारे में इसी प्रकार के मानकीकृत चित्र बन गये हैं | जैसा कि हम जानते है वस्तुओं के बारे में हमारा प्रत्यक्ष ज्ञात किसी समय विशेष पर हमारे देखने मात्र पर निर्भर नहीं करना होता बल्कि उन वस्तुओं के बारे में हमारे पुराने अनुभवों पर आधारित होता है | यही कारण है कि हम क्षणभर के लिए प्रदर्शित किसी कुर्सी या टेबल के गुणों को तत्काल परख लेते हैं और विश्वास के साथ उसके बारे में बता सकते हैं | वास्तव मे हम यह भी जानते हैं कि दस प्रकार के क्षणिक प्रदर्शन हमें भ्रम में भी डाल सकते हैं | कभी कभी हम इन भ्रमपूर्ण अनुभवों को वास्तविक अनुभव जैसा मान लेते है।

8.5 रूढ़ियुक्तिया

समाज मनोविज्ञान में Stereotypes शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम Lippman (1922) ने अपनी पुस्तक Public opinion में किया। उनके अनुसार 'रूढियुक्ति का अर्थ उन विचारों तथा अभिवृत्तियों के उस संयुक्त रूप से होता है जिसके आधार पर हम किसी वस्तु, व्यक्ति, राष्ट्र आदि के बारे में एक ऐसा दृढ एवं स्थायी प्रतिमा बना लेते हैं जो गलत तथ्यों तथा अतार्किक चिन्तन पर आधारित होती है।

उदाहणार्थ, किसी घर में लोग रहना पसन्द नहीं करते क्योंकि उन्हें इस बात का डर होता है कि उस घर में भूतों का वास है | इसी प्रकार से हमें यह पता चलता है कि जब हम किसी व्यक्ति को देखते हैं तो हम उसे वर्तमान अनुभवों के आधार पर नहीं आंकते बल्कि हम उसे किसी समूह के सदस्य के रूप में भी देखते हैं तथा हम उसमें. उन सभी गुणों को देखना चाहते हैं जो उसने समूह से प्राप्त किये हैं|

इसी प्रकार से हमारी प्रवृति किसी व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में देखने की नहीं होती, बल्कि उसे किसी समूह के सदस्य के रूप में देखने की होती है | यदि हम उसे किसी समूह के सदस्य के रूप में समझने का प्रयत्न करते है तो तत्काल उस व्यक्ति में अनेक लक्षण आरोपित कर देते है | प्राय: ऐसा होता है कि जिस व्यक्ति से आप बात कर रहे हैं वह आपका नाम जानकर आपके धर्म तथा आपकी जाति का पता लगाने का प्रयत्न करता है | ठीक जिस प्रकार से पोशाक आपके समूह का संकेत करती है वैसे ही आपका नाम भी आपके समूह का बोध कराता है।

8.6 पूर्वाग्रह, विभेदन और स्थिर धारणा में अंतर

पूर्वाग्रह अभिवृत्ति है जबकि विभेद पूर्वाग्रह का व्यवहारात्मक अभिव्यक्ति है | ऑलपोर्ट के अनुसार पूर्वाग्रह से 5 प्रकार की क्रियाएं उत्पन्न होती है जिसमें विभेद एक है | विभेदक का स्वरूप स्वीकारात्मक भी हो सकता तथा नकारात्मक भी। विभेद में किसी खास समूह में सदस्यता के कारण उस समूह के सदस्यों के साथ धनात्मक या नकारात्मक ढंग से व्यवहार किया जाता है।

पूर्वाग्रह एवं विभेद में समाज मनोवैज्ञानिक ने खास संबंध बताया है। यह जरूरी नहीं कि व्यक्ति में पूर्वाग्रह होने पर भी वह हमेशा लक्ष्य समूह के प्रति विभेद दिखायेगा। ऐसा इसलिए होता है कि सामाजिक परिस्थितियां ही कुछ ऐसी होती है जो पूर्वग्रहित व्यक्ति को खुलकर विभेद दिखाने की अनुमति नहीं देता है | उदाहरणार्थ एक उच्च जाति का जातिय पूर्वाग्रह से ग्रसित ऑफिस मे एक हरिजन के प्रति किसी प्रकार का विभेद नहीं दिखला सकता क्योंकि वे दोनों ही सरकारी नौकर है और कानून सामाजिक विभेद की आज्ञा नहीं देता है।

यह जरूरी नहीं है कि कोई व्यक्ति किसी धर्म, जाति या समुदाय के प्रति विभेद दिखलाता है तो उसमें एक पूर्वाग्रह होगा, परन्तु विभेद करते देखकर आसानी से लोग यह अर्थ अधिकतर परिस्थिति में लगा लेते हैं कि व्यक्ति पूर्वग्रहित है | उदाहरणार्थ एक हिन्दु अपने घर में मुस्लिम किरायेदार रखने के प्रति पूर्वग्रहित नहीं हो सकता फिर भी वह मोहल्ले वालों के डर से अपना घर किराये पर देने से इंकार कर सकता है | यहां विभेद तो हो रहा है परन्तु उसके पीछे कोई पूर्वाग्रह नहीं है।

पूर्वाग्रह व रूढियुक्तियां दो ऐसे पद है जिनमें समानता अधिक विभिन्नता कम एवं सूक्ष्म है | पूर्वागहों को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक रूढ़ियुक्तियां है | अनेक पूर्वाग्रह रूढियुक्तियों हैं | अनेक पूर्वाग्रह रूढियुक्तियों के आधार पर ही बनते हैं।

पूर्वाग्रह और रूढियुक्तियों में संबंध के साथ अन्तर भी है - 1 पूर्वाग्रह एक अभिवृत्ति है तो नकारात्म या सकारात्मक भी हो सकती है जबकि रूढिवादी एक ऐसी धारणा है जिसके आधार पर किसी समूह के व्यक्तियों के एक समान ढंग से समझा जाता है |

2 पूर्वाग्रह एक समूह के सदस्यों के अपरिवक्त या पक्षपात मत है जबकि रूढियुक्तियां गलत वर्गीकरण करने वाली धारणाएं हैं।

3 पूर्वाग्रह की अपेक्षा रूढियुक्तियों में स्थिरता काफी होती है नई सूचनाएं या विरोधी सूचनाओं के मिलने पर पूर्वाग्रह में कमी आ जाती है, परन्तु ऐसी सूचनाओं आधार पर रूढियुक्तियां बदल जाती है।

4 पूर्वाग्रह की अपेक्षा रूढियुक्तियां अधिक स्थायी होती है।

8.7 सारांश

पूर्वाग्रह के विकास के विभिन्न कारणों को आलपोर्ट (1954) ने पांच उपागमों में बांटकर अध्ययन किया है | पांच उपागम - ऐतिहासिक उपागम, सामाजिक सांस्कृतिक उपागम, परिस्थितिजन्य उपागम, मनोगतिक उपागम तथा संज्ञानात्मक उपागम।

पूर्वाग्रह नकारात्मक अभिवृति है और स्थिर धारणा किसी वस्तु, व्यक्ति, राष्ट्र आदि के बारे में एक दृढ़ एवं स्थायी प्रतिमा बना लेने से है | पूर्वाग्रह की व्यवहरात्मक अभिव्यक्ति विभेद है | ज्यों ज्यों विभेद अधिक होता है | सामाजिक दूरी बढती जाती है।

8.8 अभ्यास प्रश्न

1 ऑलपोर्ट ने पूर्वाग्रह के क्या कारण बताये।

2 पूर्वाग्रह व रूढियुक्ति में अंतर बताइये।

3 पूर्वाग्रह व विभेद में अतंर बताइये।

4 पूर्वाग्रह के विकास के प्रमुख मनोगतिक कारकेां का वर्णन करें।

8.9 संदर्भ ग्रंथ

- सिंह अरूण कुमार (2010) सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा
- कुप्पुस्वामी सामाजिक मनोविज्ञान एक परिचय
- माथुर एस.एस., समाज मनोविज्ञान

इकाई - 9

पूर्वाग्रह को कम करने की विधियां, भारत में साम्प्रदायिकता

Methods of reducing prejudice Communalism in India

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 पूर्वाग्रह को कम करने की विधियां

9.4 भारत में साम्प्रदायिकता

9.5 साम्प्रदायिकता के कारणों की खोज

9.6 साम्प्रदायिकता को रोकने के उपाय

9.7 सारांश

9.8 कठिन शब्द

9.9 अभ्यास प्रश्न

9.10 संदर्भग्रंथ

9.1 प्रस्तावना

पूर्वाग्रह एक ऐसी अभिवृति है, जिसका सामाजिक कुप्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है | जैसा कि स्पष्ट है कि पूर्वाग्रह बिना किसी तर्क के निर्णयों पर आश्रित होता है | पूर्वाग्रह प्रतिकूल अभिवृतियों के बनने से उत्पन्न होता है, अत: पूर्वाग्रह के नियंत्रण की समस्या स्वयं अभिवृति परिवर्तन की समस्या के रूप में बदल जाती है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- पूर्वाग्रह को कम करने की विधियों को जान सकेंगे |
- भारत में साम्प्रदायिकता को समझ सकेंगे।
- साम्प्रदायिकता के कारणों की खोज को जान सकेंगे |

- साम्प्रदायिकता को रोकने के उपाय को जान सकेंगे |

9.3 पूर्वाग्रह को कम करने की विधियां

यह समाज तथा व्यक्ति दोनों के लिए हानिकारक है | पूर्वाग्रह के कारण ही मानव जाति के लिए विभिन्न वर्गों जातियों, राष्ट्रों, सम्प्रदायों इत्यादि में एक दूसरे के प्रति द्वेष तथा हिंसात्मक भावना का विकास हो जाता है | इसके द्वारा जातिय पक्षपात जटिल रूप ले लेता है और कभी कभी राष्ट्रों के बीच तनाव इतने बढ जाते हैं कि उनको युद्ध की ओर घसीट लेते है | इसलिए हम कह सकते हैं कि पूर्वाग्रह को नियंत्रित रखना आवश्यक है, पूर्वाग्रहों का निर्माण काल मं ही यदि रोकथाम हो जाती है तब इनको रोकना अधिक आसान होता है | अत: समाज मनोवैज्ञानिक ने कुछ विभिन्न एवं तरीकों का वर्णन किया है जिसके द्वारा पूर्वाग्रह ओर इससे उत्पन्न भेद भाव को आसानी से कम किया जा सकता है। ऐसी प्रमुख विधियां निम्नांकित हैं –

1. **अन्तरसमूह सम्पर्क**

पूर्वाग्रहों को कम करने का सरल उपाय यह है कि जिन व्यक्तियों /समूहों में पूर्वाग्रह बन रहे हैं उनको आपस में एक दूसरे के सम्पर्क मे लाया जाए। इन समूहों में मेल जोल के ओर विचारेां के आदान प्रदान किये जायें। जब पूर्वाग्रही व्यक्ति तथा लक्ष्य व्यक्ति जो पूर्वाग्रह का निशान बनता है, एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आते है तो पूर्वाग्रही व्यक्ति को उनके बारे में समझने का अधिक मौका मिलता है| फलस्वरूप लक्ष्य के बारे में समझने का अधिक मौका मिलता है | फलस्वरूप लक्ष्य व्यक्ति के बारे में बहुत सारी गलत फहमियां अपने आप दूर हो जाती है | व्यक्ति में पूर्वाग्रह कम हो जाते हैं | विभिन्न समाज मनोवैज्ञानिकों ने इस तरह के अन्त वैयक्तिक सम्पर्क /अन्त: समूह सम्पर्क तीन परिस्थितियों में अधिक प्रभावकारी बतलाया है।

1 जब दोनों समूह के सदस्यों को समान स्तर प्राप्त होता है | इसके समर्थन में अमीर 1976 नाखेल तथा वार केल ने अपने अध्ययनों में किया है।

2 जब समूहों या व्यक्तियों के बीच सम्पर्क सतही न होकर वास्तविक एवं घनिष्ठ हो। वास्तविक एवं घनिष्ठ संबंधहोने से व्यक्ति नापसन्द समूह के सदस्यों को एक व्यक्ति के रूप में अधिक ओर रूढ़ियुक्तियों के रूप में कम देखता है फलस्वरूप पूर्वाग्रह में कमी आती है | इसके समर्थन में ब्लैक तथा मोटन 1979 एवं कुक 1969 ने अपने अपने अध्ययनों में किया है।

3 जब दोनो समूहों की सफलता पारस्परिक क्रियाओं पर निर्भर हो अर्थात जब लक्ष्य ऐसा होता है जिसकी प्राप्जित दोनो समूहों की संयुक्त क्रियाओं पर निर्भर हो तो ऐसी परिस्थिति मे इस ढंग के सम्पर्क से पूर्वाग्रह में तेजी से कमी आती है।

2. **शिक्षा द्वारा-** ट्रियानडिस (1972) फाईडली एवं उनके सहयोगियों (1979) ने अध्ययनों में पाया कि शिक्षा का स्तर उंचा होने से व्यक्ति में पूर्वाग्रह की मात्रा कम होती है | क्योंकि शिक्षा से व्यक्ति में उदारता बढ़ती है | प्रजातीय पूर्वाग्रह को कम करने के लिए 'सास्कृतिक ऐसीमीलेटर विधि का प्रतिपादन किया। इस विधि में पूर्वाग्रही व्यक्तियों के एक समूह को एक प्रशिक्षक दूसरी प्रजाति के लोगों के सामाजिक मानक तथा उनके जीवन शैली के बारे में बताता है, ताकि उस प्रजाती विशेष के व्यवहारों एवं अन्तरक्रियाओं का पूर्वाग्रही व्यक्ति

द्वारा ठीक ढंग से व्याख्या की जा सके तथा इनके मन में उस प्रजातीय से संबंधित किसी प्रकार की रूढिवादी विचार को हटाया जा सके। फैल्डमेन (1986) ने प्रजातीय पूर्वाग्रह को कम करने में सांस्कृतिक ऐसीमीलेटर विधि की भूमिका की सराहना की है।

3. **प्रचार द्वारा**

पूर्वाग्रहों को कम करने मे प्रचार और प्रसार के साधन जैसे टीवी, सिनेमा, रेडियो पत्र पत्रिकाओं आदि सहायक है | मेयर्स (1988) ने अपने अध्ययन मे पाया कि प्रजातीय पूर्वाग्रह को कम करने के ख्याल से बनायी गई फिल्मों को देखने से पूर्वाग्रही व्यक्तियों में करीब 60 प्रतिशत तक की कमी होती पायी गई। इसी प्रकार के एक अध्ययन (L.L. thurstone, 1933) में यह पाया कि चलचित्रो के माध्यम से 16 से 18 प्रतिशत पूर्वाग्रह कम हो जाते है | सिम्पमन एं यिंगर (1972_ ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि पूर्वाग्रह विरोधी प्रचार पूर्वाग्रह को कम करने में शिक्षा से भी अधिक प्रभावकारी होता है | क्योंकि इस तरह का प्रचार प्रसार अप्रत्यक्ष ढंग से व्यक्ति के पूर्वाग्रह कम करने के लिए प्रेरित करता है।

4. **सामाजिक विधान**

सामाजिक कानून बनाकर भी पूर्वाग्रह को कम करने के प्रयत्न किए गये है | संविधान में यह लिखा गया है कि जाति तथा लिंग के आधार पर किसी व्यक्ति को हानि नहीं होनी चाहिए। लेकिन खाली सामाजिक कानून बना देने से ही पूर्वाग्रहों की समाप्ति या कमी नहीं होगी। कानून समाज को तभी प्रभावित कर सकता है जबकि वह सामाजिक गतिमान का एक अंग बन गया हो यदि कोई वैधानिक प्रतिमान सामाजिक प्रतिमान नहीं बताता तो वह बिल्कुल असफल हो जायेगा। भारत मे हरिजनों से संबंधित कई तरह के पूर्वाग्रह मौजूद थे जिनमें एक प्रमुख पूर्वाग्रह छुआछुत का था। भारत सरकार ने सामाजिक विधान बनाकर छुआछूत को गैर कानूनी घोषित किया जिसके परिणमास्वरूप हरिजनों से छुआछूत संबंधी पूर्वाग्रह काफी कम हुए हैं | इसी तरह के जातिय पूर्वाग्रह को कम करने के लिए भारत सरकार ने अन्तरजातीय विवाह को कानून घाषित किया है और इस विधान को और अधिक प्रोत्साहन देने के लिए अन्तरजातीय विवाह करने वाले व्यक्तियों को आर्थिक प्रोत्साहन भी दिया जाने लगा है | इसी तरह से महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह को कम करने के लिए भारत सरकार ने अनेकों तरह के सामाजिक विधान बनाये हैं एवं सरकारी नौकरियों में आरक्षण देकर उनका सामाजिक आर्थिक स्तर उंचा करने का प्रयास किया है | मैयर्स 1988 ने अमेरिका जनसंख्या का सर्वे कर बताया कि प्रजातीय विभेद को रोकने से संबंधित विधान बनाने के बाद प्रजातीय पूर्वग्रह से ग्रसित व्यक्तियों की पूर्वाग्रह में 69 प्रतिशत की कमी आयी है।

5. **नागरिक संगठन -**

सरकार एवं समाजसेवी संस्थानों को चाहिए कि समाज में अलगाव विरोधी नीति का अधिक से अधिक क्रियान्वयन किया जाय ताकि समाज में व्याप्त भिन्न भिन्न तरह की पूर्वाग्रहों में काफी कमी आ जाय। हमारे समाज मे आज भी अलगाव की नीति काफी प्रचलित है | जिससे कुछ पूर्वाग्रहों सम्पोषण हो रहा है | जैसे आज भी देखा जा रहा है कि हरिजनों के लिए अलग अवासीय योजना चलायी जा रही है | इससे तो हरिजनो के प्रति पहले से चली आ रही पूर्वाग्रह और भी मजबूत हो जायेगी। अत: सरकार एवं समाजसेवी संस्थानों को चाहिए कि इस ढंग की

पृथक गृह परियोजना की जगह पर समाकलित गृह परियोजना चलाई जाये। उसी ढंग से सरकारी नौकरियों मे आरक्षण का आधार कोई ऐसी कसौटी हो जिससे सभी जाति के लोगों के बराबर लाभ मिले। इससे स्वाभवत: जातीय पूर्वाग्रह में कमी आयेगी।

अलगाव विरोधी नीति के परिणाम सभी देशों में उम्मीद के अनुसार नहीं आये। उदाहरणपूर्वक अमेरिका में स्कूलन अवर्ण भेदन प्रोग्राम के परिणाम मे पाया गया कि इससे श्वेत बच्चों में विभिन्नन प्रजाति के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति नही विकसित हुई स्टीफल वर्ण ने बताया कि स्कूल भेदन स्कूल में पढने के बावजूद भी निग्रो बच्चों के प्रति श्वेत बच्चों को पूर्वधारणा मेंकमी नहीं आती है।

6. व्यक्तित्व परिवर्तन प्रविधियां

पूर्वाग्रह को कम करने के लिए एक संतुलित परिपक्व एवं खुला विचार रखने वाले व्यक्तित्व का होना अनिवार्य है | समाज मनोवैज्ञानिको ने व्यक्तित्व में परिवर्तन मनोचिकित्सा की विभिन्न विधियों एवं विरेचन द्वारा करके उनमें व्याप्त पूर्वाग्रह को कम करने पर जोर दिया है | इन प्रविधियों द्वारा जब व्यक्ति के व्यक्तित्व में परिवर्तन आ जाते है तो वह अन्य जाति, धर्म एवं प्रजाति के व्यक्तियों के बारे में इस ढंग से सोचना प्रारंभ कर देता है | जिससे उनमें चली आ रही गलत फहमियां अपने आप दूर हो जाती है। फलत: उसकी पूर्वाग्रह में अपने आप कमी आ जाती है | एक्सलाईन (1948) ने एक अध्ययन किया है, जिसमें खेल चिकित्सा द्वारा बच्चों के व्यक्तित्व मे परिवर्तन लाकर उनकी प्रजातीय पूर्वाग्रह में कमी हुई है।

सेकर्ड तथ बैकमन (974) ने इन विधियों द्वारा पूर्वाग्रह में कमी करने में कुछ कठिनाइयों का आभास किया जो इस प्रकार है -

1- व्यक्ति के व्यक्तित्व में परिवर्तन लाना अपने आप में बहुत खर्चीली एवं समय लेने वाली प्रविधि है | इसका उपयोग कर पूर्वाग्रह कम करन एक टेढी खीर है | वास्तविकता यह है कि बहुत सारे व्यक्ति तो ऐसे होते है जो अपने व्यक्तित्व में परिवर्तन लाना ही नहीं चाहते हैं।

2- व्यक्तित्व मे परिवर्तन लाकर पूर्वाग्रह कम करना तभी संभव है जब सामाजिक परिस्थितियों जिसमें व्यक्ति रहता है जब सामाजिक परिस्थितियों जिसमेंव्यक्ति रहता है, में भी उचित परिवर्तन लाया जाये।

7. सामाजिक प्रतिमानों मे परिवर्तन

समाजिक प्रतिमानों मे परिवर्तन लाकर भी पूर्वाग्रह में कमी कर सकते हैं | हरिजनों के प्रति पूर्वाग्रहो की समाप्ति तभी हो सकती है जब अवमानना की जाए। जो सामाजिक प्रतिमान पहले था, उसके स्थान पर नया विरोधी प्रतिमान बनना चाहिए। जब कोई हरिजन प्रशान अधिकारी बन जाता है तो उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा स्वत: बढ़ जाती है | वह उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति होता है | वह प्रभावशाली तथा सामान्य व्यक्ति समझा जाता है | उसकी आय भी अब ज्यादा होती है | यह सब उसको उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा वाला व्यक्ति बना देते है | दूसरी ओर जब लोगों को अपनी जाति का ध्यान आता है तो वे इस व्यक्ति के प्रति दोरूखा व्यवहार कर सकते हैं | हरिजन प्रशासन अधिकारी को अब अधिकारी वर्ग तथा नागरिकों के दिमाग मेंव्याप्त संघर्षों को समझना चाहिए। अत: उसे दूसरे लोगों के मस्तिष्कों के संघर्ष तथा उनकी कुछ अभिव्यक्तियों के प्रति

संवदेनशील नहीं होना चाहिए। इन बातों की परवाह, न करता हुआ तथा संवेदनशीलता से दूर रहकर लोगों तथा संवेदनशील होकर लोगों की अधिक सहायता कर सकता है तथा अपने प्रशासनिक कार्य में भी सफलता प्राप्त कर सकता है | दूसरी ओर यदि वह अधिक संवेदनशील बन जाता है तो उसका जीवन दुखदायी तथा दयनीय हो जाता है | जैसा कि शेरिफ (1956) महोदय कहते है, ब्रह्म: समूहो के प्रति अभिवृत्तियों मेंस्थायी तथा अनवरत परिवर्तन तभी हो सकते है | जबकि ब्रह्म: समूहों के प्रति भिन्न प्रतिमान रखने वाले किसी नए संदर्भ के साथ व्यक्ति मनोवैज्ञानिक रूप से संबंधितहोता है | जब व्यक्ति के वर्तमान संदर्भ समूह में प्रतिष्ठित प्रतिमानों मे परिवर्तन होता है | यही कारण है कि गांधीजी की सामाजिक व्यवहार मे बडी पैनी दृष्टि थी और इस प्रकार से वे एक ऐसे सुधार कार्य मं सफलता प्राप्त कर सके जो हजारो साल से अवरूद्ध था। कांग्रेस दल, जो कि राष्ट्रवादी या सारे देश के लिए संदर्भ समूह बन गया। धन और शिक्षा की प्रतिष्ठा विभिन्न जातियो से आने वाले नेताओं ने अपने त्याग और बलिदान से हरिजनों के विरूद्ध अपने सभी पूर्वाग्रहों को उतार फेंका, तथा हरिजनों को अपना भाई और समुदाय का सामान्य व्यक्ति समझना। संदर्भ समूह के साथ तादात्मीकरण से ब्रह्म: समूहो के व्यवहार मे परिवर्तन आ सकता तथा इसी कारण भारत के शहरो तथा कस्बों में हरिजनों के साथ छूआछूत एवं अन्य भेदभाव व्यावहारिक रूप से समाप्त हो चुके हैं |

9.4 भारत में साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता अपने ही जातीय समूह के प्रति तीव्र निष्ठा की भावना है | साम्प्रदायिकता के कारण लोग अपने सम्प्रदाय/जातीय समूह को विशेष महत्व देते है और सम्पूर्ण समाज तथा राष्ट्र के हितों की अवहेलना करते हैं | साम्प्रदायिकता एक अन्तर धार्मिक संघर्षात्मक परिस्थिति पैदा करता है जिसमें आपसी घृणा, पक्षपात, पूर्वाग्रह तथा संदेह पाये जाते है | जिसके कारण सामाजिक तनाव उत्पन्न होता है | जब एक समुदाय के सदस्य दूसरे समुदाय के सदस्यों एवं धर्म के विरूद्ध विरोध करता है, तो उन्हें साम्प्रदायिक कहा जा सकता है | यह विरोध किसी विशेष समुदाय पर झूठे आरोप लगाने से लेकर उस समुदाय के लोगों को मारने, वीभत्स घटनाओं तक का होता है | साम्प्रदायिकता ऐसी संकीर्ण अभिवृत्ति है जो किसीर विशेष धर्म /सम्प्रदाय के लोगों में अपने स्वार्थों की पूर्ति करने के लिए की जाती है तथा उसके परिणामस्वरूप विभिन्न धार्मिक समूहों में संघर्ष पैदा हो जाते हैं।

साम्प्रदायिकता का अर्थ

भारत में इसे समझ साम्प्रदायिकता एक के अपने धार्मिक समूह के लिए अंधा वफादारी है, यह साम्प्रदायिक आधार पर एक अपील को उपर उठाने के लिए लोगों को लाभबंद करने के लिए एक उपकरण के रूप में वर्णित है | साम्प्रदायिकता धार्मिक कट्टरवाद के साथ जुड़ा हुआ है।

परिभाषा - साम्प्रदायिकता एक समुदाय विशेष के लोगों के लिए इस विश्वास पर आधारित अवधारणा है 'किसी खास धर्म को मानने वाले लोगों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हित भी समान होते हैं | यही वही धारणा है जो भारत में हिन्दू, मुसलमान, ईसाइयों और सिखों से अलग अलग और बिल्कुल स्वतंत्र रूप से हुआ है।

विपिनचन्द के अनुसार ''साम्प्रदायिकता का आधार ही यह धारणा है कि भारतीय समाज कई ऐसे सम्प्रदायों में बंटा हुआ है | जिसके हित न सिर्फ अलग है बल्कि एक दूसरे के विरोधी भी है |

साम्प्रदायिकता के जन्म के पीछे का विश्वास यह भी है कि राजनीतिक और आर्थिक से लेकर सामाजिक और सांस्कृति इरादों के लिए लोगों को सिर्फ धर्म की रस्सी में बांधकर आंका जा सकता है | दूसरे शब्दों में अलग अलग ही नहीं बल्कि धर्म से परे मामले में भी एक निश्चित समूह की तरह आचरण करेंगे क्योंकि उनका धर्म एक है | गोपीनाथ के अनुसार समूहों के हितों के बीच होने वाले स्वभाव का रूप विध्वन्सक और दंगाई हो जाए तो वह साम्प्रदायिक कहलाता है।

असगर अली इंजीनियर के अनुसार यह लोगों को विभाजित करके शक्ति ध्यान केन्द्रित करने के लिए उपरी हमारे हाथों में एक साधन है।

एस.एल. शर्मा के अनुसार, साम्प्रदायिकता शब्द का प्रयोग व्यापक तथा सीमित दोनों रूपों में किया जाता है | व्यापक धर्म में यह दो या अधिक साम्प्रदायों में प्रतिरोध को व्यक्त करता है तथा ये सम्प्रदाय नृजातीय, प्रजातीय धार्मिक या जातीय आधार पर हो सकते है | विशिष्ट अर्थ में यह दो या अधिक धार्मिक सम्प्रदायों में प्रतिरोध व्यक्त करता है | बलराज मधोक के शब्दों में, साम्प्रदायिकता कुछ धार्मिक वर्गों का राष्ट्र अथवा अन्य धार्मिक वर्गों का राष्ट्र अथवा अन्य धार्मिक वर्गो की कीमत पर अपने लिए विशेष राजनीतिक अधिकार एवं अन्य सुविधाओं का मांग करना है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि साम्प्रदायिकता वह संकीर्ण अभिवृति है | जो एक धर्म अथवा सम्प्रदाय के लोगों में अपने आर्थिक एवं राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिये पायी जाती है तथा उसके परिणामस्वरूप विभिन्न धार्मिक समूहों में तनाव एवं संघर्ष पैदा होते हैं।

जाति, संस्कृति, भाषा तथा धर्म में अनेकता जहां एक तरफ भारत की अपनी शक्ति है वहीं दूसरी तरफ उसकी सबसे बडी कमजोरी भी है | अनेक सामाजिक विभाजन बंटकर के कारण अन्तर सामूहिक संबंधोंमे कड़वाहट आयी है तथा आक्रामक तनावों की उत्पत्ति हुई है | भारत पाकिस्तान बंटवार बंटवारा हुआ जिसमें मानवता के इतिहास में पहली बार लाखों बेघर हो गये तथा दो लाख लोगों की हत्या हुई। साम्प्रदायिकता के कारण ही मानव सभ्यता के सबसे बड़े पुजारी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की जान गई। हिन्दुओं और सिक्खों के बीच साम्प्रदायिक तनाव (1985) में हुआ सिख द्वारा हुई। सामाजिक तनाव तथा साम्प्रदायिकता जैसी समस्याओं के विभिन्न आयामों के अध्ययन के माध्यम से ही उपयुक्त रीति से इन तनावोंमें कमी लायी जा सकती है | इसके लिए आवश्यक है कि सभी समाज, वैज्ञानिक एक जुट होकर इस समस्या के विविध पक्षों का अध्ययन करें।

9.5 साम्प्रदायिकता के कारणो की खोज

गृह विभाग की रिपोर्टस को देखा जाये तो पता चलता है कि साम्प्रदायिक तनाव या उपद्रव गाय के वध के कारण, मस्जिद के सामने संगीत से ,होली के समय मुसलमानों पर रंग वाला पानी डालने से तथा मंदिर/मस्जिद का अपमान करने इत्यादि से शुरू होते हैं | पहले साम्प्रदायिकता की व्याख्या ऐतिहासिक पूर्वाग्रहों तथा धार्मिक कटुता के आधार पर दी जाती थी परन्तु अब अनेक नवीन कारण इसके लिए उत्तदायी माने जाते हैं।

अहमद (1983) ने पिछले दो दशकों में हुए दंगों की अनेक विशेषताओं का वर्णन किया है जो निम्नलिखित है-

1 नये ढंग अपेक्षाकृत लम्बी अवधि तक चलते हैं।

2 उसमें अपेक्षकृत अधिक जन धन की हानि होती है।

3 ये अत्यधिक समुचित ढंग से सुनियोजित होते हैं।

4 ये अपेक्षाकृत बड़े व्यावहारिक तथा औद्योगिक नगरों में अधिक घटित होते हैं |

सक्सेना (1984) का कथन है कि सात ऐसी महत्वपूर्ण दशाएं हैं जिनकी उपस्थिति मे सामाजिक तनाव साम्प्रदायिक दउंगों के रूप मं परिवर्तित हो जाती है, ये है

1. सम्प्रदाय अथवा समूह मे उच्चस्तरीय सापेक्षित वंचन
2. सरकार का ढुलमुल विधि व्यवस्था
3. संचार के अवरूद्ध स्रोत
4. समूह विशेष का असुरक्षा की भावना
5. समूह के सदस्यों को मनुष्यत के गुणों से वंचित करने का अत्यधिक प्रयास
6. विश्वास तथा परम्पराओं द्वारा हिंसा का अनुमोदन तथा
7. हिंसा के यंत्रो की सुलभता।

साम्प्रदायिकता के कारण

साम्प्रदायिकता एक जटिल भावात्मक तथ्य को प्रकट करती है | अनेक विद्वानों ने उसके कारणो की खोज का प्रयास किया है | परिणमात: कई स्पष्टीकरण भी उभरे हैं। कुछ ने आर्थिक विषमता की तो कुछ न विभिन्न सम्प्रदायों के बीच महत्वकांक्षाओं और उभरते हुए वर्गों को साम्प्रदायिक दंगों के लिए दोषी ठहराया है | इन विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर साम्प्रदायिकता के निम्नलिखित प्रमुख कारणों का वर्णन किया जा सकता है।

1 धार्मिक संकीर्णता - भारत मे साम्प्रदायिकता के विकास का एक कारण बलपूर्वक धर्म प्रचार कहा जा सकता है | मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के बाद कुछ मुसलमान शासकों ने हिन्दुओं को मुसलमान बनाना शुरू किया। इससे हिन्दुओं में संकीर्णता एवं घृणा की भावनाएं बढी। पुर्तगालियों तथा अंग्रेजें ने भी शासक को अधिक मजबूत बनाने के लिए पादरियों का सहारा लिया और इसाई धर्म का प्रचार किया तथा धर्म परिवर्तन को प्रोत्साहित किया। आज यही धार्मिक संकीर्णता की प्रबल भावना हमें हिन्दुओं, मुस्लिमों, ईसाईयों, सिक्खों के बीच पाए जाने वाले संबंधोंमें देखने को मिलता है | प्रो. इम्तियाज अहमद (2002) ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा है कि पिछले डेढ दो दशक क दौरान हमारे देश में सामाजिक सांस्कृति और राजनीतिक वातावरण मे जा संकीर्णता आती जा रही है (2002) में अहमदाबाद और गोधरा की साम्प्रदायिकता घटना उसी की कडी है और कुछ हद तक इसका परिणाम भी है।

2 अपने धर्म के प्रति श्रेष्ठता एवं सम्मान की धार्मिक विश्वासों मे इतना जकड चुका है कि उसमें धार्मिक सहिष्णुता बिल्कुल नहीं है | आज विविध प्रकार के सेवा कार्य भी धर्म के नाम पर होते हैं | धर्मशालाएं, स्कूल, मंदिर आदि धर्म पर ही आधारित हो। आज धर्म और उसके कार्य शक्ति संतुलन से भी संबंधितहो गए है, इन सबसे साम्प्रदायिकता को बढावा मिलता है।

3 **दोषपूर्ण नेतृत्व -** वर्तमान मे राजनीतिक नेता नेतृत्व के लिए धर्म का सहारा लेते है और धार्मिक नेता राजनीति में अवैध रूप से प्रविष्ट हो रहे हैं | हिन्दुओं मे यह भावना पैदा हो गई है कि बहुमत में होते हुए भी उत्पीड़न के शिकार और सरकार अल्पमानों को तुष्ट करने में लगी हुई है | इसलिए और कितना सहा जाए? दूसरी ओर मुसलमानों अल्पसंख्यक होने के कारण बहुसंख्यकों द्वारा अपने उत्पीड़न की बात करते हैं |

4 **उग्रवादी विचारधारा -** साम्प्रदायिक तनाव के लिए उग्रवादी विचारधारा तथा इसमें विश्वास रखने वाले उग्रवादी नेताओं की भूमिका से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। प्रो. इम्नियाज अहमद ने गुजरज में दंगों के संदर्भ में इस तथ्य को ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है कि भारत में राज्य का जो ढांचा है, वह बुनियादी तौर पर धर्मनिपेक्षता और सामाजिक संतुलन पर आधारित है | यहां कि अधिकतर जनता इस अवधारणा को स्वीकार करती है और इसी के अनुरूप आचरण भी करती है | उनकी सार्वजनिक चेतना भी इसकी पक्षधर है, लेकिन समुदायों के हाशिए पर उग्रवादी विचारधारा रखने वाले लोगे है, वे इससे भिन्न राय रखते है | ऐसे लोग इस समय देश के वातावरण पर हावी है और इसी के कारण राज्य की अपने नागरिकों की सुरक्षा देने की क्षमता प्रभावित हुई हैं |

5 राजनैतिक स्वार्थ - भारत मे स्वतंत्रता के बाद से ही राजनीति ने साम्प्रदायिकता का संरक्षण किया है | धर्म का राजनीतिकरण हुआ है | अधिकांश विद्वानों के अनुसार शाहबानों तथा रामजन्यभूमि बाबरी मस्जिद विवाद इसी राजनीतिकरण तथा राजनैतिक संरक्षण का परिणाम है | राजनीतिक स्वार्थ के कारण भी साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन मिलता है, अंग्रेजो ने शासन चलाने के लिए 'फुट डालो और राज करो' की नीति को अपनाया, इसलिए उन्होंने जातिभेद और धर्म भेद का सहारा लिया। स्वतंत्रता के बाद भारतीय नेताओं और विभिन्न वर्गों नेभी अपने व्यक्तिगत राजनीति हित की पूर्ति के लिए इसी सिद्धान्त का सहारा लिया, जिससे जातिवाद और साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है |

6 मनोवैज्ञानिक कारण - प्राय: अल्पसंख्यकों और पिछड़े वर्गों में बहुसंख्यक द्वारा सताए जाने की भावना होती है | इसके अतिरिक्त अपनी अस्मिता की मिटने का भी खतरा उन्हें महसूस होता है | कभी कभी अपने सामाजिक कष्टों के लिए दोषारोपण के लिए अन्य सम्प्रदाय को चुन लिया जाता है और अपनी भग्नाशाअें का आक्रोश उन पर निकाल लिया जाता है | अन्त में एक सम्प्रदाय द्वारा दूसरे को सबक सिखाने की प्रवृति को साम्प्रदायिकता की आग में घी का काम करती है।

7 आर्थिकी एवं सामाजिक विषमता - आर्थिक एवं सामाजिक स्तर की दृष्टि से विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में विषमता है, विशेषत: विकास की प्रक्रिया में कुछ सम्प्रदाय आगे बढ गये हैं तो कुछ इस दौड़ में पिछड़ गये है | इसलिए आर्थिक रूप से पिछड़े सम्प्रदायों में यह भावना आ जाती है कि वे सापेक्षित रूप से उस सब से वंचित कर दिये गये है जो उन्हें देय था। इसलिए उन हितों की पुन: प्राप्ति के लिए या दोषों को दण्डित करने के लिए धर्म का एक यंत्र के रूप में प्रयोग किया जाता है | लुईस ड्यमों ओर सतीश सवरवाल जैसे विद्वानों ने सामाजिक पहचान विशिष्टता तथा साम्प्रदायिक पृथक्ककरण को उभारने में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है | अक्सर अली इंजिनियर ने अध्ययनों के निष्कर्षों के आधार पर बताया कि मुसलमानों व हिन्दुओं में आर्थिक प्रतियोगिता ने साम्प्रदायिकता को बढावा दिया है | इम्तियाज अहमद ने मुरादाबाद तथा

अलीगढ में साम्प्रदायिक दंगों का एक कारण पहले से स्थापित हिन्दू औद्योगिक वर्ग एवं नवेदित मुस्लिम उद्दमिता वर्ग में आर्थिक प्रतियोगिता बताया है।

8 अन्तर्राष्ट्रीय कारक -आजकल किसी देश में साम्प्रदायिक दंगों में और साम्प्रदायिकता के प्रोत्साहन में किसी विदेशी शक्ति का हाथ होना असामान्य घटना होना नहीं रह गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति प्रत्यक्ष रूप में साम्प्रदायिकता का महत्वपूर्ण कारक बन गई है | हमारे देश में कश्मीर समस्या, असम समस्या, आयोध्या समस्या और देश में फैले हिन्दु –मुस्लिम दंगों के पीछे विदेशी हाथ की भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता है।

9.6 साम्प्रदायिकता को रोकने के उपाय

साम्प्रदायिकता का स्पष्टीकरण बहुकारणीय हो सकता है | वह केवल धार्मिक कारको से संबंधितहै क्योंकि कोई भी साम्प्रदायिक दंगा धार्मिक विचारों की पूजन विधियों की श्रेष्ठता को लेकर नहीं होता। वे तो विवाह या तलाक के कानून को लेकर या किसी विशेष अवसर पर दूसरा सम्प्रदाय बाजे बताए या न बजाए। प्रशासनिक सेवाओं में प्रतिनिधित्व कम है या ज्यादा आदि। प्रश्नों के लेकर घटित होते हैं जो कि पूर्णत: लैंकिक प्रश्न है | इसलिए इनके कारणों और उपचार की खोज भी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि में ही खोजनी होगी।

डी.आर. गोयल ने इन्हें रोकने के निम्नलिखित तीन उपायों का उल्लेख किया है -

1 प्रशासनिक व्यवस्था प्रभावशाली बनाई जानी चाहिए कि साम्प्रदायिक तनावों का पुर्वानुमान लगाया जा सके तथा इन्हें रोकने के लिए कठोर कदम उठाये जा सकें।

2 साम्प्रदायिक तत्वों को पहचान कर उनका भण्डा फोड करना चाहिए ताकि संदेह की स्थिति में जनता ऐसे तत्वो का साथ न दें।

3 राष्ट्रीयता के बारे में साम्प्रदायिक विचारों का मुकाबला राजनीतिक प्रचार द्वारा किया जाना चाहिए। शिक्षा संस्थाअें को इन तत्वों का विरोध करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

इन सब उपायों से अधिक कारगर साम्प्रदायिक संगठनों पर रोक लगाना तथा उनकी गतिविधियों पर निरन्तर ध्यान रखने की आवश्यकता है | उन प्रादेशिक दलों का जो कि साम्प्रदायिकता अथवा प्रादेशिकता के नाम पर जनता को गुमराह कर रहे है, राजनीतिक स्तर पर मुकाबला किया जाना चाहिए। भारतीय राजनीति तथा राजनीतिक दलों की पूर्ति के लिए नहीं करना चाहिए। इन सब उपायों द्वारा साम्प्रदायिक भावनाओं को रोका जा सकता है।

9.7 सारांश

समाज मनोवैज्ञानिकों ने पूर्वाग्रह को कम करने के अनेकों उपायों का वर्णन किया है जिनमें अन्तत: समूह सम्पर्क, शिक्षा पूर्वाग्रह विरोधी प्रचार, असंगत भूमिका सामाजिक विधान, अलगाव विरोधी नीति तथा व्यक्तिगत परिवर्तन विधियां महत्वपूर्ण है।

साम्प्रदायिकता अपने ही जातिय समूह के प्रति तीव्र निष्ठा की भावना है | इसके कारण एक अन्तर धार्मिक परिस्थिति पैदा होती है जिसमें पारस्परिक घृणा, पक्षपात, पूर्वाग्रह तथा संदेह पाये जाते हैं जिससे सामाजिक तनाव उत्पन्न होता है।

9.8 कठिन शब्द

- **साम्प्रदायिकता -** साम्प्रदायिकता एक समुदाय विशेष के लोगों के लिए इस विश्वास पर आधारित अवधारणा है 'किसी खास धर्म को मानने वाले लोगों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हित भी समान होते हैं|

9.8 अभ्यास प्रश्न (निंबंधात्मकप्रश्न)

- क्या पूर्वाग्रह को कम किया जा सकता है, विवेचना कीजिए।
- पूर्वाग्रह शिक्षा द्वारा कैसे कम करेगे ?
- साम्प्रदायिकता से आप क्या समझते है ?
- भारत में साम्प्रदायिकता के मुख्य कारण क्या है ?
- भारत में साम्प्रदायिकता को रोकने के उपाय बताइये।

9.10 संदर्भग्रंथ

- सिंह अरूण कुमार 2010, समाज की रूपरेखा, मोतीलान बनारसी दास, दिल्ली
- लाल बच्चन त्रिपाठी, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, हर प्रसाद भागर्व, आगरा
- कुप्पुस्वामी वी. सामज मनोविज्ञान एक परिचय हरियाणा, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, चण्डीगढ़

इकाई - 10

समूह : अर्थ, प्रकार, संरचना एवं कार्य

Group : Its Meaning, Types, Structure and Functions of Group

इकाई की संरचना (Structure of Unit)

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्देश्य

10.2 समूह का अर्थ

10.3 समूह की विशेषताएं

10.4 समूह की संरचना

10.5 समूह के प्रकार

10.6 समूह के कार्य

10.7 सांराश

10.8 कठिन शब्द

10.9 अभ्यास प्रश्न

10.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)

10.0 प्रस्तावना (Introduction)

संसार में सभी व्यक्ति अपना जीवन अकेले व्यतीत नहीं करते, किसी न किसी के साथ ही रहते हैं | प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है | वह अपने व्यवहार एवं व्यक्तित्व से दूसरों को प्रभावित करता है, साथ ही प्रभावित भी होता है | वह जिन व्यक्तियों में रहता है उनसे उनके सामाजिक सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं और इस प्रकार व्यक्ति एक समूह का सदस्य बन जाता है या एक समूह का निर्माण होता है | सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक समूहों के विस्तृत एवं जटिल जाल का अध्ययन मानव व्यवहार को समझने के लिए आवश्यक है |

मनुष्य के अकेले जीवन न बिताकर अन्य मनुष्यों के साथ समूह में रहने के दो प्रमुख कारण है – प्रथम, वह सामाजिक प्राणी होने के कारण समूह में रहना पसन्द करता है तथा दूसरा, उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियों पर आश्रित होना पडता है | मनुष्य स्वयं अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में **एड्वर्ड सेपियर** (Edward Sapir) का कहना है कि समूह का निर्माण इस तथ्य पर आधारित है कि कोई न कोई स्वार्थ उस समूह के सदस्यों को एक सूत्र में बांधे रखता है | विभिन्न प्रकार के समूहों से ही समाज का निर्माण होता है | प्रत्येक व्यक्ति समाज का प्रतिफल होता है और उसका स्वरुप सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित है |

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार – प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक सम्बन्ध की उपज है |

मानव के व्यक्तित्व के अंग जैसे – अभिवृतियाँ, विश्वास, मूल्य, आदर्श, नैतिक विचार आदि समाज की ही देन है | मानव समाज के बिना अपना विकास नहीं कर सकता, वह जो भी है समाज के सन्दर्भ में ही है | मनुष्य सामाजिक प्राणी इसलिए है कि उसकी इच्छाओं और स्वार्थों की पूर्ति केवल सामाजिक समूहों द्वारा हो सकती हैं |

10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- समूह का अर्थ समझ सकेंगे।
- समूह की विशेषताएं समझ सकेंगे।
- समूह की संरचना समझ सकेंगे।
- समूह के प्रकार समझ सकेंगे।
- समूह के कार्य को समझ सकेंगे।

10.2 समूह का अर्थ (Meaning of Group)

सामान्य अर्थों में समूह का अर्थ व्यक्तियों के संग्रह से लिया जाता है परंतु किसी स्थान पर व्यक्तियों की भीड को समूह की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योकिं उन व्यक्तियों में परस्पर सामाजिक सम्बन्धों व चेतना का अभाव होता है | चेतना के अभाव में परस्पर सम्बन्ध स्थापित नहीं होते। समूह के लिए अंर्तक्रिया तथा संचार का होना आवश्यक है |

किसी समूह को समूह तभी कहा जा सकता है जब उसके सदस्य अपने आप को उस समुदाय का भाग समझे और उनमें कुछ समानताएं हो और वे एक दूसरे से परस्पर सम्बन्ध रखते हैं |

समूह का निर्माण सामान्य स्वार्थों के कारण होता है |

एडवर्ड सैपिर के अनुसार – "किसी समूह का निर्माण इस तथ्य पर आधारित होता है कि कोई न कोई स्वार्थ समूह के सदस्यों को बांधे रखता है ।"

समूह व्यक्तियों द्वारा निर्मित होता है सबसे प्रारम्भिक समूह में केवल दो व्यक्ति होते हैं हजारों व्यक्तियों के भी समूह होते हैं | जैसे – मजदूर संगठन, राजनीतिक पार्टियां इत्यादि ।

समूह के परिभाषाएं अनेक विद्धानों ने इस प्रकार दी है –

मैकाइवर एवं पैज के अनुसार – "समूह से तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों के संग्रह से है जो एक दूसरे के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं |"

ऑगबर्न तथा निमकॉफ के अनुसार – "जब दो या अधिक व्यक्ति एक साथ रहते हैं तथा एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तो कहा जाता है कि एक सामाजिक समूह निर्मित हो गया।"

बॉटोमोर के अनुसार – "सामाजिक समूह व्यक्तियों के इस योग को कहते हैं जिसमें (i) विभिन्न व्यक्तियों के बीच निश्चित सम्बन्ध होते हैं और (ii) प्रत्येक व्यक्ति समूह के प्रति और उसके प्रतीकों

के प्रति सचेत होता है | दूसरे शब्दों में एक सामाजिक समूह में कम से कम अल्पविकसित संरचना और संगठन (नियमों और संस्कारों सहित) तथा उसके सदस्यों में चेतना का एक मनोवैज्ञानिक आधार होता है।"

बेगार्ड्स के अनुसार – "एक सामाजिक समूह दो या अधिक व्यक्तियों की ऐसी संस्था को कहते हैं जिसमें ध्यान के सामान्य लक्ष्य होते हैं, जो एक दूसरे को प्रेरणा देते हैं, जिनमें सामान्य आस्था हो, जो एक सी क्रियाओं में सम्मिलित होते हैं |"

गिलिन एवं गिलिन के अनुसार – "सामाजिक समूहों के विकास हेतु एक ऐसी अनिवार्य स्थिति होती हैं, जिसमें सम्बन्धित व्यक्तियों में अर्थपूर्ण अंतः उत्तेजना और अर्थपूर्ण प्रत्युतर सम्भव हो सके एवं जिसमें उन सबका सामान्य उत्तेजकों अथवा हितों पर ध्यान टिका रहे और सामान्य चालकों, प्रेरकों व संयोगों का विकास हो सके।"

रॉबिन एवं विलियम्स के अनुसार – "एक सामाजिक समूह मनुष्यों के इस निश्चित योग को कहा जाता है जो परस्पर सम्बन्धित कार्य करते हैं और जो अपने द्वारा या दूसरों द्वारा परस्पर अंतःक्रिया की इकाई के रुप में मान्य होते हैं |"

अभ्यास प्रश्न – 1

1. प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक सम्बन्ध की उपज है | (सत्य \असत्य)
2. व्यक्तियों के संग्रह को ही समूह कहा जाता है | (सत्य \असत्य)

अतः यह कहा जा सकता है कि समूह दो या दो से अधिक व्यक्तियों का जोड या मिलान है जिसमें व्यक्ति स्वयं को एक इकाई के रुप में अनुभव करते हैं तथा किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अंतर्क्रिया करते हैं | एक दूसरे को प्रेरित करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य सदस्यों का सहयोग करते हैं |

समूह केवल व्यक्तियों का संग्रह मात्र ही नहीं है | इनके मध्य पारस्परिक सम्बन्धों का होना अत्यावश्यक है | वास्तव में, यह उन लोगों का समुच्चय है जो आपस में किसी न किसी तरह की अंतर्क्रिया करते हैं और इसीलिए वे स्वयं को एक-दूसरे से जुडे हुए अनुभव करते हैं |

समूह की विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समूह हेतु दो या दो अधिक व्यक्तियों में अंतर्क्रिया एवं सामाजिक सम्बन्धों का होना अनिवार्य है |

वस्तुतः समूह के तीन तत्व होते हैं –

1. दो या दो से अधिक व्यक्तियों का संग्रह |
2. उनमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्धों का होना |
3. उनकी क्रियाओं का आधार किसी सामान्य हित या लक्ष्य का होना |
4. भौतिक समीपता का होना |
5. उनमें परस्पर अंन्तःक्रिया का होना |

10.3. समूह की विशेषताएं (Characteristics of Group)

एक समूह की सामान्य विशेषताएं निम्नलिखित है –

1. समूह व्यक्तियों का संग्रह है । प्रत्येक समूह को निर्मित होने के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होती हैं |
2. समूह के सदस्यों के मध्य अंतर्क्रिया होती हैं | उनमें परस्पर **संचार के कुछ विशिष्ट तरीके** होते हैं |
3. समूह की अपनी सामाजिक संरचना होती हैं | समूह चाहे औपचारिक हो या अनौपचारिक, इस संरचना में व्यक्तियों की **स्थिति** निर्धारित होती हैं और उससे सम्बन्धित भूमिका व्यक्ति को निभानी पडती हैं | समूह में उसकी कार्यप्रणाली, भूमिका, पद एवं अधिकार तय होते हैं|
4. समूह में **कार्यात्मक विभाजन** होता है | समूह में संगठन को बनाए रखने के लिए प्रत्येक सदस्य विविध भूमिका निभाते है, कार्य करते हैं |
5. समूह में **सामान्य हित या स्वार्थ की भावना** होती हैं | सभी सदस्यों के स्वार्थ समान होते हैं तभी उनके सम्बन्धों में ढृढता रहती हैं तथा संगठन रहता है |
6. समूह की **स्वयं की सत्ता** होती हैं | समूह का आधार सामूहिक व्यवहार होता है | प्रत्येक व्यक्ति का समूह के नियमों, अस्तित्व पर पूरा विश्वास होता है तथा उसके सामने व्यक्ति का अस्तित्व गौण होता है इसी भावना से समूह को स्थायित्व तथा संगठन प्राप्त होता है |
7. समूह की **सदस्यता ऐच्छिक** होती हैं – यह व्यक्ति की व्यक्तिगत रुचि तथा लक्ष्यों की प्रकृति पर निर्भर करता है कि वह किस समूह का सदस्य बनेगा ।
8. समूह में **सामाजिक मानदंड** महत्वपूर्ण होते हैं, इन्हीं के द्वारा वह अपने सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करता है | इन्हीं आदर्शों, मूल्यों, मानदंडों के कारण सदस्यों के व्यवहार में एकरुपता रहती है | समूह के नियमों को न मानने या मानने पर वे दण्डित या पुरुस्कृत किए जा सकते हैं |
9. समूह एक **मूर्त संगठन** होता है | समूह समान उद्देश्यों वाले व्यक्तियों का संकलन है | चूंकि यह व्यक्तियों का संकलन है अतः यह मूर्त होता है |
10. समूह में **सम्मान मूल्य** तथा अभिवृतियों का होना आवश्यक है |
11. **पारस्परिक आश्रितता** समूह के निर्माण के लिए आवश्यक होती हैं | समूह के निर्माण के लिए समूह सदस्यों में पारस्परिक सम्बन्धों की बहुत आवश्यकता है | अर्थात समूह का प्रत्येक सदस्य दूसरे की उपस्थिति से प्रभावित होता है या उसे प्रभावित करता है |
12. समूह के सदस्य **समान आवश्यकताओं, लक्ष्य या उद्देश्यों** के लिए कार्य करते हैं तथा सभी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता करते हैं |
13. समाज में समूह के सदस्यों के **व्यवहार में समानता, एकरुपता** पाई जाती हैं ऐसा इसलिए है क्योकिं समूह सदस्यों के स्वार्थों, आदर्शों एवं मूल्यों में समानता होती हैं |
14. समाज में समूह के सदस्यों के बीच **एकता की भावना** पाई जाती हैं | वे परस्पर "हम" के भावना से जुडे रहते हैं | निकटता, भाईचारा, सहयोग से समूह के सदस्यों को बाहरी शक्तियों से मुकाबला करने की प्रेरणा मिलती हैं |

एक समूह का निर्माण निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए होता है –

1. समाज में अपनी पहचान और सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए।
2. व्यक्तिगत और विशिष्ट लक्ष्य प्राप्ति हेतु।

3. साहचर्य और वार्तालाप हेतु।
4. भावात्मक और शारीरिक सुरक्षा हेतु।
5. नेतृत्व एवं निर्णय हेतु।
6. समाज में स्तर सुनिश्चित करने एवं बनाये रखने के लिए।
7. व्यवहार के मानदण्डों को सीखने-सिखाने हेतु।

अभ्यास प्रश्न – 2

1. समूह में विशेषताएं होती हैं –
   अ) कार्यात्मक विभाजन
   आ) अपनी सामाजिक संरचना
   इ) ऐच्छिक सदस्यता
   ई) उपरोक्त सभी
2. समूह में सदस्यों के अपने उद्देश्य होते हैं। (सत्य\असत्य)

10.4. समूह संरचना (Structure of Group)

किसी भी तत्व की संरचना उसके भागों का औपचारिक क्रम है। प्रत्येक समूह की संरचना होती हैं। विभिन्न समूह संरचना के आकार एवं प्रकार में भिन्नता रख सकते हैं जैसे प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व संरचना के आकार अथवा प्रकार में विभिन्नता रखते हैं। साधारण रुप में हम एक समूह के भागों को उसके सदस्य व्यक्तियों के रुप में विचार करते हैं। अर्थात इसके साथ ही हम समूह को एक सम्बन्धित भागों के संस्थान के रुप में विचार करते हैं जहॉ प्रत्येक सदस्य की भूमिकाये है। इस प्रकार जब हम भूमिका और स्थिति के रुप में समूह संरचना की धारणा की बात करते हैं तो "समूह संरचना एक समूह में सम्बन्धित स्थितियों के संग्रह का एवं सम्पूर्ण भूमिका सम्बन्धी प्रतिमानों का, जो उन स्थितियों के अधिकारियों के बीच में होते हैं, का संकेत देती हैं।" इस रुप में हम समूह को आपस में सम्बन्धित स्थितियों एवं भूमिकाओं का संस्थान कह सकते हैं।

प्रत्येक समूह अथवा प्रत्येक प्रकार के समूह में एक विशिष्ट प्रकार की भूमिकाओं का संग्रह होता है। समूह के सदस्यों की योग्यता के स्तर और उसके अनुसार उनमें कार्य वितरण, सदस्यों के व्यक्तित्व की विशेषताओं के प्रतिमान इत्यादि समूह के कार्य या संरचना कार्य को सम्पन्न करने में सहायक या रुकावट हो सकते हैं।

समूह के सदस्यों की अभिप्रेरणाओं का स्तर एवं भिन्नता भी महत्वपूर्ण है।

समूह सरंचना को स्पष्ट करने में निम्न तत्व आधार का कार्य करते हैं-

कार्य संरचना – समूह की संरचना में पहला मुख्य तत्व है- कार्य संरचना। समूह के श्रम विभाजन या कार्य के सम्बन्ध में उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य यह है कि अलग-अलग भूमिकाओं की प्रकृति क्या है और कार्य –भूमिकाओं के संग्रह के संघटन का प्रतिमान क्या है। कार्य सम्बन्धी क्रियाओं के संदर्भ में भूमिकाओं में विभिन्नताएं एवं संगठन एक समूह की संरचना को स्पष्ट करने का मुख्य आधार है।

शक्ति संरचना – एक समूह के सभी सदस्यों की शक्ति की मात्रा अर्थात शक्ति सरंचना को, समूह संरचना को स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण मानते हैं। एक औपचारिक समूह में प्रत्येक भूमिका सदस्य की

स्थिति (सत्ता या शक्ति के अनुसार) के अनुसार निर्धारित होती है | अनौपचारिक समूह में शक्ति के विभिन्नता उतनी ही मुख्य होती है |

संचार संरचना – समूह संरचना के वर्णन का तीसरा आधार संचार सम्बन्धों के प्रतिमान है जो सदस्यों के बीच में होते हैं | एक ऐसा समूह जिसमें व्यक्ति सरलता से एक दूसरे से सम्पर्क रखते हैं और समूह के उद्देश्यों और क्रियाओं को शीघ्रता से एक-दूसरे को संचारित कर देते हैं उनमें भिन्न होता है जहॉ समूह के सदस्यों के आपसी सम्पर्क एक जटिलता लिए हुए होते हैं | संचार के प्रतिमान समूह की संरचना को प्रभावित करती है |

मित्रता अथवा भावात्मक सरंचना–

समूह की भावात्मक संरचना को व्यक्ति के रुप में ही समझा जा सकता है न कि भूमिका के रुप में। समूह संरचना का यह तत्व स्पष्ट करता है कि विभिन्न समूह में सदस्यों के बीच में मित्रता अथवा भावात्मक एकता के स्तर भिन्न होते हैं |

स्पष्ट है कि समूह की संरचना व्यक्तियों की भूमिका के संग्रह द्वारा समझी जा सकती हैं | समूह में कार्य संरचना, शक्ति तथा संचार सरंचना समूह संरचना को समझने में मदद करती हैं | क्योकिं एक समूह में जिस प्रकार श्रम का विभाजन होता है, जिस प्रकार से विभिन्न भूमिका श्रम के विभिन्न पक्षों से अथवा एक भूमिका एक विशिष्ट पक्ष से सम्बन्ध रखती हैं वह समूह की बनावट को स्पष्ट कर देती हैं | इसी प्रकार विभिन्न भूमिकाओं की शक्ति, जो समूह में उनकी स्थिति के कारण होती हैं, वह भी समूह की बनावट पर प्रकाश डालती है |

समूह में किस प्रकार विभिन्न भूमिकाओं के बीच में संचार होता है, विभिन्न भूमिकायें संचार के क्या मार्ग अपनाती हैं इन पर भी समूह संरचना निर्भर होती हैं | इन तीनों के अतिरिक्त सदस्यों के व्यक्तिगत सम्बन्ध अर्थात मित्रता भी समूह संरचना को स्पष्ट करती है |

समूह की संरचना में समूह का आकार, समूह का संयोजन, समूह के सदस्यों का स्तर, समूह मानदण्ड, भूमिकायें, समरुपता तथा सांमजस्य इत्यादि तत्व भी सम्मिलित होते हैं |

10.5. समूह के प्रकार (Types of Group)

समाज में विद्यमान विभिन्न समूहों की अपनी अलग-अलग विशेषताएं होती हैं | इन्हीं के आधार पर प्रमुख समाजशास्त्रियों ने समूहों का वर्गीकरण किया है | सामाजिक समूहों के अनेक वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर समाजशास्त्रियों द्वारा दिये गये है | यहॉ कुछ वर्गीकरण प्रस्तुत किये गए है-

1. **इच्छा या अनिवार्यता के आधार पर** – **वार्ड** तथा **गिडिंग्स** ने इस आधार पर समूह को दो भागों में बांटा -

   (i) ऐच्छिक (ii) अनिवार्य समूह

(i) **ऐच्छिक** – जैसे – श्रमिक संघ, व्यापारिक संघ, क्लब आदि, जिनकी सदस्यता ऐच्छिक होती हैं अर्थात सदस्यता ग्रहण करना व्यक्ति की इच्छा पर आधारित होता है।
अनिवार्य समूह वे होते हैं जिन समूहों की सदस्यता व्यक्ति को अनिवार्य रुप से ग्रहण करनी पडती हैं जैसे – परिवार, राज्य।

2. **स्थान, सादृश्य एवं हितों के आधार पर**–

एडवर्ड रास ने स्थान, सादृश्य एवं हितों के आधार पर सामाजिक समूह को प्रमुख तीन भागों में विभाजित किया है –

(i) स्थानीय जैसे – पडोस, ग्राम, नगर

(ii) सादृश्य समूह जैसे –राष्ट्रीयता

(iii) हित समूह जैसे – श्रमिक संघ

3. **अवधि के आधार पर** – इस आधार पर दो प्रकार के समूह है -

   (i) अल्प अवधि का समूह जिसकी समय सीमा कम होती हैं - जैसे राजनितिक दल।

   (ii) लम्बी अवधि का समूह जिसकी सदस्यता जीवनपर्यंत रहती हैं जैसे – परिवार तथा राज्य आदि।

4. **संख्या के आधार पर** – जर्मन समाजशास्त्री **सिमेंल** के अनुसार संख्या के आधार पर समूह दो प्रकार के होते हैं

   (i) लघु आकार समूह जैसे – पडोस

   (ii) वृहद आकार समूह जैसे – राष्ट्र या प्रांत

5. **समूह के प्रमुख कार्यों के आधार पर** – कुछ समाजशास्त्रियों ने समूहों को उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यों के आधार पर वर्गीकृत किया है जैसे – धार्मिक समूह, राजनीतिक समूह, मनोरंजन समूह आदि।

6. **समूह संगठन के आधार पर** – समूह में संगठन के प्रकार के आधार पर समूह दो प्रकार के होते हैं –

   अ) **औपचारिक समूह** – यह समूह अपेक्षाकृत स्थाई, स्पष्ट मानदण्डों, नियमों का पालन करने वाले, स्पष्ट भूमिका वाले औपचारिक समूह है | जैसे क्लब, कक्षा आदि।

   आ) **अनौपचारिक समूह** – यह समूह अंतर्क्रिया प्रधान समूह होते हैं जहॉ औपचारिकता नहीं होती जैसे – परिवार, मित्र-मण्डल आदि।

कूले का वर्गीकरण - कूले ने समूहों का वर्गीकरण आकार, महत्ता तथा सम्बन्धों के आधार पर दो भागों में किया है – प्राथमिक एवं द्वितीयक।

1. **प्राथमिक समूह** – कूले के अनुसार- "प्राथमिक समूहों से मेंरा अभिप्रायः उन समूहों से है जो घनिष्ठ आमने-सामने के सम्बन्ध एवं सहयोग द्वारा लक्षित होते हैं | इस प्रकार के समूह अनेक अर्थों में प्राथमिक होते हैं और वह भी मुख्यतः इस अर्थ में कि वे व्यक्ति के सामाजिक स्वभाव तथा आदर्शों के निर्माण में मूलभूत होते हैं |"

प्राथमिक समूह के लिए सबसे आवश्यक तत्व घनिष्ठता है | परिवार, क्रीडा- समूह, पडोस, मित्र-मण्डली आदि इसके प्रमुख उदाहरण है | प्राथमिक समूहों के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण है –

1) भौतिक परिस्थितियाँ –

(i) भौतिक समीपता

(ii) समूह की लघुता

(iii) सम्बन्ध की निरंतरता एवं स्थिरता

2) **मानसिक स्थितियाँ** – प्राथमिक समूहों के लिए कुछ मानसिक स्थितियाँ आवश्यक है -

(i) समान उद्देश्य एवं आदर्श

(ii) वैयक्तिक प्राथमिक सम्बन्ध

(iii) व्यक्तित्व की सम्पूर्णता

(iv) स्वेच्छा पर आधारित

(v) अत्यधिक नियंत्रण शक्ति

कूले ने तीन प्रकार के महत्वपूर्ण प्राथमिक समूहों का उल्लेख किया है – परिवार, क्रीडा समूह तथा पडोस। ये समूह मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण में आधारभूत तथा प्राथमिक योगदान प्रदान करते हैं | व्यक्ति में सामाजिक गुणों को विकसित करने में भी ये समूह प्राथमिक होते हैं | कूले ने वास्तविक समूहों (परिवार, क्रीडा समूह, पडोस आदि) को प्राथमिक समूह कहा है |

प्राथमिक समूह में सभी बाहरी अथवा भौतिक दशाओं का वर्णन किया गया है वे सभी अनिवार्य रुप से मूर्त रुप में विद्यमान नहीं होते बल्कि प्राथमिक समूहों की विवेचना आदर्श प्रारुप के रुप में होती हैं | अतः यह अनिवार्य नहीं है कि सभी विशेषतायें वास्तविक समूहों में पाई ही जायें। वास्तव में, प्राथमिक सम्बन्ध केवल अंतिम लक्ष्य होते हैं जिनकी ओर आगे बढने के लिए कुछ वास्तविक प्रकार की अंतर्क्रियाएं तो होती हैं लेकिन उन लक्ष्यों तक हम पहुंच नहीं पाते।

प्राथमिक समूहों में स्थायित्व पाया जाता है, सदस्य एक साथ लम्बे समय तक निवास करते हैं | सभी सदस्यों के प्रत्यक्ष सम्बन्ध होते हैं वे आपस में सुख-दुख के सहभागी होते हैं |

इन्हें प्राथमिक समूह निम्नलिखित कारणों से कहा जाता है जो इनकी विशेषतायें भी हैं –

1. प्राथमिक समूह समय की दृष्टि से प्राथमिक है अर्थात सर्वप्रथम बच्चा इन्हीं समूहों के सम्पर्क में आता है।
2. प्राथमिक समूह व्यक्तियों के व्यक्तित्व निर्माण में विशेष महत्व या प्राथमिक भूमिका निभाते हैं |
3. ये समूह मौलिक मानव संघों का प्रतिनिधि होने के कारण भी प्राथमिक है।
4. प्राथमिक समूह सामाजीकरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है | पडोस, परिवार व क्रीडा-समूह बच्चों को सामाजिक प्राणी बनाने में विशेष महत्व रखने के कारण प्राथमिक है।
5. सम्बन्धों की प्रकृति के आधार पर (अर्थात लक्ष्यों में सादृश्यता, स्वयं साध्य होना, सम्बन्धों का स्वजात, व्यक्तिगत एवं सर्वांगींण होना) प्राथमिक है |
6. प्राथमिक समूह आत्म-नियंत्रण की दृष्टि से भी प्राथमिक है | इनके द्वारा पाश्विक प्रेरणाओं का मानवीकरण किया जाता है |
7. प्राथमिक समूह में वैयक्तिक सम्बन्ध पाया जाता है | अर्थात इसमें सदस्यों के सम्बन्ध व्यक्ति के गुणों एवं कार्यों पर आधारित न होकर उनके महत्व पर आधारित होते हैं |
8. प्राथमिक समूह के सदस्यों में सहयोग, घनिष्ठ सम्बन्ध, प्रत्यक्ष सम्बन्ध, सम्बन्धों की प्रगाढता, स्थायी सम्बन्ध एवं पूर्णता पाई जाती हैं |
9. प्राथमिक समूह के सम्बन्ध किसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए नहीं बनाये जाते, ये स्वार्थपरक व बनावटी नहीं होते बल्कि स्वाभाविक होते हैं |
10. प्राथमिक समूह के सम्बन्ध स्वयं विकसित होते हैं अर्थात दबाव या प्रलोभन से सम्बन्ध

विकसित नहीं होते बल्कि भावनात्मक रुप से स्वतः पनपते हैं |

11. प्राथमिक समूह के सदस्यों के कार्य परिस्थिति के आधार पर होते हैं अर्थात सभी के दायित्व असीमित होते हैं |

प्राथमिक समूहों का महत्व एवं उपयोगिता – प्राथमिक समूह अत्यंत महत्वपूर्ण होता है | यह व्यक्तियों के अनुभवों तथा मानव समाज के विकास में प्राथमिक होता है, चूंकि व्यक्ति का जन्म ही प्राथमिक समूह या परिवार में होता है अतः उसके सम्पूर्ण जीवन पर इसकी अमिट छाप पडती है | व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास करने के लिए सामाजिक दिशा में प्राथमिक समूहों के महत्व को देखते हुए कूले ने इन्हें "मानव स्वभाव की परिचारिकाएं" तक की संज्ञा दे डाली।

समाज में प्राथमिक समूहों की उपयोगिता एवं महत्व को निम्न बिन्दुओं में स्पष्ट किया जा सकता है-

1. प्राथमिक समूहों से **मानवीय एवं सामाजिक गुणों का विकास** होता है | अर्थात यह **समाजीकरण का प्रमुख अभिकरण** है।
2. ये मनुष्य की **प्राथमिक आवश्यकतों की पूर्ति** करते हैं | साथ ही व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती हैं |
3. प्राथमिक समूह मौलिक **मानव संघों का प्रतिनिधि** है |
4. प्राथमिक समूहों में ही व्यक्तित्व का विकास, प्रथाओं, परम्पराओं व संस्कृति का ज्ञान होता है |
5. व्यक्ति को सामाजिक **भावनाओं की सृजनात्मक अभिव्यक्ति** का अवसर देते हैं |
6. प्राथमिक समूह **सामाजिक नियंत्रण का मुख्य साधन** है | व्यक्ति सामाजिक समूह के नियमों को प्रेम, सहानुभूति व त्याग की भावना के कारण नहीं तोडता।
7. प्राथमिक समूह सामूहिक मान्यता के अनुरुप व्यक्ति रचना, मानवीय व्यवहार का प्रशिक्षण देता है |
8. प्राथमिक समूह से व्यक्ति को भावात्मक सुरक्षा प्राप्त होती हैं और इन्हीं के माध्यम से व्यक्ति अपने उच्चतर लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं |
9. प्राथमिक समूह में सकारात्मक सम्बन्ध पाया जाता है तथा वे एक दूसरे के विचारों, मनोभावों व रुचियों को जानते हैं |
10. प्राथमिक समूह में व्यक्ति को सहायता, प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता है अतः कार्य क्षमता में वृद्धि होती है |

अतः यह कहा जा सकता है कि प्राथमिक समूह का सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है | साथ ही प्राथमिक समूहों द्वारा यह व्यवस्था सुढृढ् की जाती हैं कि किस प्रकार सामाजिक संगठ्न कायम रहे और सामाजिक व्यवस्था बनी रहे। **"गिलीन" एवं "गिलीन"** ने लिखा है – "प्राथमिक समूह पूरे सामाजिक जीवन का मूल है।" परंतु प्राथमिक समूह के कुछ कार्य ऐसे भी है जो सामाजिक व्यवस्था में कभी-कभी असंतुलन की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं जैसे – प्राथमिक समूह रुढिवादिता को प्रोत्साहन देते हैं, व्यक्ति के नैसर्गिक विकास में बाधक होते हैं तथा भाई-भतीजावाद को प्रोत्साहन देते हैं | पारिवारिक विघटन, कठोर नियंत्रण, अत्यधिक लाड-प्यार, सामाजिक प्रतिबन्ध, रुढिवादिता इत्यादि व्यक्तियों में कुण्ठा, निराशा, हीन भावना, तनाव, प्रतिरोध की भावना का विकास करते हैं |

स्व-मूल्यांकन प्रश्न(Self Evaluation Question) -

विलियम समनर ने निम्नलिखित समूहों में से किसका वर्गीकरण किया है –

अ) लम्बवत समूह और क्षैतिज समूह
आ) प्राथमिक और द्वितीयक समूह
इ) अंतः समूह और बाह्य समूह
ई) औपचारिक और अनौपचारिक समूह

1. प्राथमिक समूहों में सम्बन्ध किस प्रकार के होते हैं –
   अ) औपचारिक
   आ) नकारात्मक
   इ) अनौपचारिक
   ई) सकारात्मक

द्वितीयक समूह –

द्वितीयक समूह की प्रकृति प्राथमिक समूह के विपरीत होती हैं | ये अधिकतर विकसित समाज में पाये जाते हैं |

ऑगबर्न तथा **निमकॉफ** के अनुसार – वे समूह जो घनिष्ठता की कमी का अनुभव करते हैं, द्वितीयक समूह कहलाते हैं |

ये समूह आकार में बडे होते हैं, इनमें आमने-सामने के सम्बन्ध एवं घनिष्ठता का अभाव रहता है | इनमें सम्बन्ध अवैयक्तिक होते हैं | अतः यह समूह का वह रुप है जो अपने सामाजिक सम्पर्क और अनौपचारिक संगठन की मात्रा में प्राथमिक समूहों की घनिष्ठता से भिन्न है | कूले के अनुसार – द्वितीयक समूह ऐसे समूह है जिनमें घनिष्ठता का पूर्णतः अभाव होता है और सामान्यतः उन विशेषताओं का भी अभाव होता है जोकि अधिकतर प्राथमिक रथा अर्द्धप्राथमिक समूहों में पाई जाती हैं |

द्वितीयक समूहों के सदस्य एक दूसरे से अप्रत्यक्ष रुप से जुडे रहते हैं | वे एक दूसरे को जानते भी नहीं है |

लुण्डबर्ग के शब्दों में, उन समूहों को द्वितीयक समूह माना जा सकता है जिनके सदस्यों के मध्य सम्बन्ध अवैयक्तिक, हित-प्रधान तथा व्यक्तिगत योग्यता पर आधारित होते हैं |

द्वितीयक समूहों की विशेषताएं इस प्रकार है-

1. द्वितीयक **समूह का आकार बडा** होता है, सदस्यों की संख्या अधिक होती हैं |
2. द्वितीयक समूह में **उद्देश्यों का विशेषीकरण** होता हैं ये उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए बनाये जाते हैं इसी कारण "किम्बल यंग" ने इन्हें विशेष स्वार्थ समूह कहा है |
3. द्वितीयक समूह में प्रायः **अप्रत्यक्ष सम्पर्क** ही अधिक पाया जाता है क्योकिं समूह का आकार बडा होता है इसी कारण प्राथमिक समूह की तरह घनिष्ठता भी नहीं होती ।
4. द्वितीयक समूह में घनिष्ठता तथा व्यक्तिगत सम्बन्धों का अभाव रहता है | समूह का बडा आकार इसका कारण है |

5. वे समूह इच्छा से या जानबूझकर स्थापित किये जाते हैं जिनसे कोई विशेष लक्ष्य या उद्देश्य या स्वार्थ की पूर्ति की जा सके।
6. द्वितीयक समूहों के सदस्यों में प्रत्येक व्यक्ति अपने हित या लक्ष्य को पाने के लिए प्रयत्नशील रहता है ऐसे में सभी के उद्देश्यों में भिन्नता पाई जाती हैं। इससें द्वितीयक समूहों में स्वार्थ-सिदि तथा प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन मिलता है।
7. द्वितीयक समूहों के सदस्यों के सम्बन्ध औपचारिक होते हैं और सदस्यों का पारस्परिक सम्बन्ध कुछ निश्चित नियमों द्वारा नियंत्रित होते हैं।
8. द्वितीयक समूह में पाये जाने वाले सम्बन्ध **अव्यक्तिगत,** आकस्मिक और **प्रतिस्पर्धात्मक** होते हैं।
9. इस समूह के अंतर्गत **सक्रिय एवं निष्क्रिय दोनों प्रकार की सदस्यता** पाई जाती हैं
10. द्वितीयक समूह अपने सदस्यों पर नियमों एवं उपनियमों द्वारा बाहरी नियंत्रण लगाता है।
11. द्वितीयक समूह का निर्माण नकारात्मक सम्बन्धों पर निर्भर होता है इसलिए इसमें टेलीफोन, प्रेस, रेडियों एवं अन्य संचार साधनों का प्रमुख स्थान होता है।
12. द्वितीयक समूहों का निर्माण चूंकि आवश्यकतानुसार होता है इसलिए आवश्यकताएं बदलने के साथ-साथ समूहों की प्रकृति में भी परिवर्तन हो जाता है अतः परिवर्तनशीलता इसकी एक विशेषता है।
13. इस समूह में व्यक्तियों की स्थिति में उसके कार्य पर निर्भर करती हैं। अपनी योग्यता एवं प्रतिभा द्वारा कोई भी व्यक्ति द्वितीयक सनूह में उच्च पद को प्राप्त कर सकता है।
14. इस प्रकार के समूह में व्यक्ति "आत्मनिर्भर" एवं "स्वयं" के प्रति जागरुक होता है।
15. द्वितीयक समूह में व्यक्ति किसी आवश्यकता, उद्देश्य या समझोते की शर्तों से बंधे होते हैं अतः उनमें घनिष्ठ सम्बन्ध न होकर अनौपचारिक व्यवहार होते हैं।

द्वितीयक समूहों की उपयोगिता –

वर्तमान में द्वितीयक समूहों की उपयोगिता एवं महत्व में वृद्धि हुई है। आर्थिक, सामाजिक तथा राजनितिक क्षेत्रों में आगे बढने के लिए द्वितीयक समूहों का सहारा लेना आवश्यक है। इसकी उपयोगिता एवं महत्व को निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता हैं।

1. द्वितीयक समूह प्राथमिक समूह की सभी सीमाओं से उत्पन्न दोषों का समाधान करता है। चूंकि इनकी प्रवृति परिवर्तनशील होती हैं अतः ये समूह सामाजिक परिवर्तनों को आसानी से स्वीकार कर लेते हैं। पुराने व्यवहारों, रुढियों, परम्पराओं को शिथिल करने में द्वितीयक समूहों की बडी भूमिका है।

2. द्वितीयक समूह श्रम विभाजन और विशेषीकरण को बढावा देता है क्योकिं विशेषीकरण की योग्यता की प्राप्ति व श्रम का प्रदर्शन द्वितीयक समूहों में ही होता है। इसमें श्रम को अधिक महत्व दिया जाता है।
3. द्वितीयक समूह सामाजिक नियंत्रण में विशेष योगदान देते हैं। पुलिस, न्यायपालिका, कानून आदि व्यक्तियों पर नियंत्रण रखने में सहायक होते हैं।

4. द्वितीयक समूह व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक है | जैसे- शिक्षा, नौकरी, सामाजिक, सांस्कृतिक क्रियाकलापों में भाग लेने के लिए व्यक्तियों को द्वितीयक समूहों का ही सहारा लेना पडता है |
5. ये समूह बौद्धिकता, तर्क एवं विवेक पर आधारित होते हैं | द्वितीयक समूहों ने स्त्रियों को घर से बाहर निकल कर विकास के अवसर प्रदान करने में योगदान दिया है |

सन्दर्भ समूह – प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में दो प्रकार के समूहों का महत्व है एक तो वह, जिस समूह का वह सदस्य है और दूसरा वह समूह, जिसे वह अपना आदर्श मानता है |

व्यक्ति किसी समूह का सदस्य नहीं रहने पर भी अगर उस समूह को अपना आदर्श मानता है तथा उसके आचरणों के अनुसार अपने आपको ढालता है या इच्छा रखता है तो वह समूह उसका आदर्श समूह या सन्दर्भ समूह कहलाता है | **हाइमैन, एच. च.** ने 1942 में इस शब्द का प्रयोग किया था । एक ही व्यक्ति एक ही समय में दो समूहों से सम्बन्ध रख सकता है एक व्यक्ति का सदस्यता समूह और दूसरा सन्दर्भ समूह । लोग मानसिक रुप से सन्दर्भ समूह से जुडे रहते हैं |

स्व-मूल्यांकन प्रश्न(Self Evaluation Question) -

1. कौनसी विशेषता द्वितीयक समूह में पाई जाती हैं –
   अ) उद्देश्यों की समानता
   आ) सम्बन्धों के विशेषीकरण का अभाव
   इ) सदस्यों के बीच घनिष्ठता
   ई) उद्देश्य का विशेषीकरण

   ऐसे समूह को क्या कहते हैं जिसे व्यक्ति महत्वपूर्ण समझता हैं और उससे अपनी तुलना करता है -

   अ) प्राथमिक समूह आ) सन्दर्भ समूह
   इ) द्वितीयक समूह ई) सांस्कृतिक समूह

10.6 समूह के कार्य (Functions of Group)

1. **आवश्यकताओं की संतुष्टि** – समूहों द्वारा अपने सदस्यों की दो प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती हैं –

   (i) **प्राथमिक आवश्यकतायें** – जैसे भोजन, वस्त्र, मकान, यौन इत्यादि । परिवार नाम प्राथमिक समूह इनकी संतुष्टि करता है।

   (ii) **द्वितीयक आवश्यकतायें** – समूह द्वारा अपने सदस्यों की द्वितीयक आवश्यकताओं जैसे – ध्यान, स्नेह, शक्ति आवश्यकता, सम्बन्धता आदि आवश्यकताओं को संतुष्ट करते हैं|

2. **नवीन आवश्यकताओं का सृजन** – किसी भी समूह का सदस्य बनने पर व्यक्ति में अनुभवों से परिवर्तन होते हैं तथा नवीन एवं विविध आवश्यकताओं का जन्म होता है |

3. **समूह उद्देश्यों की प्राप्ति** – एक समूह की आवश्यकताओं में परस्पर भिन्नता होते हुए भी वे समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सामूहिक प्रयास करते हैं | सभी सदस्यों की रुचि समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति में होती हैं |

4. **महत्वपूर्ण सूचनायें उपलब्ध कराना** – समूहों का एक महत्वपूर्ण कार्य अपने सदस्यों को महत्वपूर्ण सूचनाएं प्रदान करना है | समूह द्वारा उपलब्ध कराई गई ये सूचनायें कभी-कभी संवेदनशील या प्रति प्रतिबन्धित भी हो सकती हैं और केवल समूह सदस्यों को ही प्रदान की जाती हैं |

5. **समाजीकरण का साधन** – प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के समूह प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप से अपने सदस्यों के समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं |

6. **विचारधारा एवं मनोवृति विकास में सहायक** – प्रत्येक समूह की स्वयं की विचारधारा, विश्वास, मूल्य, मानक होते हैं तथा इसे कायम रखने का प्रयास समूह द्वारा होता है | इनका प्रभाव समूह के सदस्यों पर भी पडता है जिसके कारण उनके मत, मनोवृत्तियाँ में भिन्नता कम होती हैं |

7. **सांस्कृतिक विरासत को बनाये रखना** – प्रत्येक समूह की मान्यताएं, उद्देश्य, व्यवस्था, मूल्य, परम्पराएं, रीति रिवाज होते हैं तथा वह सदस्यों से अपेक्षा करता है कि वे इनका अनुपालन करे। इस प्रकार समूह सांस्कृतिक निरंतरता बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं |

10.7 सांराश (Summary)

व्यक्ति को समाज में रहने के लिए अनेक व्यक्तियों से सम्बन्ध बनाने पडते हैं और अन्य सदस्यों के साथ समूह में रहना पडता है | उदाहरण के लिए हम सभी परिवार, क्रीडा-समूह, मित्र-मण्डली, जाति तथा राष्ट्र के सदस्य है | समूह व्यक्तियों का ऐसा संकलन है जिसमें प्रारम्भिक संरचना और संगठन पाया जाता है तथा जिसके सदस्यों में समूह के प्रति चेतना पाई जाती हैं |

समूहों का वर्गीकरण अनेक विद्धानों ने विभिन्न आधारों पर किया है मैकाइवर, कूले, समनर, मिलर इत्यादि के वर्गीकरण महत्वपूर्ण है | समाज में प्राथमिक, द्वितीयक, अंतःसमूह, बाह्य समूह, औपचारिक-अनौपचारिक, सन्दर्भ समूह आदि अनेक प्रकार के समूह पाये जाते हैं | प्रत्येक व्यक्ति एक अथवा दो समूहों का सद्स्य होता है |

समूह व्यक्तियों की भावात्मक, भौतिक आवश्यकताओं की संतुष्टि करते हैं समाजीकरण का साधन है, उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक है तथा महत्वपूर्ण सूचनायें उपलब्ध कराने का साधन है, व्यक्तित्व के विकास में सहायक है |

10.8 कठिन शब्द

- **समूह** - समूह दो या दो से अधिक व्यक्तियों का जोड या मिलान है जिसमें व्यक्ति स्वयं को एक इकाई के रुप में अनुभव करते हैं तथा किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अंतर्क्रिया करते हैं| एक दूसरे को प्रेरित करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य सदस्यों का सहयोग करते हैं |

10.9 अभ्यास प्रश्न (Self Evaluation Question)

1 समूह किसे कहते है प्राथमिक एवं द्वितीयक समूहों में क्या अंतर है?

2 प्राथमिक समूह की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिये।

3 अंतः समूह और बाह्य समूह के अंतर को स्पष्ट करते हुए उदाहरण दीजिए।

4 समूह की सरंचना के आवश्यक तत्व स्पष्ट करें।

5 समूह का निर्माण क्यों किया जाता है?

10.10. सन्दर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)

- Ellwood, C.A. : A History of Social Psychology N.Y. Prentice Hall
- Freeman, E. : Social Psychology, N.Y.
- Mathur, S.S.: Educational Psychology
- Mathur, S.S. : A Sociological Approach to Indian Education
- Young, K. : Social Psychology, Third N.Y.
- Mahajan, D. : Introduction of Sociology
- Mondal, Puja: Social Groups : Meaning and Characteristics of Social Group
- Brown, R.: Social Psychology 1965
- Gilbert, D.T.: Handbook of Social Psychology, (2 Volumes)

इकाई-11

समूह प्रभावशीलता- कारक, समूह समग्रता- कारक

Group Effectiveness & its Determinants, Group Cohesiveness, Factors influencing group cohesiveness

इकाई रूपरेखा

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 समूह प्रभावशीलता अर्थ एवं परिभाषा

11.3 समूह प्रभावशीलता को प्रभावित करने वाले कारक

11.3.1 समूह संरचना से सम्बन्धित कारक

11.3.2 समूह अन्त: क्रिया से सम्बन्धित कारक

11.4 समूह समग्रता

11.4.1 परिभाषा एवं तथ्य

11.5 समूह समग्रता को प्रभावित करने वाले कारक

11.6 समूह समग्रता के परिणाम

11.7 समूह समग्रता का मापन

11.8 सारांश

11.9 कठिन शब्दार्थ

11.10 अभ्यास प्रश्न

11.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 प्रस्तावना

समूह-प्रभावशीलता को परिभाषित करने के भिन्न-भिन्न मापदण्ड हैं | जैसे- समूह प्रभावशीलता का अर्थ समूह उत्पादकता से है | दूसरे शब्दों में, जिस समूह में सदस्यों द्वारा अधिक से अधिक उत्पादन किया जाता है, उसे उतना ही प्रभावशील समूह समझा जाता है | कुछ लोगों ने समूह प्रभावशीलता का अर्थ सदस्यों में उत्पन्न सन्तुष्टि से लिया है | जिस समूह के सदस्यों में जितनी ही अधिक सन्तुष्टि होती हैं, उसे उतना ही अधिक प्रभावशील समूह समझा जाता है | कुछ समाज मनोवैज्ञानिक हैं

जिन्होंने समूह प्रभावशीलता का अर्थ समूह के सृजनात्मक परिणामों से लिया है | जिस समूह का सृजनात्मक परिणाम जितना ही अधिक होता है, उसे उतना ही प्रभावशाली समूह समझा जाता है।

11.2 समूह प्रभावशीलता अर्थ एवं परिभाषा

समूह प्रभावशीलता एवं बहुविमीय चर है | एक ही समूह की प्रभावशीलता के बहुत से मापदण्ड होते हैं | कोई समूह कुछ सदस्यों के लिए प्रभावशाली हो सकता है परन्तु दूसरे सदस्यों के लिए प्रभावशील नहीं भी हो सकता है |

समूह प्रभावशीलता को मूलत: दो तरह के मापदण्डों के रूप में ही परिभाषित किया जा सकता है | वे दो मापदण्ड हैं- समूह उत्पादकता तथा सदस्यों की सन्तुष्टि। अत: ऐसे समूह को प्रभावशील समूह कहा जायेगा जिसकी उत्पादकता संतोषजनक होगी तथा जिसके सदस्यों में सन्तुष्टि अधिक होगी।

11.3 समूह प्रभावशीलता को प्रभावित करने वाले कारक

समूह प्रभावशीलता भिन्न-भिन्न कारकों द्वारा प्रभावित होती है | कुछ ऐसे ही कारक या निर्धारक जिनसे समूह प्रभावशीलता में मात्रात्मक अन्तर होता है।

(क) समूह की संरचना को प्रभावित करने वाले कारक

(ख) समूह की अन्तक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक

(क) समूह की संरचना को प्रभावित करने वाले कारक-

अ. **समूह सदस्यों की संख्या-** छोटा समूह बड़ा समूह की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है क्योंकि छोटे समूह में सदस्यों के बीच सन्तुष्टि, समूह समग्रता तथा समूह उत्पादकता बड़े समूह की अपेक्षा अधिक होती है | जैसे- सीशोर ने अपने अध्ययन में पाया है कि छोटे समूह में बड़े समूह की अपेक्षा समूह समग्रता अधिक होती है जिससे सदस्यों में सन्तुष्टि भी अधिक होती है | मान तथा बामगार्टेल ने अपने अध्ययन में पाया है कि समूह समग्रता कम होने से समूह में ऐच्छिक अनुपस्थिति बढ़ती है जो असन्तुष्टि का (अर्थात समूह प्रभावशीलता की कमी का) द्योतक है | स्लेटर ने भी अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि 5 सदस्यों वाले समूह में 5 से अधिक सदस्यों वाले समूह की अपेक्षा अधिक सन्तुष्टि थी। बड़े समूह के सदस्य अधिक आक्रमणकारी, संवेदनशील तथा प्रतियोगी होते देखे गये हैं जिससे ऐसे समूह अधिक प्रभावशाली नहीं हो पाते हैं | मेंरीऔट ने अपने अध्ययन में यह भी पाया है कि समूह के सदस्यों की संख्या द्वारा समूह की उत्पादकता भी प्रभावित होती है | इन्होंने यह पाया कि 10 से कम सदस्यों वाले समूह की उत्पादकता 30 से अधिक सदस्यों वाले समूह की उत्पादकता से 7 प्रतिशत अधिक थी। इसका मतलब यह हुआ है कि समूह सदस्यों की अधिक संख्या तथा समूह उत्पादकता में नकारात्मक सह-सम्बन्ध है | कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे कार्टर एवं उनके सहयोगियों ने अपने अध्ययन में यह पाया है कि बड़े समूह में कुछ ही सदस्य जो सबल होते हैं, भाग ले पाते हैं, परन्तु छोटे समूह में भी सदस्य खुलकर समूह विचार-विमर्श में भाग ले पाते हैं | इसका परिणाम यह होता है कि छोटे समूह के सदस्यों में सन्तुष्टि बड़े समूह के सदस्यों की अपेक्षा अधिक होती है।

विभिन्न अध्ययनों के आधार पर निष्कर्ष यह हैं कि छोटा समूह बड़े समूह की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है।

ब. समूह सदस्यों के गुण- समूह प्रभावशीलता पर सिर्फ समूह सदस्यों की संख्या का ही नहीं बल्कि समूह सदस्यों के गुणों का भी प्रभाव पड़ता है | समूह के सदस्यों की वैयक्तिक गुण समूह को प्रभावित करते हैं | सदस्यों में जब कुछ खास-खास गुण होते हैं तो वे प्रभावकारी सदस्य कहलाते हैं तथा साथ ही साथ समूह में प्रभावशीलता भी अधिक होती है | इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट हो गया है कि एक विशेष तरह की सदस्यता समूह रहने पर समूह की प्रभावशीलता अधिक होती है।

हैथोर्न ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बताया है कि कुछ व्यवहारपरक गुण जैसे सहकारिता, कार्यकुशलता तथा सूझ आदि के हाने पर समूह की उत्पादकता बढ़ती है, अर्थात समूह प्रभावशाली होता है परन्तु जब सदस्यों में कुछ दूसरे शीलगुण जैसे आक्रमणशील, आत्मविश्वास, वैयक्तिक समाधान में अभिरूचि तथा सत्ताधारी प्रवृत्ति अधिक होती है तो इससे समूह समग्रता तथा दोस्ताना संबंधमें कमी आती है और समूह उत्पादकता कम हो जाती है।

(स) सदस्यता प्रतिरूप के दो प्रमुख भाग है-

1. एकरूपता 2. संगतता

जब सदस्यों के मूल्यों, अभिरूचियों एवं अभिवृत्तियों में एकरूपता या समानता होती है तो उनके द्वारा बनने वाला समूह स्थिर तथा समग्र होता है और सदस्यों में सन्तुष्टि एवं समूह उत्पादकता अधिक होती है | हॉलिंगशेड ने अपने अध्ययन में पाया कि हाई स्कूल के लडक़ों एवं लड़कियों के वैसे समूह में सन्तुष्टि अधिक थी जिनकी अभिरूचियों एवं अभिवृत्तियों में समानता थी। टरमैन तथा उनके सहयोगियों तथा पेटेजेल एवं उनके सहयोगियों ने अपने-अपने अध्ययनों में पाया है कि जब पति-पत्नी की अभिरूचियों एवं अभिवृत्तियों में समानता होती है तो इससे उनका वैवाहिक जीवन अधिक सुखमय होता है | कुछ अध्ययनों से पता चलता है कि भिन्न गुणों वाले समूह में उत्पादकता समान गुणों वाले समूह की अपेक्षा अधिक होती है | जैसे, हॉफमैन ने अपने अध्ययन में पाया कि समस्याओं के समाधान में भिन्न गुण वाले समूह एकरूप समूह की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ था। क्योंकि कैटेल एवं उनके सहयोगियों ने अपने अध्ययन के आधार पर यह साबित कर दिया है कि कुछ खास गुणों में भिन्न गुण वाले समूह सदस्य रहने से समूह निर्णायकता की यथार्थता अधिक होती है तथा कुछ खास गुणों में (एकरूपता अधिक रहने पर) समूह निर्णायकता की यथार्थता कम होती है।

सदस्यता प्रतिरूप का दूसरा क्षेत्र संगतता है | समूह संगत हो सकता है या असंगत। संगत समूह में एक ही केन्द्रीय या महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है तथा इनके सदस्यों की अन्तर वैयक्तिक क्रियाओं में काफी समानता होती है | असंगत समूह में दो या दो से अधिक केन्द्रीय या महत्वपूर्ण व्यक्ति होते हैं जिनकी अभिरूचियाँ एवं अभिवृत्ति भिन्न होती है जिसके फलस्वरूप इसके सदस्यो का कुछ उपसमूह भी बन जाता है | शुज ने अपने अध्ययन में पाया है कि जब किसी सरलतम समस्या का समाधान करना हेाता है तब तो इन दोनों तरह के समूहों की उत्पादकता में कोई विशेष अन्तर नहीं आता है | परन्तु जैसे-जैसे समस्या की जटिलता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे संगत समूह की उत्पादकता असंगत समूह की उत्पादकता की अपेक्षा तीव्र होती जाती है।

द. **समूह सदस्यों की पद श्रृंखला-** समूह प्रभावशीलता पर पद श्रृंखला का भी प्रभाव पड़ता है | समूह में सदस्यों की एक पद श्रृंखला होती है | कुछ सदस्य इस श्रृंखला में ऊँचे पद पर होते हैं तथा कुछ सदस्य नीचे पद पर होते हैं | नीचे पद के सदस्य ऊँचे पद के सदस्यों के प्रति संचार अधिक करते हैं | थिबौट (1950) तथा केली (1951) द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि समूह में पद श्रृंखला द्वारा सदस्यों के बीच संचार प्रभावित होता है जिससे सदस्यों की कार्यकुशलता प्रभावित होती है | हिनकी तथा बेल्स ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि वैसे समूह जिनमें सदस्यों की पद श्रृंखला स्थिर होती है, उन समूहों की अपेक्षा अधिक प्रभावशील होते हैं जिनके सदस्यों की पद श्रृंखला अस्थिर होती है | जब पद श्रृंखला स्थिर होती है, तो सदस्यों में समस्या के सही समाधान से सम्बन्धित वाद-विवाद या मतभेद नहीं होता है और सभी लोग ऊँचे पद के सदस्यों द्वारा व्यक्त किये गये मतों को या उनके द्वारा रखे गये समाधान को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं | इस तरह से पद श्रृंखला में स्थिरता होने से समूह की प्रभावशीलता में वृद्धि हो जाती है।

य. **समूह की संचार प्रणाली-** समूह की प्रभावशीलता पर समूह की संचार प्रणली का भी प्रभाव पड़ता है | सामान्यत: संचार प्रणालियाँ दो प्रकार की होती है जिनका प्रभाव समूह की प्रभावशीलता पर स्पष्ट रूप से पड़ता है- वृत्त जाल संचार तथा चक्र जाल संचार। किसी समूह में वृत्त जाल संचार के होने पर प्रत्येक सदस्य अपने बायें या दायें बैठे सदस्य के साथ संचार कर सकता है | परन्तु चक्र जाल समूह में किसी खास सदस्य के माध्यम से ही अन्य सदस्य आप में संचार कर सकते हैं | कुछ समूह में वृत्त जाल प्रणाली द्वारा संचार किया जा रहा था तथा कुछ समूह में चक्र जाल प्रणाली द्वारा संचार किया जा रहा था। परिणाम में देखा गया कि दी गयी समस्या के समाधान में वृत्त जाल संचार वाले समूह ने चक्र जाल वाले समूह की अपेक्षा अधिक तेजी से समस्या का समाधान किया। इतना ही नहीं, इस तरह के समूह द्वारा समस्या के समाधान में कम से कम त्रुटि भी की गई। बाद में शा ने अपने अध्ययनों के आधार पर लिभिट के प्रयोगात्मक तथ्य की पुष्टि की है | इन्होंने अपने प्रयोग में पाया कि साधारण समस्याओं के समाधान में चक्र जाल संचार वाला समूह वृत्त जाल संचार वाले समूह की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है क्योंकि ऐसी समस्याओं के समाधानों में उनके द्वारा कम से कम समय लिया जाता था। परन्तु जटिल समस्याअें के समाधान में वृत्त जाल संचार वाला चक्र जाल संचार वाले समूह की अपेक्षा अधिक आगे रहता था। बाद में कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों जैसे क्रिस्टी एवं उनके सहयोगियों गिलक्राइस्ट तथा उनके सहयोगियों ने अपने-अपने अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया है कि जिस संचार प्रणाली में सम्बद्धता जितनी ही अधिक होती है, उस समूह की प्रभावशीलता उतनी ही ज्यादा होती है |

11.3.2 समूह की अन्त: क्रिया को प्रभावित करने वाले कारक- समूह की प्रभावशीलता नेतृत्व का प्रकार, समूह अभिप्रेरणा स्तर तथा मैत्री सम्बन्ध इससे प्रभावित होती है। इन तीनों का वर्णन निम्नांकित हैं-

अ. **नेतृत्व कार्यशैली-** समूह प्रभावशीलता पर नेतृत्व कार्यशैली का भी असर पड़ता है | यदि नेता प्रभावशाली होता है तो स्वभावत: समूह भी प्रभावशाली होगा। मायर तथा सोलेम ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया कि जिस नेतृत्व में समूह के अन्य सभी सदस्यों

को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया और साथ-साथ ही जिसमें प्रश्न पूछ कर सामूहिक क्रियाओं को उत्तेजित किया गया, ऐसे समूह अन्य दूसरी तरह के नेतृत्व वाले समूह की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली हो गये। पेल्ज के अध्ययन द्वारा निष्कर्ष निकला कि सहभागी नेतृत्व या प्रजातांत्रिक नेतृत्व में समूह प्रभावशीलता, निदेशात्मक नेतृत्व में समूह प्रभावशीलता की अपेक्षा अधिक होती है | समाज मनोवैज्ञानिकों ने नेतृत्व व्यवहार के तीन पहलू बताये हैं जिनका समूह प्रभावशीलता पर सीधा असर पड़ता है | वे तीन पहलू है- नेता की भूमिका, निरीक्षण की संकीर्णता तथा कर्मचारी अभिमुखीकरण। काह्न तथा काज के अनुसार नेतृत्व के ये तीनों पहलू कुछ ऐसे हैं जिनसे समूह की उत्पादकता सीधे प्रभावित होती है | काह्न तथा काज के द्वारा निष्कर्ष निकाला गया कि जिन समूह के नेताओं ने नेतृत्व की बागडोर को संभाला, उनके समूह की उत्पादकता अन्य समूहों की अपेक्षा काफी बढ़ गयी। उसी तरह से जिन समूह के नेताओं ने अपने समूह के कार्यों का निरीक्षण काफी कड़ी नजर रख कर किया, उनके समूह की उत्पादकता में बाधा पहुँचती थी। उसी तरह जो नेता कर्मचारीन्मुखी थे अर्थात जो कर्मचारी के कल्याण की बात अधिक सोचते थे, उनके समूह की उत्पादकता अन्य पर्यवेक्षकों की अपेक्षा जो मात्र उत्पादन उन्मुखी थे, अधिक थी।

ब. **अभिप्रेरणा स्तर-** प्रत्येक समूह का एक अभिप्रेरणा स्तर होता है | बहुत हद तक समूह की प्रभावशीलता समूह के सदस्यों में अभिप्रेरित हो कार्य करने पर निर्भर करती है | अभिप्रेरणा जितनी ही अधिक होती है समूह की प्रभावशीलता भी सामान्यत: अधिक होती है | डियुटश ने अपने प्रयोग में पाया कि जब समूह में सहकारिता की प्रेरणा थी तो उसकी उत्पादकता तथा सदस्यों में सन्तुष्टि काफी अधिक थी। परन्तु जिन समूह के सदस्यों में प्रतियोगिता की प्रेरणा थी, उनके सदस्यों में असन्तोष तथा संघर्ष की भावना अधिक थी। फलस्वरूप इनकी उत्पादकता भी काफी कम देखी गयी। फोरिजोश तथा उनके सहयोगियों ने अपने अध्ययन में पाया कि जब समूह के सदस्यों में आत्म-उन्मुखी आवश्यकता अधिक हो जाती है, तो सदस्यों में सन्तोष की मात्रा कम हो जाती है तथा साथ ही साथ संघर्ष की भावना तीव्र हो जाती है | इस तरह की आवश्यकता अधिक सबल होने पर सदस्यों का ध्यान समूह के लक्ष्य की ओर कम परन्तु अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की ओर अधिक रहता है | समूह की प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए सदस्यों के समूह लक्ष्य के प्रति अधिक प्रेरित करने की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। थॉमस ने अपने अध्ययन से यह देखा कि जब सदस्यों को समूह लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करने में एक-दूसरे पर निर्भर बना दिया जाता है, तो वैसी अवस्था में उनकी अभिप्रेरणा में वृद्धि हो जाती है और वे लक्ष्य की प्राप्ति की ओर कार्य करने की ओर अग्रसर होते हैं | कोच तथा फ्रेंच ने अपने अध्ययन में यह पाया है कि जब सदस्यों द्वारा स्वयं ही समूह के लक्ष्य का निर्धारण किया जाता है तो वैसी परिस्थिति में वे उस लक्ष्य को सहर्ष स्वीकार कर उसकी प्राप्ति के लिए प्रेरित हो उठते हैं | परन्तु यदि समूह का लक्ष्य उन पर नेता या अन्य किसी व्यक्ति द्वारा थोप दिया जाता है तो वे उसकी प्राप्ति की ओर न के बराबर कार्य करने को प्रेरित रहते हैं | स्पष्ट है कि समूह लक्ष्य को निर्धारित करने में सदस्यों के सहयोग से समूह अधिक प्रभावशाली बनता है।

स. **समूह सदस्यों के सम्बन्ध-** समूह के सदस्यों के बीच आपसी सम्बन्ध बढने से यद्यपि सदस्यों में सन्तुष्टि अधिक हो जाती है परन्तु इससे समूह प्रभावशीलता का बढना आवश्यक

नहीं है | समूह की उत्पादकता जो समूह प्रभावशीलता का एक प्रमुख सूचक है, पर समूह में आपस के संबंधोंका प्रभाव सामान्यत: दो तरह का होता है | पहला, सकारात्मक सम्बन्ध रहने से सदस्यों के बीच संचार में वृद्धि हो जाती है तथा सहयोग में किसी प्रकार का संकोच नहीं होता है | इसका परिणाम यह होता है कि समूह की प्रभावशीलता अधिक बढ़ जाती है| दूसरा, अधिक घनिष्ठ संबंधहोने से दूसरा सदस्य समूह लक्ष्य की प्राप्ति की ओर ध्यान कम देकर मात्र सामाजिक क्रियाओं से ही संतुष्टि प्राप्त करना प्रारंभ कर देते हैं | इसका परिणाम यह होता है कि समूह की उत्पादकता कम हो जाती है | दूसरे शब्दों में, समूह की प्रभावशीलता में कुछ कमी आ जाती है | वान जेल्स ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययन में पाया है कि जिस समूह में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध अधिक था, उसमें कार्य संतोष अधिक था तथा साथ ही साथ समूह की उत्पादकता अधिक थी। हार्सफाल तथा अरेन्सबर्ग ने अपने अध्ययन में पाया है कि जिस समूह में उत्पादकता तथा कार्यकुशलता अधिक थी उनमें सामाजिक क्रियाएँ कम होती थीं। सौहार्दपूर्ण संबंधोंद्वारा समूह की उत्पादकता अर्थात प्रभावशीलता तभी बढ़ती है जब उनके सदस्यों द्वारा समूह के कार्य लक्ष्य को स्वीकार कर लिया जाता है | जब वे इसे स्वीकार नहीं कर पाते हैं तो आपसी संबंधसे समूह प्रभावशीलता नहीं बढक़र मात्र सामाजिक क्रियाएँ बढ़ती हैं |

अत: स्पष्ट है कि समूह की प्रभावशीलता समूह की संरचना से संबंधितकारकों द्वारा तथा समूह के सदस्यों के बीच होने वाले अन्त: क्रियात्मक कारकों द्वारा निर्धारित होती है।

अभ्यास प्रश्न

1. समूह प्रभावशीलता का अर्थ स्पष्ट कीजिए ?
2. समूह प्रभावशीलता के कोई दो प्रमुख कारक बताइए ?
3. समूह संरचना एवं अन्त: क्रिया समूह की प्रभावशीलता का कैसे निर्धारण करते हैं ?

11.4 समूह समग्रता

समग्रता समूह की संरचना का एक प्रमुख भाग मानी गयी है | समाज मनोवैज्ञानिकों ने समूह समग्रता का प्रयोग एक खास अर्थ में किया जाता है | समूह समग्रता से तात्पर्य इस बात से होता है कि समूह के सभी सदस्य किस सीमा तक समूह में बने रहने के लिए प्रेरित रहते हैं | जिस सीमा तक समूह के सदस्य समूह में बने रहने के लिए प्रेरित रहते हैं, समूह की समग्रता उतनी ही अधिक समझी जाती है | दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि समूह समग्रता यह बतलाती है कि सदस्यों के लिए समूह कितना आकर्षक है | जिस कारण से भी सदस्यों के लिए समूह जितना ही आकर्षक होगा, सदस्य उतना ही समूह में बने रहना चाहेंगे और तब समूह की समग्रता उतनी ही अधिक होगी।

11.4.1 समूह समग्रता की परिभाषाएँ एवं तथ्य

''समूह समग्रता से तात्पर्य उस सीमा से होता है जिस सीमा तक समूह के सदस्यों में सदस्य बने रहने की इच्छा होती है।'' -फेल्डमैन

''समूह समग्रता उन सभी बलों के परिणामस्वरूप होता है जो सदस्यों को समूह में रहने के लिए बाध्य करती है।'' - फेस्टिंगर

अत: परिभाषाओं का विश्लेषण करने से हमें समूह समग्रता के बारे में निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं-

1. समूह के सदस्यों द्वारा समूह जितना ही अधिक आकर्षक होता है, समूह में समग्रता उतनी ही अधिक होती है।
2. समूह में समग्रता अधिक होने से सदस्यों में सन्तोष की भावना अधिक होती है।
3. समूह में समग्रता होने पर सदस्यों को समूह लक्ष्य की ओर प्रेरित करने के लिए अधिक प्रयास तथा प्रोत्साहन की जरूरत नहीं पड़ती है।
4. समग्र समूह अधिक स्थिर होता है तथा साथ ही साथ सदस्यों का मनोबल ऊँचा भी होता है।

11.5 समूह समग्रता को प्रभावित करने वाले कारक

समाज मनोवैज्ञानिकों ने बहुत से ऐसे कारकों का भी अध्ययन किया है जिनसे समूह समग्रता प्रभावित होती है | दूसरे शब्दों में, कुछ ऐसे कारकों का भी अध्ययन किया गया है जिससे समूह की समग्रता घटती या बढ़ती है।

अ. आवश्यकताओं की संपूर्ति- प्रत्येक समूह में अलग-अलग तरह के सदस्य होते हैं | कुछ सदस्य प्राथमिक होते हैं तथा कुछ सदस्य गौण होते हैं | प्राथमिक सदस्यों की भूमिका समूह के लिए गौण सदस्यों की भूमिका की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होती है | फलस्वरूप समूह प्राथमिक सदस्यों की अधिकतर आवश्यकताओं की एवं गौण सदस्यों की कुछ खास आवश्यकताओं की पूर्ति करता है | समाज मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि जिस समूह में दोनों तरह के सदस्यों की अधिकतर आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, वह समूह सदस्यों के लिए अधिक आकर्षक होता है तथा उसमें समूह समग्रता अधिक होती है | अगर किसी कारणवश सदस्यों की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि समूह द्वारा नहीं हो पाती है, तो वैसी परिस्थिति में समूह सदस्यों के लिए आकर्षक नहीं रह जाता है और उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है।

ब. विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति- प्रत्येक समूह का अपना एक लक्ष्य होता है जिसे हम समूह लक्ष्य कहते हैं | इस समूह लक्ष्य के अलावा सदस्यों का अपना वैयक्तिक लक्ष्य भी होता है जो प्राय: छिपा होता है | उदाहरणार्थ, अध्यापक के समूह का लक्ष्य मानव जाति का कल्याण करना हो सकता है परन्तु कुछ अध्यापक का अपना वैयक्तिक लक्ष्य जैसे अधिक से अधिक धन कमाना हो सकता है | यदि इन दोनों लक्ष्यों में असंगति हो जाती है तो समूह समग्रता अधिक नहीं रह पाती है | जिस समूह के सदस्यों के लक्ष्यों और समूह के लक्ष्य में समानता अधिक होती है वहाँ समूह में समग्रता अधिक पायी जाती है।

स. समान अभिवृत्तियाँ एवं अन्त प्रक्रिया- यदि किसी समूह के सदस्यों ने समान अभिवृत्ति पायी जाती है तो समूह की समग्रता भी अधिक होगी। यदि समूह सदस्यों में नकारात्मकता अधिक है तो समूह समग्रता कम होगी। यदि समूह सदस्य एक-दूसरे को पसन्द करते हैं एवं उचित अनुक्रिया करते हैं तब समूह में समग्रता एवं सहभागिता अधिक पायी जाती है | यदि समूह के सदस्यों में समानता का भाव कम है बल्कि वह अपने समूह के कुछ सदस्यों को तुच्छ एवं कमजोर मानते हैं तब इस स्थिति में अन्त:क्रिया का अभाव होने पर समग्रता कम हो जाती है।

द. **समूह की कार्यात्मक एकता-** समूह समग्रता समूह के कार्य एवं क्रियाओं पर निर्भर करती है | यदि किये गये कार्य समूह को आकर्षित करते हैं तो क्रियात्मकता अधिक पायी जाती है| जो समग्रता को बढ़ाने में मदद करती है | हैकमैन एवं ओल्ड हॉम (1976) में पाया कि जब समूह सदस्यों को क्रियाकलापों एवं उत्तरदायित्व अधिक विस्तृत कर दिया जाता है तो इससे कर्मचारी अपने काम को अधिक आकर्षक समझने लगते हैं | इसके परिणामस्वरूप समग्रता बढ़ जाती है |

य. **नेतृत्व की प्रकृति-** समूह समग्रता समूह के नेता के व्यवहार द्वारा भी प्रभावित होती है | कार्टराईट ने अपने अध्ययन में पाया कि जिस समूह का नेता प्रजातंत्रात्मक ढंग से व्यवहार करता था तथा महत्त्वपूर्ण निर्णय एवं कार्यों में सदस्यों की सहभागिता को प्रोत्साहित करता था। इस प्रकार के समूह में समग्रता अधिक पायी गयी तथा दूसरी तरफ जिस समूह का नेता सत्तावादी ढंग से व्यवहार करता था तथा सभी निर्णय स्वयं करके सदस्यों को थोप देता था। उस समूह में समग्रता काफी कम देखी गयी।

11.6 समूह समग्रता के प्रमुख परिणाम

समाज मनोवैज्ञानिकों ने यह जानने का प्रयास किया है कि जब समूह में समग्रता अधिक होती है तो उसका क्या परिणाम होता है | विभिन्न लोगों द्वारा किये गये अध्ययनों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि समूह समग्रता के निम्नांकित चार महत्वपूर्ण प्रभाव होते हैं-

अ. **प्रभावी समूह सदस्यता**- अगर समूह में समग्रता अधिक है, यानी कोई समूह अगर अपने सदस्यों के लिए काफी महत्वपूर्ण है, तो वैसी परिस्थिति में यह स्वभाविक है कि अधिकतर सदस्य उस समूह की सदस्यता को स्वेच्छा से समाप्त नहीं करना चाहेंगे। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति यह देखता है कि अब काँग्रेस उतनी आकर्षक नहीं रह गई है, तो वह स्वभावत: इस पार्टी की सदस्यता त्याग कर किसी आकर्षक पार्टी में सम्मिलित हो जाना चाहेगा। थिबौट तथा केली ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि किसी समूह की समग्रता अधिक होने पर भी व्यक्ति उसकी सदस्यता का स्वेच्छा से त्याग करना चाहता है बशर्ते कि उसके सामने कोई और अधिक आकर्षक विकल्प उपलब्ध हो।

ब. **सदस्यों पर उचित नियंत्रण-** जब समूह में समग्रता अधिक होती है तो समूह का सदस्यों पर प्रभाव एवं नियंत्रण अधिक होता है | समूह की समग्रता कम होने पर फेस्टिंगर एवं उनके सहयोगियों ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा है कि समूह में समग्रता अधिक होने से सदस्यों में अनुरूपता व्यवहार अधिक बढ़ जाता है | दूसरे शब्दों में, यदि समूह अधिक समग्र होता है, तो ऐसी परिस्थिति में सदस्य समूह के मूल्यों तथा मानक आदि के अनुरूप व्यवहार करते हैं | उनके व्यवहार समूह के मूल्यों एवं मानकों से मेंल खाते हैं |

स. **आत्म-सम्मान की भावना-** जब समूह में समग्रता अधिक होती है तो उनके सदस्यों में सुरक्षा की भावना अधिक होती है तथा चिन्ता कम होती है | फलस्वरूप समूह में सहभागिता बढ़ती है तथा उनके आत्मसम्मान की भावना भी अधिक हो जाती है | जिस समूह में समग्रता का अभाव होता है उसके सदस्यों में असुरक्षा की भावना अधिक होती है |

द. **समूह उत्पादकता पर सकारात्मक प्रभाव-** प्राय: ऐसा माना जाता है कि समूह समग्रता अधिक होती है तो उत्पादकता भी अधिक होगी। परन्तु समाज मनोवैज्ञानिकों के अध्ययन बताते है कि यह सम्बन्ध सीधा नहीं शर्तबन्ध है | जेंडर (1977) ने पाया कि समूह का मानक ऐसा जिसमें उत्पादकता पर बल दिया जाता है तो अधिक समग्र समूह में उत्पादकता अधिक होगी। परन्तु यदि समूह का मानक उत्पादकता को निरूत्साहित करता है तो समग्रता अधिक होने पर भी उत्पादकता अधिक नहीं होगी ।

11.7 समूह समग्रता का मापन

कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने समग्रता को मापने के लिए 7-बिन्दु मापनी का निर्माण किया है जिसमें सदस्य सम्पूर्ण समूह के प्रति अपनी आकर्षकता को व्यक्त करता है | इसके बाद इसका सांख्यिकीय विश्लेषण करके समग्रता को मापा जाता है | कुछ दूसरे समाज मनोवैज्ञानिकों ने समग्रता को मापने के प्रत्येक सदस्य का रेटिंग प्राप्त करके उसकी औसत ज्ञात कर लेने की सिफारिश की है | इसी औसत के आधार पर फिर समूह की समग्रता मापी जाती है |

इन दोनों विधियों के अलावा आजकल समूह समग्रता का मापन मोरेनो की समाजमितीय विधि द्वारा भी किया जा सकता है | इस विधि में सदस्यों से उन व्यक्तियों का नाम गुप्त रूप से पूछा जाता है जिनके साथ वह समूह के लिए उपयोगी क्रिया-कलाप में भाग लेना पसन्द करेंगे। यदि अधिक से अधिक सदस्य वैसे व्यक्तियों के नाम लेते हैं तो अपने समूह के सदस्य न होकर दूसरे समूह के सदस्य होते हैं, तो यह समझा जाता है कि समूह में समग्रता कम है | दूसरी तरफ, यदि अधिक से अधिक सदस्य अपने ही समूह के अन्य सदस्यों के नाम लेते हैं तो ऐसा समझा जाता है कि समूह में समग्रता अधिक है | मोरेनो ने समाजमितीय पसन्दों को आलेख द्वारा दिखलाने की सिफारिश की है | इस आलेख को समाजमितिक रेखा-चित्र की संज्ञा दी गयी है | इस रेखा-चित्र का सबसे प्रधान गुण यह कि इसे मात्र देखकर यह जाना जा सकता है कि समूह में समग्रता है या नहीं। इस रेखा-चित्र का एक प्रधान अवगुण यह बताया गया है कि रेखा-चित्र द्वारा समूह की समग्रता का अन्दाजा तभी सही लगाया जा सकता है जब समूह में सदस्यों की संख्या कम हो अर्थात जब समूह छोटा हेाता है | बड़ा समूह के होने पर रेखा-चित्र एक ऐसे जाल के समान दिखाई देता है जिससे समग्रता के बारे में किसी तरह का अन्दाजा लगाना असम्भव हो जाता है ।

11.8 सारांश

समूह प्रभावशीलता एवं बहुविमीय चर है | एक ही समूह की प्रभावशीलता के बहुत से मापदण्ड होते हैं | कोई समूह कुछ सदस्यों के लिए प्रभावशाली हो सकता है परन्तु दूसरे सदस्यों के लिए प्रभावशील नहीं भी हो सकता है |

समूह प्रभावशीलता को मूलत: दो तरह के मापदण्डों के रूप में ही परिभाषित किया जा सकता है | वे दो मापदण्ड हैं- समूह उत्पादकता तथा सदस्यों की सन्तुष्टि। अत: ऐसे समूह को प्रभावशील समूह कहा जायेगा जिसकी उत्पादकता संतोषजनक होगी तथा जिसके सदस्यों में सन्तुष्टि अधिक होगी।

समूह प्रभावशीलता भिन्न-भिन्न कारकों द्वारा प्रभावित होती है | कुछ ऐसे ही कारक या निर्धारक जिनसे समूह प्रभावशीलता में मात्रात्मक अन्तर होता है।

(क) समूह की संरचना को प्रभावित करने वाले कारक

(ख) समूह की अन्तक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक

(क) समूह की संरचना को प्रभावित करने वाले कारक-

समूह की प्रभावशीलता नेतृत्व का प्रकार, समूह अभिप्रेरणा स्तर तथा मैत्री सम्बन्ध इससे प्रभावित होती है।

समूह समग्रता यह बतलाती है कि सदस्यों के लिए समूह कितना आकर्षक है | जिस कारण से भी सदस्यों के लिए समूह जितना ही आकर्षक होगा, सदस्य उतना ही समूह में बने रहना चाहेंगे और तब समूह की समग्रता उतनी ही अधिक होगी। समाज मनोवैज्ञानिकों ने बहुत से ऐसे कारकों का भी अध्ययन किया है जिनसे समूह समग्रता प्रभावित होती है | समूह समग्रता के प्रमुख परिणाम-

अ. प्रभावी समूह सदस्यता

ब. सदस्यों पर उचित नियंत्रण

स. आत्म-सम्मान की भावना

द. समूह उत्पादकता पर सकारात्मक प्रभाव

कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने समग्रता को मापने के लिए 7-बिन्दु मापनी का निर्माण किया है जिसमें सदस्य सम्पूर्ण समूह के प्रति अपनी आकर्षकता को व्यक्त करता है | इसके बाद इसका सांख्यिकीय विश्लेषण करके समग्रता को मापा जाता है | कुछ दूसरे समाज मनोवैज्ञानिकों ने समग्रता को मापने के प्रत्येक सदस्य का रेटिंग प्राप्त करके उसकी औसत ज्ञात कर लेने की सिफारिश की है | इसी औसत के आधार पर फिर समूह की समग्रता मापी जाती है |

11.9 कठिन शब्द

- **समूह प्रभावशीलता-** जिस समूह में सदस्यों द्वारा अधिक से अधिक उत्पादन किया जाता है, उसे उतना ही प्रभावशील समूह समझा जाता है | कुछ लोगों ने समूह प्रभावशीलता का अर्थ सदस्यों में उत्पन्न सन्तुष्टि से लिया है | जिस समूह के सदस्यों में जितनी ही अधिक सन्तुष्टि होती हैं, उसे उतना ही अधिक प्रभावशील समूह समझा जाता है |
- **समूह समग्रता -** समूह समग्रता से तात्पर्य इस बात से होता है कि समूह के सभी सदस्य किस सीमा तक समूह में बने रहने के लिए प्रेरित रहते हैं | जिस सीमा तक समूह के सदस्य समूह में बने रहने के लिए प्रेरित रहते हैं, समूह की समग्रता उतनी ही अधिक समझी जाती है|

11.10 अभ्यास प्रश्न-

1. समूह समग्रता को परिभाषित कीजिए?
2. समूह समग्रता को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक बताइए?
3. समूह समग्रता के प्रमुख परिणाम लिखिए?
4. समूह समग्रता के मापन की प्रमुख विधियाँ कौनसी है?

11.11 संदर्भ सूची

- सौरेन्सन, हर्बट, ''साइक्लोजी इन ऐजुकेशन, नई दिल्ली, टाटा मेंग्राहिल (1977)
- कुप्पूस्वामी, बी 'एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल साइक्लोजी' बाम्बे, एशिया पब्लिकेशन हाऊस, 1971
- भार्गव, विवेक, शैक्षिक मनोविज्ञान, राखी प्रकाशन, आगरा, 2007
- सिंह, अरूण कुमार, समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली 1991
- बोरिंग, ई.सी., लैंगफील्ड, एच. एस, एवं बील्ड एच.पी. फाऊण्डेशन ऑफ साइक्लोजी, न्यूयॉर्क, जॉन बिली, 1961
- ट्रेवर्स, रॉबर्ट, एम. डब्ल्यू., एजुकेशनल साइक्लोजी, न्यूयॉर्क, मैकमिलन, 1973
- सिंह, रामपाल, सिंह, एस.डी. एवं शर्मा देवदत्त, नवीन व्यावहारिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक, मन्दिर, आगरा, 2005
- अस्थाना विपिन, अस्थाना श्वेता, मनोविज्ञान एवं शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, विनोद पुस्तक मन्दिर, 2005

इकाई – 12

सामाजिक सरलीकरण, भीड़, सामाजिक श्रमानवयन, निर्वेयक्तिता

Social Facilitation, crowding, social loafing, Deindividuation

इकाई की रुपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 सामाजिक सरलीकरण: संप्रत्यय
12.4 सामाजिक सरलीकरण के सिद्धांत
12.5 भीड़ : संप्रत्यय
12.6 भीड़ की विशेषताएँ
12.7 भीड़ के प्रकार
12.8 भीड़ व्यवहार के सिद्धान्त
12.9 सामाजिक श्रमानवयन : संप्रत्यय
12.10 निर्वेयक्तिता : संप्रत्यय
12.11 सारांश
12.12 शब्दावाली
12.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.14 निबंधात्मक प्रश्न
12.15 संदर्भ ग्रंथ सूची

12.1 प्रस्तावना

मनुष्य सामाजिक प्राणी है । वह सामाजिक परिस्थितियों में परस्पर अन्तर्क्रिया करता है । समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति अपने सामाजिक वातावरण के साथ अनुकूलन करता है, सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप अपनी आवश्यकताओं, व्यवहार और रुचियों पर नियंत्रण करता है। दूसरों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाहन करता है साथ ही प्रभावपूर्ण तरीके से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करता है । प्रस्तुत इकाई में आप सामाजिक मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों यथा- सामाजिक सरलीकरण, भीड़, सामाजिक श्रमानवयन और निर्वेयक्तिता का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्धयन करने के पश्चात आप-

- सामाजिक सरलीकरण का अर्थ समझ सकेंगे और उसे परिभाषित कर सकेंगे।
- भीड़ का अर्थ समझ सकेंगे और उसे परिभाषित कर सकेंगे।
- भीड़ की विशेषताओं को बता सकेंगे।
- भीड़ की संरचना और प्रकारों को समझ सकेंगे।
- भीड़-व्यवहार के विभिन्न सिद्धांतों को बता सकेंगे।
- सामाजिक श्रमानवयन का वर्णन कर सकेंगे।
- निर्वेयक्तिता या अवैयक्तिकता की व्याख्या कर सकेंगे।

12.3 सामाजिक सरलीकरण (Social Facilitation): संप्रत्यय

सामाजिक सरलीकरण से तात्पर्य दूसरों की उपस्थिति से किसी कार्य को करने में पुनर्बलन प्राप्त होता है अर्थात यह प्रक्रम सामाजिक अन्तर्निरोध का विरोधी है जिसमें दूसरों की उपस्थिति पर व्यक्ति की कार्य करने की गति में बृद्धि हो जाती है। मोबाईल फोन अथवा एफ एम रेडियो पर गाने को सुनते हुए प्रायः कुछ व्यक्तियों के काम में तेजी आ जाती है। दूसरे व्यक्ति के नजदीक खड़े होने पर कुछ लोगों की कार्य करने की गति में तेजी आ जाती है और वे अपने कार्य को कम समय में पूरा कर लेते हैं। इसमें व्यक्ति को अन्य किसी व्यक्ति या वस्तु की उपस्थिति से अधिक स्फूर्ति से कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। सामान्य दिनों में आप अपना गृहकार्य सुस्ती से करते हैं और जब कोई अतिथि आपके परिवार में आ जाता है तो उसकी उपस्थिति में आप अधिक तीव्रता से कार्य करने लगते हैं। ऐसा व्यवहार बहुत से व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में भी करते हैं। प्रायः जब आप अकेले भोजन करते हैं तो आपका पेट नहीं भरता, परन्तु जब आप मित्रों या परिवार के सदस्यों के साथ बैठकर भोजन करते हैं तो आपको अधिक संतुष्टि प्राप्त होती है। **बेरोन और बिर्ने** (Baron & Byrne, 2005) सामाजिक सरलीकरण को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि – "सामाजिक सरलीकरण का तात्पर्य दूसरों की उपस्थिति के परिणामस्वरूप कार्य के निष्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव से है।" **किम्बलयंग** के अनुसार-"सामाजिक सरलीकरण का तात्पर्य दूसरे व्यक्तियों की उपस्थिति या कार्य के कारण किसी व्यक्ति की प्रतिक्रिया की वृद्धि से है।" इसी कारण **मिलर** और **डोलार्ड** ने सामाजिक सरलीकरण को भीड़-उत्तेजना कहा है।

भीड़ के एकत्र होने में चेतन तथा अचेतन प्रेरणाओं के साथ-साथ सामाजिक सरलीकरण का भी योगदान होता है। लोगों के एक साथ एकत्र होने पर कुछ क्रियाएँ स्वयं आरम्भ हो जाती हैं जो भीड़-व्यवहार को नियन्त्रित और संचालित करती हैं। जैसे-समान उत्तेजना का होना, लोगों के बीच सम्पर्क होना, सामूहिक रूप से वार्तालाप में सम्मिलित होना आदि ऐसे कारक उत्पन्न हो जाते हैं, जो भीड़-व्यवहार के निर्धारक बन जाते हैं। भीड़ के सदस्य एक-दूसरे को देखकर प्रोत्साहित होते हैं और समान व्यवहार को प्रदर्शित करते हैं।

12.4 सामाजिक सरलीकरण के सिद्धांत (Theories of Social Facilitation)

सामाजिक सरलीकरण एक सामान्य सामाजिक घटना नहीं है। इसका वर्णन करने के लिए कई सिद्धांत विकसित हुए हैं जिनमें से प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित हैं–

(1) **प्रणोदन सिद्धांत** (Drive Theory)- इस सिद्धांत का निरूपण **जाजोक** (Zajonc, 1965) द्वारा किया गया। उनके मतानुसार दूसरे व्यक्तियों की उपस्थिति का प्रभाव अन्य व्यक्तियों के कार्य निष्पादन पर सदैव एक जैसा नहीं होता है। जब व्यक्ति किसी विषय को अच्छी तरह से जानता है तो इस पर दूसरे लोगों की उपस्थिति का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। दूसरी ओर सामान्य तरीके से सीखे गए विषय पर दूसरे व्यक्तियों की उपस्थिति का नकारात्मक रूप से प्रभाव पड़ता है। अतः पहली स्थिति में सामाजिक सरलीकरण और दूसरी परिस्थिति में सामाजिक श्रमावनयन का घटना क्रम होता है। **बेरोन और बिर्ने** (Baron & Byrne, 2005) के अनुसार- प्रणोदन और सामजिक सरलीकरण के बीच सीधा सम्बन्ध नहीं है। इसमें दूसरे लोगों कि उपस्थिति के साथ-साथ कार्य की प्रकृति और उसके अर्जन के स्वरुप पर निर्भर करता है। अतः यह सिद्धांत सामाजिक सरलीकरण की व्याख्या आंशिक रूप से ही करता है।

(2) **मूल्यांकन आशंका सिद्धांत** (Evaluation Apprehension Theory) – यह सिद्धांत **कोटरेल** (Cotrell, 1972) के शोध अध्ययनों पर आधारित है। इस सिद्धांत के अनुसार- सामाजिक सरलीकरण पर दूसरे लोगों की उपस्थिति की चेतना से कहीं अधिक उनके द्वारा काल्पनिक अथवा यथार्थ मूल्यांकन का प्रभाव पड़ता है। जब व्यक्ति को इस बात की अनुभूति होती है कि उपस्थित लोग उसके कार्य का मूल्यांकन कर रहे हैं तो वह अपने कार्य को और अधिक ध्यानपूर्वक करने लगता है, जिससे सामाजिक सरलीकरण सम्पन्न होता है। इसके विपरीत जब उस व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों की उपस्थिति से मूल्यांकन किए जाने की अनुभूति नहीं होती है, तो वह अपने कार्य को सामान्य ढंग से ही करता है, जिससे सामाजिक सरलीकरण की घटना नहीं होती है। यह सिद्धांत भी सामाजिक सरलीकरण का वर्णन अल्प रूप में ही कर पाता है।

(3) **चित्तविच्छेद द्वन्द सिद्धांत** (Distraction Conflict Theory) – **बैरोन** (1986) को इस सिद्धांत का सृजनकर्ता माना जाता है। इसके अनुसार सामाजिक सरलीकरण का आधार दूसरे लोगों की उपस्थिति में किये जाने वाले कार्य की प्रकृति पर निर्भर करता है। जब कार्य आसान होता है तो दूसरे लोगों की उपस्थिति व्यक्ति की कार्यक्षमता में बृद्धि कर देती है। जटिल कार्य होने पर दूसरे लोगों की उपस्थिति से व्यक्ति की कार्यक्षमता का स्तर घट जाता है। सरल कार्य करने की स्थिति में व्यक्ति का प्रणोदन-स्तर (Drive Level) उच्च हो जाता है, क्योंकि वह किसी तरह के चित्त विच्छेद द्वन्द का अनुभव नहीं करता है। इसे सामाजिक सरलीकरण का प्रभाव समझा जाता है। जबकि जटिल कार्य करने की स्थिति में व्यक्ति को दूसरे लोगों की उपस्थिति से चित्तविच्छेद द्वन्द का अनुभूति अधिक होती है, जिससे प्रणोदन-स्तर (Drive Level) निम्न हो जाता है। फलस्वरूप कार्य निष्पादन (Performance) मात्रात्मक और गुणात्मक रूप से न्यूनतम हो जाता है। इस स्थिति में यह

समझा जाता है कि सामाजिक सरलीकरण सम्पन्न नहीं हुआ । यह सिद्धांत भी सभी परिस्थितियों में घटित सामाजिक सरलीकरण की व्याख्या उचित ढंग से नहीं करता है।

अतः यह कह जा सकता है कि सामाजिक सरलीकरण एक जटिल सामाजिक घटना है, जिसकी व्याख्या किसी सिद्धांत से असंभव है। परन्तु उपरोक्त तीनों सिद्धान्तों की सहायता से ही सामाजिक सरलीकरण की आंशिक व्याख्या संभव है।

अभ्यास प्रश्न :-1

1. ----------और ----------ने सामाजिक सरलीकरण को भीड़-उत्तेजना कहा है।
2. **जाजोक** (Zajonc, 1965) द्वारा ---------- का प्रतिपादन किया गया।
3. भीड़ के सदस्य एक-दूसरे को देखकर प्रोत्साहित होते हैं और ---------- को प्रदर्शित करते हैं।
4. सरल कार्य करने की स्थिति में व्यक्ति का ---------- उच्च हो जाता है।
5. ---------- एक जटिल सामाजिक घटना है।

12.5 भीड़ (Crowding): संप्रत्यय

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भीड़ शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति-समूह के लिए किया जाता है जो किसी संवेग की धारा में वहकर, कुछ समय के लिए समान भाव से ग्रसित होकर अचानक एकत्र हो जाता है। भीड़ वाली परिस्थितियों में व्यक्ति का व्यवहार बिल्कुल बदल जाता है। आपके आस-पास इसके अनेक उदाहरण देखने को मिल जायेंगे । समूह-व्यवहार की अपेक्षा व्यक्ति व्यवहार और भीड़-व्यवहार के बीच अधिक भिन्नता पायी जाती है। ऐसा क्यों? यह एक बड़ी जटिल समस्या है जिसके समाधान के लिए समाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत भीड़ के भिन्न-भिन्न पक्षों का अध्ययन किया जाता है। सभी प्रकार के सामाजिक समूहों में भीड़ सबसे अधिक असंगठित समूह होता है। जैसाकि आप आजकल बाजारों में, रेलवे स्टेशनों पर और मेंट्रो स्टेशनों पर देखते हैं, लोग तेजी से एकत्र होते हैं और उतनी ही तेजी से बिखर भी जाते हैं। भीड़ पर किसी भी प्रकार की व्यवस्था लागू नहीं हो पाती है क्योंकि यह न तो स्थिर होती है और न ही स्थायी। **फ्लोयोड आलपोर्ट** ने भीड़ के विषय में लिखा है कि –"ऐसे व्यक्तियों का जमाव, जो किसी समान उद्देश्य से परिचालित या प्रतिक्रियारत होते हैं और जिनकी प्रतिक्रियाएँ सरल परन्तु प्रबल प्रकृति की ओर तीव्र भावनात्मक अनुक्रियाओं से पूर्ण होती हैं।" भीड़ व्यक्तियों का अस्थायी, संरचनाविहीन और असंगठित जमावड़ा होता है। परन्तु सामाजिक जीवन में इसका बहुत अधिक महत्व है। आपने ग्रामीण क्षेत्रों में लगने वाले साप्ताहिक बाजारों में देखा होगा कि किस प्रकार साँप का खेल दिखाने वाले अथवा किसी करतब का प्रदर्शन करने वाले को घेरकर खड़े हो जाते हैं। इसमें किसी भी प्रकार की निश्चित व्यवस्था नहीं होती – बस लोग यूँ ही भीड़ बाँधकर एकत्रित हो जाते हैं। **मिलग्राम और टोच** भीड़ के व्यवहार के विषय में कहते हैं कि –"सामूहिक व्यवहार वास्तव में ऐसा स्वतःस्फूर्त समूह व्यवहार होता है जिसका विकास अपेक्षाकृत अव्यवस्थित, अनिश्चित और बिल्कुल योजनामुक्त होता है एवं जो उपस्थित लोगों के परस्पर अन्तर-उद्दीपन पर निर्भर करता है।" इस कथन में भीड़ का व्यवहार, आन्दोलन, सार्वजानिक विद्रोह और दंगा-फसाद आदि शामिल हैं । भीड़ में शामिल लोगों का

व्यवहार उनके व्यक्तिगत व्यवहार से पूर्णता भिन्न होता है। **फेल्डमैन** (Feldman, 1985) ने भीड़ को इस प्रकार परिभाषित किया है कि – "भीड़ एक मनोवैज्ञानिक स्थिति है, जो तनावपूर्ण होती है और जो इस स्थिति को दूर या समाप्त करने की प्रेरणा देती है।" भीड़ के लोगों का ध्यान समान और किसी एक ही बिन्दु पर केन्द्रित होता है। यह केन्द्रीकरण कुछ समय के लिए संवेगों के कारण होता है। भीड़ में स्थायित्व का अभाव पाया जाता है क्योंकि यह संवेग की उपस्थिति तक ही रहती है। भीड़ में लोगों की संख्या निश्चित नहीं हो सकती है। **रेबर** (Reber,1995) ने भीड़ को परिभाषित करते हुए कहा है कि – "भीड़ का अर्थ व्यक्तियों का वह बड़ा संग्रहण है, जो अस्थाई होता है, और जिसका एक सामान्य स्वार्थ अथवा केन्द्रबिन्दु होता है।" भीड़ सृजनात्मक और विध्वंसात्मक दोनों प्रकार का व्यवहार कर सकती है। सकारात्मक संवेग के कारण सृजनात्मक और नकारात्मक संवेग के कारण विध्वंसात्मक व्यवहार प्रदर्शित करती है। इसीलिए व्यक्ति का सामूहिक व्यवहार सामाजिक परिवर्तन का एक बहुत बड़ा साधन बन सकता है जैसे – अन्ना हजारे के आन्दोलन के समय आम आदमी पार्टी का उदय हुआ, जिसके फलस्वरूप दिल्ली में कांग्रेस पार्टी का शासन समाप्त हो गया। इस अर्थ में सामाजिक आन्दोलनों को ऐतिहासिक परिवर्तन का दिशा-सूचक भी माना जा सकता है।

12.6 भीड़ की विशेषताएँ (Characteristics of Crowd)

लोगों का अचानक एकत्रित होना ही भीड़ है। सामान्यतः भीड़ एक एक वृत्त के आकार में जमा होती है। इससे अधिकांश लोगों को यह सुविधा रहती है कि क्या हो रहा है। इस प्रकार के वृत्त का अपना एक आकार होता है। भीड़ को एकत्रित करने वाला व्यक्ति वृत्त के केन्द्र में होता है और उसके चारों ओर थोड़ी-सी खाली जगह होती है। जो लोग पहले आते हैं वे इसी खाली जगह के आस-पास एकत्रित होकर पहला वृत्त निर्मित करते हैं और बाद में इसी प्रकार वृत्ताकार रूप में फैले हुए लोग चार या पाँच लोगों की चौड़ाई के वृत्त बना लेते हैं। इसके पश्चात बाहरी सीमारेखा पर देर से आने वाले लोग आन्तरिक गतिविधियों को देखने के लिए भीतरी सीमा की ओर बढ़ते रहते हैं। पहले से आये हुए लोगों की जिज्ञासा शान्त हो चुकी होती है अथवा रूचि समाप्त हो चुकी होती है। फलस्वरूप ऐसे लोग बाहर निकलने का प्रयास करते हैं। अतः यह माना जा सकता है कि जो लोग भीतरी सीमारेखा बनाते हैं, वे अपेक्षाकृत अधिक अभिप्रेरित होते हैं। भीड़ की अपनी संरचना में इस प्रकार का परिवर्तन होता रहता है अर्थात जो व्यक्ति किनारे पर खड़ा रहना चाहता है, वह तेजी से बढ़ती हुई भीड़ के कारण कुछ समय के बाद केन्द्र में पहुँच जाता है। कोई व्यक्ति अपने स्थान पर ही बना रहना चाहता है परन्तु भीड़ का दबाव उसे अपने प्रवाह में बहा ले जाता है।

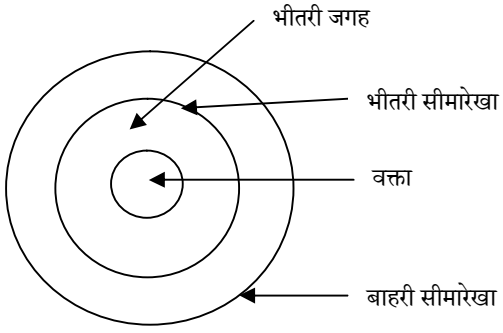

भीड़ के जमा होने पर घेरे की संरचना

भीड़ की एक अन्य प्रमुख विशेषता उसकी विभेदक सहभागिता (Different Participation) है। सामान्यतः यह माना जाता है कि भीड़ एक जैसा व्यवहार प्रदर्शित करती है। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो अपने निजी कार्य या गतिविधियों में व्यस्त रहते हैं। ध्रुवीकरण (Polarization) भी भीड़

की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। जब वक्ता लोगों का ध्यान अपनी ओर बनाये रखने में सफल होता है तो इसे ध्रुवीकरण कहा जाता है। समूह की संरचना से भी ध्रुवीकरण सम्बन्धित होता है। जो लोग केन्द्र की ओर होंगे, वे परिधि पर स्थित व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक ध्रुवीकृत होते हैं। जब किसी भी प्रकार का ध्रुवीकरण नहीं होता है तो इस स्थित्ति में लोग केवल एक जमाव का रूप ले लेते हैं। तब भीड़ के रूप में यह अन्तर हो जाता है कि भीड़ का कोई एक समान उद्देश्य अथवा हित होता है जो ध्रुवीकरण का कारण बनता है। जब ध्रुवीकरण में कमी आती है तो भीड़ बिखर जाती है। आप इसे एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझ सकते हैं कि जब कभी आप धार्मिक या अन्य किसी प्रकार के कार्यक्रम का आयोजन करते हैं तो थोड़े से लोग कुछ कार्यक्रमों में रूचि प्रकट करते हैं परन्तु सामान्यतः वे अपने निजी कार्यों में भी व्यस्त रहते हैं। यदि कोई कार्यक्रम बहुत रुचिकर हुआ तो कुछ मात्रा में ध्रुवीकरण की भी सम्भावना रहती है। भीड़ का घनत्व किसी निश्चित स्थान पर उपस्थित लोगों की गिनती पर निर्भर करता है। इस प्रकार जिन विशेषताओं के कारण लोग एकत्रित होते हैं और भीड़ की शक्ल में परिणित हो जाते हैं उनके व्यवहार की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

I. शारीरिक निकटता (Physical Nearness)
II. मनोवैज्ञानिक एकजुटता (Psychological Unity)
III. अस्थायीपन (Instability)
IV. संवेगों की समानता (Uniformility of Emotions)
V. केन्द्रीय निर्णय (Central Decision)
VI. तर्क-शक्ति का अभाव (Lacking of Logic)
VII. नेतृत्व का अभाव (Lacking of Leadership)
VIII. उद्देश्यों में समानता (Similarity in Ojectives)
IX. सांकेतिक भाषा (Symbolic Language)
X. ध्रुवीकरण (Polarization)

12.7 भीड़ के प्रकार (Kinds of Crowd)

ब्राउन ने भीड़ को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया है-

1. उत्तेजित भीड़ (Mobs)
2. श्रोतागण (Audiences)

उत्तेजित भीड़ को आक्रामक या मोचक भीड़ भी कहा जाता है। श्रोतागण को आकस्मिक भीड़ की संज्ञा दी जाती है। जब किसी प्रकार की सामाजिक अव्यवस्था होती है तो अपनी शिकायतों को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से विरोध-सभाओं और प्रदर्शनों का आयोजन किया जाता है। इन्हें संगठित भीड़ माना जा सकता है- ये वास्तव में आक्रामक भीड़ न होकर आकस्मिक भीड़ होती है। लेकिन दो समूहों में संघर्ष हो जाने पर या प्रशासनिक आदेश को न मानने पर विरोध-सभा को छिन्न-भिन्न करने के लिए पुलिस या सेना के आ जाने पर ये विरोध-सभायें असंगठित भी हो सकती हैं। इन परिस्थितियों में ये विरोध-सभायें उत्तेजित भीड़ का रूप धारण कर लेती हैं। जिससे भीड़ के हिंसक हो जाने पर स्थिति अनियंत्रित हो जाती है।

सामान्यतः उद्देश्यों के अनुसार समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा भीड़ के निम्नलिखित प्रकार स्वीकार किये जाते हैं–

i. रक्षात्मक भीड़ (Protective Crowd)
ii. क्रुद्ध अथवा उत्तेजित भीड़ (Mob or Riot Crowd)
iii. आक्रामक भीड़ (Attacking or Aggressive Crowd)
iv. उत्सवी या त्यौहारी भीड़ (Celebrating or Festive Crowd)
v. आतंकित भीड़ (Panic Crowd)

अभ्यास प्रश्न :-2

1. ---------- में व्यक्ति का व्यवहार बिल्कुल बदल जाता है।
2. भीड़ ----------और ----------दोनों प्रकार का व्यवहार कर सकती है।
3. भीड़ का ----------किसी निश्चित स्थान पर उपस्थित लोगों की ---------- पर निर्भर करता है।
4. उत्तेजित भीड़ को----------या ----------भीड़ भी कहा जाता है।
5. ----------को आकस्मिक भीड़ की संज्ञा दी जाती है।

12.8 भीड़-व्यवहार के सिद्धान्त (Theories of Crowd Behaviour)

भीड़ के विभिन्न व्यवहारों जानने और भीड़ तथा व्यक्ति के व्यवहारों को समझने के लिए भीड़ के विविध सिद्धांतों को समझना अत्यंत आवश्यक है। विभिन्नसमाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा भीड़ के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिद्धांत प्रस्तुत किये हैं-

1. **समाजशास्त्रीय सिद्धांत (Sociological Theory)** – यह सिद्धांत कहता है कि भीड़ का निर्माण एक निश्चित उद्देश्य को लेकर होता है। परन्तु यह सिद्धांत उत्तेजित भीड़ अथवा उत्सवी भीड़ के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार की भीड़ पर लागू नहीं किया जा सकता, क्योकि अन्य प्रकार की भीड़ों में संवेग और उत्तेजना का प्रमुख स्थान होता है। अतः इसे अपूर्ण सिद्धांत माना जा सकता है।
2. **आलपोर्ट का सिद्धांत (Allport's Theory)** – आलपोर्ट के मतानुसार भीड़ का प्रत्येक सदस्य अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करता है। वह किसी समूह-मन के अस्तित्व को नहीं मानता। वह इस बात का समर्थन करता है कि भीड़ अलग-अलग सदस्यों के व्यवहारों का संयुग्मन होती है। आलपोर्ट के अनुसार भीड़ के सदस्यों के व्यवहारों में अन्तर होता है। इसलिए समूह-मन (Group Mind) भीड़ के लिए उत्तरदायी नहीं होता है। यदि ऐसा होता तो प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार में समनता होती। आलपोर्ट के विचारानुसार भीड़ के सदस्य एक जैसे संवेग से प्रभावित होते हैं। इसी कारण व्यक्ति का व्यवहार सामन्य परिस्थिति से बिल्कुल अलग होता है। उसके अनुसार मानव स्वाभाव में समानता पायी जाती है जिसके कारण भीड़ के सदस्यों का ध्यान एक ही बिन्दु पर केन्द्रित हो जाता है। वे समान रूप से एक ही दिशा में कार्यरत रहते हैं। यह सिद्धांत अधिकांश मनोवैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार किया जाता है।
3. **समूह-मन का सिद्धांत (Theory of Group Mind)** – फ्रांसीसी समाज-शास्त्री **लीबॉन** (Lebon) ने 1895 में इस सिद्धांत के प्रतिपादन किया। उन्होंने अपनी पुस्तक 'The Crowd' में उल्लेख किया है कि भीड़-व्यवहार समूह-मन से अधिक प्रभावित होता है। उनके मतानुसार भीड़ का एक विशिष्ट समूह-मन होता है जिसके अनुकूल भीड़ का प्रत्येक सदस्य आचरण करता

है । भीड़ में सदस्यों के व्यक्तिगत मनों (Individual Minds) के संयुग्मन से सामूहिक-मन (Collective Minds) का निर्माण होता है, जो समूह-मन (Group Mind) कहलाता है । व्यक्ति चाहे किसी भी विचारधारा और मत को मानने वाला हो, लेकिन वह भीड़ में रहकर इसी समूह-मन का अनुसरण करता है। भीड़ में रहकर व्यक्ति अपना निजी व्यक्तित्व को विस्मृत कर समूह-मन को अपना लेता है। भीड़ में रहकर व्यक्ति अपने परम अहं (Super Ego) और भय आदि को भूल जाता है। इसी कारण व्यक्ति भीड़ में रहकर भिन्न व्यवहार प्रदर्शित करता है। एकान्त होने पर व्यक्ति वैसा व्यवहार नहीं करता है जैसा कि वह भीड़ में रहकर दूसरे लोगों को देखकर करता है। **लीबॉन** का यह सिद्धांत आलपोर्ट और अन्य मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों से बिल्कुल अलग है जिसका समर्थन **मैक्डुगल** भी करता है तथा समूह-मन के आधार पर सहानुभूति के अस्तित्व को स्वीकार करता है। इसी कारण अन्य मनोवैज्ञानिक **लीबॉन** सिद्धांत की तरह **मैक्डुगल** के सिद्धांत की भी समालोचना करते हैं।

4. **मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत (Psychoanalytical Theory)** – इस सिद्धांत का प्रतिपादन **सिगमण्ड फ्रायड** (Sigmund Freud, 1922) द्वारा किया गया। **मार्टिन** (Martin) ने इस सिद्धांत का समर्थन किया है। उनके मतानुसार भीड़ में सम्मिलित होकर व्यक्ति अपने अचेतन मन (Unconscious Mind) की इच्छाओं को सन्तुष्ट करता है । भीड़ के बाहर रहकर सामाजिक दवाब उसे ऐसा करने में बाधक उत्पन्न करता है। भीड़ में रहकर वह नैतिक या अनैतिक बातों में कोई भेद नहीं करता। इसलिए भीड़ में रहकर व्यक्ति बहुत से अनैतिक कार्य कर देता है । अकेला व्यक्ति किसी भी कुकृत्य को करने का साहस नहीं कर सकता । साम्प्रदायिक हिंसा जैसे अनैतिक कुकृत्य व्यक्ति भीड़ में रहकर ही करता है । **मार्टिन** के कथनानुसार व्यक्ति भीड़ में अपने नेतृत्व के साथ मिलकर उसके सवेग को आत्म-सात कर लेता है। इसी कारण भीड़ के सभी सदस्य समान सुख-दुःख की कल्पना करके एक नियोजित दिशा में कार्यरत हो जाते हैं। इस दौरान वे अपने गलत विचारों को विपक्ष के सदस्यों पर आरोपित करने का प्रयास करते हैं तथा समान व्यवहार प्रदर्शित करने का प्रयत्न करते हैं।

प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिक **सिगमण्ड फ्रायड** भी भीड़ की व्याख्या इस सिद्धांत के आधार पर करता है। उसने भीड़-व्यवहार के विषय में अपनी पुस्तक 'Group Psychology and the Analysis of the Ego' में विस्तार से समझे है। वह भीड़ के एकत्र होने में प्रेम के संवेग को महत्वपूर्ण मानता है जिसके कारण भीड़ के सभी सदस्य एक-दूसरे को अपना समझते हैं । इसी अपनेपन की बजह से वे समान व्यवहार भी प्रदर्शित करते हैं। यही अपनत्व लोगों में सहयोग की मनोवृत्ति का सृजन करता है। फलस्वरूप भीड़ का व्यवहार भी सामूहिक हो जाता है। इस सामूहिक आचरण में व्यक्ति की वैयक्तिकता ओझल हो जाती है और अचेतन मन की इच्छाएं प्रबल हो उठती हैं। जिससे लोगों की परम अहं (Super Ego) की भावना भी अनियन्त्रित हो जाती है। यही कारण है कि अचेतन मन (Unconscious Mind) की सुषुप्त इच्छाएं अनुकूल वातावरण पाकर जाग्रत हो जाती हैं। ये अतृप्त इच्छाएं भीड़ में तृप्त होने का प्रयास करती हैं। इसीलिए फ्रायड कहता है कि भीड़ का व्यवहार अप्रत्याशित, भयावह और अधिक संवेगात्मक बन जाता है।

5. **अवैयक्तिकता सिद्धांत (Deindividuation Theory)** – इस सिद्धांत का प्रतिपादन **जिम्बारडो** (Zimbardo, 1970) द्वारा किया गया। भीड़-व्यवहार का यह आधुनिक सिद्धांत माना जाता है । इस संप्रत्यय (Concept) की व्याख्या फेस्टिंगर, पेपिटो और न्युकम्ब

(Festinger, Pepitone & Newcomb, 1922) के द्वारा **लीबॉन** (Lebon, 1903) के समूह-मन की अवधारणा के स्थान पर की गयी। उनके मतानुसार भीड़ के सदस्य स्वयं की पहचान खो देते हैं, अपने-अपने दायित्वों का विस्मरण कर देते हैं और ऐसा व्यवहार प्रदर्शित करते हैं जिसे वे अपने व्यक्तिगत जीवन में कभी-नहीं करते हैं। **जिम्बारडो** ने इस अवधारणा को और अधिक स्पष्ट करने के लिए इस विषय में शोध अध्ययन किया। उनके अनुसार भीड़ के सदस्य अपनी-अपनी गुमनामी (Anonymity), उत्तेजन (Arousal) और विस्तृत समूह में होने के कारण अपनी व्यक्तिगत पहचान (Identity) भूल जाते हैं। फलस्वरूप वे अपने द्वारा किये जाने वाले व्यवहारों और क्रिया-कलापों के प्रति व्यक्तिगत जिम्मेदारी की भावना से मुक्त हो जाते हैं और स्वच्छंद होकर ऐसा व्यवहार करने लगते हैं, जिसे प्रायः वे अपने दैनिक जीवन में नहीं करते हैं। इस सिद्धांत का केन्द्र बिन्दु लोगों का असामाजिक व्यवहार रहा है। भीड़ में व्यक्ति असामाजिक व्यवहार का प्रदर्शन क्यों करता है। यही इस सिद्धांत का ध्यान-केन्द्र रहा है। **जिम्बारडो** के अनुसार अवैयक्तिकता के कारण व्यक्ति भीड़ में असामाजिक व्यवहार को प्रदर्शित करता है। इसे सिद्ध करने के लिए उन्होंने प्रयोगशाला में कई प्रयोग किये। उन्होंने प्रयोज्यों के दो समूहों में से एक समूह के सदस्यों को प्रयोशालीय कुर्ता (Laboratory Coats) और टोप (Hoods) पहना दिया ताकि उनमें अवैयक्तिकता का भाव उत्पन्न हो सके। इसी प्रकार दूसरे समूह के सदस्यों को अपने – अपने वस्त्र पहनने और स्वयं के नाम के टेग या लेबल (Label) लगाने के लिए कहा गया ताकि उनमें भी अवैयक्तिकता का भाव बना रह सके। तत्पश्चात दोनों समूहों के सदस्यों को एक विशेष वातावरण में रखा गया और नये अधिगमकर्ता (Learner) को आघात पहुँचाने का अवसर दिया गया। प्रेक्षण के दौरान यह पाया गया कि दूसरे समूह की अपेक्षा पहले समूह के सदस्यों या प्रयोज्यों ने लम्बी अवधि तक अघात पहुँचाया। **वाटसन** (Watson,1973), **फ्रेजर आदि** (Frazer et al, 1975) ने भी इस सिद्धांत का अपने-अपने प्रयोगों के आधार पर समर्थन किया है। यहाँ यह बात याद रखनी चाहिए कि अवैयक्तिकता के लिए बड़ी और उत्तेजित भीड़ का होना आवश्यक नहीं है। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भीड़ और अवैयक्तिकता में उत्पन्न होने वाले व्यवहारों के बीच घनिष्ट सम्बन्ध होता है। भीड़ की परिस्थितियाँ भीड़ के सदस्यों के बीच अवैयक्तिकता को अवश्य ही उत्पन्न कर देती है, क्योंकि भीड़ परिस्थितियों के कारण उसके सदस्यों की व्यक्तिगत पहचान लुप्तप्राय हो जाती है एवं जिम्मेदारी समाप्त हो जाती है। **कूपर** (Cooper, 1919) ने भी इस सिद्धांत के पक्ष में अपना मत प्रकट किया है। उनके मतानुसार – भीड़ में या भीड़ के बाहर होना जरुरी नहीं है, बल्कि आवश्यक जिम्मेदारी का ओझल होना और उसके विकीर्ण होने का भाव। यदि यह भाव भीड़ से बाहर के लोगों में उत्पन्न हो जाये तो वे अवैयक्तिकता की अनुभूति कर सकते हैं और उनमें आप भीड़ के समान व्यवहार का अवलोकन कर सकते हैं। इस सिद्धांत की एक विशेषता यह भी है कि यह सिद्धांत अवैयक्तिकता के सन्दर्भ में नकारात्मक क्रियाओं (Negative Actions) के साथ ही सकारात्मक क्रियाओं (Positive Actions) की भी व्याख्या करता है। इस सिद्धांत का मौलिक दोष यह है कि भीड़ में व्यक्ति असामाजिक व्यवहार क्यों करता है ? इस बात की यह सिद्धांत व्याख्या नहीं कर पाता है। इसे फ्रायड ने अचेतन प्रेरणाओं के आधार पर सफलतापूर्वक स्पष्ट किया है। दूसरे इस सिद्धांत में मूलप्रवृत्तियों और वंशानुगत संवेगों को कोई महत्व नहीं दिया गया है।

इस प्रकार उपरोक्त सिद्धांतों को दो प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है। एक वर्ग में वे सिद्धांत आते हैं जो भीड़-व्यवहार की व्याख्या वंशानुगत संवेगों और उनकी मूल प्रवृत्तियों के आधार पर करते हैं एवं समूह-परिस्थितियों को कोई महत्व नहीं देते हैं । इस वर्ग में **लीबॉन** (Lebon, 1903), **मैक्डुगल** (McDougall,1908) और **फ्रायड** (Freud, 1922) के सिद्धांतों को रखा गया है। दूसरे वर्ग में वे सिद्धांत सम्मिलित किये गए हैं जो भीड़-व्यवहार की व्याख्या समूह-परिस्थितियों के आधार पर करते हैं एवं वंशानुगत संवेगों और उनकी मूल प्रवृत्तियों की उपेक्षा करते हैं। इस वर्ग में **आलपोर्ट** (Allport, 1924), **शेरिफ एण्ड शेरिफ** (Sherif & Sherif, 1948) और **जिम्बारडो** (Zimbardo, 1970) के सिद्धांतों को स्थान दिया गया है। इन दोनों वर्गों के सिद्धांत अल्प रूप में ही सफल हैं। परन्तु भीड़-व्यवहार की विस्तृत व्याख्या करने के लिए इन दोनों वर्गों के सिद्धांत एक– दूसरे के पूरक हैं ।

सामाजिक श्रमानवयन को प्रदर्शित करता चित्र

अभ्यास प्रश्न :-3

1. भीड़ का निर्माण एक निश्चित ---------- को लेकर होता है।
2. ---------- भीड़ के लिए उत्तरदायी नहीं होता है।
3. लीबॉन (Lebon) ने ---------- नामक पुस्तक लिखी है।
4. अवैयक्तिकता के कारण व्यक्ति भीड़ में ---------- को प्रदर्शित करता है।
5. इसे फ्रायड ने ---------- के आधार पर सफलतापूर्वक स्पष्ट किया है।

12.9 सामाजिक श्रमानवयन (Social Loafing): संप्रत्यय

सामाजिक श्रमानवयन (Social Loafing) से तात्पर्य व्यक्तियों की उस प्रवृत्ति से होता है जिसमें वे किसी सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के की ओर कार्य करने पर उसी कार्य के लिए अकेले जिम्मेदार होने की अपेक्षा न्यून प्रयास करते हैं। समूह का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर सामाजिक सरलीकरण के साथ ही सामाजिक श्रमानवयन के रूप में भी दिखाई देता है।

जब समूह के सदस्यों की उपस्थिति में व्यक्ति के कार्य करने का स्तर उच्च हो जाता है, तो इसे सामाजिक सरलीकरण की संज्ञा दी जाती है। इसके विपरीत जब दूसरे व्यक्तियों की उपस्थिति में लोगों की कार्यक्षमता में न्यूनता दिखती है तो इसे सामाजिक श्रमानवयन कहा जाता है। **बेरोन** और **बिर्ने** (Baron & Byrne, 2005) के अनुसार- "सामाजिक श्रमानवयन से तात्पर्य व्यक्ति के कार्य करने में प्रेरणा और प्रयास की उस कमी से है, जो व्यक्ति के व्यक्तिगत रूप से अकेले अथवा स्वतन्त्र सहकर्ताओं की तरह कार्य करने की अपेक्षा समूह में सामूहिक रूप से कार्य करने पर सम्पन्न होता है।"

उपरोक्त परिभाषा के विवेचन से सामाजिक श्रमानवयन की निम्नलिखित विशेषताओं का पता चलता है –

(1) जब व्यक्ति समूह में सामूहिक रूप से कार्य करता है तभी सामाजिक श्रमानवयन की घटना घटित होती है।

(2) जब व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से एकांत में कार्य करता है तब सामाजिक श्रमानवयन की घटना घटित नहीं होती है।

(3) व्यक्तिगत रूप से एकान्त में कार्य करने से व्यक्ति की प्रेरणा और प्रयास में न्यूनता या ह्रास देखा जाता है, जबकि समूह में सामूहिक रूप से कार्य करने में प्रेरणा और प्रयास का स्तर उच्च होता है।

(4) इसमें व्यक्ति को अपनी वैयक्तिता का बोध नहीं हो पाता है। एकान्त में कार्य करते समय उसे स्वयं के बोध की आवश्यकता महसूस होती है।

(5) इसमें समूह का प्रत्येक व्यक्ति अपने उत्तरदायित्वों के प्रति निष्क्रिय रहता है।

सामाजिक श्रमानवयन के कारण (Causes of Social Loafing) – सामाजिक श्रमानवयन की घटना क्यों घटित होती है? लोगों का समूह परिस्थिति में कार्य निष्पादन क्यों कम हो जाता है ? ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिनसे यह पता चलता है कि सामाजिक श्रमानवयन के अनेक कारण हैं जो निम्नलिखित हैं –

(1) विभाजित उत्तरदायित्व की भावना (Sense of divided responsibility)

(2) निम्न प्रेरणात्मक स्तर (Low motivational level)

(3) व्यक्तिगत हानि से मुक्त (Lack of individual harm)

(4) दूसरों का प्रत्यक्षण (Perception)

(5) व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का अभाव (Lack of individual responsibility)

सामाजिक श्रमानवयन को कम करने की प्रविधियाँ या उपाय (Techniques or Measures for Reducing Social Loafing) – सामाजिक श्रमानवयन को काम करने की निम्नलिखित प्रविधियाँ या उपाय हैं –

(1) समूह लक्ष्य के प्रति प्रत्येक व्यक्ति के प्रयास की पहचान (Identification of individual efforts towards group goal)

(2) समूह-कार्य को चुनौतीपूर्ण बनाना (Making the group work Challenging)

(3) व्यक्तिगत उत्तरदायित्व के प्रति जागरूकता (Awareness towards individual responsibility)

(4) सामान्य लक्ष्य के प्रति वचनबद्धता (Commitment towards common goal)

12.10 निर्वैयक्तिता (Deindividuation): संप्रत्यय

समूह का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वैयक्तिक व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है जिसमें व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत पहचान को खो देता है क्योंकि आत्म-जागरूकता (Self-Awareness) सम्भवतः समाप्त हो जाती है तथा वह स्वयं को समूह के साथ पूर्ण रूप से शामिल कर लेता है। इस स्थिति को **फेस्टिंगर, पेपिटो और न्युकम्ब** (Festinger, Pepitone & Newcomb, 1952) ने निर्वैयक्तिता (Deindividuation) की संज्ञा दी है। प्रमुख समाज मनोवैज्ञानिकों ने निर्वैयक्तिता को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया है-

फिशर (Fisher, 1982) के अनुसार- "निर्वैयक्तिता एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें समूह में होने पर भी व्यक्ति को व्यक्ति विशेष के रूप में नहीं देखा जाता है बल्कि वह समूह में ही विलीन हो जाते हैं तथा अपनी व्यक्तिगत पहचान विलुप्त हो जाने की अनुभूति करते हैं।"

फेल्डमैन (Feldman, 1985) के शब्दों में – "निर्वैयक्तिता एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें आत्म-जागरूकता का अभाव हो जाता है, अन्य व्यक्तियों द्वारा नकारात्मक मूल्यांकन के भय में न्यूनता आ जाती है। फलस्वरूप व्यक्ति आवेगशील, समाजविरोधी और असामाजिक व्यवहार को प्रदर्शित करता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं का विवेचन करने पर निर्वैयक्तिता के स्वरूप के विषय में निम्नलिखित तथ्य उजागर होते हैं -

(1) निर्वैयक्तिता एक मनोवैज्ञानिक स्थिति (Psychological State) होती है।
(2) इसमें व्यक्ति समूह का सदस्य होते हुए भी अपनी वैयक्तिता से परिचित नहीं होता है।
(3) व्यक्ति को नकारात्मक मूल्यांकन का कोई भय नहीं रहता है।
(4) इसमें व्यक्ति असामाजिक व्यवहार को प्रदर्शित करता है।

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि निर्वैयक्तिता एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें समूह में होते हुए भी व्यक्ति की स्वयं की पहचान समाप्त हो जाती है और इसकी पृष्ठभूमि में वह विभिन्न प्रकार के समाज – विरोधी अवांछित व्यवहार को प्रदर्शित करने में तनिक भी संकोच नहीं करता है। इस सन्दर्भ में **जिम्बारडो** (Zimbardo, 1970) द्वारा विभिन्न प्रयोग किये गए। इस प्रयोग का विस्तृत अध्ययन आप भीड़-व्यवहार के अवैयक्तिकता सिद्धांत के अन्तर्गत भी कर चुके हैं। जिम्बारडो के प्रयोग का निष्कर्ष यही है कि निर्वैयक्तिता की अवस्था विकसित होने पर व्यक्ति में आन्तरिक परिवर्तन जैसे – आत्म-जागरूकता में कमी और दूसरों की प्रतिक्रियाओं पर ध्यान देना आदि होते हैं। फलस्वरूप ऐसे व्यक्ति द्वारा विभिन्न तरह के आवेगशील व्यवहार प्रदर्शिन में न्यूनता आ जाती है। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति में निर्वैयक्तिता का सृजन एक प्रमुख समूह-व्यवहार को इंगित करता है और इसकी उत्पत्ति का सम्बन्ध व्यक्ति के निजी आत्म-बोध में न्यूनता से है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वे सभी कारक जो व्यक्ति को अपनी मनोवृत्ति, भावों और मूल्यों पर उचित ढंग से ध्यान देने में अवरोध उत्पन्न करते हैं, उसे समूह में इस तरह से व्यवहार करने के लिए बाध्य करते हैं कि व्यक्ति का व्यवहार निजी परिस्थिति में किये गए व्यवहार से अलग होता है।

अभ्यास प्रश्न :-4

1. न्युकम्ब (Newcomb, 1952) ने ----------की संज्ञा दी है।
2. इसमें व्यक्ति को ---------- का कोई भय नहीं रहता है।
3. इस सन्दर्भ में ---------- द्वारा विभिन्न प्रयोग किये गए।
4. व्यक्ति में निर्वैयक्तिता का सृजन एक प्रमुख ---------- को इंगित करता है।
5. व्यक्ति का व्यवहार ---------- में किये गए व्यवहार से अलग होता है।

12.11 सारांश (Summery)

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह सामाजिक परिस्थितियों में परस्पर अन्तर्क्रिया करता है। सामाजिक सरलीकरण से तात्पर्य दूसरों की उपस्थिति से किसी कार्य को करने में पुनर्बलन प्राप्त होता है अर्थात यह प्रक्रम सामाजिक अन्तर्निरोध का विरोधी है जिसमें दूसरों की उपस्थिति पर व्यक्ति की कार्य करने की गति में बृद्धि हो जाती है। **बेरोन और बिर्ने** (Baron & Byrne, 2005) सामाजिक सरलीकरण को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि – "सामाजिक सरलीकरण का तात्पर्य दूसरों की उपस्थिति के परिणामस्वरूप कार्य के निष्पादन पर पड़ने वाले प्रभाव से है।" भीड़ के एकत्र होने में चेतन तथा अचेतन प्रेरणाओं के साथ-साथ सामाजिक सरलीकरण का भी योगदान होता है। सामाजिक सरलीकरण एक सामान्य सामाजिक घटना नहीं है। इसका वर्णन करने के लिए कई सिद्धांत विकसित हुए हैं जिनमें से प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित हैं–

1. **प्रणोदन सिद्धांत** (Drive Theory)- इस सिद्धांत का निरूपण **जाजोक** (Zajonc, 1965) द्वारा किया गया। उनके मतानुसार दूसरे व्यक्तियों की उपस्थिति का प्रभाव अन्य व्यक्तियों के कार्य निष्पादन पर सदैव एक जैसा नहीं होता है।
2. **मूल्यांकन आशंका सिद्धांत** (Evaluation Apprehension Theory) – इस सिद्धांत के अनुसार- सामाजिक सरलीकरण पर दूसरे लोगों की उपस्थिति की चेतना से कहीं अधिक उनके द्वारा काल्पनिक अथवा यथार्थ मूल्यांकन का प्रभाव पड़ता है।
3. **चित्तविच्छेद द्वन्द सिद्धांत** (Distraction Conflict Theory) – **बैरोन** (1986) को इस सिद्धांत का सृजनकर्ता माना जाता है। इसके अनुसार सामाजिक सरलीकरण का आधार दूसरे लोगों की उपस्थिति में किये जाने वाले कार्य की प्रकृति पर निर्भर करता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भीड़ शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति-समूह के लिए किया जाता है जो किसी संवेग की धारा में वहकर, कुछ समय के लिए समान भाव से ग्रसित होकर अचानक एकत्र हो जाता है। भीड़ पर किसी भी प्रकार की व्यवस्था लागू नहीं हो पाती है क्योंकि यह न तो स्थिर होती है और न ही स्थायी। भीड़ की अपनी संरचना में इस प्रकार का परिवर्तन होता रहता है अर्थात जो व्यक्ति किनारे पर खड़ा रहना चाहता है, वह तेजी से बढ़ती हुई भीड़ के कारण कुछ समय के बाद केन्द्र में पहुँच जाता है। भीड़ की एक अन्य प्रमुख विशेषता उसकी विभेदक सहभागिता (Different Participation) है। ध्रुवीकरण (Polarization) भी भीड़ की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। जब वक्ता लोगों का ध्यान अपनी ओर बनाये रखने में सफल होता है तो इसे ध्रुवीकरण कहा जाता है। ब्राउन ने भीड़ को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया है-

1. उत्तेजित भीड़ (Mobs)
2. श्रोतागण (Audiences)

भीड़ के सम्बन्ध में समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा निम्नलिखित सिद्धांत प्रस्तुत किये हैं-

1. समाजशास्त्रीय सिद्धांत (Sociological Theory)
2. आलपोर्ट का सिद्धांत (Allport's Theory)
3. समूह-मन का सिद्धांत (Theory of Group Mind)
4. मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत (Psychoanalytical Theory)

5. अवैयक्तिकता सिद्धांत (Deindividuation Theory)

सामाजिक श्रमानवयन (Social Loafing) से तात्पर्य व्यक्तियों की उस प्रवृत्ति से होता है जिसमें वे किसी सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के की ओर कार्य करने पर उसी कार्य के लिए अकेले जिम्मेदार होने की अपेक्षा न्यून प्रयास करते हैं। समूह का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वैयक्तिक व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है जिसमें व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत पहचान को खो देता है क्योंकि आत्म-जागरूकता (Self-Awareness) सम्भवतः समाप्त हो जाती है तथा वह स्वयं को समूह के साथ पूर्ण रूप से शामिल कर लेता है। इस स्थिति को फेस्टिंगर, पेपिटो और न्युकम्ब (Festinger, Pepitone & Newcomb, 1952) निर्वेयक्तिता (Deindividuation) की संज्ञा दी है। **फिशर** (Fisher, 1982) के अनुसार- "निर्वेयक्तिता एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें समूह में होने पर भी व्यक्ति को व्यक्ति विशेष के रूप में नहीं देखा जाता है बल्कि वह समूह में ही विलीन हो जाते हैं तथा अपनी व्यक्तिगत पहचान विलुप्त हो जाने की अनुभूति करते हैं।"

इस प्रकार निर्वेयक्तिता एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें समूह में होते हुए भी व्यक्ति की स्वयं की पहचान समाप्त हो जाती है और इसकी पृष्ठभूमि में वह विभिन्न प्रकार के समाज – विरोधी अवांछित व्यवहार को प्रदर्शित करने में तनिक भी संकोच नहीं करता है।

12.12 शब्दावली (Vocabulary)

- **सरलीकरण** – किसी कठिन कार्य को करने की क्रिया या भाव।
- **प्रणोदन** – प्रेरित करना।
- **मूल्यांकन**– किसी वस्तु की उपयोगिता या महत्व को निश्चित करने की क्रिया।
- **चित्तविच्छेद** – किसी वस्तु से ध्यान का हटना।
- **द्वन्द** – विरोधाभास।
- **निष्पादन** – नियमानुसार किसी कार्य को ठीक तरह से पूरा करना।
- **स्वतःस्फूर्त** – अपने मन से स्वेच्छापूर्वक।
- **सृजनात्मक** – मौलिक रूप से नया।
- **विध्वंसात्मक** – विनाशकारी।
- **ध्रुवीकरण** – एक स्थान पर एकत्र होना।
- **अधिगमकर्ता** – किसी कार्य को सीखने वाला।
- **श्रमानवयन** – बिना उद्देश्य के घूमना।
- **मनोवृत्ति** – वह मानसिक स्थिति जिसके कारण व्यक्ति किसी ओर प्रवृत्त होता है या उससे हटता है।

12.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर (Answers of Exercise Questions)

अभ्यास प्रश्न -1

1. मिलर और डोलार्ड 2. प्रणोदन सिद्धांत 3. समान व्यवहार 4. प्रणोदन-स्तर 5. सामाजिक सरलीकरण

अभ्यास प्रश्न -2

1. भीड़ वाली परिस्थितियों 2. सृजनात्मक और विध्वंसात्मक 3. घनत्व, गिनती
4. आक्रामक या मोचक 5. श्रोतागण

अभ्यास प्रश्न -3

1. उद्देश्य 2. समूह-मन 3. 'The Crowd' 4. असामाजिक व्यवहार
5. अचेतन प्रेरणाओं

अभ्यास प्रश्न -4

1. निर्वेयक्तिता 2. नकारात्मक मूल्यांकन 3. जिम्बारडो 4. समूह-व्यवहार
5. निजी परिस्थिति

12.14 निबंधात्मक प्रश्न (Long Question)

1. सामाजिक सरलीकरण से आप क्या समझते हैं ? वर्णन कीजिए।
2. सामाजिक सरलीकरण के प्रमुख सिद्धांत कौन-से हैं ? उपयुक्त उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करें।
3. भीड़ का क्या आशय है ? इसकी बिशेशताओं का वर्णन कीजिए।
4. भीड़ कितने प्रकार की होती है ? उचित उदाहरणों द्वारा समझाइए।
5. भीड़-व्यवहार से आप क्या समझते हैं ? इसके प्रमुख सिद्धांतों पर प्रकाश डालिए।
6. सामाजिक श्रमानवयन किसे कहते हैं ? विस्तारपूर्वक समझाइए।
7. निर्वेयक्तिता के संप्रत्यय को स्पष्ट कीजिए।

12.15 सन्दर्भ ग्रंथ सूची (References List)

- चौबे, एस. पी. (2002). *आधुनिक समाज मनोविज्ञान के मूल तत्व,* नई दिल्ली: कांसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी।
- ग्युरिन, बी. एण्ड इन्स, जे. (2009). *सोशियल फेस्लिटेसन*, केम्ब्रिज : केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- माथुर, एस.एस. (2009). *सामान्य मनोविज्ञान*, आगरा: विनोद पुस्तक मन्दिर।
- मंगल, एस. के. (2009). *जनरल सायकोलोजी*, नई दिल्ली: स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्राईवेट लिमिटेड।
- शर्मा, आर. एन. एवं शर्मा, रचना (2004). *एडवांसड एप्प्लायड सायकोलोजी*, नई दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स।

- सिंह, ए. के. (2008). *समाज मनोविज्ञान की रुपरेखा*, नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स।
- सुलेमान, एम. (2007). *उच्चतर समाज मनोविज्ञान,* नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स।
- कुप्पुस्वामी,बी.(1975). *समाज मनोविज्ञान के मूल तत्व,* नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.।

इकाई – 13

संस्कृति का अर्थ एव विशेषताएँ, संस्कृति के प्रकार

Meaning and Characteristics of Culture, Types of Culture

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 संस्कृति का अर्थ

13.3 संस्कृति का अवधारणा

13.4 संस्कृति की परिभाषा

13.5 संस्कृति की प्रकृति और विशेषताएं

13.6 संस्कृति के प्रकार: भौतिक और अभौतिक संस्कृति

13.7 संस्कृति और सभ्यता

13.8 संस्कृति और विरासत

13.9 सभ्यता, संस्कृति, समाज,देश-काल

(i) संस्कृति और पर्यावरण

(ii) संस्कृति और समाज

(iii) संस्कृति और भाषा

(iv) सांस्कृति विविधता

(v) सांस्कृति विविधता

(vi) भारत में सांस्कृति विविधता

13.10 सांस्कृतिक विलम्बना

13.11 मानव जीवन में संस्कृति का महत्ता

13.12 संस्कृति का निर्माण

13.13 सारांश

13.14 कठिन शब्द

13.15 अभ्यास प्रश्न

13.16 संदर्भग्रन्थ सूची

13.0 प्रस्तावना

समूह-जीवन जीव को एक नयी चेतना देता है | इसलिए ही आदिकाल से मानव, पशु, पक्षी, आदि समूह में रहकर जीवन जीते आये हैं | उनमें भी मानवसमूह विशिष्ट है | भगवान ने मनुष्य को बुद्धि दी है | इसलिए समूह में भी सबका कल्याण हो, सब आनंद प्राप्त कर सकें ऐसी व्यवस्था मनुष्य करने लगा । कालक्रम में इसमें वह परिवर्तन और नियंत्रण करने लगा। आदिकाल में ही हमारा समाज-निर्माण हुआ और समाज में संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ। मनुष्य समाज में रहता है तथा समाज और संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं | समाज के बारे में आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने परिभाषाएं दी हैं | जैसे आरएम विलियम्स लिखते हैं- एक सामाजिक समूह परस्पर संबंध भूमिकाएं अदा करते हुए लोगों का स्वयं तथा दूसरों से परस्पर क्रिया की इकाई रूप में माना हुआ, समूह है | इस प्रकार सामाजिक समुदाय कुछ निश्चित लोगों का समुदाय है | इस समूह में ही संस्कृति पलती है | संस्कृति की भी अनेक समाजशास्त्रियों ने परिभाषाएं की हैं | जैसे ए डब्ल्यू ग्रीन ने लिखा है कि संस्कृति ज्ञान, व्यवहार, विश्वास की उन आदर्श पद्धतियों की तथा ज्ञान और व्यवहार से उत्पन्न हुए साधनों की व्यवस्था को कहते हैं जो सामाजिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दी जाती है | दूसरे शब्दों में कहें तो सामाजिक विरासत में गिने जाने वाले सब संस्कृति में आ जाते हैं | मेकाइवर और पेज लिखते हैं कि संस्कृति हमारे रहने और सोचने के तरीके, दैनिक कार्यकलाप, कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन और सुखोपभोग के तरीकों से अभिव्यक्त होती है | इस प्रकार संस्कृति में हमारी भावनाओं, मूल्यों शैलियों और बौद्धिक अभिव्यक्तियों का समावेश होता है | वोगार्ड के मतानुसार संस्कृति समाज के रीतिरिवाजों परंपराओं और चालू व्यवहार के प्रतिमानों से बनती है | संस्कृति समाज का मूल धन है | वह मूल्यों की ऐसी पूर्ववर्ती सृष्टि है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति पैदा होता है और विकसित होता है। संस्कृति मानव को सुव्यस्थित सामाजिक व्यवहार प्रदान करती है | व्यक्ति समाज में रहकर अपनी संस्कृति के अनुसार जीवन व्यतीत कर आनंद प्राप्त कर सकता है | डा. रामबेचन पांडेय ने योग्य ही लिखा है कि संस्कृति समाज को वैशिष्टया एवं व्यक्तित्व देती है | संस्कृति का दूसरा अर्थ करें तो सम्यक कृति अर्थात परमेश्वर की श्रेष्ठ कृति मानव को सदैव श्रेष्ठता के उन्नत शिखर पर स्थिर रहने का मार्गदर्शन देती हुई, हमारे ऋषिमुनियों के द्वारा सर्जन की हुई एवं तदनुकूल आचारसंहिता का कालक्रम से संस्कृति में समावेश हो गया। भिन्न भिन्न समाजों में भिन्न भिन्न संस्कृति होती है | संस्कृति की अपनी अपनी विशेषताएं रहती हैं | इसी तरह पौर्वात्य एवं पाश्चात्य संस्कृति में भी भिन्नता दिखाई पडती है | समाज जिस को सत्य मानता है वह उसकी संस्कृति बन जाती है |

13.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे ।

- संस्कृतिका अर्थ, अवधारणा और परिभाषा |
- संस्कृतिकी प्रकृति व विशेषताएं |

- संस्कृति के प्रकार: भौतिक और अभौतिक संस्कृति|
- संस्कृति की सभ्यता|
- संस्कृति से संबंधित अन्य पहलुओं की जानकारी |
- सांस्कृतिक विलम्बना |
- मानव जीवन में संस्कृति का महत्ता |
- संस्कृति का निर्माण |

13.2 संस्कृति का अर्थ

संस्कृति का अर्थ प्राचीन काल से चले आ रहे संस्कारों से है | मनुष्य द्वारा लौकिक-पारलौकिक विकास के लिए किया गया आचार-विचार ही संस्कृति है | संस्कृति अनुभवजन्य ज्ञान पर और सभ्यता बुद्धिजन्य ज्ञान के आधार पर निर्भर है | सभ्यता से सामाजिक व आर्थिक जीवन प्रभावित होता है, जबकि संस्कृति से आध्यात्मिक जीवन। भारतीय संस्कृति सदैव से अपने उदार गुणों के कारण धर्म-निरपेक्ष रही है | यह उदात्त व्यवहार की प्रतीक है | इसमें सहिष्णुता कूट-कूटकर भरी है | भारतीय संस्कृति प्रत्येक व्यक्ति को स्वधर्मानुसार चलने की स्वतंत्रता प्रदान करती है | हमारी संस्कृति मानव धर्म का संदेश देती है और व्यक्ति में सुसंस्कार उत्पन्न करती है।

संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र रूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने, विचारने, कार्य करने, खाने-पीने, बोलने, नृत्य, गायन, साहित्य, कला, वास्तु आदि में परिलक्षित होती है | संस्कृति का वर्तमान रूप किसी समाज के दीर्घ काल तक अपनायी गयी पद्धतियों का परिणाम होता है।

'संस्कृति'शब्द संस्कृत भाषा की धातु 'कृ' (करना) से बना है | इस धातु से तीन शब्द बनते हैं 'प्रकृति' (मूल स्थिति), 'संस्कृति' (परिष्कृत स्थिति) और 'विकृति' (अवनति स्थिति)। जब 'प्रकृत' या कच्चा माल परिष्कृत किया जाता है तो यह संस्कृत हो जाता है और जब यह बिगड़ जाता है तो 'विकृत' हो जाता है | अंग्रेजी में संस्कृति के लिये 'कल्चर' शब्द प्रयोग किया जाता है जो लैटिन भाषा के 'कल्ट या कल्टस' से लिया गया है, जिसका अर्थ है जोतना, विकसित करना या परिष्कृत करना और पूजा करना। संक्षेप में, किसी वस्तु को यहाँ तक संस्कारित और परिष्कृत करना कि इसका अंतिम उत्पाद हमारी प्रशंसा और सम्मान प्राप्त कर सके। यह ठीक उसी तरह है जैसे संस्कृत भाषा का शब्द 'संस्कृति'।

संस्कृति का शब्दार्थ है - **उत्तम या सुधरी हुई स्थिति**। मनुष्य स्वभावतः प्रगतिशील प्राणी है | यह बुद्धि के प्रयोग से अपने चारों ओर की प्राकृतिक परिस्थिति को निरन्तर सुधारता और उन्नत करता रहता है | ऐसी प्रत्येक जीवन-पद्धति, रीति-रिवाज रहन-सहन आचार-विचार नवीन अनुसन्धान और आविष्कार, जिससे मनुष्य पशुओं और जंगलियों के दर्जे से ऊँचा उठता है तथा सभ्य बनता है, सभ्यता और संस्कृति का अंग है।सभ्यता से मनुष्य के भौतिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है जबकि संस्कृति से मानसिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है | मनुष्य केवल भौतिक परिस्थितियों में सुधार करके ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता। वह भोजन से ही नहीं जीता, शरीर के साथ मन और आत्मा भी है | भौतिक उन्नति से शरीर की भूख मिट सकती है, किन्तु इसके बावजूद मन और आत्मा तो अतृप्त ही

बने रहते हैं | इन्हें सन्तुष्ट करने के लिए मनुष्य अपना जो विकास और उन्नति करता है, उसे संस्कृति कहते हैं | मनुष्य की जिज्ञासा का परिणाम धर्म और दर्शन होते हैं | सौन्दर्य की खोज करते हुए वह संगीत, साहित्य, मूर्ति, चित्र और वास्तु आदि अनेक कलाओं को उन्नत करता है | सुखपूर्वक निवास के लिए सामाजिक और राजनीतिक संघटनों का निर्माण करता है | इस प्रकार मानसिक क्षेत्र में उन्नति की सूचक उसकी प्रत्येक **सम्यक् कृति** संस्कृति का अंग बनती है | इनमें प्रधान रूप से धर्म, दर्शन, सभी ज्ञान-विज्ञानों और कलाओं, सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं और प्रथाओं का समावेश होता है।

13.3 संस्कृति की अवधारणा

संस्कृति जीवन की विधि है | जो भोजन हम खाते हैं, जो कपड़े पहनते हैं, जो भाषा बोलते हैं और जिस भगवान की पूजा करते हैं, ये सभी संस्कृति के पक्ष हैं | सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि संस्कृति उस विधि का प्रतीक है जिसमें हम सोचते हैं और कार्य करते हैं | इसमें वे चीजें भी सम्मिलित हैं जो हमने एक समाज के सदस्य के नाते उत्तराधिकार में प्राप्त की हैं | एक सामाजिक वर्ग के सदस्य के रूप में मानवों की सभी उपलब्धियाँ संस्कृति कही जा सकती हैं | कला, संगीत, साहित्य, वास्तुविज्ञान, शिल्पकला, दर्शन, धर्म और विज्ञान सभी संस्कृति के पक्ष हैं | तथापि संस्कृति में रीतिरिवाज, परम्पराएँ, पर्व, जीने के तरीके, और जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति विशेष का अपना दृष्टिकोण भी सम्मिलित हैं |

इस प्रकार संस्कृति मानव जनित पर्यावरण से सम्बन्ध रखती है जिसमें सभी भौतिक और अभौतिक उत्पाद एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्रदान किये जाते हैं | सभी समाज-वैज्ञानिकों में एक सामान्य सहमति है कि संस्कृति में मनुष्यों द्वारा प्राप्त सभी आन्तरिक और बाह्य व्यवहारों के तरीके समाहित हैं| ये चिह्नों द्वारा भी स्थानान्तरित किए जा सकते हैं जिनमें मानवसमूहों की विशिष्ट उपलब्धियाँ भी समाहित हैं | इन्हें शिल्प कलाकृतियों द्वारा मूर्त रूप प्रदान किया जाता है | अतः संस्कृति का मूल केन्द्रबिन्दु उन सूक्ष्म विचारों में निहित है जो एक समूह में ऐतिहासिक रूप से उनसे सम्बद्ध मूल्यों सहित विवेचित होते रहे हैं | संस्कृति वह है जिसके माध्यम से लोग परस्पर सम्प्रेषण करते हैं, विचार करते हैं और जीवन के विषय में अपनी अभिवृत्तियों और ज्ञान को विकसित करते हैं |

संस्कृति हमारे जीने और सोचने की विधि में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्त है | यह हमारे साहित्य में, धार्मिक कार्यों में, मनोरंजन और आनन्द प्राप्त करने के तरीकों में भी देखी जा सकती हैं | संस्कृति के दो भिन्न उप-विभाग होते हैं- भौतिक और अभौतिक। भौतिक संस्कृति उन विषयों से जुड़ी है जो हमारे जीवन के भौतिक पक्षों से सम्बद्ध हैं, जैसे हमारी वेशभूषा, भोजन, घरेलू सामान आदि। अभौतिक संस्कृति का सम्बध विचारों, आदर्शों, भावनाओं और विश्वासों से है।

संस्कृति एक स्थान से दूसरे स्थान तथा एक देश से दूसरे देश में बदलती रहती है | इसका विकास एक स्थानीय, क्षेत्रीय अथवा राष्ट्रीय संदर्भ में विद्यमान ऐतिहासिक प्रक्रिया पर आधारित होता है | उदाहरण के लिए हमारे अभिवादन की विधियों में, हमारे वस्त्रों में, खाने की आदतों में, सामाजिक और धार्मिक रीतिरिवाजों और मान्यताओं में भिन्नता है | दूसरे शब्दों में, किसी भी देश के लोग अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परम्पराओं के द्वारा पहचाने जाते हैं |

13.4 संस्कृति की परिभाषा

संस्कृति की परिभाषाएं असंख्य है | अलग–अलग विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से संस्कृति को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है | साहित्यकारों के लिए संस्कृति जीवन का प्रकाश और कोमलता है | कुछ विद्वानों ने संस्कृति से नैतिक, आध्यात्मिक तथा बौद्धिक जीवन या उन्नति समझते है | शब्दिक अर्थ में संस्कृति शब्द संस्कार का रूपान्तर है | एक हिन्दू को अपने जीवन को परिभाषित करने के लिए अनेक प्रकार के संस्कारों को करना पड़ता है | उसके बाद वह कहीं संस्कृत (परिमार्जित या Cultured) कहा जाता है | इस प्रकार जन्म से लेकर मृत्यु तक एक हिन्दू की शुद्धि के लिए आवश्यक कृत्यों या संस्कारों की योजना को संस्कृति मान लिया जाता है | इसी तरह इतिहासकारों के लिए एक देश का कलात्मक अथवा बौद्धिक विकास ही संस्कृति है।

परन्तु मानवशास्त्री संस्कृति शब्द का प्रयोग भिन्न अर्थ में करते है | प्रसिद्ध समाजशास्त्री टायलर ने संस्कृति को सबसे पहले परिभाषित किया है | "संस्कृति वह जटिल समग्रता है जिससे ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून प्रथा ऐसी ही अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है | जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के नाते प्राप्त करता है।"

हरस्कोविट्स संस्कृति को "पर्यावरण का मानव निर्मित भाग कहते है।" इस परिभाषा से स्पष्ट है कि पर्यावरण दो प्रकार के है | एक प्राकृतिक या ईश्वर प्रदत्त एवं दूसरा मानव द्वारा निर्मित। वे सारी भौतिक वस्तुओं जो मानव द्वारा निर्मित है जैसे टेबिल, कुर्सी, कपड़ा, विज्ञान, दर्शन, धर्म, प्रथाएं नियम एवं हजारों अन्य वस्तुएं संस्कृति के अन्तर्गत आती है।

हॉबल के अनुसार "संस्कृति सीखे हुए व्यवहार प्रतिमानों का कुल योग है जो किसी समाज के सदस्यों की विशेषता है | जो कि प्राणीशास्त्रीय विरासत का परिणाम नहीं है।" हॉबल की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि संस्कृति सीखी जाती है | अत: वह एक पीढी द्वारा दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित की जाती है।

मैलिनोवस्की एवं रैडक्लिक ब्राउन संस्कृति के प्रकार्यात्मक पक्ष पर जोर देते है | वे संस्कृति के मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मानते है | मैलिनोवस्की के अनुसार संस्कृति जीवन व्यतीत करने की एक महत्वपूर्ण विधि है | जो कि व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करती है | और उसे प्रकृति के बन्धनों से मुक्त करती है | श्री पिडिंगटन ने संस्कृति को एक दूसरे ढंग से परिभाषित किया है– "संस्कृति उन भौतिक तथा बौद्धिक साधनों या उपकरणों का सम्पूर्ण योग है, जिनके द्वारा मानव अपनी प्राणीशास्त्रीय तथा सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि तथा अपने पर्यावरण से अनुकूल करता है।"

पिडिंगटन के अनुसार किसी भी मानव की संस्कृति में दो प्रकार की घटनाओं का समावेश होता है– प्रथमत: भौतिक वस्तुएं जिन्हें मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाता है जैसे उपकरण, औजार, बर्तन, वस्त्र, मकान, मन्दिर, मूर्तियां आदि। द्वितीयत: ज्ञान, विश्वास, मूल्य आदि भौतिक या अर्मूत घटनाओं का भी समावेश संस्कृति में होता है | संस्कृति के ये दोनों पक्ष एक दूसरे से सम्बन्धित तथा एक दूसरे के पूरक होते हैं।

ब्रिटेन ने अपनी परिभाषा में संस्कृति के तत्वों का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा "संस्कृति कृषि सम्बन्धी तथ्यों, प्राविधिक तथ्यो, सामाजिक तथ्यों तथा मानसिक तथ्यो की उपज है।" दूसरे शब्दों में संस्कृति में कृषि कला, प्रौद्योगिकी, सामाजिक संगठन भाषा, धर्म, कला आदि का समावेश होता है।

प्रो.रूथ बेनेडिक्ट ने संस्कृति को एक प्रतिमान रूप से माना है | आपके शब्दों में व्यक्ति की भांति संस्कृति भी विचार और क्रिया का एक बहुत सुस्थिर प्रतिमान है।"

प्रसिद्ध समाजशास्त्री मैकाइवर एवं पेज ने संस्कृति की परिभाषा सम्मता एवं संस्कृति के भेद को प्रकट करने के दौरान की है | वे लिखते है "यह (संस्कृति) मूल्यो, शैलियों, भावात्मक, अभियानों का संसार हे। इसलिए संस्कृति सम्मता का साहित्य, धर्म, मनोरंजन एवं आन्नद से हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।" इस प्रकार मैकाइवर के अनुसार संस्कृति हमारी आन्तरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है | मैकाइवर संस्कृति में केवल अभौतिक पक्षों को ही सम्मिलित करते हैं।

उपर्युक्त परिभाषओं की व्याख्या से स्पष्ट है कि संस्कृति की कोई भी एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं है | संस्कृति शब्द इतना जटिल एवं विस्तृत है कि उसकी एक सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन कार्य है | वास्तव में एक समाज विशेष के सम्पूर्ण व्यवहार प्रतिमानों अथवा समग्र जीवन विधि को ही संस्कृति के नाम से पुकारा जा सकता है।

13.5 संस्कृति की प्रकृति और विशेषताएं

उपरोक्त परिभाषाओं से संस्कृति की प्रकृति की बहुत कुछ स्पष्टीकरण हो गया है | फिर भी संस्कृति की निम्न विशेषताएं उसकी वास्तविक प्रकृति को स्पष्ट करने में सहायक होगी–

संस्कृति की प्रकृति और विशेषताएँ

(1) संस्कृति सीखी जाती है–

जैसा पहले ही कहा जा चुका है सीखे हुए व्यवहार प्रतिमानों के सम्पूर्ण योग को संस्कृति कहते है | प्रजातीय या शारीरिक विशेषताओं की भांति संस्कृति प्रजनन के माध्यम से व्यक्ति को प्राप्त नहीं होती बल्कि वह जिस संस्कृति में जन्म लेता है उससे वह उसे सीखता है | मानव की भाषा व प्रतीकों के माध्यम से विचारों के आदान–प्रदान की शक्ति इस बात की घोतक है कि वह दूसरों से संस्कृति के तत्वों को सीख सकता है | संस्कृतियों में भिन्नताएं इस कारण नहीं होती कि संस्कृति लोगों की जन्मजात क्षमताएं भी भिन्न–भिन्न होती है; बल्कि इसलिए होती है क्योंकि उन्हें अलग–अलग तरीके से पाला पोसा जाता है | जन्म के समय बच्चों में संस्कृति संगत व्यवहार करने का कोई भी तरीका नहीं होता है | इन्हें तो वह बड़े होने के साथ–साथ सीखने की जटिल प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त करता है।

संस्कृति मनुष्य को अपने माता–पिता द्वारा उस प्रकार वंशानुक्रमण से प्राप्त नहीं होती, जिस प्रकार से शरीर रचना प्राप्त होती है | संस्कृति मानव के सीखे हुए व्यवहार प्रतिमानों का योग है | एक मनुष्य अपने जन्म के साथ किसी संस्कृति को लेकर पैदा नहीं होता वरन जिस समाज में पैदा होता है, उसकी संस्कृति को धीरे–धीरे समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सीखता है।

(2) संस्कृति मानव निर्मित है–

संस्कृति केवल मनुष्य समाज में पायी जाती है | मनुष्य में कुछ ऐसी मानसिक एवं शारीरिक विशेषताएं है जैसे विकसित मस्तिष्क, केन्द्रित की जा सकने वाली ऑखें, हाथ और उसमें अंगूठे की स्थिति, गर्दन की रचना आदि उसे अन्य प्राणीयों से भिन्न बनाती है और उसी कारण वह संस्कृति को निर्मित एवं विकसित कर सकता है | अन्य प्राणीयों में मानव के समान शारीरिक एंव मानसिक क्षमताओं का अभाव होने के कारण ही संस्कृति का निर्माण नहीं हो सकता है।

(3) संस्कृति में संचारित या हस्तान्तरित होने के गुण निहित है–

संस्कृति को केवल सीखा ही नहीं जा सकता, अपितु इसे एक मानव से दूसरे मानव तक फैलाया या एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित भी किया जा सकता है | जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है पशु भी बहुत कुछ सीखने की क्षमता रखते है, परन्तु उनके इन सीख हुए व्यवहारों व अनुभवों से दूसरे पशु लाभ नहीं उठा सकते क्योंकि अपने विचारों तथा अनुभवों को दूसरों तक पहुँचाने या फैलाने की क्षमताओं उनमें नहीं होती। उदारणार्थ यदि एक पीढ़ी बैलगाड़ी का आविष्कार करती है तो दूसरी पीढ़ी को फिर से बैलगाड़ी बनाने के तरीको को नहीं खोजना पड़ेगा। वह पिछली पीढ़ी से बैलगाड़ी बनाने के तरीकों सीख लेगी और इस प्रकार अनुभवों और ज्ञान के आधार पर बैलगाड़ी से अधिक उन्नत ढंग से यातायात के साधन का आविष्कार होगा।

(4) संस्कृति प्रत्येक समाज में एक विशेष प्रकार की होती है–

प्रत्येक समाज की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है | इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रत्येक समाज की भौगोलिक तथा सामाजिक परिस्थितियां भी अलग–अलग होती है | संस्कृति पूर्णतया सामाजिक आविष्कार का परिणाम होती है आविष्कार करने की जरूरत मानव आवश्यकताओं के कारण होती है ये सामाजिक आवश्यकताएं प्रत्येक समाज में भिन्न–भिन्न होती है | इसी कारण संस्कृति का रूप या स्वरूप भी प्रत्येक समाज में अलग होता है | इन संस्कृतिक भिन्नताओं का परिणाम यह होता है कि एक समाज के सदस्यों के व्यवहारों की विशेषताएं दूसरे समाज के सदस्यों के व्यवहारो से पृथक होती है | श्री मुरडॉक (Murdock) ने "संस्कृति का सामान्य हर" कहा है | सर्वश्री बील्स तथा हॉइजर ने भी लिखा है, "ऊपर से देखने से ऐसा लगता है कि न्यूयार्क या पेरिस और एस्किमों की संस्कृतियों में पर्याप्त अन्तर है, परन्तु यदि इन दोनों संस्कृतियों का विश्लेषण किया जाए तो उनमें सामान्य विशेषताएं को ढूंढा जा सकता है।

(5) संस्कृति में सामाजिक गुण निहित होता है–

संस्कृति की प्रकृति निश्चित ही सामाजिक है क्योंकि जैसा पहले ही कहा जा चुका है, संस्कृति मानव अवशकताओं की प्रतिक्रिया स्वरूप सामाजिक आविष्कार का फल है | समाज की परम्परा संस्कृति को जीवित रखती है | संस्कृति सामाजिक इस अर्थ में भी है कि संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष या दो चार व्यक्तियों की धरोहर नहीं होती, अर्थात संस्कृति समाज के समस्त या अधिकतर सदस्यों का सीखा हुआ व्यवहार प्रतिमान होती है, इसलिए संस्कृति एक समाज की सम्पूर्ण सामाजिक जीवन विधि का प्रतिनिधित्व करती है | इसी सामाजिक गुण के कारण समाज का प्रत्येक सदस्य संस्कृति को अपनाता है।

(6) संस्कृति समूह के लिए आदर्श होती है–

श्री मुरडॉक ने संस्कृति की इस विशेषताएं या प्रकृति की ओर हमारा ध्यान आर्षित किया है | मुरडॉक के अनुसार "काफी हद तक संस्कृति सामूहिक आदतों को, जिनसे संस्कृति का निर्माण होता है, व्यवहार के आदर्श नियम या प्रतिमान कहा जाता है | " इसका तात्पर्य यह है कि एक समाज या समूह के सदस्यों की दृष्टि में उनकी संस्कृति सामाजिक व्यवहार को एक आदर्श माना है | इस कारण उसे स्वीकार करना और उसी के अनुरूप अपने व्यवहार को ढालना उचित है | उदाहरणार्थ धर्म को ही लिजिए। जब एक ईसाई पादरी एक हिन्दू को ईसाई धर्म स्वीकार करने को कहते है तो वह हिन्दु धर्म की बुराईया तथा ईसाई धर्म की अच्छाइयों को अतिरंजित रूप में प्रस्तुत करता है | उसी प्रकार एक भारतवासी को प्राय: अपनी भारतीय संस्कृति के गुण–गान में मुखरित होते देखा जाता है | संस्कृति आदर्श इसलिए भी है कि यह व्यवहार प्रतिमान किसी व्यक्ति का व्यवहार नही है बल्कि सारे समूह का व्यवहार है | इसी कारण ये व्यवहार आदर्श व्यवहार है।

(7) संस्कृति मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करती है–

मानव समाज में संस्कृति के कुछ विशिष्ट कार्य होते है | वह मानव की प्राणीशास्त्रीय तथा सामाजिक दोनों ही प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटाती है | किसी संस्कृति या सांस्कृतिक तत्व अथवा प्रमिमान की निरन्तरता इसी बात पर निर्भर होती है कि उसमें शारीरिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता है या नहीं ? जिस प्रकार व्यक्तिगत आदत तभी बनी रहती है जब उससे व्यक्ति को सचेत या असचेत इच्छा या प्रेरणा की तृप्ति या पूर्ति होती हे उसी प्रकार संस्कृति की सामूहिक आदतों में भी समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति करने का गुण होता है | सम्पूर्ण संस्कृति तक की समाप्ति हो सकती है यदि वह निरन्तर अपने समाज के सदस्यों की महत्वपूर्ण शारीरिक, मानसिक व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असफल रहें। वास्वत में एक संस्कृति के अन्तर्गत अनेक भाग और उपभाग होते है जो सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में संगठित होते है, यद्यपि इनमें से प्रत्येक भाग का एक विशिष्ट स्वरूप होता है | जैसे कि एक नाव या एक बर्तन, एक मूर्ति या एक प्रथा का एक स्वरूप होता है | इनमें से प्रत्येक का सम्पूर्ण योग से ही संस्कृति के ढ़ाचे का निर्माण होता है और प्रत्येक भग्र की सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था में जो योगदान होता है उसे उस भाग का कार्य कहते है जो उसके स्वरूप से प्रत्येक होता है | संस्कृति के अध्ययन में प्रकार्यवादियों ने जिनमें रैडक्लिक ब्राउन तथा मैलिनोवस्की का नाम विशेष उल्लेखनीय है, संस्कृति के इस प्रकार्यात्मक पक्ष पर विशेष बल दिया है।

(8) संस्कृति में अनुकूलन करने का गुण निहित होता है–

संस्कृति की इस विशेषता या गुण के दो स्पष्ट पहलू हैं प्रथम तो यह है कि संस्कृति जड़ और स्थिर नहीं होती, गतिशीलता उसकी एक उल्लेखनीय विशेषता है | और दूसरा यह कि इस गतिशीलता या समय–समय पर संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप इसका अनुकूलन बाहरी शक्तियां से होता रहता है | इस प्रकार के अनुकूलन में संस्कृति का भौगोलिक पर्यावरण के अनुकूलन विशेष रूप से उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण है | एक जंगल में रहने वाला समुदाय अपनी सांस्कृतिक व्यवस्था का अनुकूलन जंगल की परिस्थितियों से करता हैं | टुण्ड्रा निवासियों की संस्कृति वहां के बर्फीले पर्यावरण के अनुकूलन होती है | परन्तु इसका यह मतलब कदापि नहीं है कि भौगोलिक पर्यावरण संस्कृति को निश्चित करता है, इसका तात्पर्य केवल इतना है कि भौगोलिक पर्यावरण सांस्कृतिक

विकास की कुछ सीमाओं को निश्चित करता हे जिससे एक निश्चित सांस्कृतिक स्तर के लोग नही जा सके। अत: स्पष्ट है कि संस्कृति के अपने आपके ढांचे में परिवर्तन कर सकने के गुण ने समस्त पशुओं में मनुष्य को सर्वाधिक अनुकूलनशील प्राणी बना दिया है।

(9) संस्कृति में संतुलन तथा संगठन होता है–

संस्कृति एक अखण्ड व्यवस्था नहीं है | संस्कृति के अन्तर्गत अनेक खण्ड या इकाईयां होती है।परन्तु ये सब आकस्मिक और अव्यवस्थित नहीं होती। संस्कृति के इन खण्डों या इकाईयों में एक पारस्परिक सम्बन्ध तथा अन्त: निर्भरता होती है जिसके कारण संस्कृति की विभिन्न इकाईयां बिलकुल पृथक होकर कार्य नहीं करती प्राय: वे दूसरी इकाइयों के साथ मिलकर कार्य करती है | उस सम्बन्ध में दूसरी बात यह है कि इन इकाईयों का अस्तित्व शून्य में नही होता, ये एक सम्पूर्ण सामाजिक ढांचे के अन्तर्गत व्यवस्थित ढंग से गुँथी हुई या सम्बन्ध होती है | इस ढांचे के अन्दर प्रत्येक इकाई की एक निश्चित स्थिति तथा कार्य होता है | इन सबका परिणाम यह होता है कि संस्कृति की विभिन्न इकाइयों के एक दूसरे से सम्बन्धित तथा एक दूसरे पर आधारित होती है इस कारण संस्कृति के एक भाग में कोई परिवर्तन होने पर उसका कुछ न कुछ प्रभाव दूसरे भागों पर भी अवश्य पड़ता है | अत: संक्षेप में हम कह सकते है, "एकरूपता की ओर एक खिचाव" होता हैं जिसके फलस्वरूप ये विभिन्न भाग एक साथ मिलते है , और एक बहुत कुछ पूर्णतय संगठित समग्रता का निर्माण करते हैं | यह संस्कृति सम्पूर्ण समग्रता ही संस्कृति है।

(10) संस्कृति अधि–वैयक्तित्क तथा अधि–सावयव है–

संस्कृति की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह है कि यह अधि–वैयक्तिक तथा अधि सावयव दोनों ही है| क्रोबर ने संस्कृति की इस विशेषता का उल्लेख किया है | अधि–वैयक्तिक का अर्थ है कि संस्कृति का निर्माण एव विकास किसी व्यक्ति विशेष द्वारा नहीं किया गया है | और वह संस्कृति के एक भाग का ही उपयोग कर पाता है, सम्पूर्ण का नहीं। संस्कृति का निर्माण सम्पूर्ण समूह द्वारा ही होता है।

हरबर्ट स्पेन्सर तथा लिप्पर्ट ने संस्कृति की अधि–सावयवी प्रकृति का उल्लेख किया है | मानवशास्त्र में क्रोबर ने सन् 1917 में इस अवधारणा का स्पष्ट उल्लेख किया। अधि–सावयवी का अर्थ को स्पष्टत: समझने के लिए इससे सम्बन्धित कुछ अन्य शब्दों में समझना होगा। वे है– असावयवी एवं सावयवी। असावयवी हम उन वस्तुओं को कहते है जिनमें जीवन नहीं होता है | इनमें हम भौतिक एवं निर्जीव वस्तुओं को सम्मिलित करते है | जिनमें जीवन पाया जाता है उन्हें सावयवी कहा जाता है| मानव और अन्य सभी प्राणी सावयवी है | मानव ने अपनी मानसिक और शारीरिक क्षमताओं का उपयोग कर संस्कृति का निर्माण किया है | जो सावयव से ऊपर है, सावयव से अधिक है, इसे ही अधि–सावयवी कहते है | संस्कृति मनुष्य को वंशानुक्रमण द्वारा प्राप्त नहीं होती है |

संस्कृति की सामान्य विशेषतायें

1- संस्कृति सीखी जाती है और प्राप्त की जाती है, अर्थात मानव के द्वारा संस्कृति को प्राप्त किया जाता है इस अर्थ में कि कुछ निश्चित व्यवहार हैं जो जन्म से या अनुवांशिकता से प्राप्त होते हैं, व्यक्ति कुछ गुण अपने माता-पिता से प्राप्त करता है लेकिन सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहारों को पूर्वजों से प्राप्त नहीं करता हैं | वे पारिवारिक सदस्यों से सीखे जाते हैं, इन्हें वे समूह से और समाज से जिसमें वे रहते हैं उनसे सीखते हैं | यह स्पष्ट है कि मानव की

संस्कृति शारीरिक और सामाजिक वातावरण से प्रभावित होती है | जिनके माध्यम से वे कार्य करते हैं |

2- संस्कृति लोगों के समूह द्वारा बाँटी जाती है- एक सोच या विचार या कार्य को संस्कृति कहा जाता है यदि यह लोगों के समूह के द्वारा बाँटा और माना जाता या अभ्यास में लाया जाता है।

3- संस्कृति संचयी होती है संस्कृति में शामिल विभिन्न ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित किया जा सकता है | जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, ज्यादा से ज्यादा ज्ञान उस विशिष्ट संस्कृति में जुड़ता चला जाता है, जो जीवन में परेशानियों के समाधान के रूप में कार्य करता है, पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहता है | यह चक्र बदलते समय के साथ एक विशिष्ट संस्कृति के रूप में बना रहता है।

4- संस्कृति परिवर्तनशील होती है- ज्ञान, विचार और परम्परायें नयी संस्कृति के साथ अद्यतन होकर जुड़ते जाते हैं | समय के बीतने के साथ ही किसी विशिष्ट संस्कृति में सांस्कृतिक परिवर्तन संभव होते जाते हैं |

5- संस्कृति गतिशील होती है- कोई भी संस्कृति स्थिर दशा में या स्थायी नहीं होती है | जैसे समय बीतता है संस्कृति निरंतर बदलती है और उसमें नये विचार और नये कौशल जुड़ते चले जाते हैं और पुराने तरीकों में परिवर्तन होता जाता है | यह संस्कृति की विशेषता है जो संस्कृति की संचयी प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है।

6- संस्कृति हमें अनेक प्रकार के स्वीकृति व्यवहारों के तरीके प्रदान करती है- यह बताती है कि कैसे एक कार्य को संपादित किया जाना चाहिये, कैसे एक व्यक्ति को समुचित व्यवहार करना चाहिए।

7- संस्कृति भिन्न होती है- यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें विभिन्न पारस्परिक भाग एक-दूसरे पर आश्रित हैं | यद्यपि ये भाग अलग होते हैं, वे संस्कृति को पूर्ण रूप प्रदान करने में एक दूसरे पर आश्रित होते हैं |

8- संस्कृति अक्सर वैचारिक होती है- एक व्यक्ति से उन विचारों का पालन करने की आशा की जाती है जिससे प्रायः यह एक आदर्श तरीका प्रस्तुत करती है जिससे उसी संस्कृति के अन्य लोगों से सामाजिक स्वीकृति प्राप्त की जा सके ।

13.6 संस्कृति के प्रकार:- भौतिक और अभौतिक संस्कृति

अमरीकन समाजशास्त्री आगबर्न ने संस्कृति को भौतिक और अभौतिक दो भागों बांटा है | उनके इस वर्गीकरण को अन्य वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है ।

1. **भौतिक संस्कृति**– भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत मानव द्वारा निर्मित सभी भौतिक एवं मूर्त वस्तुओं को सम्मिलित किया जाता है | आदिकाल से मानव ने प्राकृतिक वस्तुओं और शक्तियों को परिवर्तित एवं नियंत्रित करके अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए हजारों लाखों वस्तुओं को बनाया है | जिनका एक भौतिक आधार होता है | जिन्हें हम देख सकते है | और इन्द्रियों द्वारा जिनका आभास

कर सकते है | ये सभी भौतिक संस्कृति के अंग हैं | भौतिक संस्कृति में हम घड़ी, पेन, पंखा, मोटर, मशीन, औजार, वस्त्र, वाध–यन्त्र, रेल, जहाज, वायुयान, टेलीफोन आदि वस्तुओं को गिन सकते हैं।

राबर्ट बीरस्टीड ने भौतिक संस्कृति में मशीनों, उपकरण, बर्तनो, वस्त्र, गाड़ियाँ, फर्नीचर, खाद्य पदार्थो एवं औषधियो आदि सम्मिलित है | भौतिक संस्कृति में परिवर्तन शीघ्र होता हैं एक वस्तु के प्राचीन एवं आधुनिक स्वरूप तथा आकार में अन्तर पाया जाता है | भौतिक संस्कृति की माप सरल है | उसे हम संख्या, वजन, लम्बाई चौड़ाई आदि में माप सकते है | बीरस्टीड कहते है कि हम भौतिक संस्कृति में उन सभी पदार्थो को सम्मिलित करते हैं जिनका उपयोग एक समाज के सदस्य करते है एवं अपने पास रखते हैं।

2. **अभौतिक संस्कृति**– मेंकाइवर एवं अन्य कई समाज वैज्ञानिकों ने संस्कृति में केवल अभौति तत्वो को ही सम्मिलित किया है | सारोकिन इसे भावनात्मक संस्कृति कहते है | अभौतिक के अन्तर्गत उन सभी सामाजिक तथ्यों को सम्मिलित किया जाता है | जो अर्मूत है जिनका कोई नाप तौल, आकार व रंगरूप नही होता, इन्द्रियों द्वारा जिनका स्पर्श नही होता वरन उन्हें केवल महसूस किया जा सकता है, वह हमारे विचारों एव कार्यो में निहित है | रॉबर्ट बीरस्टीड अभौतिक संस्कृति में हम सामाजिक विरासत में प्राप्त विचार, विश्वास, मापदण्ड, व्यवहार,, प्रथा, रीति–रिवाज, कानून ज्ञान मनोवृतियों, साहित्य, भाषा नैतिकता एवं क्षमताओं आदि को सम्मिलित करते हैं | जो पीढ़ी–दर–पीढी हस्तान्तरित होते रहते हैं।

भौतिक और अभौतिक पृथम–पृथक होते हुए भी परसपर सम्बन्धित है | उदाहरण के लिए, वायुयान भौतिक संस्कृति का अंग है | और वायुयान को चलाने की कला अभौतिक संस्कृति का।

भौतिक और अभौतिक संस्कृति में भेद–

भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति सम्पूर्ण संस्कृति के दो अंग हैं | इनमें निम्नांकित अन्तर पाये जाते है।

1. अभौतिक संस्कृति अर्मूत होती है, उसे माप–तौल नहीं सकते जबकि भौतिक संस्कृति मूर्त होती है उसे माप–तौल सकते हैं।
2. अभौतिक सस्कृति की अपेक्षा भौतिक संस्कृति शीघ्र ग्राह्य है।
3. अभौतिक संस्कृति भौतिक संस्कृति की अपेक्षा धीमी गति से परिवर्तित होती है | अत: वह भौतिक संस्कृति की तुलना में स्थिर होती हैं |
4. अभौतिक संस्कृति का सम्बन्ध मानव के आन्तरिक जीवन से है जबकि भौतिक संस्कृति का सम्बन्ध बाहय जीवन से।
5. अभौतिक संस्कृति में वृद्धि धीमी गति से होती है जबकि भौतिक संस्कृति में तीव्र गति से।

इन भिन्नताओं के बावजूद भी दोनों में अन्तनिर्भरता पायी जाती है संस्कृति के एक भाग में होने वाला परिवर्तन संस्कृति के दूसरे भाग को भी प्रभावित करता है।

13.7 संस्कृति और सभ्यता

संस्कृति और सभ्यता दोनों शब्द प्रायः पर्याय के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं | फिर भी दोनों में भिन्नता होते हुए दोनों के अर्थ अलग-अलग हैं |

प्रारम्भ में मनुष्य आँधी-पानी, सर्दी-गर्मी सब कुछ सहता हुआ जंगलों में रहता था, शनैः-शनैः उसने इन प्राकृतिक विपदाओं से अपनी रक्षा के लिए पहले गुफाओं और फिर क्रमशः लकड़ी, ईंट या पत्थर के मकानों की शरण ली। अब वह लोहे और सीमेंन्ट की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं का निर्माण करने लगा है | प्राचीन काल में यातायात का साधन सिर्फ मानव के दो पैर ही थे। फिर उसने घोड़े, ऊँट, हाथी, रथ और बहली का आश्रय लिया। अब मोटर और रेलगाड़ी के द्वारा थोड़े समय में बहुत लम्बे फासले तय करता है, हवाई जहाज द्वारा आकाश में भी उड़ने लगा है | पहले मनुष्य जंगल के कन्द, मूल और फल तथा आखेट से अपना निर्वाह करता था। बाद में उसने पशु-पालन और कृषि के आविष्कार द्वारा आजीविका के साधनों में उन्नति की। पहले वह अपने सब कार्यों को शारीरिक शक्ति से करता था। पीछे उसने पशुओं को पालतू बनाकर और सधाकर उनकी शक्ति का हल, गाड़ी आदि में उपयोग करना सीखा। अन्त में उसने हवा पानी, वाष्प, बिजली और अणु की भौतिक शक्तियों को वश में करके ऐसी मशीनें बनाईं, जिनसे उसके भौतिक जीवन में काया-पलट हो गई। मनुष्य की यह सारी प्रगति सभ्यता कहलाती है।

'सभ्यता' का अर्थ है जीने के बेहतर तरीके और कभी-कभी अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने समक्ष प्रकृति को भी झुका देना। इसके अन्तर्गत समाजों को राजनैतिक रूप से सुपरिभाषित वर्गों में संगठित करना भी सम्मिलित है जो भोजन, वस्त्र, संप्रेषण आदि के विषय में जीवन स्तर को सुधारने का प्रयत्न करते रहते हैं | इस प्रकार कुछ वर्ग अपने आप को अधिक सभ्य समझते हैं, और दूसरों को हेय दृष्टि से देखते हैं | कुछ वर्गों की इस मनोवृत्ति ने कई बार संघर्षों को भी जन्म दिया है जिनका परिणाम मनुष्य के विनाशकारी विध्वंस के रूप में हुआ है।

इसके विपरीत, संस्कृति आन्तरिक अनुभूति से सम्बद्ध है जिसमें मन और हृदय की पवित्रता निहित है| इसमें कला, विज्ञान, संगीत और नृत्य और मानव जीवन की उच्चतर उपलब्धियाँ सम्मिहित हैं जिन्हें 'सांस्कृतिक गतिविधियाँ' कहा जाता है | एक व्यक्ति जो निर्धन है, सस्ते वस्त्र पहने है, वह असभ्य तो कहा जा सकता है परन्तु वह सबसे अधिक सुसंस्कृत व्यक्ति भी कहा जा सकता है | एक व्यक्ति जिसके पास बहुत धन है वह सभ्य तो हो सकता है पर आवश्यक नहीं कि वह सुसंस्कृत भी हो। अतः जब हम संस्कृति के विषय में विचार करते हैं तो हमें यह समझना चाहिए कि यह सभ्यता से अलग है | संस्कृति मानव के अन्तर्मन का उच्चतम स्तर है | मानव केवल शरीरमात्र नहीं हैं | वे तीन स्तरों पर जीते हैं और व्यवहार करते हैं - भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक। जबकि सामाजिक और राजनैतिक रूप से जीवन जीने के उत्तरोत्तर उत्तम तरीकों को तथा चारों ओर की प्रकृति का बेहतर उपयोग 'सभ्यता' कहा जा सकता है परन्तु सुसंस्कृत होने के लिए यह पर्याप्त नहीं है | जब एक व्यक्ति की बुद्धि और अन्तरात्मा के गहन स्तरों की अभिव्यक्ति होती है तब हम उसे 'संस्कृत' कह सकते हैं |

13.8 संस्कृति और विरासत

सांस्कृतिक विकास एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है | हमारे पूर्वजों ने बहुत सी बातें अपने पुरखों से सीखी है | समय के साथ उन्होंने अपने अनुभवों से उसमें और वृद्धि की। जो अनावश्यक था, उसको उन्होंने छोड़ दिया। हमने भी अपने पूर्वजों से बहुत कुछ सीखा। जैसे-जैसे समय बीतता है, हम उनमें नए विचार, नई भावनाएँ जोड़ते चले जाते हैं और इसी प्रकार जो हम उपयोगी नहीं समझते उसे छोड़ते जाते हैं | इस प्रकार संस्कृति एक पीढी से दूसरी पीढी तक हस्तान्तरिक होती जाती है | जो संस्कृति

हम अपने पूर्वजों से प्राप्त करते हैं उसे **सांस्कृतिक विरासत** कहते हैं | यह विरासत कई स्तरों पर विद्यमान होती है | मानवता ने सम्पूर्ण रूप में जिस संस्कृति को विरासत के रूप में अपनाया उसे 'मानवता की विरासत' कहते हैं। एक राष्ट्र भी संस्कृति को विरासत के रूप में प्राप्त करता है जिसे 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक विरासत' कहते हैं | सांस्कृतिक विरासत में वे सभी पक्ष या मूल्य सम्मिलित हैं जो मनुष्यों को पीढ़ी दर पीढ़ी अपने पूर्वजों से प्राप्त हुए हैं | वे मूल्य पूजे जाते हैं, संरक्षित किए जाते हैं और अटूट निरन्तरता से सुरक्षित रखे जाते हैं और आने वाली पीढ़ियाँ इस पर गर्व करती हैं |

विरासत के संप्रत्यय को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण सहायक सिद्ध होंगे। ताजमहल, स्वामी नारायण मंदिर (गांधी नगर और दिल्ली), आगरे का लाल किला, दिल्ली की कुतुब मीनार, मैसूर महल, दिलवाड़े का जैन मंदिर (राजस्थान), निजामुद्दीन-औलिया की दरगाह, अमृतसर का स्वर्ण मंदिर। दिल्ली का शीशगंज गुरुद्वारा, सांची स्तूप, गोआ में क्रिश्चियन चर्च, इंडिया गेट आदि हमारी विरासत के महत्त्वपूर्ण स्थान हैं और ये किसी भी प्रकार संरक्षित किये जाने चाहिए।

वास्तु संबंधित इन रचनाओं, इमारतों, शिल्पकृतियों के अलावा बौद्धिक उपलब्धियाँ, दर्शन, ज्ञान के ग्रन्थ, वैज्ञानिक आविष्कार और खोज भी विरासत का हिस्सा है | भारतीय संदर्भ में गणित, खगोल विद्या और ज्योतिष के क्षेत्र में बौधायन, आर्यभट्ट और भास्कराचार्य का योगदान, भौतिकशास्त्र के क्षेत्र में कणाद और वराहमिहिर का, रसायनशास्त्र के क्षेत्र में नागार्जुन, औषधि के क्षेत्र में सुश्रुत और चरक, योग के क्षेत्र में पतञ्जलि हमारी भारतीय सांस्कृतिक विरासत के प्रगाढ़ खजाने हैं| संस्कृति परिवर्तनशील है लेकिन हमारी विरासत परिवर्तनील नहीं है।

13.9 सभ्यता, संस्कृति, समाज, देश-काल

संस्कृति सामाजिक अंत:क्रियाओं एवं सामाजिक व्यवहारों के उत्प्रेरक प्रतिमानों का समुच्चय है | इस समुच्चय में ज्ञान, विज्ञान, कला, आस्था, नैतिक मूल्य एवं प्रथाएँ समाविष्ट होती हैं | संस्कृति भौतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक तथा आध्यात्मिक अभ्युदय के उपयुक्त मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाओं और सम्यक् चेष्टाओं की समष्टिगत अभिव्यक्ति है | यह मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन के स्वरूप का निर्माण, निर्देशन, नियमन और नियंत्रण करती है | अत: संस्कृति मनुष्य की जीवनपद्धति, वैचारिक दर्शन एवं सामाजिक क्रियाकलाप में उसे समष्टिवादी दृष्टिकोण की अभिव्यंजना है | इसमें प्रतीकों द्वारा अर्जित तथा सप्रेषित मानवव्यवहारों के सुनिश्चित प्रतिमान संनिहित होते हैं | संस्कृति का अपरिहार्य अभ्यंतर कालक्रम में प्रादुर्भूत एवं संचित परंपरागत विचारों और तत्संबद्ध मूल्यों द्वारा निर्मित होता है | इसका एक पक्ष मानव व्यवहार के निर्धारण और दूसरा पक्ष कतिपय विधिविहित व्यवहारों की प्रामाणिकता तथा औचित्यप्रतिपादन से संबद्ध होता है | प्रत्येक संस्कृति में चयनक्षमता एवं वरणात्मकता के सामान्य सिद्धांतों का संनिवेश होता है, जिनके माध्यम से सांस्कृति आधेय के नाना रूप क्षेत्रों में मानवव्यवहार के प्रतिमान सामान्यीकरण द्वारा अवकरणीय होते हैं |

सांस्कृतिक मान, प्रथाओं के सामान्यीकृत एवं सुसंगठित समवाय के रूप में स्थिरता की ओर उन्मुख होते हैं, यद्यपि संस्कृति के विभिन्न तत्वों में परिवर्तन की प्रक्रिया शाश्वत चलती रहती है | किसी अवयव विशेष में परिवर्तन सांस्कृतिक प्रतिमानों के अनुरूप स्वीकरण एवं अस्वीकरण का परिणाम होता है | सांस्कृतिक प्रतिमान स्वयं भी परिवर्तनशील होतेहैं | समाज की परिस्थिति में परिवर्तन की

शाश्वत प्रक्रिया प्रतिमानों को प्रभावित करती है | सामाजिक विकास की प्रक्रिया सांस्कृतिक प्रतिमानों के परिवर्तन की प्रक्रिया है।

संस्कृति प्रकृति प्रदत्त नहीं होती। यह सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा अर्जित होती है | अत: संस्कृति उन संस्कारों से संबद्ध होती है, जो हमारी वंश परंपरा तथा सामाजिक विरासत के संरक्षण के साधन है| इनके माध्यम से सामाजिक व्यवहार की विशिष्टताओं का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में निगमन होता है| निगमन के इस नैरंतर्य में ही संस्कृति का अस्तित्व निहित होता है और इसकी संचयी प्रवृत्ति इसके विकास को गति प्रदान करती है, जिससे नवीन आदर्श जन्म लेते हैं | इन आदर्शों द्वारा बाह्य क्रियाओं और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणों का समानयन होता है तथा सामाजिक संरचना और वैयक्तिक जीवनपद्धति का व्यवस्थापन होता रहता है।

संस्कृति के दो पक्ष होते हैं-

- (1) अभौतिक संस्कृति,
- (2) भौतिक संस्कृति।

सामान्य अर्थ में अभौतिक संस्कृति को संस्कृति और भौतिक संस्कृति को सभ्यता के नाम से अभिहित किया जाता है | संस्कृति के ये दोनों पक्ष एक दूसरे से भिन्न होते है | संस्कृति आभ्यंतर है इसमें परंपरागत चिंतन, कलात्मक अनुभूति, विस्तृत ज्ञान एवं धार्मिक आस्था का समावेश होता है | सभ्यता बाह्य वस्तु है, जिसमें मनुष्य की भौतिक प्रगति में सहायक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ सम्मिलित होती हैं | संस्कृति हमारे सामजिक जीवनप्रवाह की उद्गमस्थली है और सभ्यता इस प्रवाह में सहायक उपकरण। संस्कृति साध्य है और सभ्यता साधन। संस्कृति सभ्यता की उपयोगिता के मूल्यांकन के लिए प्रतिमान उपस्थित करती है।

इन भिन्नताओं के होते हुए भी संस्कृति और सभ्यता एक दूसरे से अंत:संबद्ध हैं और एक दूसरे को प्रभावित करती हैं | सांस्कृतिक मूल्यों का स्पष्ट प्रभाव सभ्यता की प्रगति की दिशा और स्वरूप पर पड़ता है | इन मूल्यों के अनुरूप जो सभ्यता निर्मित होती है, वही समाज द्वारा गृहीत होती है | सभ्यता की नवीन उपलब्धियाँ भी व्यवहारों, हमारी मान्यताओं या दूसरे शब्दों में हमारी संस्कृति को प्रभावित करती रहती है | समन्वयन की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है।

संपर्क में आनेवाली भिन्न संस्कृतियाँ भी एक दूसरे को प्रभावित करती हैं | भिन्न संस्कृतियों का संपर्क उनमें सहयोग अथवा असहयोग की प्रक्रिया की उद्भावना करता है | पर दोनों प्रक्रियाओं का लक्ष्य विषमता को समाप्त कर समता स्थापन ही होता है | सहयोग की स्थिति में व्यवस्थापन तथा आत्मसात्करण समता स्थापन के साधन होते हैं और असहयोग की स्थिति में प्रतिस्पर्धा, विरोध एवं संघर्ष की शक्तियाँ क्रियाशील होती हैं और अंतत: सबल संस्कृति निर्बल संस्कृति को समाप्त कर समता स्थापित करती है।

संस्कृति के भौतिक तथा अभौतिक पक्षों का विकास समानांतर नहीं होता। सभ्यता के विकास की गति संस्कृति के विकास की गति से तीव्र होती है | फलस्वरूप सभ्यता विकासक्रम में संस्कृति से आगे निकल जाती है | सभ्यता और संस्कृति के विकास का यह असंतुलन सामाजिक विघटन को जन्म देता है | अत: इस प्रकार प्रादुर्भूत संस्कृति विलबंना द्वारा समाज में उत्पन्न असंतुलन और अव्यवस्था के निराकरण हेतु अभौतिक संस्कृति में प्रयत्नपूर्वक सुधार आवश्यक हो जाता है |

विश्लेषण, परीक्षण एवं मूल्यांकन द्वारा सभ्यता और संस्कृति का नियमन मानव के भौतिक और आध्यात्मिक अभ्युत्थान के अनुपम सहयोग प्रदान करता है ।

संस्कृति यद्यपि किसी देश या कालविशेष की उपज नहीं होती, यह एक शाश्वत प्रक्रिया है, तथापि किसी क्षेत्रविशेष में किसी काल में इसका जो स्वरूप प्रकट होता है उसे एक विशिष्ट नाम से अभिहित किया जाता है | यह अभिधा काल, दर्शन, क्षेत्र, समुदाय अथवा सत्ता से संबद्ध होती है | मध्ययुगीन संस्कृति, भौतिक संस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति, हिंदू संस्कृति तथा मुगल संस्कृति आदि की संज्ञाएँ इसी आधार पर प्रदान की गई हैं | विशिष्ट अभिधान संस्कृति के विशिष्ट स्वरूपबोध के साथ इस तथ्य को उद्भासित करता है कि संस्कृति को विशेषण प्रदान करनेवाले कारक द्वारा संस्कृति का सहज स्वरूप अनिवार्यत: प्रभावित हुआ है।

संस्कृति और पर्यावरण

सफल अनुकूलन एवं उसके द्वारा मानव जाति के विकासात्मक जीवन को बनाए रखने में संस्कृति ने एक निर्णायक भूमिका निभाई है | आग की खोज तथा प्रयोग, पौधों और पशुओं का इस्तेमाल, औजारों तथा उपकरणों का निर्माण तथा भाषा के प्रयोग तथा अन्य आविष्कारों ने मनुष्य को प्रकृति को वश में करते हुए जीना सीखाया।

मनुष्य एवं पशु को ही अपने को प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल बनाना पड़ा है | पशु ज्ञान से नहीं बल्कि अपने सहज बोध की तंत्र क्षमता से अनुकूलन करते हैं | परन्तु मनुष्य अपने आपको पर्यावरण के अनुकूल बनाने में विभिन्न प्रकार के विलक्षण तरीकों का प्रयोग करता है | नर वानर (जो कि प्राण विज्ञान के अनुसार मनुष्य जाति के निकटतम है |) उष्ण कटिबंधीय परिस्थितियों में रह सकते हैं, कुछ ही पदार्थों को खा सकते हैं और सीमित संख्या में पाए जाते हैं | मनुष्य सभी प्रकार की पर्यावरण परिस्थितियों में कई प्रकार के खाद्य पदार्थों को खाकर जीने तथा वृद्धि करने में सक्षम है। इस प्रकार, एस्कीमों उत्तर ध्रुव प्रदेश की जन्म देने वाली ठंड में भी जी रहे है, लैंप जाति जोकि रेंडियरों के साथ साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करती है | तथा उनका दूध और मांस खाकर जीती है, स्कैंडीवेनिया की हिम भूमि में जीवित रही है तथा बढ़ रही है | इसी प्रकार बुशमैन जाति, जोकि जंगली कन्दमूल फलों एवं पौधों पर ही जीवित रहती है, दक्षिणी अफ्रीका के गर्म, रेतीले मरूस्थल में रहने में सफल हो पाई है।

पर्यावरण को, विभिन्न परिस्थितियों में आश्रित अथवा अनाश्रित रूप में परिवर्तनशील माना जा सकता है | उत्तरी ध्रुव प्रदेश अथवा मरूस्थल मानव जीवन के लिए एक कड़ी चुनौति करते हैं | खासकर उस समय जबकि यहां रहने वाले लोगों के आर्थिक एवं तकनीकी संसाधन सीमित एवं साधारण प्रकार के होते हैं | उदाहरण के लिए दक्षिणी अफ्रीका के कालाहारी मरूस्थल की बुशमैन जाति को ही लीजिए, जो कि शुतुरमुर्ग का शिकार बड़े विलक्षण ढंग से करती है | बुशमैन शिकारी अपने छोटे से धनुषवाण के साथ, एक ढांचे पर मढ़ी शुतुरमुर्ग की खाल में छिप जाता है | फिर वह बड़ी सावधानी से शुतुरमुर्ग के झुण्ड में मिल जाता है और वह किसी शुतुरमुर्ग के बहुत निकट आ जाता है तभी वह बाण छोड़कर उसे मार डालता है।

कभी कभी किसी क्षेत्र विशेष में लगातार दो अथवा उससे अधिक वर्षों तक वर्षा न होने के कारण वहां के किसानों को अपने गांव छोड़ने पड़ जाते है | ऐसे समय में उनके पास अपनी भेड बकरियों तथा अन्य मवेशियों पर पूर्ण रूप से निर्भर रहने के अलावा अन्य कोई चारा नहीं रह जाता। और वे

अक्सर अपने मवेशियों के साथ पानी तथा चरागाहों की तलाश में इधर उधर चले जाते हैं | समय व्यतीत होने पर उनमें से कई खेती छोड़ कर पशुचारी खानाबदोश बन जाते हैं |

एक ही प्रकार की पर्यावरणीय स्थितियों में रहने वाले अलग अलग दल अपने को अलग अलग ढंग से पर्यावरण के अनुकूल बना लेते हैं | उदाहरण के तौर पर, उत्तरी अमरिका के एस्कीमों को ही ले लीजिए। वे बर्फ के टुकड़ों से अपने घर बना लेते हैं जिन्हें वे इग्लू कहते हैं | यह इग्लू उत्तरी ध्रुव की जमा देने वाली ठण्ड में उनके लिए आश्रय एवं आराम की व्यवस्था करते हैं | एस्कीमों बालरस का शिकार करते हैं तथा उनका मांस तथा चर्बी खाकर गुजारा करते हैं | बालरस के दांतों का प्रयोग स्लेज धावकों तथा जलरोधी नाव बनाने के लिए किया जाता है, जिन्हें वे कावक कहते हैं और इनमें बैठकर एस्कीमों शिकार खेलने जाते हैं |

उत्तरी ध्रुवीय साइबेरिया के युकाधीर तथा चुकची में तुलना करने पर, जोकि एस्कीमों की तरह प्रतिकूल जलवायु में रहते हैं, हमें अनुकूलन की एक नई प्रणाली का पता चलता है। अत: संस्कृति और पर्यावरण के बीच निकट का तथा मिश्रित संबंधहै परन्तु यह हमारे सामने विभिन्न रूपों में उभर कर आता है।

संस्कृति और समाज

समाज ऐसे व्यक्तियों के समूह से बना होता है जो प्रथाओं और प्रक्रियाओं के माध्यम से एक दूसरे से जुड़े होते हैं | मनुष्य के जीवन चक्र की सभी प्रक्रियाएं समाज में ही निष्पन्न और विनियमित होती है| अत: व्यक्ति, संस्कृति और समाज में प्रत्येक की अनिवार्य सत्ता है | ये तीनों तत्व एक दूसरे पर आपस में इस प्रकार से आश्रित है कि किसी भी एक को दूसरे तत्व के संदर्भ के बिना भली भांति समझा नहीं जा सकता। संस्कृति का अस्तित्व और उसका बने रहना ऐसे व्यक्तियों के समूह पर आश्रित होता है जिनसे मिलकर समाज बनता है।

मानव को सामान्यत: सामाजिक प्राणी कहा गया है | मानव की सामाजिक प्रवृति विशेष रूप से अनन्य हो, ऐसी बात नहीं है | उदाहरणत: चीटियों और मधु मक्खियों का समाज वास्तविक में समाज ही तो है | वन्य प्राणीयों के चिम्पैंजियों और गोरिल्लाओं का समाज काफी हद तक मानव समाज के समान ही है | वे स्थायी रिश्ते बनाते हैं समूह बनाकर घूमते हैं और शिकार करते हैं | उनके अधिकांश व्यवहार की प्रकृति समाजिक ही है।

संस्कृति केवल मानव समाज में नहीं पाई जाती है | संस्कृति के बगैर भी प्राणीयों का समाज हो सकता है | किन्तु मनुष्य की अपनी संस्कृति के बिना समाज नहीं हो सकता। फलस्वरूप गुण की दृष्टि से मनुष्य और पशु में अंतर दर्शाने वाला तत्व उसकी सामाजिक प्रवृत्ति नहीं वरन उसकी संस्कृति है | अनिवार्यत: मानव एक सांस्कृतिक प्राणी है।

वास्तविक जीवन में, समाज और संस्कृति को अलग अलग नहीं किया जा सकता। यद्यपि संस्कृति का संबंध अधिक व्यापक वर्ग से है तथापि समाज के बिना इसका अस्तित्व और कार्य निष्पादन संभव नहीं है | दूसरे शब्दों में संस्कृति के लिए समाज का होना अनिवार्य है | इसी प्रकार व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के रूप में मनवजाति पर आश्रित हुए बिना न तो समाज का अस्तित्व रह सकता और न ही संस्कृति का।

इसी प्रकार संस्कृति और सभ्यता के बीच परस्पर गहरा संबंध होता है | सभ्यता संस्कृति की ऐतिहासिक अवस्था का बोध कराती है | एक सभ्यता अपने विशिष्ट लक्षणों के द्वारा पहचानी जाती है जैसे नगरों और नगरीकरण द्वारा, व्यवसायिक कौशल द्वारा स्मारकीय संरचनाओं जैसे मंदिरों, भवनों और गुम्बदों द्वारा, वर्गो और वंशानुक्रमण और लेखन के द्वारा। मानव-इतिहास में सभ्यता का सर्वप्रथम उदय ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में प्राचीन मेंसोपोटेमिया में हुआ था।

संस्कृति और भाषा

मनुष्य की प्रतीकात्मक संप्रेषण क्षमता अथवा भाषा उसे अन्य प्राणीयों से अलग करती है | सभ्यता के विकास की प्रक्रिया में भाषा विलक्षण भूमिका निभाती है | क्योंकि भाषा के द्वारा ही एक व्यक्ति अपने समाज की मान्यताओं, विश्वासों, रिवाजों और आदतों को अर्जित करता है और उन्हें आत्मसात करता है | अनुभवों और शिल्पकलाओं के आदान प्रदान एवं संचय करने की सुविधा की व्यवस्था भाषा द्वारा ही की जाती है | सांस्कृतिक परंपराओं को एक पीढी से दूसरी पीढी तक पहुंचाने का साधन भी भाषा ही है | होमो सेपिएन (मानव) के विकासमूलक अस्तित्व ओर मानव समाज की निरंतरता को बनाए रखने में भाषा ने एक निर्णायक भूमिका निभाई है।

मानव शिशु सामाजिक और पारस्परिक व्यक्तिगत संपर्कों द्वारा भाषा सीखता है और उसे अर्जित करता है | मानव मस्तिष्क को भाषा सीखने के लिए विशेष रूप से तैयार किया गया है और औसत योग्यता रखने वाला शिशु, चीनी, संस्कृत, अरबी, जैसी विश्व की किसी भी जटिल भाषा में महारत हासिक कर सकता है | भाषा मनुष्य के सांस्कृतिक आदर्शों और परंपराओं का आईना है | उदाहरण के लिए एस्किमों भाषा से भिन्न भिन्न प्रकार की बर्फ के लिए तीन विभिन्न शब्द है, जिन्हें अंग्रेजी अथवा किसी भाषा में बिल्कुल पूरी तरह से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह है कि एस्किमों का जीवन बर्फ पर संकेन्द्रित होता है | उसी प्रकार अरबी भाषा में ऊंट के लिए बीसियों शब्द हैं, जिनके लिए अंग्रेजी में समान शब्द उपलब्ध नहीं है | ऐसा इसलिए है कि अरब के रेगिस्तान में बसे बेहोविन खानाबदोशियों का जीवन मुख्यत: इन ऊंटों पर ही आधारित है | भारत में नवाहों चरागाह खानाबदोश है और वे अपनी भेड बकरियों के एक साथ एक चरागाह से दूसरे चरागाह में जाते रहते हैं | उनकी भाषा, लोक साहित्य, पौराणिक कथाओं, किंवदतियों में उनके सांस्कृतिक जीवन की झलक मिलती है | उनके देवी देवताओं एवं वीर पुरूष आदि लगातार एक स्थान से दूसरे स्थान तक बिना रूके विचरण करते रहते हैं | भारतीय समाज में जाति प्रथा का एक महत्वपूर्ण स्थान है | जाति प्रथा के विभिन्न पहलू यथा धार्मिक अनुष्ठानों के आकार वर्ग व्यवस्था तथा पवित्रता एवं अपवित्रता का धारणा आदि न केवल आचरण के नमूनों में ही परिलक्षित होती है, बल्कि भारतीय तथा द्रविड़ भाषाओं के शब्द भंडारों एवं उनके प्रयोग में भी पाई जाती है | इस प्रकार एक जाति के जीवन का एक केन्द्रीय महत्वपूर्ण पहलू यानि संस्कृति का उनकी भाषा में व्यापक विस्तार दिखाई देता है।

भाषा एक जाति की केवल सांस्कृतिक परंपराओं पर ही प्रकाश नहीं डालती, बल्कि उसकी अनुभूति एक विचारधारा को भी प्रभावित करती है | दूसरे शब्दों में भाषा की रचना अनुभूति एवं विचार निखारती है | जूनी भाषा में नारंगी एवं पीले रंग के लिए एक ही शब्द है | जिसके फलस्वरूप जूनी लोग इन दो रंगों में किसी प्रकार का कोई अंतर नहीं समझते हैं |

इस प्रकार संस्कृति एवं भाषा के बीच एक दूसरे को प्रभावित करने तथा पारंपरिक क्रिया करने का संबंधहोता है।

सांस्कृतिविविधता

केवल दिखाई देने वाले लक्षणों के कारण ही नहीं अपितु भाषा, धर्म, विश्वास, प्रथाओं, रीति रिवाज तथा परंपराओं और धार्मिक अनुष्ठानों तथा अन्य संस्कारों के अत्यधिक वैविध्य के द्वारा भी मानव जाति को अभिलक्षित किया गया है।

हम जानते हैं की है कि मानव की मूलभूत आवश्यकताएं संस्कृति द्वारा परितृप्त एवं विनियंत्रित होती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के तरीकों में असीमित वैविध्य होता है। इन आवश्यकताओं की परितृप्ति इस प्रकार से होती है, जिसमें मनुष्य के समुदाय एवं वर्ग पर्यावरण के अनुसार और उसक साथ साथ धर्म, भाषा, शिल्प विज्ञान, कला जैसे सार्वभौमिक सांस्कृतिक नमूनों की अभिव्यक्ति में स्वयं को ढाल लेते हैं। हम कुछ उदाहरणों की सहायता से सांस्कृतिक वैविध्य को विस्तारपूर्वक समझाएंगे।

मानव जाति के वर्गों के बीच शव को निपटाने के संबंधमें बहुत विविधताएं है। यहूदी, मुसलमान और ईसाई तथा कई अन्य जातियां अपने मृतकों के शवों को जमीन में दबाती हैं जबकि हिन्दू लोग मृतकों को जलाते हैं। भारत में पारसी लोग शव को गिद्धों द्वारा खाए जाने के लिए छोड़ देते हैं।

इसी प्रकार धार्मिक विश्वासों, आचरणें और अनुष्ठानों में अत्यधिक भिन्नताएं देखने को मिलती है। आदिवासी लोगों का विश्वास था कि प्राकृतिक वस्तुओं में (जैसे वृक्षों, नदियों और तारा में) भी आत्मा होती है। इसे जड़ात्मवाद कहा जाता है। अन्य टोटमवाद में विश्वास रखते हैं जिसमें पशुओं की कतिपय जातियों धार्मिक तौर पर किसी एक दल अथवा कबीले से जुड़ी होती है ओर वे उन्हें पूर्वज मानकर उसकी पूजा करते हैं। हिन्दू धर्म जैसे अन्य धर्म भी है जोकि अनेक देवी देवताओं में विश्वास करते हैं और यह मानते हैं कि बह्म समस्त विश्व में व्याप्त है। यहूदी तथा मुसलमान जैसे एकेश्वरवादी धर्मों में एक सर्वोच्च ब्रह्म नामक किसी सत्ता को नहीं मानता। ईसाई धर्म के अनुगामी अवतारवाद में विश्वास करते हैं तथा यीशु मसीह का ईश्वरीय पूजा करते हैं।

भारत में सांस्कृतिकविविधता

विश्वभर में तो विविध संस्कृतियां विद्यमान है ही एक देश के भीतर अनेक संस्कृतियां प्रचलित होने के कारण हैं। उदाहरण के लिए भारतीय समाज को ही लीजिए, जिसमें बीसियों भाषाएं एवं उप-भाषाएं प्रचलित है। हम भारत में सांस्कृतिक विविधता को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण देना चाहेंगें।

बाह्मण एक एकाकी वर्ग है। बहरहाल, देश के विभिन्न भागों में रहने वाले ब्राह्मण सांस्कृतिक दृष्टिकोण से, एक ही वर्ग में नहीं आते। वे अपने जातियों और उप जातियों में बंटे हुए है और वे अपनी जाति में ही विवाह करते हैं। भाषा, खान पान, रीति रिवाज और धार्मिक अनुष्ठानों को लेकर उनके आचरण में अत्यधिक विभिन्नताएं पाई जाती है।

13.9 सांस्कृतिक विलम्बना

सांस्कृतिक पश्यता की अवधारणा को अमेंरिकन समाजशास्त्री डबल्यू. एफ. ऑगबर्न ने अपनी पुस्तक "सोशल चेन्ज" (Social Change)1922 में प्रतिपादित किया था। इसे स्पष्ट करने के पहले

ऑगबर्न द्वारा दिए गए संस्कृति के वर्गीकरण को समझ लेना नितांत आवश्यक है | ऑगबर्न ने संस्कृति की बहुत ही विस्तृत परिभाषा दी है, जिसे अधिकांश समाजशास्त्री आज स्वीकार नहीं करते है | ऑगबर्न की परिभाषा में संस्कृति के अन्तर्गत वे सारी चीजे चली जाती है जो मानव निर्मित है | उनका यह विचार मानवशास्त्री से काफी मिलता–जुलता है | ऑगबर्न ने संस्कृति के दो उपखण्डो में विभाजित किया है, जो इस प्रकार है– (1) भौतिक संस्कृति (2) अभौतिक संस्कृति, भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत समाज की भौतिक उपलब्धियों को रखा जा सकता है | ये मूर्त होती है, इन्हें हम स्पर्श कर सकते है एवं देख सकते है | ये मनुष्य और मशीनों के द्वारा निर्मित होती है, जैसे– वायुयान रेफ्रीजरेटर, घड़ी, वस्त्र, कलम, भवन आदि । मानव ने अपनी आवश्यकताओं के अनुसार अनेक औजारों और उपादानों का आविष्कार किया है | ये सभी उपलब्धियां भौतिक संस्कृति की श्रेणी में आती है | अभौतिक संस्कृति वह है जिसे हम स्पर्श नहीं कर सकते हैं ,एवं उसे देख नहीं सकते हैं | अभौतिक संस्कृति अर्मूत एवं व्यक्तिनिष्ठ होती है | उदाहरणस्वरूप– प्रथा, लोकरीति, दार्शनिक, विचारधारा, धर्म, सामाजिक मूल्य कला, साहित्य, आदर्श विज्ञान इत्यादि अभौतिक संस्कृति के उदाहरण है | प्रत्येक समाज के कुछ आदर्श होते है, जिनकी ओर समाज अग्रसर होने का सदैव प्रयास करता है | सामाजिक नियम और मान्यताएं भी अभौतिक संस्कृति के अन्तर्गत ही रखी जा सकती है ।

लेस्ली ने भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि अभौतिक के अन्तर्गत मानव के आदर्श, मूल्य, सामाजिक नियम–कानून मनोवृतियां एवं विभिन्न प्रकार की प्रथाएं आती है जिसे समाज के अधिकांश लोग स्वीकार करते है और वे शिक्षा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती है | दूसरी तरफ भौतिक संस्कृति से तात्पर्य मानव की भौतिक उपलब्धियों से है | भौतिक उपलब्धियों वैसी होती जिन्हें हम ज्ञानेन्द्रियों के सहारे अनुभव कर सकते है– जैसे पुस्तक, कलम, थियेटर, हवाई जहाज, सड़क कम्प्यूटर, वस्त्र, रेलगाड़ी इत्यादि। बहुत सारे समाजशास्त्रीयों ने भौतिक संस्कृति के तत्वों को देखने से स्पष्ट लगता है कि भौतिक संस्कृति को उन्होनें संस्कृति नहीं माना है | उन्होनें स्पष्ट कहा है कि संस्कृति एक आदर्श है तथा संस्कृति सीखी जाती है, भौतिक संस्कृति के साथ दोनों विशेषताएं लागू नहीं होगी ।

सांस्कृतिक विलम्बन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लेस्ली लोग हमेंशा बेहतर चीज के लिए प्रयास करते रहते है | एक वह समय था जब एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए छोड़े और बैलगाड़ी का प्रयोग किया, पर आज का मानव उससे संतुष्ट न होकर मोटरकार और हवाईजहाज का निर्माण किया है | आज यह कोशिश हो रही है कि वायुयान को कैसे अधिक से अधिक तेज गति से उड़ाया जाये ताकि हम कम से कम समय में अधिक से अधिक दूरी तय कर सकें। चूंकि भौतिक संस्कृति वस्तुओं में असीमित विकास की सम्भावना है | इसलिए उससे हमेंशा कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है | यही कारण है कि अभौतिक संस्कृति की तुलना में भौतिक संस्कृति आगे बढ़ जाती हैं और अभौतिक संस्कृति पिछड़ जाती है | इसे ही ऑगबर्न ने सांस्कृतिक विलम्बन कहा है | दूसरे शब्दों में, जिस प्रक्रिया द्वारा संस्कृति का एक पक्ष तेजी से परिवर्तित होकर आगे निकल जाता है, और दूसरा पीछे छूटा रह जाता है, उसे ही हम सांस्कृतिक विलम्बन कहते हैं ।

ऑगबर्न ने संस्कृति को स्पष्ट करने के लिए अनेक उदाहरण दिए है जैसे–वर्तमान समय में उधोगो का काफी विकास हुआ हे, परन्तु श्रमिको के हित सम्बन्धी कानून धीमी गति से बने हैं | उसी प्रकार कृषि में नवीन विधियों एवं यन्त्रों का प्रयोग हुआ है, परन्तु भूमि सुधार के कानून देर से बने, इस प्रकार भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति में एक असंतुलन पैदा हो गया है | और उसमें अनुकूलन नहीं हो

पाया। ऑगबर्न ने भौतिक और अभौतिक संस्कृति के बीच पाये जाने वाले असंतुलन को निम्नलिखित चार कारणों का उल्लेख किया है– (1) नये विचारों के प्रतिभय (2) अतीत के प्रतिनिष्ठा (3) निहित स्वार्थ (4) नवनी विचारों की परीक्षा में कठिनाई |

ऑगबर्न की सांस्कृतिक पश्चता की अवधारणा को कई विद्वानों ने काफी आलोचना की है | उनके इस सिद्धान्त का सबसे बड़ा दोष यह है कि समाजशास्त्र के अन्तर्गत अधिकांश विद्वान भौतिक संस्कृति को संस्कृति का अंग नही मानते हैं | अत: सांस्कृतिक विलम्बन की स्थिति उत्पन्न ही नहीं होती। इस सिद्धान्त का दूसरा प्रमुख दोष यह है कि इस तथ्य का कोई वस्तुनिष्ठ माप नहीं है कि संस्कृति का कोई एक हिस्सा दूसरे हिस्से से आगे निकल जाता है | ऑगबर्न का यह विश्लेषण उनके वस्तुनिष्ठ विचारों से प्रभावित है।

मैकाइवर एव पेज ने सांस्कृतिक विलम्बन की अवधारणा को स्पष्ट रूप से नकार दिया है और कहा कि समाज में आमतौर पर समस्या यह है कि विभिन्न प्रकार की प्रौद्योगिकी के विकास में सामाजस्य नहीं रहता है | प्रौद्योगिक के क्षेत्र में इतना अधिक विकास हो जाता है कि दूसरा हिस्सा पीछे छूट जाता है | समस्या यह नही है कि भौतिक संस्कृति अभौतिक संस्कृति से आगे निकल जाती है | बल्कि समस्या यह देखने को मिलती है कि विभिन्न प्रकार की प्रौद्योगिकी का विकास एक साथ नहीं हो पाता है | दोनो के बीच सामंजस्य में कमी रहती है मैकाइवर व पेज ने सांस्कृतिक पश्यता या विलम्बन की अवधारणा का प्रतिपादन किया है।

मैकाइवर व पेज ने यह भी कहा है कि संस्कृतिक दोनों पक्षों में कौन आगे रहता है या कौन पीछे, यह कहना भी कठिन है | इतिहासकारों के अनुसार प्राचीन यूनान में अभौतिक संस्कृति काफी विकसित थी और उसकी तुलना में भौतिक संस्कृति पिछड़ी हुई थी। अन्त में मैकाइवर व पेज ने यह भी कहा कि यदि सांस्कृतिक विलम्बन की उपकल्पना को सही मान भी लिया तो यह कहना गलत होगा कि सदैव अभौतिक संस्कृति भौतिक संस्कृति की तुलना में पीछे रह जाती है |

आमतौर पर ऐसा प्रतीत होता है कि भौतिक संस्कृति अभौतिक संस्कृति की तुलना में आगे निकल जाती है, पर गहराई से विचार करने पर यह सही नहीं लगता है | भौतिक वस्तुओं के विकास सम्बन्धी ज्ञान पहले आता है और उन वस्तुओं का विकास बाद में होता है | इससे यही प्रमाणित होता है कि अभौतिक संस्कृति आगे निकल जाती है और भौतिक संस्कृति पिछड़ जाती है | रेडियो, हवाईजहाज, टीवी. टेलीफोन अत्यादि बनाने का ज्ञान पहले आया है और इन चीजों की उत्पत्ति बाद में हुई वे सभी प्रौद्योगिक पश्यता के उदाहरण है।

13.11 मानव जीवन में संस्कृति का महत्त्व

संस्कृति जीवन के निकट से जुड़ी है | यह कोई बाह्य वस्तु नहीं है और न ही कोई आभूषण है जिसे मनुष्य प्रयोग कर सकें। यह केवल रंगों का स्पर्श मात्र भी नहीं है | यह वह गुण है जो हमें मनुष्य बनाता है | संस्कृति के बिना मनुष्य ही नहीं रहेंगे। संस्कृति परम्पराओं से, विश्वासों से, जीवन की शैली से, आध्यात्मिक पक्ष से, भौतिक पक्ष से निरन्तर जुड़ी है | यह हमें जीवन का अर्थ, जीवन जीने का तरीका सिखाती है | मानव ही संस्कृति का निर्माता है और साथ ही संस्कृति मानव को मानव बनाती है।

संस्कृति का एक मौलिक तत्त्व है, धार्मिक विश्वास और उसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति। हमें धार्मिक पहचान का सम्मान करना चाहिए, साथ ही सामयिक प्रयत्नों से भी परिचित होना चाहिए जिनसे अन्तःधार्मिक विश्वासों की बातचीत हो सके, जिन्हें प्रायः 'अन्तः सांस्कृतिक वार्तालाप' कहा जाता है। विश्व जैसे-जैसे जुड़ता चला जा रहा है, हम अधिक से अधिक वैश्विक हो रहे हैं और अधिक व्यापक वैश्विक स्तर पर जी रहे हैं | हम यह नहीं सोच सकते कि जीने का एक ही तरीका होता है और वही सत्य मार्ग है | सह-अस्तित्व की आवश्यकता ने विभिन्न संस्कृतियों और विश्वासों के सह-अस्तित्व को भी आवश्यक बना दिया है | इसलिए इससे पहले कि हम इस प्रकार की कोई गलती करें, अच्छा होगा कि हम अन्य संस्कृतियों को भी जानें और साथ ही अपनी संस्कृति को भी भली प्रकार समझें। हम दूसरी संस्कृतियों के विषय में कैसे चर्चा कर सकते हैं जब तक हम अपनी संस्कृति के मूल्यों को भी भली प्रकार न समझ लें।

सत्य, शिव और सुन्दर ये तीन शाश्वत मूल्य हैं जो संस्कृति से निकट से जुड़े हैं | यह संस्कृति ही है जो हमें दर्शन और धर्म के माध्यम से सत्य के निकट लाती है | यह हमारे जीवन में कलाओं के माध्यम से सौन्दर्य प्रदान करती है और सौन्दर्यनुभूतिपरक मानव बनाती है | यह संस्कृति ही है जो हमें नैतिक मानव बनाती है और दूसरे मानवों के निकट सम्पर्क में लाती है और इसी के साथ हमें प्रेम, सहिष्णुता और शान्ति का पाठ पढ़ाती है।

13.12 संस्कृति का निर्माण

किसी देश की संस्कृति उसकी सम्पूर्ण मानसिक निधि को सूचित करती है | यह किसी खास व्यक्ति के पुरुषार्थ का फल नहीं, अपितु असंख्य ज्ञात तथा अज्ञात व्यक्तियों के भगीरथ प्रयत्न का परिणाम होती है | सब व्यक्ति अपनी सामर्थ्य और योग्यता के अनुसार संस्कृति के निर्माण में सहयोग देते हैं | संस्कृति की तुलना आस्ट्रेलिया के निकट समुद्र में पाई जाने वाली मूँगे की भीमकाय चट्टानों से की जा सकती है | मूँगे के असंख्य कीड़े अपने छोटे घर बनाकर समाप्त हो गए। फिर नए कीड़ों ने घर बनाये, उनका भी अन्त हो गया। इसके बाद उनकी अगली पीढ़ी ने भी यही किया और यह क्रम हजारों वर्ष तक निरन्तर चलता रहा। आज उन सब मूगों के नन्हे-नन्हे घरों ने परस्पर जुड़ते हुए विशाल चट्टानों का रूप धारण कर लिया है | संस्कृति का भी इसी प्रकार धीरे-धीरे निर्माण होता है और उनके निर्माण में हजारों वर्ष लगते हैं | मनुष्य विभिन्न स्थानों पर रहते हुए विशेष प्रकार के सामाजिक वातावरण, संस्थाओं, प्रथाओं, व्यवस्थाओं, धर्म, दर्शन, लिपि, भाषा तथा कलाओं का विकास करके अपनी विशिष्ट संस्कृति का निर्माण करते हैं | भारतीय संस्कृति की रचना भी इसी प्रकार हुई है।

13.13 सारांश

इस इकाई में आपने संस्कृति का अर्थ एवं विशेषताओं का अध्ययन किया। आपने यह समझा कि सम्पूर्ण जीवन और उसके द्वारा परिचालित वैयक्तिक व सामाजिक व्यवहार प्रतिमान संस्कृति के परिवेश में सम्मिलित है। विविध सांस्कृतिक विशेषताएं जीवन क्रम आदि परस्पर युक्त होकर संस्कृति संकुल का सृजन करते है। संस्कृतियों मुख्यत: भौतिक व अभौतिक वर्गो द्वारा अभिज्ञेय है। इस क्रम में आपने सांस्कृतिक प्रक्रियाओं से भी परिचय प्राप्त किया। संस्कृति अध्ययन प्राय:

ऐतिहासिक व संस्कृति सापेक्ष संदर्भो से अभिप्रेरित है। मूलत: संस्कृति की दुनिया इस परिमार्जित व्यवहार क्रम को समर्पित है जो संस्कारों से चरितार्थ होते हैं।

13.14 शब्दावली

- **संस्कृति -** एक समाज विशेष के सम्पूर्ण व्यवहार प्रतिमानों अथवा समग्र जीवन विधि को ही संस्कृति के नाम से पुकारा जा सकता है।
- **भौतिक संस्कृति** - भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत मानव द्वारा निर्मित सभी भौतिक एवं मूर्त वस्तुओं को सम्मिलित किया जाता है|
- **अभौतिक संस्कृति -** अभौतिक के अन्तर्गत उन सभी सामाजिक तथ्यों को सम्मिलित किया जाता है| जो अर्मूत है जिनका कोई नाप तौल, आकार व रंगरूप नही होता, इन्द्रियों द्वारा जिनका स्पर्श नही होता वरन उन्हें केवल महसूस किया जा सकता है, वह हमारे विचारों एव कार्यो में निहित है|
- **सभ्यता -** सामाजिक और राजनैतिक रूप से जीवन जीने के उत्तरोत्तर उत्तम तरीकों को तथा चारों ओर की प्रकृति का बेहतर उपयोग 'सभ्यता' कहा जा सकता है|
- **सांस्कृतिक विलम्बन -** जिस प्रक्रिया द्वारा संस्कृति का एक पक्ष तेजी से परिवर्तित होकर आगे निकल जाता है ,और दूसरा पीछे छूटा रह जाता है, उसे ही हम सांस्कृतिक विलम्बन कहते हैं|

13.15 अभ्यास प्रश्न

1. "संस्कृति प्रयार्यवरण का मानव निर्मित भाग है।" स्पष्ट किजिए।
2. संस्कृति की परिभाषा दीजिए तथा संस्कृति की विशेषताएं की व्याख्या कीजिए।
3. संस्कृति के प्रकारों के बारे में उल्लेख कीजिए।
4. सास्कृतिक और समाज किस प्रकार पूरक हैं ? समझाए ।
5. संस्कृति विलंबन से आपका क्या आशय है ?

13.16 संदर्भ गन्ध सूची

- शर्मा, आर.एन.एवं. शर्मा, आर. के. (2002) सामाजिक विघटन, एटलांटिक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स: नई दिल्ली
- शर्मा, के. एल. (2011) सामाजिक स्तरीकरण, रावत पब्लिकेशन्सः जयपुर
- राम, एस. पी. (2010) भारतीय सामाजिक समस्याएं: अर्जुन पब्लिशिंग हाउस: नई दिल्ली
- सिंह, डी. के., पालीवाल, एस एवं मिश्र, आर. (2010) मानव समाजः संगठन एवम् विघटन के मूल तत्वः न्यू रायल बुक कम्पनीः लखनऊ
- सिंह, ए. के. (2009) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास: नई दिल्ली

- दोषी, एस. एल. एवं जैन, पी.सी. (2005) भारतीय समाज, नेशनल पब्लिसिंग हाउसः जयपुर
- यादव आर. (2005) सामाजिक समस्याएं, अर्जुन पब्लिशिंग हाउसः नई दिल्ली
- मिश्र, पी.डी. (2003) व्यक्ति और समाज, न्यू रायल बुक कम्पनी: लखनऊ
- महाजन, एस. (2010) सामाजिक समस्याएं, अर्जुन पब्लिसिंग हाउसः नई दिल्ली
- Wikipedia on Cultur

इकाई - 14

संस्कृति एवं व्यक्तित्व

Culture & Personality

इकाई की रूपरेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य्य

14.2 व्यक्तित्व : अर्थ एवं परिभाषा

14.3 व्यक्तित्व की विशेषताएं

14.4 व्यक्तित्व के शील गुण तथा प्रकार

14.5 व्यक्तित्व के प्रकार

14.6 व्यक्तित्व एवं संस्कृति में संबंधोंका स्वरूप

14.7 संस्कृति एवं व्यक्तित्व में संबंध

14.8 संस्कृति का व्यक्तित्व पर प्रभाव

14.9 व्यक्तित्व का संस्कृति पर प्रभाव

14.10 सारांश

14.11 कठिन शब्द

14.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14.0 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने पढ़ा कि संस्कृति के बारे में विस्तृत रूप से चर्चा की | इसके अर्थ, परिभाषा एवं अवधारणा से परिचित हुए| संस्कृति के विभिन्न प्रकार के बारे में समझे | इसकी इसका मानव जीवन में क्या महत्वता हैं और यह किस प्रकार से उसे प्रभावित करती है, इसके बारे में भी जानकारी हासिल की | इस इकाई में संस्कृति और व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जानेंगे |

व्यक्तित्व (personality) आधुनिक मनोविज्ञान का बहुत ही महत्वपूर्ण एवं प्रमुख विषय है | व्यक्तित्व के अध्ययन के आधार पर व्यक्ति के व्यवहार का पूर्वकथन भी किया जा सकता है | प्रत्येक व्यक्ति में कुछ विशेष गुण या विशेषताएं होती हो जो दूसरे व्यक्ति में नहीं होतीं। इन्हीं गुणों एवं विशेषताओं के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होता है | व्यक्ति के इन गुणों का समुच्चय ही व्यक्ति का व्यक्तित्व कहलाता है | व्यक्तित्व एक स्थिर अवस्था न होकर एक गत्यात्मक समष्टि है जिस पर परिवेश का प्रभाव पड़ता है और इसी कारण से उसमें बदलाव आ सकता है | व्यक्ति के आचार-विचार, व्यवहार, क्रियाएं और गतिविधियों में व्यक्ति का व्यक्तित्व झलकता है | व्यक्ति का समस्त व्यवहार उसके वातावरण या परिवेश में समायोजन करने के लिए होता है | जनसाधारण में

व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के बाह्य रूप से लिया जाता है, परन्तु मनोविज्ञान में व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के रूप गुणों की समष्टि से है, अर्थात व्यक्ति के बाह्य आवरण के गुण और आन्तरिक तत्व, दोनों को माना जाता है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर संस्कृति की अहम भूमिका है | व्यक्ति का व्यक्तित्व संस्कृति के अनुरूप होता है | जन्मकाल से ही शिशु का पालन-पोषण तथा समाजीकरण उसकी सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप होता है | प्रत्येक संस्कृति में शिशु के सामाजीकरण की एक विधि होती है क्योंकि इसी विधि के द्वारा संस्कृति अपने को सुरक्षित रखती है | संस्कृति और व्यक्तित्व एक दूसरे के पूरक होते हैं | आज के अधिकतर मनोवैज्ञानिकों का यह विचार है कि संस्कृति और व्यक्तित्व दो भिन्न वस्तुएं नहीं हैं, बल्कि एक ही वस्तु के दो पहलू हैं | जिस संस्कृति में बालक का लालन-पालन होता है उसी संस्कृति के गुण उसके व्यक्तित्व में आ जाते हैं |

मैकाईवर और पेज (Mac Iver and Page) के शब्दों में ''संस्कृति हमारे रहने व सोचने के ढंगों में, दैनिक कार्यकलापों में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन और सुखोपभोग में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।'' इस तरह संस्कृति कार्य करने की शैलियों, मूल्यों, भावात्मक लगावों और बौद्धिक अभियान का क्षेत्र है | एक संस्कृति दूसरी संस्कृति से इन्हीं गुणों के आधार पर भिन्न होती है | अलग-अलग संस्कृतियों के अलग-अलग मूल्य होते हैं | जैसे-प्राचीन काल में भारतीय लोग धर्मपरायण और आध्यात्मिक थे। आधुनिक भारतीय उतने आध्यात्मिक एवं धार्मिक नहीं हैं | फिर भी उनमें आध्यात्मिक एवं धार्मिक मूल्य उच्च स्तर के हैं | इसका कारण भारतीय संस्कृति का प्रभाव ही है | पाश्चात्य लोगों के लिए भौतिक व मानसिक मूल्य उच्च स्तर के हैं | इसी तरह अलग-अलग संस्कृति के समाजों में रहन-सहन, रीति-रिवाज, धर्म, कला, मूल्यों और परम्पराओं में भिन्नताएं देखी जा सकती हैं | कुछ संस्कृतियों की जातियों में मनुष्य हत्या को पाप समझते हैं तो दूसरी ओर नागा संस्कृति में उन लोगों का बड़ा सम्मान होता है जो नर मुण्ड काट के लाते हैं | जो व्यक्ति जितने ज्यादा नर मुण्ड काटता है उतनी ही समाज में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है और उतने ही ज्यादा स्त्रियों के विवाह के प्रस्ताव आते हैं | जबकि दूसरी संस्कृति में नर हत्या करने वाले के साथ समाज के लोग अपनी बेटी का विवाह नहीं करना चाहते। भारतीय संस्कृति के कुछ परिवारों में तलाक देना अच्छा नहीं माना जाता परन्तु कुछ जनजातियों में जो स्त्री जितने अधिक तलाक पाती है, उसकी प्रतिष्ठा उतनी ही अधिक बढ़ती है | इन्ही सब उदाहरण से हम यह समझ सकते हैं की किस तरह सांस्कृतिक भिन्नताएं बालक के व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव डालती हैं |

आगे इसी इकाई में हम पढेगे कि व्यक्तित्व और संस्कृति का आपस में क्या संबंध है और परस्पर दोनों किस प्रकार से परिलक्षित होते हैं।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ पाएंगे कि-

- व्यक्तित्व का अर्थ व परिभाषा ।
- व्यक्तित्व की विशेषताएं।
- व्यक्तित्व और संस्कृति के संबंधोंका स्वरूप।

- संस्कृति एवं व्यक्तित्व में संबंध|
- संस्कृति का व्यक्तित्व पर प्रभाव |
- व्यक्तित्व का संस्कृति पर प्रभाव |

14.2 व्यक्तित्व : अर्थ एवं परिभाषा

विभिन्न व्यक्तियों के व्यक्तित्व अलग अलग दिखाई पड़ते हैं अत: मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्तित्व के संबंध में अध्ययन गत कई वर्षों से किया जा रहा है । इसी कारण समय समय पर व्यक्तित्व की परिभाषाएं भी भिन्न-भिन्न रूप में दी गयी हैं। सन् 1937 में आलपोर्ट ने उस समय तक व्यक्तित्व की दी गयी सभी परिभाषाओं को एकत्र किया और पाया कि परिभाषाओं की संख्या 49 थी। आलपोर्ट ने गहन और विष्लेशणात्मक अध्ययन के दृश्टिकोण से इन सभी 49 परिभाषाओं को पांच श्रेणियों में विभक्त किया और उनका विभिन्न पहलुओं से अध्ययन किया । उन्होंने पाया कि सबसे पहली परिभाषा व्यक्तित्व "शब्द की उत्पत्ति व विचार (Concept) पर आधारित थी। व्यक्तित्व को अंग्रेजी में Personality कहते हैं जो लेटिन शब्द Person से बना है जिसका अर्थ "नकाब" (mask) से होता है जिसे नायक (actor) अभिनय करते समय अपने चेहरे पर लगा लेते हैं। इस प्रकार जिस व्यक्तित्व का बाहरी दिखावा चमक दमक वाला होता है उसका व्यक्तित्व अच्छा समझा गया है और जिसका बाहरी दिखावा साधारण होता है उसका व्यक्तित्व साधारण माना गया है।

आलपोर्ट (1937)के अनुसार - व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गतिशील या गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उनके समायोजन को निर्धारित करता है।

आईजेन्क (1952) के अनुसार - व्यक्तित्व के चरित्र, चित्तप्रकृति, ज्ञानशक्ति तथा "शरीर गठन का करीब-करीब एक स्थायी टिकाऊ संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है।

आईजेन्क ने आलपोर्ट के समान ही व्यक्तित्व कोपरिभाषित करने में व्यक्तित्व के भीतरी तथा बाहरी गुणों यानि व्यवहार को सम्मिलित किया हे परन्तु आईजेन्क ने भीतरी गुणों पर अधिक बल दिया है। इन दो परिभाषाओं के बाद 1976 में वाल्डर मिसकेल ने परिभाषा दी।

वाल्डर मिसकेल (1976) के अनुसार - व्यक्तित्व से तात्पर्य प्राय: व्यवहार के उस विशिष्ट पैटर्न (जिसमें चिन्तन व संवेग भी सम्मिलित हैं) से होता है जो प्रत्येक व्यक्ति की जिन्दगी की परिस्थितियों के साथ होने वाले समायोजन का निर्धारण करता है।

इन तीनों परिभाषाओं का यदि हम विश्लेषण करें तो व्यक्तित्व के अर्थ को समझना और भी आसान हो जाएगा। इसका एक विश्लेषण इस प्रकार है -

1 मनोशारीरिक तंत्र - व्यक्तित्व एक ऐसा तंत्र है जिसका मानसिक या मनोवैज्ञानिक तथा "शारीरिक दोनों ही पक्ष होते हैं। यह तंत्र ऐसे तत्वों का एक गठन होता है जो आपस में अंत:क्रिया करते हैं। इस तंत्र के मुख्य तत्व "शील गुण, संवेग, आदत, ज्ञानशक्ति, चित्तप्रकृति, चरित्र तथा अभिप्रेरक आदि हैं जो सभी मानसिक गुण हैं परंतु इनका आधार शारीरिक अर्थात व्यक्ति के ग्रंथीय प्रक्रियाओं एवं तांत्रिकीय प्रक्रियाएं हैं। इसका स्पष्ट मतलब यह हुआ कि व्यक्तित्व न तो पूर्णत:

मानसिक या मनोवैज्ञानिक है और न तो पूर्णत: शारीरिक ही है। व्यक्तित्व इन दोनों तरह के पक्षों का मिश्रण है।

2. गत्यात्मक संगठन - गत्यात्मक संगठन से यह तात्पर्य है कि मनोशारीरिक तंत्र के भिन्न-भिन्न तत्व जैसे "शील गुण, चित्तप्रकृति, चरित्र आदि एक दूसरे से इस तरह संबंधितहोकर संगठित होते हैं कि उन्हें एक दूसरे से पूर्णत: अलग अलग नहीं किया जा सकता है। इस संगठन में परिवर्तन सम्भव है। यही कारण है कि इसे एक गत्यात्मक संगठन कहा गया है। उदाहरण के लिये - कोई व्यक्ति नौकरी पाने के लिये ईमानदारी, उत्तरदायी तथा समयनिष्ठ गुणों को दिखा सकता है परन्तु नौकरी मिलने के कुछ वर्षों बाद उसमें उत्तरदायी तथा समयनिष्ठता का शीलगुण ज्यों का त्यों बना रह सकता है परन्तु सम्भव है कि ईमानारी का गुण बदलकर बेईमान का गुण विकसित हो जाए। इन शील गुणों का संगठन में इस तरह के परिवर्तन गत्यात्मक संगठन का उदाहरण है। इस तरह के संगठन में विसंगठन भी सम्मिलित होता है जिसके सहारे असामान्य व्यवहार की भी व्याख्या होती है। अन्य "शब्दों में यदि कोई व्यक्ति के शीलगुणों के संगठन में इस ढंग का परिवर्तन आ जाता है कि उसका व्यवहार विसंगठित हो जाता है तथा जिसके फलस्वरूप वह असामान्य व्यवहार अधिक करने लग जाता है तो इसे भी गत्यात्मक संगठन की श्रेणी में ही रखेंगे।

3. वातावरण में अपूर्व समायोजन का निर्धारण - प्रत्येक व्यक्तित्व में मनोशारीरिक गुणों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन पाया जाता है कि उसका व्यवहार वातावरण में अपने अपने ढंग का अपूर्व होता है। इसका मतलब यह हुआ कि वातावरण समान होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार, चिंतन प्रक्रिया, संवेग आदि अपूर्व होता है जिसके कारण वातावरण के साथ समायोजन करने का ढंग भी प्रत्येक व्यक्ति में अलग अलग होता है। आईजेक, आलपोर्ट तथा मिसकेल ने इस पक्ष पर करीब करीब समान रूप से अपनी - अपनी परिभाषाओं में बल दिया है। यही कारण है कि आलपोर्ट 1961 ने अपनी 1937 की परिभाषा के अन्तिम पांच "शब्द बदलकर इस प्रकार दिये - unique adjustment to his environments के स्थान पर characteristics behavior and thought को सम्मिलित किया। इस परिवर्तन का उद्देश्य यह बतलाना था कि व्यक्ति का व्यवहार मात्र अनुकूली ही नहीं होता है बल्कि कथनीय भी होता है। इसका मतलब यह हुआ कि व्यक्ति वातावरण के साथ सिर्फ अभियोजन या अनुकूलन ही नहीं करता बल्कि इस वातावरण के साथ वैसी अंत:क्रिया भी करता हे जिससे वातावरण को भी व्यक्ति के साथ अनुकूल या अभियोजन होना पड़ता है।

निष्कर्ष यह है कि व्यक्तित्व में विभिन्न शीलगुणों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन होता है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार किसी भी वातावरण में अपने ढंग का अर्थात अपूर्व होता है।

14.3 व्यक्तित्व की विशेषताएं

व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाओं के प्रकाश में इसकी निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट होती हैं -

1- **मनोदैहिक शीलगुण** - व्यक्तित्व का सम्बन्ध मानसिक तथा "शारीरिक शीलगुण" से है। आलपोर्ट का यह कथन सत्य है कि व्यक्तित्व का संबंधन केवल व्यक्ति के दैहिक शीलगुणों और केवल सामाजिक शीलगुणों से है, बल्कि दोनों से है।

2- **संगठन** - व्यक्तित्व के मनोदैहिक शीलगुणों का योगफल नहीं है बल्कि एक विशेष संगठन है । इसी संगठन के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में विशिष्ट होता है । मनोदैहिक शीलगुण जितना ही अधिक संगठित होते हैं, व्यक्तित्व उतना ही अधिक प्रभावपूर्ण एवं टिकाऊ होता है।

3- **गत्यात्मकता** - व्यक्तित्व अर्थात मनोदैहिक शीलगुणों का संगठन अटल नहीं होता बल्कि गत्यात्मक होता है । परिस्थिति में परिवर्तन होने के कारण व्यक्तित्व संगठन में थोड़ा-बहुत परिवर्तन हो सकता है । जैसे एक परिस्थिति में जो व्यक्ति ईमानदार होता है, वही दूसरी परिस्थिति में बेईमान सिद्ध हो सकता है।

4- **संगति या स्थिरता** - व्यक्तित्व में एक ओर गत्यात्मकता होती है तो दूसरी ओर स्थिरता या संगति रहती है जैसे जो व्यक्ति ईमानदार होता है वह अधिकांष परिस्थितियों में ईमानदार ही रहता है , केवल कुछ परिस्थितियों में ही बेईमान बन जाता है ।

5- **अपूर्व समायोजन** - एक ही वातावरण के प्रति भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का समायोजन भिन्न-भिन्न रूपों में होता है जैसे साम्प्रदायिक दंगे की परिस्थिति में कोई साम्प्रदायिक तनाव को दूर करने का प्रयास करता है, कोई उसे अधिक उभारने में रूचि लेता है, और कोई जान बचाकर भाग निकलता है । परिस्थिति समान होने पर भी सबके व्यवहार अलग-अलग होते हैं । इसका कारण प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का विशिष्ट संगठन है ।

14.4 व्यक्तित्व के शीलगुण तथा प्रकार

व्यक्तित्व के निम्नलिखित शीलगुण हैं :-

1- **अधिपत्य** - जिस व्यक्ति में यह शीलगुण प्रधान होता है वह दूसरों पर रौब जमाने का प्रयास करता है तथा अपना निर्णय दूसरों पर आरोपित करना चाहता है । अधिपत्य तथा नेतृत्व के बीच गहरा सम्बन्ध होता हे ।

2- **सामाजिकता** - जिस व्यक्ति में यह शीलगुण होता है वह दूसरों के साथ अधिक मिलता जुलता है । उसमें सम्बन्धन-आवश्यकता अधिक होता है । ऐसा व्यक्ति प्राय: बहिर्मुखी होता है ।

3- **विनम्रता** - यह शीलगुण अधिपत्य के शीलगुण के विपरीत होता है । इस शीलगुण वाला व्यक्ति आज्ञाकारी होता है तथा दूसरों पर अपने विचारों को आरोपित नहीं करता है ।

4- **लज्जा** - इस शीलगुण वाला व्यक्ति सदा लजाता रहता है । उसमें सामाजिकता का अभाव होता है । वह अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों को कायम करने में कमजोर होता है ।

5- **आक्रमणशीलता** - जिस व्यक्ति में यह शीलगुण होता है वह प्राय: आक्रमणकारी व्यवहार करता है । उसमें क्रोध अधिक पाया जाता हे । उसमें सहनशीलता की कमी होती हे । उसमें अधिपत्य का भाव अधिक पाया जाता है । ऐसा व्यक्ति आतंक,तथा उपद्रव फैलाने में आगे रहता है ।

6- **सहनशीलता** - इस शीलगुण वाला व्यक्ति सहनशील होता है । वह अपने मित्रों, सम्बन्धियों अथवा अपरिचित व्यक्तियों की बातों को सह लेता है । वह प्रतिक्रियात्मक

व्यवहार बहुत कम करता है । विनम्रता तथा सहनशीलता के बीच उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध होता है।

7- **हठ** - जिस व्यक्ति में यह शीलगुण होता है वह जिद्धी बन जाता है । ऐसा व्यक्ति प्राय: अन्तर्मुखी होता है|

8- **यौन-नैतिकता** - कुछ लोगों में यौन नैतिकता अधिक पायी जाती है । ऐसा व्यक्ति यौन अपराध बहुत कम करता है। इसके विपरीत जिस व्यक्ति में यौन नैतिकता कम होती है वह यौन अपराध अधिक करता है।

9- **स्पर्धा एवं डाह** - भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में यह शीलगुण भी पाया जाता हे। जिस व्यक्ति में यह शीलगुण अधिक होता है वह दूसरे से डाह करता है तथा दूसरों को नुकसान पहुँचा कर स्वयं लाभ उठाने का प्रयास करता है।

10- प्रतियोगिता - यह शीलगुण स्पर्धा या डाह से भिन्न है । जिस व्यक्ति में प्रतियोगिता का शीलगुण अधिक होता है वह अपने विकास, अपनी उन्नति या अपनी सफलता के लिये भरपूर कोशिश करता है, किन्तु दूसरों को नुकसान पहुँचाने का प्रयास नहीं करता है।

उपर्युक्त शीलगुण के अलावा उपलब्धि आवश्यकता चिन्ता अहम "शक्ति रूढ़िवाद आदि अनेक शीलगुणों के विकास पर संस्कृति का प्रभाव पड़ता है । इस प्रकार भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के लोगों में इन शीलगुणों का विकास भिन्न-भिन्न रूपों में होता है।

14.5 व्यक्तित्व के प्रकार

जहां तक व्यक्तितव के प्रकार का प्रश्न है, केश्मर 1925 ने इसके तीन प्रकारों का उल्लेख किया है - स्थूलकाय, कृश्यकाय तथा पुष्टकाय। स्थूलकाय मोटे ताजे और नाटे होते हैं। उनमें सहनशीलता, विनम्रता, सामाजिकता, सहयोग आदि शीलगुण पाये जाते हैं। कृश्यकाय दुबले-पतले तथा लम्बे होते हैं। उनमें चिड़चिड़ापन, खिन्नता, हठ आदि शीलगुण पाये जाते हैं। पुष्टकाय सामान्य या औसत कद के होते हैं, उनमें एक सामान्य व्यक्ति के शीलगुण पाये जाते हैं।

शेल्डन (1942) ने व्यक्तित्व के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है - गोलाकृति, आयताकृति तथा लम्बाकृति। ये सभी प्रकार शारीरिक रचना तथा मानसिक शीलगुण में क्रमष: किष्मर ने स्थूलकाय, पुश्टकाय तथा कृष्यकाय के समान होते हैं।

युंग (1929) ने मानसिक शीलगुणों के आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्रकारों का उल्लेख किया - अन्तर्मुखता, बहिर्मुखता तथा उभयमुखता । अन्तमुर्खता व्यक्ति उसे कहते हैं जिसमें लज्जा, संकोचशीलता, रूढ़िवाद, एकान्तप्रियता आदि शीलगुण पाये जाते हैं। बहिर्मुखी व्यक्ति उसे कहते हैं जिसमें सामाजिकता, अधिपत्य, सहकारिता, प्रतियोगिता आदि शीलगुण पाये जाते हैं। उभयमुखी व्यक्ति उसे कहते हैं जिसमें इन दोनों प्रकारों के मिले जुले शीलगुण पाये जाते हैं। वास्तव में किसी संस्कृति के अधिकांश लोग उभयमुखी होते हैं तथा बहुत थोड़े लोग बहिर्मुखी या अन्तर्मुखी होते हैं।

14.6 व्यक्तित्व एवं संस्कृति में संबंधों का स्वरूप

व्यक्तित्व एवं संस्कृति का सम्बन्ध काफी घनिष्ट एवं दो तरफा होता है अर्थात संस्कृति व्यक्तित्व को प्रभावित करती है और व्यक्तितव संस्कृति को प्रभावित करता है। संस्कृति का व्यक्तित्व के ऊपर

व्यापक प्रभावों के कारण सामाजिक स्थिरता एवं निरन्तरता बनी रहती है तथा व्यक्ति का संस्कृति के ऊपर प्रभाव के कारण सामाजिक परिवर्तन आते हैं। क्रेच, क्रचफिल्ड तथा बेलेची, 1962 ने संस्कृति एवं व्यक्तित्व के संबंधोंपर टिप्पणी करते हुए कहा है, "संस्कृति और व्यक्ति का संबंध एक तरफा नहीं होता है बल्कि दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं । संस्कृति व्यक्ति को प्रभावषाली एवं व्यापक रूप से प्रभावित करती है और इस तरह से संस्कृति की निरन्तरता तथा समाज की स्थिरता को बनाए रखती है। व्यक्ति भी संस्कृति को प्रभावित करता हे और इस प्रकार से सामाजिक परिवर्तन आता है।" जहां तक वयक्ति पर संस्कृति के प्रभाव का सम्बन्ध है, इसके अध्ययन पर मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों ने अधिक बल डाला है । जॉन गिल्लिन, 1948 के अनुसार निम्नांकित तरीकों से संस्कृति का प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है :-

1- जन्म लेते ही शिशु एक ऐसे मानव निर्मित वातावरण में प्रवेश करता है जहां कि भौतिक वस्तुएं (मकान, फर्नीचर आदि) तथा अभौतिक वस्तुएं (धर्म, प्रथा, परम्परा, विश्वास आदि) उसे घेरे रखता है। इसी वातावरण में उसका पालन-पोषण होता है तथा इसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व के विकास पर पड़ता है।

2- प्रत्येक संस्कृति की भिन्न-भिन्न सामाजिक परिस्थितियों में व्यवहार करने के लिये कुछ मानक रीति-रिवाज तथा संस्थागत तरीके होते हैं जिनके अनुसार व्यक्ति को व्यवहार करना पड़ता है। इसका अर्थ यह है कि संस्कृति व्यक्ति की कुछ मानकों के अनुसार व्यवहार करने के लिये प्रेरित करती है। व्यक्ति भी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उन तौर-तरीकों और व्यवहार से सीख लेता है। यही कारण है कि किसी एक संस्कृति में पले-बढ़े व्यक्तियों के व्यवहार में अधिक समानता मिलती है। संस्कृति में एक तरह के सामाजिक गुण विद्यमान होते हैं जो सम्पूर्ण सामाजिक जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष या पांच दस व्यक्तियों की धरोहर नहीं होती बल्कि पूरे सामाजिक एवं सामाजिक जीवन को ही व्यक्त करती है।

3- विशेष पुरस्कार द्वारा संस्कृति अपने समाज के सदस्यों को उचित व्यवहार करने को सीखने में मदद करती है तथा दण्ड एवं भर्त्सना द्वारा अपने सदस्यों की बुरी आदतों एवं अनुचित व्यवहार को छोड़ने के लिये दबाव भी डालती है।

लिन्टन,1936 के अनुसार व्यक्ति पर संस्कृति के पड़ने वाले प्रभावों को निम्नांकित दो प्रकारों से व्यक्त किया जा सकता है :-

1- प्रत्येक संस्कृति में यह निश्चित रहता है कि समाज के वयस्क सदस्य बच्चों के साथ किसी प्रकार से व्यवहार करेंगे या किस प्रकार के व्यवहार को उचित कहेंगे। इसका स्पष्ट प्रभाव बच्चों के व्यक्तित्व पर पड़ता है। कुछ संस्कृतियों में ऐसा भी देखा गया है कि माता-पिता बच्चों की देखभाल करने में अधिक समय देते हैं तथा उनके प्रति उदारता का भाव भी अधिक रखते हैं परन्तु कुछ संस्कृतियों में माता-पिता बच्चों की देखभाल में उतनी अभिरूचि नहीं दिखलाते तथा उनके साथ रूढ़ता के साथ पेश आते हैं। पहले तरह की संस्कृति में पलने वाले बच्चों का व्यक्तित्व दूसरे तरह की संस्कृति में पले बच्चों के व्यक्तित्व से सर्वथा भिन्न होता है। दूसरे प्रकार के बच्चे प्राय: हिंसक तथा झगड़ालू प्रवृत्ति के होते हैं तथा वे संवेदनशील एवं अविश्वासी भी होते हैं।

2- संस्कृति का प्रभाव इस बात पर भी निर्भर करता है कि बच्चा किन संस्कृति के किन मानकों, प्रथाओं और धर्मों को सीखता है तथा कितनी मात्रा में सीखता है।

उपर्युक्त दोनों तरह का प्रभाव बच्चों पर स्वतंत्र रूप से न पड़कर कुछ मिले-जुले तरीके के होते हैं। लिन्टन,(1936) ने यह भी स्पष्ट किया है कि संस्कृति का प्रभाव केवल बचपन में ही नहीं बल्कि उसके बाद भी आजीवन पड़ता रहता है। लिन्टन, 1936 के ही "शब्दों में "जहां किसी समाज की संस्कृति अपने सदस्यों के व्यक्तियों के गहरे स्तर तक बच्चे के पालन-पोषण को विशिष्ट प्रविधियों द्वारा निश्चित करती है, इसका प्रभाव यही समाप्त हो जाता है। रूथ बेनेडिक्ट,1959 ने भी संस्कृति एवं व्यक्तित्व के संबंधों के स्वरूप पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि संस्कृति तथा व्यक्तित्व में घना संबंधहै। सचमुच में संसकृति व्यक्ति को कच्चा माल प्रदान करती है जिससे वह अपने जीवन का निर्माण करता हे। यदि किसी कारण से यह कच्चा माल अपर्याप्त होता है, तो व्यक्ति का विकास पूर्णरूपेण नहीं हो पाता है परंतु यदि वह पर्याप्त होता है, तो व्यक्ति को उसका सदुपयोग करने का अवसर मिल जाता है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि जब बच्चा खास संस्कृति में पलते-पलते वयस्क हो जाता है तो संस्कृति की आदतें तथा संस्कृति का विश्वास, उसका विश्वास बन जाता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि संस्कृति एवं व्यक्तित्व में घनिष्ठ संबंधहै। चूंकि प्रत्येक समाज की संस्कृति अपनी भौगोलिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के कारण भिन्न-भिन्न होती है, इसलिये एक संस्कृति में रहने वाले व्यक्तियों का व्यवहार दूसरी संस्कृति में रहने वाले व्यक्तियों के व्यवहार से भिन्न होता है।

14.7 संस्कृति एवं व्यक्तित्व में संबंध

संस्कृति तथा व्यक्तित्व में दो तरफा संबंधहै। जिस प्रकार संस्कृति या सामाजिक व्यवस्था का प्रभाव व्यक्तित्व के निर्माण पर पड़ता है उसी प्रकार व्यक्तित्व का प्रभाव संसकृति या सामाजिक व्यवस्था पर पड़ता है। यह एक वास्तविकता है कि व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभावों के अध्ययन की दिशा में अधिक शोधकार्य हुए हैं किन्तु संस्कृति के विकास पर व्यक्तित्व के प्रभावों को निर्धारित करने की दिशा में अपेक्षाकृत कम प्रयास किया गया है। सामाजिक संरचना पर व्यक्ति का प्रभाव कई रूपों में पड़ रहा है :-

(क) व्यक्ति किसी सामाजिक संरचनात्मक का चयन स्वयं करत है। अत: कोई भी सामाजिक व्यवस्था समझौता के क्रम में होती है।

(ख) व्यक्ति संस्कृति की सृष्टि के रूप में काम करता है। वह संस्कृति के साथ अनुपालन स्थापित करने का हर संभव प्रयास करता है।

(ग) संस्कृति के वाहक के रूप में वयक्ति का महत्व अधिक देखा जाता है। वह अपनी संस्कृति के मूल्यों, विश्वासों, परम्पराओं, मानदण्डों आदि को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पंहुंचाने का कार्य करता है।

(घ) संस्कृति के परिरक्षक के रूप में वह अपनी संस्कृति की रक्षा करता है। प्रत्येक संस्कृति के अपने मूल्य, मानदण्ड, विश्वास आदि होते हैं। उस संस्कृति के सदस्य इन सब की रक्षा करते

हैं। यदि इनकी रक्षा नहीं की जाए तो संस्कृति का अन्त हो जाएगा। भारत में अनेक बाहरी आक्रमण हुए लेकिन हमने अपनी संस्कृति को बचाए रखा।

14.8 संस्कृति का व्यक्तित्व पर प्रभाव

संस्कृति की छाप व्यक्तित्व के शीलगुणों के विकास पर सीधी पड़ती है। संस्कृति विशेष पालन-पोषण प्रक्रिया एवं अन्य समान प्रक्रियाओं द्वारा व्यक्तित्व के शीलगुणों को विकसित करती है तथा उसे खास सांचे में ढालती भी है। व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभाव को दिखलाने के लिये वैज्ञानिकों ने जितने भी अध्ययन किये हैं, उन्हें मूलत: दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :-

संस्कृति तथा व्यक्तित्व से संबंधित कुछ अध्ययन

1- **संस्कृति तथा व्यक्तित्व से संबंधित कुछ पुरातन अध्ययन** - व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभावों को दिखलाने के लिये कुछ अध्ययन जनजातियों एवं असभ्य समाज के प्रजातियों पर मूलत: सांस्कृतिक मानवशास्त्रियों द्वारा किया गया है। ऐसे मानवशास्त्रियों में दो का नाम प्रसिद्ध है - रूथ बेनेडिक्ट तथा मारगैरेट मीड। रूथ बेनेडिक्ट, 1934 ने अपनी पुस्तक पैटनर्स ऑफ कल्चर में निम्नांकित तीन पुरातन समाज के सदस्यों के व्यक्तित्व पर उनकी संस्कृति के पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन की चर्चा की है।

2- **संस्कृति तथा व्यक्तित्व के कुछ आधुनिक अध्ययन** - कुछ समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों ने संस्कृति के जनजातियों पर प्रभाव का अध्ययन न करके आम व्यक्तियों पर अध्ययन किया है और अपने-अपने अध्ययनों के आधार पर यह दिखलाया है कि संस्कृति का प्रभाव व्यक्तित्व के विकास पर काफी पड़ता है। उदाहरणार्थ - एडमस व टूकर, 1972 ने अपने अध्ययन में पाया कि जिस संस्कृति में बच्चों का पालन-पोषण माता द्वारा नहीं होता है उस संस्कृति के बच्चों में सांवेगिक अस्थिरता अधिक पायी जाती है। इतना ही नहीं, जब ऐसे बच्चों को अपने पिता का प्यार भी नहीं मिल पाता है तो उनका मानसिक स्वास्थ्य तेजी से गिरता जाता है तथा उसमें अवांछनीय व्यक्तित्व शीलगुणों का विकास तेजी से होता है। एन्थोनी,1984 के अध्ययन के अनुसार जिस संस्कृति में पारिवारिक कलह एवं झगड़े होते रहते हैं उनके बच्चों की बुद्धि, सृजनात्मक क्षमता तथा संज्ञानात्मक "शैली का विकास मंदित हो जाता है।

14.9 व्यक्तित्व का संस्कृति पर प्रभाव

जिस तरह से संस्कृति का प्रभाव व्यक्तित्व निर्माण पर पड़ता है उसी प्रकार व्यक्तित्व का भी प्रभाव संस्कृति के विकास पर पड़ता है। व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभावों को दिखलाने के लिये जितने अध्ययन किये गये हैं तथा जितने साक्ष्य प्रस्तुत किये गये हैं उतना तो संस्कृति पर व्यक्तित्व के पड़ने वाले प्रभाव को दिखलाने के लिये नहीं किया गया है फिर भी समाज मनोवैज्ञानिकों ने कुछ साक्ष्य प्रस्तुत कर यह दिखलाया है कि संस्कृति भी व्यक्तित्व द्वारा प्रभावित होती है। क्रेच, क्रचफिल्ड तथा वैलेची, 1962 के अनुसार व्यक्ति निम्नांकित चार तरह की भूमिकाओं द्वारा अपने समाज की संस्कृति को प्रभावित करता है -

1- व्यक्ति संस्कृति की एक विशेष सृष्टि जीव के रूप में कार्य करता है। इस तरह की भूमिका में संस्कृति के विभिन्न भौतिक तत्व तथा अभौतिक तत्वों के साथ वह अनुपालन दिखलाया है और प्रत्येक परिस्थिति में उपयुक्त ढंग से व्यवहार करने को प्रेरित रहता है।

2- व्यक्ति संस्कृति के वाहक के रूप में कार्य कर संस्कृति के तत्व को प्रभावित करता है। वाहक के रूप में वह एक सक्रिय एवं धनात्मक भूमिका निभाता है तथा सांस्कृतिक तौर-तरीकों, मूल्यों, मानकों तथा उपयोगिताओं का वर्णन दूसरों के सामने करके एक पीढ़ी से उसे दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाता है।

3- संस्कृति के परिचालक के रूप में व्यक्ति समाज के सामान्य मनोवृत्तियों, मूल्यों, मानकों आदि का प्रयोग एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये करता है। इस भूमिका में पूर्ण सफलता मिलने पर व्यक्ति सांस्कृतिक तत्वों की महत्ता को अधिक प्रभावशाली बना पाता है।

4- संस्कृति के सृष्टिकर्ता के रूप में व्यक्ति संस्कृति में आवश्यक परिवर्तन लाता है ताकि इसमें से अमानवीय तत्वों को निकालकर बाहर फेंक देता है। इससे संस्कृति की उज्जवलता बढ़ जाती है। भारतीय संस्कृति में राजा राममोहन राय ने भारतीय संस्कृति से सतीप्रथा तथा महात्मा गांधी ने भारतीय संस्कृति से छुआछूत जैसी कुप्रथाओं को भारतीय संस्कृति से हटाकर भारतीय संस्कृति को ओर उज्जवल बनाया है।

14.10 सारांश

सारांश में यह कहा जा सकता है की संस्कृतितथा व्यक्तित्व के बीच दोहरा संबंधहोता है। संस्कृति व्यक्तितव विकास को प्रभावित करती है और स्वयं महान व्यक्तियों से प्रभावित होती है। जब संस्कृति के तत्व महान व्यक्तियों से प्रभावित होते हैं तो उसमें महत्वपूर्ण सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन भी आते हैं।

14.11 शब्दावली

- **व्यक्तित्व -** व्यक्तित्व में विभिन्न शीलगुणों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन होता है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार किसी भी वातावरण में अपने ढंग का अर्थात अपूर्व होता है।

14.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- शर्मा, के. एल. (2011) सामाजिक स्तरीकरण, रावत पब्लिकेशन्सः जयपुर |
- सिंह, डी. के., पालीवाल, एस एवं मिश्र, आर. (2010) मानव समाजः संगठन एवम् विघटन के मूल तत्वः न्यू रायल बुक कम्पनीः लखनऊ |
- सिंह, ए. के. (2009) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास: नई दिल्ली |
- दोषी, एस. एल. एवं जैन, पी.सी. (2005) भारतीय समाज, नेशनल पब्लिसिंग हाउसः जयपुर |
- मिश्र, पी.डी. (2003) व्यक्ति और समाज, न्यू रायल बुक कम्पनी: लखनऊ |
- Wikipedia on Personality.

इकाई - 15

राष्ट्रीय चरित्र

National Character

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 राष्ट्र क्या है ?
15.4 चरित्र क्या है ?
15.5 राष्ट्रीय चरित्र : संप्रत्यय
15.6 भारतीय राष्ट्रीय चरित्र की संकल्पना
15.7 भारतीय राष्ट्रीय चरित्र के निर्धारक
15.8 राष्ट्रीय चरित्र के सिद्धांत
15.9 सारांश
15.10 शब्दावली
15.11 अभ्यास प्रश्न
15.12 अतिरिक्त संदर्भ ग्रंथ सूची

15.1 प्रस्तावना (Introduction):

राष्ट्रीय चरित्र (National Character) की अवधारणा (Concept)को नवीन माना जाता है पर वास्तविकता में यह नवीन नहीं है ,क्योंकि प्राचीन साहित्य विभिन्न देशों के राष्ट्रीय चरित्र का, वहाँ के लोगो के सामूहिक गुणों और दोषों का वर्णन मिलता है | सबसे पहले हमें यूनानी लेखकों के उनके नगर राज्यों के राष्ट्रीय चरित्रों का वर्णन मिलता है | उदाहरण के लिए ,एथेंन्स निवासियों का राष्ट्रीय चरित्र स्पार्टा के निवासियों से भिन्न प्रकार का था | स्पार्टा के लोगों को अधिक क्रियाशील और शक्तिशाली जब कि एथेन्स के को अधिक बातूनी समझा जाता था | डा० टोक्योविले ने लगभग एक शताब्दी पूर्व अमेंरिकी राष्ट्रीय चरित्र का अध्ययन किया था | राष्ट्रीय चरित्र के आधुनिक अध्ययनों में सीगाफ्राइड (A. Sigfried) की America Comes of Age (D. W. Brogan) की The American Character नामक पुस्तकें अपना विशेष महत्व रखते हैं | राष्ट्र यूरोप के हों या एशिया के या अफ्रीका के – उनके भिन्न भिन्न राष्ट्रीय गुण दोष होते हैं | साधारणतः अंग्रेजों को भावशून्य, फ्रांसीसियों को अस्थिर मति और जर्मनों को अनुशासित समझा जाता है | यदि हम अपने ही देश को लें तो बंगालियों को आमतौर पर कलाप्रेमी , राजपूतों को बहादुर और पंजाबियों को भौतिकवादी समझा जाता है | राष्ट्रीय चरित्र मूलतः दो शब्दों राष्ट्र (Nation) एवं चरित्र (Character) से मिल कर बना है | विभिन्न विद्वानों ने राष्ट्रीय चरित्र के स्थान पर रूपात्मक व्यक्तित्व का भी प्रयोग किया है| जिस प्रकार से किसी सामान्य व्यक्ति का एक चरित्र होता है ठीक उसी प्रकार से एक राष्ट्र का

अपना एक विशेष चरित्र होता है | राष्ट्र से अभिप्राय विभिन्न प्रजातियों के व्यक्तियों के ऐसे समूह से होता है जिसका अपना एक स्वतंत्र भूभाग होता है तथा जिसके सदस्यों में एक सामान विचार , भाषा एवं एक सामान्य उद्देश्य होता है | चरित्र से तात्पर्य एक ऐसे व्यवहार संहिता से होता है जिसके सन्दर्भ में व्यक्ति या उसके व्यवहारों का मूल्यांकन किया जाता है | यदि साधारण शब्दों में कहा जाय तो राष्ट्रीय चरित्र से अभिप्राय विशिष्ट व्यवहार प्रतिरूपों , मनोवृत्तियों , विश्वासों, मूल्यों , मानकों आदि से होता है जो एक राष्ट्र के अधिकांश व्यक्तियों में पाया जाता है |

15.2 उद्देश्य:

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- राष्ट्रीय चरित्र का अर्थ बता सकेंगे एवं परिभाषित कर सकेंगे।
- राष्ट्र की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे |
- चरित्र की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे |
- राष्ट्रीय चरित्र के निर्धारकों के बारे में बता सकेंगे।
- राष्ट्रीय चरित्र के सिद्धांतों को स्पष्ट कर सकेंगे।

15.3 राष्ट्र क्या है ? (What is Nation?)

किसी भूभाग को कब राष्ट्र की संज्ञा से अभिहित करते है इसके कई मापदंड होते हैं | इन मापदंडों को मूलतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है |

अ) वस्तुनिष्ठ मापदंड (Objective Criteria)

ब) आत्म निष्ठ मापदंड (Subjective Criteria)

वस्तुनिष्ठ मापदंड अंतर्गत भाषा(Language) , प्रजाति , भू- भाग आदि मुख्य हैं | आत्मनिष्ठ मापदंड का तात्पर्य है एकता का भाव, आतंरिक स्वतन्त्रता इत्यादि| उपर्युक्त दोनों प्रकार के मापदंड राष्ट्र के रचनात्मक तत्व (Constructive Agent) हैं | इसलिए राष्ट्र की अवधारणा भौतिक एकता का नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक एकता का बोध होता है | बारकर ने राष्ट्र को परिभाषित करते हुए कहा है " विभिन्न प्रजातियों के व्यक्तियों के समूह को राष्ट्र कहते हैं , जिसका अपना निश्चित भूभाग होता है , जो सामान्य विचार तथा भाव रखते हैं , जो समान भाषा का व्यवहार करते हैं तथा सामान्य उद्देश्य रखते हैं " Nation is a body of man inhabitating definite territory who normally are drawn from different rates but possess a common stock of thoughts and feelings acquired and transmitted during the course of a common history… who generally and as a rule use a common language vehicle of their thoughts and feeling ; and who also cherish a common will".

बारकर के द्वारा दी गयी उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक राष्ट्र में वस्तुगत (Objective) एवं आत्मगत (Subjective) दोनों ही मापदंड समाहित होते हैं |

15.4 चरित्र क्या है? (What is Character?)

प्रत्येक वस्तु या व्यक्ति में कुछ ऐसे गुण होते हैं जिसके आधार पर उसे पहचाना जा सकता है अर्थात चरित्र से तात्पर्य व्यक्ति या वस्तु के ऐसे गुणों से है जो उस व्यक्ति या वस्तु को अन्य व्यक्ति या वस्तु से अलग कर उसे एक विशेष पहचान प्रदान करती है जैसे पानी का गुण तरल होना था प्यास बुझाना है और आग का गुण जलाना है | अतः प्यास बुझाना तथा जलाना क्रमशः पानी तथा आग का चारित्र है | चैपलीन (Chapline, 1975) ने इसी अर्थ में चरित्र की परिभाषा देते हुए कहा है कि " चरित्र का तात्पर्य संगत तथा स्थानीय गुण से है , जिसके द्वारा किसी व्यक्ति वस्तु या घटना को पहचाना जा सकता है " "Character is consistent and enduring property or quality by means of which a person, object or event can be identified " चरित्र मुख्यतः एक नैतिक संप्रत्यय है | इसे अच्छा या बुरा कह कर व्यक्त किया जा सकता है |

अभ्यास प्रश्न

1. राष्ट्र (Nation) से आप क्या समझते हैं ?
2. चरित्र (Character) को परिभाषित कीजिये |
3. किसी भूभाग को कब राष्ट्र कहते हैं ? इसके कौन- कौन से मापदंड हैं विस्तार से बताएं |

15.5 राष्ट्रीय चरित्र : संप्रत्यय (National Character: Concept)

राष्ट्रीय चरित्र का तात्पर्य विशिष्ट व्यवहार प्रतिरूपों मनोवृत्तियों, मूल्यों आदि से है , जो एक राष्ट्र में पाए जाते हैं |

(National characteristic is characteristic behavior patterns, attitudes, and values etc. that are found in a Nation.)

राष्ट्रीय चरित्र के सन्दर्भ में अनेकानेक विद्वानों ने शोध किये हैं उनमें से कुछ प्रमुख विद्वानों के विचारों को विद्यार्थियों के लिए दिया जा रहा है जिससे राष्ट्रीय चरित्र के संदर्भ में उनकी अवधारणा बन सके |

मोंटेस्क्यू (Montesque) के मतानुसार एक राष्ट्र की विशेषताएं ही उस राष्ट्र के चरित्र की परिचायक होती है | इन विशेषताओं अथवा राष्ट्रीय चरित्र पर देश की जलवायु, संस्कृति , शासनतंत्र और क़ानून के स्वरुप , रीति-रिवाजों , धर्म आदि का प्रभाव पड़ता है | इन विभिन्न प्रभावों के फलस्वरूप ही हर राष्ट्र के लोगों में विशेष प्रकार की भावनाएं , इच्छायें और क्रियाएँ पायी जाती हैं |

मैग्डुगल (Mac-Dougal) ने Group Mind नामक अपनी पुस्तक में पर राष्ट्रीय चरित्र पर वृहद स्तर पर विचार किया | मैग्डुगल का कहना है कि "प्रत्येक स्थानीय समूह की अपनी प्रतिभा होती है एवं उसी प्रतिभा के अनुरूप ही उसका राष्ट्रीय चरित्र होता है | भौगोलिक विशेषताएं, प्रजातीय शुद्धता , यातायात की स्वतंत्रता राष्ट्रीय चरित्र को प्रभावित करती हैं |

राष्ट्रीय चरित्र की अवधारणा में ऐसी शब्दावली का प्रयोग प्रायः किया जाता है जैसे इंग्लैंड निवासियों के लिए जोन बुल (John Bull) अमेरिकन लोगों को चाचा सैम (Uncle Sam) एवं

रूसी लोगों के चरित्र की तुलना "भालू" (Bear) से की जाती हैं | इन्ही एक सी सामूहिक विशेषताओं का नाम ही राष्ट्रीय चरित्र है |

मूलतः राष्ट्रीय चरित्र का अध्ययन दो स्तरों के आधार पर किया जा सकता है |

1. किसी राष्ट्र की चारित्रिक सामान्य विशेषताओं का निर्णय करना |
2. इन चारित्रिक सामान्य विशेषताओं के किसी राष्ट्र में उत्पन्न होने के कारण ज्ञात करना |

गोरार ने यह स्पष्ट किया है कि राष्ट्रीय चरित्र का प्रमुख आधार सामाज की सामान्य सम्प्रेषणाएं मानी जाती हैं अर्थात यदि हमें किसी राष्ट्र के राष्ट्रीय चरित्र का अवलोकन करना हो तो सर्वप्रथम हम उस राष्ट्र की जनता को उन सम्प्रेषण की खोज करने का प्रयास करें जो उस समाज के अधिकाधिक लोगों को सर्वदा प्रेरित करती रहती हों |

राष्ट्रीय चरित्र के स्पष्टीकरण के लिए हमारा दूसरा लक्ष्य यह होना चाहिए जो स्प्राट की परिभाषा से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है अर्थात हमें यह अवलोकन करना है कि किसी राष्ट्र की सामान्य सम्प्रेषण के स्रोत उस समाज में क्या-क्या हैं | दूसरे शब्दों में हमें यह खोजना होगा कि उस समाज की संस्थाए, परम्पराएँ , रूढियां, पूर्वाग्रह , विचारधाराएँ एवं सांस्कृतिक रचनाएँ आदि कौन- कौन से ऐसी वस्तुएँ हैं जो उन संप्रेषण को जन्म देती हैं और समय-समय पर उन्हें और अधिक प्रोत्साहित करती रहती हैं |

अभ्यास प्रश्न

1. राष्ट्रीय चरित्र से आप क्या समझते हैं ? अपने शब्दों में स्पष्ट करें |
2. मोंटेस्क्यू (Montesque) के मतानुसार एक राष्ट्र की कौन-कौन सी विशेषताएं होती हैं ?
3. मूलतः राष्ट्रीय चरित्र का अध्ययन किस आधार पर किया जा सकता है ?
4. किसी राष्ट्र के चारित्रिक सामान्य विशेषताओं का निर्णय कैसे किया जाता है ?

15.6 भारतीय राष्ट्रीय चरित्र की संकल्पना (The concept of Indian National Character)

प्रत्येक राष्ट्र की तरह भारत का भी एक विशिष्ट चरित्र है , भिन्न भिन्न राष्ट्रों के चरित्रों में भिन्नता के कई आधार है , जिनमें जननिक कारक (Genetic Factor) तथा धार्मिक कारक (Religious Factors) मुख्य है | इन आधारों में भिन्नता होने के कारण राष्ट्रीय चरित्र में भिन्नता पायी जाती है | अन्य राष्ट्रों के तरह भारत के राष्ट्रीय चरित्र पर भी उपर्युक्त कारकों का गहरा प्रभाव पड़ा है , लेकिन इन कारकों में सांस्कृतिक भिन्नता होने के कारण भारतीय राष्ट्रीय चरित्र में कुछ ऐसी विभिन्नताएं उत्पन्न हो गयीं हैं , जिनकी आलोक में इसी दूसरे राष्ट्रों के राष्ट्रीय चरित्र से अलग किया जा सकता है | भारतीय राष्ट्रीय चरित्र की प्रमुख विशेषतायें निम्नांकित हैं -

1. अहिंसा एवं विश्व बन्धुत्व (Non- violence and universal brotherhood)
2. सत्यवादिता (Truthfulness)
3. आध्यात्मिकता (Spiritualism)
4. तटस्थता (Neutrality)
5. अभियोजनशीलता (Adjustability)

6. परोपकारिता (Altruism)
7. भाग्यवादिता (Fatalism)
8. सहनशीलता (Tolerance)

अभ्यास प्रश्न

1. राष्ट्रीय चरित्र के निर्धारण में कौन- कौन से कारक महत्वपूर्ण हैं |
2. भारतीय राष्ट्रीय चरित्र की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करें |
3. भारतीय राष्ट्रीय चरित्र में भाग्यवादिता का स्थान महत्वपूर्ण है | इस कथन की व्याख्या करें |

15.7 राष्ट्रीय चरित्र के निर्धारक (Determinants of National Character)

विभिन्न देशों का राष्ट्रीय चरित्र अलग- अलग होता है अतः इस सन्दर्भ में यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता है कि राष्ट्रीय चरित्र में विभिन्नता के निर्धारक क्या हैं? यदि दूसरे शब्दों में कहा जाय तो वह कौन- कौन से कारक हैं जिनसे किसी देश के राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण प्रभावित होता है | समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से जो तथ्य प्राप्त हुए हैं , उनके आधार पर निम्नांकित कारकों को राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में अधिक महत्वपूर्ण बताया गया है |

1. आर्थिक कारक (Economic Factors)
2. धार्मिक कारक (Religious Factor)
3. प्रजातीय कारक (Racial Factors)
4. राजनैतिक कारक (Political Factors)
5. भौगोलिक कारक (Geographical Factors)

1.आर्थिक कारक (Economic Factors): राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में आर्थिक कारकों का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है | यदि देश सुखी और संपन्न है तो ऐसे देश के राष्ट्रीय चरित्र में आत्मनिर्भरता ,आत्मविश्वास इत्यादि अधिक दिखाते हैं | आर्थिक सम्पन्नता (Financial Prosperity) के कारण अमेरिका एवं जापानियों का राष्ट्रीय चरित्र बंगलादेशी एवं पाकिस्तानियों के अपेक्षा भिन्न होता है | जनसंख्या की सघनता के साथ- साथ यौन , वर्ग ,जाति , समुदाय, आयु आदि के हिसाब से इसके विवरण का प्रभेदक प्रभाव राष्ट्रीय चरित्र तथा जीवन पर पड़ता है |

2. धार्मिक कारक (Religious Factor): राष्ट्रीय चरित्र के विकास पर धर्म तथा धार्मिक संस्थानों का भी गहरा प्रभाव पड़ता है | राष्ट्रीय जीवन पर धर्म या धार्मिक विश्वासों के प्रभावों के सम्बन्ध में कीड, बकले तथा मैकडूगल के विचारों के बीच सहमति नहीं है वे सभी इस बात को स्वीकार करते हैं कि राष्ट्रीय जीवन तथा चरित्र के विकास पर धर्म का प्रभाव काफी पड़ता है | लेकिन यह प्रभाव किस रूप में तथा किस मात्रा में पड़ता है इस सम्बन्ध में उनके बीच मतभेद रहा है |

3. प्रजातीय कारक (Racial Factors): इस सन्दर्भ में (कैम्प बेल ,1958) (मैक डूगल ,1910) के अनुसार विभिन्न प्रजाति के लोगों में भिन्न- भिन्न तरह के मानसिक विभिन्नताएं होती हैं जिनसे राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण होता है | राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में प्रजाति की आवश्यकता होती है |

इस अर्थ में यह तत्व भौतिक , जिस पर व्यक्ति द्वारा राष्ट्रीय चरित्र आरोपित किया जाता है | इस सन्दर्भ में यह ध्यान रखना चाहिए कि राष्ट्र प्रजाति नहीं बल्कि प्रजातियों का मिश्रण है |

4. राजनैतिक कारक (Political Factors): राजनैतिक कारक का तात्पर्य क़ानून तथा सरकार से है | प्रत्येक राष्ट्र के कुछ निश्चित नियम तथा निश्चित प्रशाशन प्रणाली होती है | प्रत्येक राष्ट्र की एक सरकार होती है , जिसका एक खास संविधान होता है | इसी संविधान के अनुसार सरकार राज्य चलाती है | संविधान का स्वरुप प्रजातांत्रिक, सत्ताधारी या ताना शाही भी हो सकता है | यदि किसी देश के संविधान में तानाशाही प्रथा को श्रेष्ठता दी जाती है तो वंहा राष्ट्रीय चरित्र एक अलग प्रकार का होता है | इसमें संकीर्णता दब्बूपन इत्यादि की प्रधानता होती है | लेकीन दूसरे तरफ यदि सरकार में प्रजनतंत्रात्मक प्रथा की प्रधानता होती है तो वहाँ की सरकार जनता की आवाज़ के अनुकूल कार्य करती है |

5. भौगोलिक कारक (Geographical Factors): किसी राष्ट्र के चरित्र के निर्माण का एक आवश्यक तत्व भौगोलिक कारक तथा वातावरण है, इसके अंतर्गत भूभाग तथा जलवायु का आकलन किया जाता है | राष्ट्रीय चरित्र का यह भी एक भौतिक आधार है | भौतिक भूभाग के आधार पर ही राष्ट्र के सदस्यों के भौतिक शरीर गतिशील होते हैं तथा जीवित रहते है | भूभाग की आकृति आकार , आतंरिक संरचना , जलवायु इत्यादि कारकों का प्रभाव किसी राष्ट्र के चरित्र विकास पर नियमित रूप में नहीं बल्कि विकास की संभावनाओं के रूप में पड़ता है |

अभ्यास प्रश्न

1. राष्ट्रीय चरित्र के निर्धारक तत्व (Deciding Factors)कौन- कौन से हैं ?
2. राष्ट्रीय चरित्र के निर्धारक तत्व में भौगोलिक कारकों का क्या महत्व है ?
3. राष्ट्रीय चरित्र के निर्धारक कारकों में राजनैतिक कारकों का क्या महत्व हैं ?
4. राष्ट्रीय चरित्र के निर्धारक तत्व में प्रजातीय कारकों का क्या महत्व है ?
5. राष्ट्रीय चरित्र के निर्धारक कारकों में धार्मिक कारकों का क्या महत्व हैं ?
6. राष्ट्रीय चरित्र के निर्धारक तत्व में आर्थिक कारकों का क्या महत्व है ?

15.8 राष्ट्रीय चरित्र के सिद्धांत (Theories of National Character)

राष्ट्रीय चरित्र की व्याख्या हेतु विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न सिद्धांत दिए हैं , जिनमें निम्न सिद्धांत प्रमुख हैं |

1. मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत (Psychoanalytic Theory)
2. अधिगम सिद्धांत (Learning theory)
3. क्षेत्र सिद्धांत (Field Theory)
4. प्रेरणात्मक सिद्धांत (Motivational Theory)

1. मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत (Psychoanalytic Theory) : राष्ट्रीय चरित्र का यह सिद्धांत फ्रायड के मनोविश्लेषण पर आधारित है | मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत के अनुसार मानव तथा शील गुण का विकास मनोलैंगिक विकास की अवस्थाओं द्वारा नियंत्रित होता है | असामान्य व्यवहारों और विशेष रूप से उन्माद लक्षणों के विकास में अचेतन तथा यौन भूमिका का संकेत फ्रायड को क्रमशः जैने (Janet , 1869-1947) तथा शारको (Charcot,1825-1883) से मिला | अतः

1930 तक व्यवहारों की उत्पत्ति तथा व्यक्तित्व के विकास में अचेतन तथा यौन की भूमिका मानी जाती रही |

अध्ययनों के आधार पर ऐसा माना गया कि चरित्र तथा व्यक्तित्व के निर्माण में अचेतन प्रेरणाओं की भूमिका होती है , (1930) के बाद व्यक्तित्व के निर्माण में चेतन प्रेरणाओं तथा सामाजिक कारकों के महत्व पर बल दिया गया | कार्डीनर (1939-1945) ने मौलिक व्यक्तित्व संरचना के निर्माण में बच्चों के पालन पोषण के महत्व पर बल दिया | मीड ने मानव स्वभाव के विकास में संस्कृति के महत्वा की व्याख्या करते हुए मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत की भावनाओं पर बल दिया | इसकी चर्चा करते हुए रोसेनबर्ग तथा टर्नर ने कहा कि संस्कृति तथा व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए मनोविश्लेषण केंद्र बन गया |

गोरेर तथा रिकमैन मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत के आलोक में रूस के राष्ट्रीय चरित्र के अध्ययन का प्रयास किया | रूस में आरम्भ में बच्चों पर कडा नियंत्रण रखा जाता है और बादमें कुछ समय के लिए छूट दी जाती है | फलतः रूस के राष्ट्रीय जीवन या चरित्र में अनुशासन तथा सत्तावाद की विशेषता पायी जाती है | कुछ मनोवैज्ञानिक ने भारतीय राष्ट्रीय चरित्र की व्याख्या भी मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत के आलोक में किया है | भारत में राष्ट्रीय भाग्यवादिता , संवेगात्मक असुरक्षा , आध्यात्मिकता, सहनशीलता आदि गुणों की प्रधानता होती है | चटर्जी एवं सेनगुप्ता ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह बताया है कि धर्म प्रधान परिस्थितियों में भारतीय बच्चों का पालन पोषण होने के कारण उनमें आध्यात्मिकता तथा शीलगुण अधिक पाया जाता है |

मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांतों की आलोचना कई आधारों पर की गयी है और यह कहा गया है कि ये सिद्धांत राष्ट्रीय चरित्र की समुचित व्याख्या करने में सफल नहीं है |

1. यह सिद्धांत सिर्फ जैविक कारकों को राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण का आधार मानता है, वास्तविकता यह है कि चरित्र निर्माण में जैविक कारकों के साथ- साथ सामजिक कारकों की भी भूमिका होती है
2. सर्वेक्षण शोध विधियों द्वारा किये गए अध्ययनों से भी मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत की अभिधारणाओं का समर्थन नहीं होता है | अतः राष्ट्रीय चरित्र की व्याख्या मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत के आधार सिर्फ आंशिक रूप से ही संभव है |
3. बच्चों के लालन- पालन के प्रभावों से सम्बंधित प्रस्तावों के पक्ष में सभी संस्कृतियों से ठोस प्रमाण नहीं मिलते हैं |

2. अधिगम सिद्धांत (Learning theory): अधिगम सिद्धांत का विकास व्यवहार वादियों के प्रयासों से हुआ | इस सिद्धांत की सामान्य अभिधारना उत्तेज़ना , प्रतिक्रया सम्बन्ध है | इस सिद्धांत के आदत निर्माण को चरित्र निर्माण का आधार माना जाता है | अतः राष्ट्रीय चरित्र के अध्ययन के लिए उस रात्र के अंतर्गत आदत निर्माण का विश्लेषण आवश्यक है | इस सिद्धांत के अनुसार सामाजीकर के साधन जैसे विद्यालय , शिक्षक , माता-पिता , पास-पड़ोस से व्यक्ति को सीखने के जो अवसर प्राप्त होते हैं उनकी भूमिका राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में सबसे अधिक पायी जाती है | अधिगम सिद्धांत के अनुसार राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में अनुबंधन की भी भूमिका प्रधान होती है| कार्डीनर ने एक अध्ययन में बताया है कि यदि संस्कृति ऐसी है, जिसमें बच्चों के व्यवहारों को दण्डित कर उसे सुधारने में विश्वास किया जाता है , तो उनके राष्ट्रीय चरित्र में आक्रामकता, उद्दंडता ,

उत्तरदायित्वहीनता , इत्यादी के शील – गुण अधिक बढ़ जाते हैं | इसकी विपरीत जब संस्कृति ऐसी होती है , जिनमें बच्चों के व्यवहारों को पुरस्कृत करके तथा उनके प्रति स्नेह एवं प्रेम भाव दिखला कर उनके व्यवहारों को उन्नत बनाने की कोशिश की जाती है तो उनके राष्ट्रीय चरित्र में आत्मविश्वास, आत्मसम्मान , उदारता जैसे शील – गुणों का जन्म होता है | हल के व्यवहार से सम्बंधित विचारों का समर्थन किया | उनके अनुसार चरित्र के निर्माण में आदत निर्माण तथा आदत शक्ति की भूमिका महत्वपूर्ण होती है | अधिगम सिद्धांत के अनुसार राष्ट्रीय चरित्र के विश्लेषण के लिए प्रेरणा का अध्ययन आवश्यक है | किसी राष्ट्र के चरित्र तथा जीवन को समजने के लिए वंहा के लोगों के आदतों के साथ प्रेरणाओं को समझना भी आवश्यक है | कई अध्ययनों से इस विचार की पुष्टि होती है |

राष्ट्रीय चरित्र के स्वरुप एवं विश्वास की व्याख्या करने में भी यह सिद्धांत सफल नहीं है | कई आधारों पर इस सिद्धांत की आलोचना की गयी है |

1. यह सिद्धांत राष्ट्रीय चरित्र की व्याख्या उत्तेज़ना प्रतिक्रिया सम्बन्ध के आधार पर करता है और प्राणी के महत्वा को गौड़ कर देता है |
2. यह सिद्धांत राष्ट्रीय चरित्र के अध्ययन में केवल आदत तथा प्रेरणा के महत्व पर बल देता है और जैविक कारकों की उपेक्षा करता है |
3. यह सिद्धांत राष्ट्रीय चरित्र के आधार तत्वों की पूरी व्याख्या करने में वस्तुतः सफल नहीं है | इसे राष्ट्रीय चरित्र का सिर्फ आंशिक रूप से सफल सिद्धान्तनहीं मना जा सकता है |

3. क्षेत्र सिद्धांत (Field Theory): राष्ट्रीय चरित्र की व्याख्या के सन्दर्भ में क्षेत्र में अति-महत्वपूर्ण है | यह दृष्टीकोण वास्तव में कर्ट लेविन (Kurt Lewin, 1948) के क्षेत्र में सिद्धांत पर आधारित है, लेकिन उन्होंने व्यक्तित्व तथा चरित्र के अध्ययन के लिए प्रपंच – दृष्टीकोण (Phenomenological approach) पर अधिक बल दिया है | वे गेस्टालवादी विचारों से अधिक प्रभावित थे | इसलिए उन्होंने पूर्ववादे द्रिस्तीकों पर अधिक जोर दिया है | कर्ट लेवें वातावरण को दो भागों में विभाजित किया है |

1. भौतिक वातावरण
2. मनोवैज्ञानिक वातावरण

भौतिक वातावरण से तात्पर्य व्यक्ति के इर्द- गिर्द के वातावरण से होता है तथा मनोवैज्ञानिक वातावरण से तात्पर्य भौतिक वातावरण में से व्यक्ति में उत्पन्न प्रत्यक्षण , भाव, संवेग इत्यादि से होता है | कर्ट लेविन का मत है कि दो व्यक्तियों के भौतिक वातावरण में समानता होने पर भी उनके राष्ट्रीय चरित्र में अंतर होता है | भारत एवं पाकिस्तान राष्ट्रीय चरित्र में एक मूल अंतर यह है कि भारत के राष्ट्रीय चरित्र में उदारता प्रबल है जबकि पाकिस्तान के राष्ट्रीय चरित्र में कठोरता अधिक प्रबल है | शायद इसका कारण यह है कि दोनों देश के औसत लोगों के मनोवैज्ञानिक वातावरण में विभिन्नता है हालांकि इन देशों का भौतिक वातावरण लग्भग एक समान है |

लेविन के क्षेत्र सिद्धांत से भी राष्ट्रीय चरित्र की व्याख्या पूर्ण रूप से संभव नहीं है | कई आधारों पर इस सिद्धांत की आलोचना की गई तथा इसकी त्रुटियों का उल्लेख किया गया है –

1. यह सिद्धांत राष्ट्रीय चरित्र के सभी पक्षों की व्याख्या नहीं कर पाता है | राष्ट्रीय चरित्र के कई पक्ष होते हैं , जिनमें भौतिक, नैतिक सामाजिक , आर्थिक, आध्यात्मिक इत्यादि पक्ष प्रमुख हैं | लेविन्ने इन सिद्धांतों का उल्लेख अपने सिद्धांत में नहींकिया है |
2. यह सिद्धांत अतीत की उपेक्षा करता है तथा वर्तमान एवं भविष्य पर अधिक जोर देता है, लेकिन वास्तविकता यह है कि व्यक्तित्व या चरित्र को समझने के लिए अतीत को समझना भी आवश्यक है | हिरोशिमा की तबाही के पूर्व तथा बाद में जापानी राष्ट्रीय चरित्र में स्पष्ट अंतर की व्याख्या वर्तमान एवं भविष्य के आधार पर नहीं बल्कि अतीत के आधार पर ही संभव है | आधुनिक भारत के राष्ट्रीय जीवन तथा चरित्र में अखण्डता के भाव के प्रधान होने की व्याख्या सिर्फ अतीत की दर्दनाक घटनाओं के आधार पर ही संभव हो सकती है |
3. इस सिद्धांत का एक दोष यह भी है कि यह भौतिक वातावरण के महत्व की उपेक्षा करता है| वास्तविकता यह है कि किसी राष्ट्र के चरित्र निर्माण में वानहान के भौतिक वातावरण की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है | बारकर (1948) के अनुसार राष्ट्रीय चरित्र के अध्ययन के लिए भौतिक कारकों के उपेक्षा की जा सकती है | अतः इस सिद्धांत के आलोक में राष्ट्रीय चरित्र का अध्ययन सिर्फ आंशिक रूप से ही संभव है |

4. प्रेरणात्मक सिद्धांत (Motivational Theory)

कुछ विद्वानों ने प्रेरणात्मक आधार पर राष्ट्रीय चरित्र के अध्ययन का प्रयास किया है | इस सन्दर्भ में ऐसे अध्ययनों का आभाव है जो राष्ट्रीय चरित्र से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध रखते हों |अधिकांश अध्ययन व्यक्तित्व से ही सम्बंधित है | अतः ऐसी अध्ययनों से राष्ट्रीय चरित्र के अध्ययनों में अप्रत्यक्ष रूप से सहायता मिलती है | मैक क्लिलैंड(Mcclelland, 1961) ने व्यक्तित्व विकास में उपलब्धि प्रेरक के महत्व पर बल दिया है | उन्होंने कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति में यह प्रेरक सामान मात्रा में नहीं होती है | उन्होंने इस प्रेरक की प्रबलता को मापने के लिए एक परीक्षण का निर्माण किया| व्यक्ति के आर्थिक पक्ष तथा उपलब्धि आवश्यकता के बीच गहरा सम्बन्ध बताया गया है |
कैनट्रील ने प्रेरणात्मक पक्ष के साथ- साथ संज्ञानात्मक पक्ष पर भी बल दिया | उन्होंने कहा कि बच्चे अपने प्रारंभिक जीवन में कुछ ऐसे मूल्य को सीख लेते हैं, जो व्यक्तित्व के आवश्यक अंग बन जाते हैं | ऐसे मूल्यों पर सांस्कृतिक भिन्नताओं का गहरा प्रभाव पड़ता है | इसके कारण भिन्न भिन्न संस्कृतियों का चरित्र भिन्न- भिन्न हुआ करता है |
प्रेरणात्मक सिद्धांत के आधार पर राष्ट्रीय चरित्र के व्याख्या काफी हद तक हो जाती है | यह सिद्धांत राष्ट्रीय चरित्र के प्रेरणात्मक पक्ष की व्याख्या करने में सफल है | यह सिद्धांत इसकी नैतिक पक्ष की भी व्याख्या करने में सफल है | इसके आलोक में भिन्न – भिन्न राष्ट्रों के चरित्र का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है | फिर भी कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसकी आलोचना की है |
अतः यह सिद्धांत पूरी तरह से सफल नहीं कहा जा सकता है |

अभ्यास प्रश्न

1. राष्ट्रीय चरित्र के मुख्य सिद्धांत कौन –कौन से हैं ?
2. राष्ट्रीय चरित्र के मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ?
3. राष्ट्रीय चरित्र के प्रेरणात्मक सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ?

4. राष्ट्रीय चरित्र के सन्दर्भ में क्षेत्र सिद्धांत की क्या महत्ता है ? अपने शब्दों में स्पष्ट करें |
5. राष्ट्रीय चरित्र के अधिगम सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट करें |

15.9 सारांश (Summary)

राष्ट्रीय चरित्र एक जटिल संप्रत्यय है जिसकी निम्न में राष्ट्र के विभिन्न संगठनों एवं समुदायोंके लोगों के विश्वासों , विचारों , मूल्यों एवं मानकों आदि का एक संयुक्त योगदान होता है | राष्ट्रीय चरित्र की एक विशेषता यह भी है कि यह परिवर्तनशील होता है | प्रत्येक राष्ट्र का राष्ट्रीय चरित्र अपने आप में भिन्न होता है | प्रत्येक राष्ट्र की तरह भारत का भी एक विशिष्ट चरित्र है , भिन्न भिन्न राष्ट्रों के चरित्रों में भिन्नता के कई आधार है , जिनमें जननिक कारक (Genetic Factor) तथा धार्मिक कारक (Religious Fact) मुख्य हैं | इन आधारों में भिन्नता होने के कारण राष्ट्रीय चरित्र में भिन्नता पायी जाती है |

समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से जो तथ्य प्राप्त हुए हैं , उनके आधार पर निम्नांकित कारकों को राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण में अधिक महत्वपूर्ण बताया गया है |

1. आर्थिक कारक (Economic Factors)
2. धार्मिक कारक (Religious Factor)
3. प्रजातीय कारक (Racial Factors)
4. राजनैतिक कारक (Political Factors)
5. भौगोलिक कारक (Geographical Factors)

राष्ट्रीय चरित्र की व्याख्या हेतु विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न सिद्धांत दिए हैं , जिनमें निम्न सिद्धांत प्रमुख हैं |

1. मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत (Psychoanalytic Theory)
2. अधिगम सिद्धांत (Learning theory)
3. क्षेत्र सिद्धांत (Field Theory)
4. प्रेरणात्मक सिद्धांत (Motivational Theory)

15.9 शब्दावली: (Glossary)

- **राष्ट्र :** " विभिन्न प्रजातियों के व्यक्तियों के समूह को राष्ट्र कहते है , जिसका अपना निश्चित भूभाग होता है , जो सामान्य विचार था भाव रखते हैं , जो समान भाषा का व्यवहार करते हैं तथा सामान्य उद्देश्य रखते हैं |
- **चरित्र :** चरित्र से तात्पर्य व्यक्ति या वस्तु के ऐसे गुणों से है जो उस व्यक्ति या वस्तु को अन्य व्यक्ति या वस्तु से अलग कर उसे एक विशेष पहचान प्रदान करती है |
- **राष्ट्रीय चरित्र :** राष्ट्रीय चरित्र का तात्पर्य विशिष्ट व्यवहार प्रतिरूपों मनोवृत्तियों, मूल्यों आदि से है , जो एक राष्ट्र में पाए जाते हैं |

15.10 निबंधात्मक प्रश्न:-

1. राष्ट्रीय चरित्र की परिभाषा दें तथा विएचना करें कि इसका निर्माण किस प्रकार होता है?
2. राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण करने वाले कारकों का वर्णन करे |
3. राष्ट्रीय चरित्र क्या है ? भारतीय राष्ट्रीय चरित्र की विशेषताओं की विवेचाना करें |
4. राष्ट्रीय चरित्र के किन्हीं दों सिद्धांतों का मूल्यांकन करें |
5. टिप्पणी लिखिए

    1. राष्ट्रीय चरित्र का क्षेत्र सिद्धांत

    2. राष्ट्रीय चरित्र का अधिगम सिद्धांत

15.11 अतिरिक्त संदर्भ ग्रंथ सूची(Suggested Readings)

- सिंह, अरूण कुमार, (2001) शिक्षा मनोविज्ञान, पटना, भारती भवन, पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- सिंह, अरूण कुमार, (2001) संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- सिंह, अरूण कुमार, (2001) उच्चतर मनोविज्ञान, पटना,भारती भवन, पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- सिंह, अरूण कुमार, (2001) समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा , वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- सुलेमान , मुहम्मद,(2004) उच्चतर समाज मनोविज्ञान , वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स एड डिस्ट्रीब्यूटर्स।

इकाई - 16

अर्थ और प्रकृति,नेतृत्व के प्रकार, नेतृत्व का उद्भव , नेतृत्व के गुण, सत्ताधारी और प्रजातान्त्रिक नेतृत्व में अंतर

Leadership : Meaning and Nature, Styles of Leadership, emergence of leadership, traits of leadership, Difference between authoritarian and democratic leader

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 परिभाषा तथा स्वरूप

16.4 नेतृत्व की आवश्यकता

16.5 नेतृत्व या नेता के प्रकार

(क) मार्टिन कौनवे का वर्गीकरण

(ख) बार्टलेट का वर्गीकरण

(ग) किम्बल यंग का वर्गीकरण

(घ) सारजेन्ट का वर्गीकरण

(ड) लिपीट का वर्गीकरण

16.6 सत्तावादी तथा प्रजातांत्रिक नेतृत्व में अन्तर

16.7 नेतृत्व का उद्भव या आविर्भाव

16.8 नेतृत्व के गुण

16.9 सारांश

16.10 कठिन शब्द

16.11 अभ्यास प्रश्न

16.12 संदर्भ ग्रंथ

16.1 प्रस्तावना

नेता और नेतृत्व आज के अत्यन्त लोकप्रिय शब्द हैं एवं राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सभी रंगभूमियों पर हम नेताओं और नेतृत्व के बारे में सुनते, पढ़ते और देखते रहते हैं | नेतृत्व का अस्तित्व आदिकाल से चला आ रहा है | यह एक सार्वभौमिक प्रघटना है | जब मनुष्य असभ्य था और जंगलों में रहता था तब भी नेतृत्व का अस्तिव था और मानव समाज जब सभ्यता के उच्चतम शिखर पर पहुंचने का दावा करने लगा है तब भी नेतृत्व विभिन्न रूपों में हमें दिखाई देता है लेकिन नेता और नेतृत्व का जो अर्थ सामान्य रूप में लिया जाता है, वह सामाजिक मनोविज्ञान और दृष्टि से उपयुक्त नहीं है | सामाजिक मनोविज्ञान में नेता और उनका विवेचन यहां आवश्यक है | समाज व्यवस्था को स्थायित्व के लिए अथवा सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में नेताओं की भूमिका सदैव बहुत महत्वपूर्ण रही है | समाज के विभिन्न क्षेत्रों में नेता उल्लेखनीय रूप में व्यवस्था और निर्देशन का भार वहन करते हैं | नेतृत्व के समाजशास्त्रीय धर्म और समाजशास्त्रियों तथा सामाजिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा नेतृत्व की परिभाषाओं पर आने से सामाजिक मनोविज्ञान की दृष्टि से समाज और नेतृत्व की पृष्ठभूमि के तौर पर कुछ लिखना उचित होगा । हम अपने दैनिक जीवन की सामाजिक पृष्ठभूमि के तौर पर कुछ लिखना उचित होगा । हम अपने दैनिक जीवन की सामाजिक घटनाओं में प्राय: जहां दो या दो से अधिक व्यक्ति मिलते हैं औश्र सामाजिक अन्तक्रिया में संलग्न होते है, वहीं हम सामान्यत: एक व्यक्ति नेतृत्व करता हुआ अवश्य देखेंगे । जब कभी और जहां कही भी मानव समूह की रचना होगी, वही हम किसी न किसी रूप में नेतृत्व करता हुआ एक व्यक्ति अवश्य मिलेगा । यह समूह ग्रामीण पुरूषों का हो अथवा नगरीय पुरूषों का स्त्रियों का हो अथवा पुरूषों का बालकों का हो अथवा वृद्धों का राजनीतिज्ञों का दल हो अथवा सामजसेवियों का, दानियों का समुदाय हो अथवा डाकुओं का गिरोह हो, आपको प्रत्येक मानव समूह में एक या दो व्यक्ति ऐसे देखने को अवश्य मिलेगे जो अपने समूह के सदस्यों का किसी न किसी प्रकार से मार्गदर्शन करते हुए पाए जाते हैं, एवं जिन्हें लोग अन्य सदस्यों की अपेक्षा अधिक सम्मान प्रदान करते हों एवं जिनका परामर्श समूह सदस्यों के लिए अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण एवं लाभदायक माना जाता हो, तथा जो समूह सदस्यों पर विशेष आधिपत्य रखते हो। इसी प्रकार के विशेष महत्वपूर्ण एवं आधिपत्य युक्त व्यक्ति ही समूह का नेतृत्व करते है, और इसी प्रकार के विशेष महत्वपूर्ण एवं आधिपत्य युक्त व्यक्ति ही समूह का नेतृत्व करते है, और समूह सदस्य उनकी इस प्रस्थिति को सहर्ष स्वीकार करते है | इस प्रकार सा ामान्यत: वह व्यक्ति जो समूह का मार्गदर्शन करता है वह नेता कहलाता है, और वे व्यक्ति जो उसका मार्गदशर्न स्वीकार करते हे वे उसके अनुयायी कहलाते है।समूह धीरे धीरे ज्योंही कुछ स्थायित्व ग्रहण करता है वैसे वैसे ही तुलनात्मक दृष्टि से नेता का नेतृत्व भी स्थायी होता चला जाता है, और नेता तथा अनुयायी के सामाजिक संबंध स्थापित होते चले जाते है | धीरे धीरे एक स्थिति ऐसी आ जाती है जबकि समूह के सफलतापूर्वक कार्य संचालन के लिए नेतृत्व आवश्यक हो जाता है।मानव एक सामाजिक प्राणी है | उसका सम्पूर्ण जीवन सामाजिक समूहों में ही व्यतीत होता है | जब वह समूहों का सदस्य बन जाता है तो उसे किसी न किसी नेता के नेतृत्व संबंधी प्रभाव को अवश्य स्वीकार करना पडता है | उदाहरणार्थ जब अखिल भारतीय कांग्रेस का सन **1920** से **1945** तक महात्मा गांधी नेतृत्व कर रहे थे तो सभी कांग्रेसियों को उनके नेतृत्व को स्वीकार करना पडता था, क्योंकि महात्मा गांधी ही उस समय इस संस्था द्वारा चलाए गए स्वतंत्रता संग्राम का संचालन एवं मार्गदर्शन कर रहे थे । वास्तव में किसी मानव समूह का भाग्य बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है

कि उस समूह का नेता कौन है और वह नेतृत्व की भूमिका किस प्रकार निभा रहा है | मानव व्यवहार को ठीक ठीक समझने के लिए हमें नेतृत्व को विशेष रूप से समझना अति आवश्यक है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे।

- नेतृत्व की परिभाषा तथा स्वरूप |
- नेतृत्व की आवश्यकता |
- नेतृत्व या नेता के प्रकार |
- सत्तावादी तथा प्रजातांत्रिक नेतृत्व में अन्तर |
- नेतृत्व का उद्भव या आविर्भाव |
- नेतृत्व के गुण |

16.3 परिभाषा तथा स्वरूप

नेतृत्व की परिभाषा तथा इसके स्वरूप के सम्बन्ध में मनावैज्ञानिको के बीच सहमति नहीं है | भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिको ने नेतृत्व की परिभाषा भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से दी है | नेतृत्व की परिभाषाओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1- **व्यक्तिगत विशेषताओं पर आधारित परिभाषाएँ -** इस वर्ग की परिभाषाओं के अनुसार नेतृत्व का तात्पर्य व्यक्ति की मौलिक योग्यता से है, जिसके द्वारा वह दूसरों के विचारों, मनोवृतियों तथा व्यवहारों को बदलने तथा बनाने में सफल होता है | होज एवं जौनसन ने इसी अर्थ में नेतृत्व की परिभाषा दी है | द्विवेदी ने भी इस विचार का समर्थन किया है | लेकिन, इस वर्ग की परिभाषा नेतृत्व के स्वरूप को पूरी तरह स्पष्ट करने में सफल नही है | कारण, इन परिभाषाओं में नेतृत्व के केवल एक संघटक अर्थात व्यक्ति (नेता) पर बल दिया गया है तथा अन्य संघटाको अर्थात समूह तथा प्रभावशीलता की उपेक्षा की गयी है।

2- **समूह विशेषताओं परिभाषाएँ -** इस वर्ग की परिभाषाओं के अनुसार नेतृत्व समूह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी सदस्य (नेता) को समूह के केन्द्रीय स्थान प्राप्त होता है | ब्लेकमार ने इसी अर्थ में नेतृत्व को परिभाषित किया है और कहा है कि समूह के अन्य सभी सदस्यों में एक सदस्य द्वारा प्रतिनिधित्व को नेतृत्व कहते है | केच तथा कचफिल्ड ने भी कहा है कि समूह में अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण नेता अपने समूह को नियंत्रित करने, समूह के लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा सदस्यों को निर्देशन देने में सख्त होता है | शेरिफ के शब्दों में, ‘‘नेता वह है जो समूह के स्थिति सम्बन्धों में सबसे ऊपर होता है’’ | इन

परिभाषाओं में समूह को प्रधान माना गया है तथा व्यक्ति (नेता) तथा इसकी प्रभावशीलता को गौण माना गया है |

3- प्रभावशाली व्यवहार पर आधारित परिभाषाएँ - इस वर्ग की परिभाषाओं के अनुसार नेतृत्व यह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति अपने व्यवहार से समूह के दूसर व्यक्तियों (अनुयायियों) के व्यवहारो को प्रभावित करता है | हेमफिल ने इसी अर्थ में नेतृत्व की परिभाषा दी है और कहा है कि नेतृत्व का अर्थ वह व्यवहार है, जिसके फलस्परूप समूह के अन्य सदस्य भी एक निर्धारित दिशा में व्यवहार करने के लिए उत्प्रेरित होते है | द्विवेदी ने कहा है, ''नेतृत्व का अर्थ दूसरे व्यक्तियों को प्रभावित करने की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा उन्हें कुछ निश्चित लक्ष्यों की और संचारित किया जाता है तथा उन लक्ष्यों का पूरा किया जाता है।" लेकिन, इस वर्ग की परिभाषा भी केवल आंशिक रूप में ही सफल है| कारण, यहाँ केवल नेता को प्रधान तथा प्रभावशाली माना गया है और अनुयायी को गौण तथा प्रभावहीन माना गया है | इसी प्रकार रेबर एवं रेबर ने नेतृत्व की परिभाषा देते हुए कहा कि, ''नेता वह व्यक्ति है तो समूह के अंतर्गत आधिपत्य, अधिकार या प्रभाव रखता हो |"

4- अन्तवयक्तिक प्रभाव पर आधारित परिभाषाएँ - इस वर्ग की परिभाषाओं के अनुसार एक व्यक्ति नेता तथा अन्य व्यक्तियों (अनुवावियों) के बीच अन्तवैयक्तिक प्रभाव को नेतृत्व कहते है | टेनेनबौम आदि ने इसी अर्थ में नेतृत्व की परिभाषा दी है और कहा है कि नेतृत्व वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा नेता तथा अनुयायी एक दूसरे को प्रभावित करके विशिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करते है | केच आदि ने भी इसी अर्थ में नेतृत्व की परिभाषा दी है | उन्होने भी कहा है कि, ''नेता समूह के वे सदस्य है, जो समूह क्रियाओं को प्रभावित करते है।"

उपर्युक्त चार वर्गो की परिभाषाओं में चौथे वर्ग की परिभाषा अधिक संतोषप्रद तथा समग्र है| क्रेच आदि ने नेता की उक्त परिभाषा के सम्बन्ध में तीन बातों का उल्लेख किया है -

(i) नेता की एक आवश्यकत शर्त यह है कि वह अपने व्यवहार से दूसरे को प्रभावित करें। इस अर्थ में समूह का प्रत्येक सदस्य नेता है | कारण, सभी सदस्य एक-दूसरे को अपने व्यवहारों से प्रभावित करते है, अन्तर केवल प्रभाव की मात्रा में होता है | एक व्यक्ति जो अधिक प्रभाव प्राप्त होने के कारण आज समूह का नेता है, कल प्रभाव घट जाने पर अनुयायी बन सकता है और दूसरा व्यक्ति जो कम प्रभाव प्राप्त के कारण आज अनुयायी है, कल प्रभाव बढ़ जाने पर नेता बन सकता है |

(ii) नेतृत्व व्यवहार वास्तव में अन्य वैयक्तिक क्रिया- प्रतिक्रिया के समान है | कारण, एक ओर नेता अपने अनुयायियों पर प्रभाव डालता है और दूसरी और अनुयायी अपने नेता पर प्रभाव डालता है | अन्तर केवल इतना हे कि नेता अधिक प्रभाव डालता है और अनुयायी अपेक्षाकृत कम प्रभाव डालते है | इसी कारण नेतृत्व को नेता तथा अनुयायियों के बीच अन्तर्वेयक्तिक प्रभाव की संज्ञा दी जाती है |

(iii) नेता के लिए एक निश्चित मात्रा में प्रभाव का होना आवश्यक है | दूसरे शब्दो में, नेता के लिए यह जरूरी है कि वह दूसरे सदस्यों पर पर्याप्त प्रभाव डाल सके। इस दृष्टिकोण से नेता तथा औपचारिक प्रधान में अन्तर है | नेता का पर्याप्त प्रभाव अनुयायियों पर होता है, किन्तु कार्यालय के प्रधान या पदाधिकारी का प्रभाव अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर ही भी

हो सकता है | अत: उस प्रधान या पदाधिकारी को नेता नही कहेगें। इस दृष्टिकोण से सभी औपचारिक नेता वास्तविक नेता नही होते है |

स्पष्ट है कि केच आदि की परिभाषा नेतृत्व के स्वरूप को स्पष्ट करने में अधिक सफल है | वरशेल एवं कूपर ने भी इसका समर्थन किया और कहा है कि, ''नेता वह व्यक्ति है जो समूह क्रिया की दिशा को प्रभावित करने हेतु अधिकार का उपयोग करता है।"

16.4 नेतृत्व की आवश्यकता

नेतृत्व बहुत व्यापक शब्द है और इसका प्रयोग कई अर्थो में होता है | सामान्यतः नेतृत्व का अर्थ अगुआई करने, पथ प्रदर्शित करने, श्रेष्ठता स्थापित करने, अभिप्रेरित करने, आदेश निर्गमित करने, तथा अपनी प्रमुखता या प्रतिष्ठा स्थापित करने से लगाया जाता है |

नेतृत्व, प्रबन्धकीय निर्देशन का एक प्रमुख अंग है | कुशल नेतृत्व की आवश्यकता जीवन के हर क्षेत्र में होती है | सामूहिक उद्देश्यों की प्राप्ति में संलग्न किसी भी व्यक्ति-समूह को किसी एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जो उनके सम्मिलित प्रयासों को सही दिशा में निर्देशित करे जो अपने दृढ संकल्प, दूर-दृष्टि से उनके लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए पक्ष प्रदर्शित और प्रोत्साहित करे, और जो उनकी आशाओं और आकांक्षाओं का प्रातिनिधित्व करते हुए, उनमें अनुशासन तथा उनके कार्यो में एकीकरण बनाए रखे।

सामाजिक विज्ञानों के शब्दकोषों के अनुसार, नेतृत्व से आशय *''किसी व्यक्ति एवं समूह के बीच के ऐसे सम्बन्ध से है जिससे कि सामूहिक हित के लिए दोनों परस्पर मिल जाते है | तथा अनुयायी उस व्यक्ति के निर्देशानुसार कार्य करते हैं।''*

टेरी के शब्दों में *''नेतृत्व व्यक्तियों को स्वेच्छा से सामूहिक उद्देश्यों की ओर प्रेरित करने की प्रक्रिया है।''*

बर्नार्ड के अनुसार, *''नेतृत्व का आशय व्यक्ति आचरण के उस गुण से है, जिसके द्वारा पे व्यक्तियों का या उनके संगठित प्रयास से संबन्धित क्रियाओं का मार्गदर्शन करतेंहैं |''*

अल्फर्ड और बीटी के अनुसार *''नेतृत्व वह क्षमता है जिसके द्वारा अनुयायियो के किसी समूह से वांछित कार्य स्वेच्छापूर्वक एवं बिना किसी दबाव के प्राप्त किये जाते हैं |''*

इस प्रकार किसी संगठन में नेतृत्व, प्रबन्धकों का वह कार्य है जिसके द्वारा वे सामान्य उद्देश्य में संलग्न व्यक्तियों की क्रियाओं को प्रभावित करने के लिए उचित मार्गदर्शन, निर्देशन एकीकरण, श्रेष्ठता और दूरदृष्टि प्रदान करते है, जिससे कि वे स्वेच्छा से निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वांछित ढंग से अग्रसर हो।

किसी संगठन के संचालन के लिए नेतृत्व अत्यन्त आवश्यक होता है | इसकी आवश्यकता हर क्षेत्र में देखी जा सकती है | जैसे-

- **अनुयायियों के लिए आवश्यकता**

अनुयायियों की उपस्थिति के बिना नेतृत्व की कल्पना सम्भव नहीं है | नेतृत्व स्वभावत अनुयायियों पर निर्भर करता है क्योंकि यह शून्यता में सम्भव नहीं है | नेतृत्व का जन्म ही तब होता है जब कुछ

अनुयायी मिलकर सामूहिक सहमति प्रगट करते हैं। ये अनुयायी होते है, जो सामूहिक रूप से नेतृत्व की विद्यमानता को वास्तविक रूप प्रदान करते हैं|

- **अनुयायियों की सहमति**

नेता अपने समूह के अनुयायियों पर अपना अधिकार प्रदर्शित करता हैं और जो उनके द्वारा स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता है | यह अधिकार स्वेच्छा से उसके प्रति सम्मान, विश्वास, निष्ठा, समर्पण और श्रद्धा के कारण उनके अनुयायियों द्वारा स्वीकारा जाता है, न कि डर, दबाव या शक्ति के कारण।

- **सामान्य हित**

नेतृत्व के लिए यह आवश्यक है कि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण एवं सामान्य हित हो जिनकी प्राप्ति में दोनो का यथार्थ हो। यदि नेता का हित भिन्न है और अनुयायियों का भिन्न, तो उनके हितों में कोई एकता या सामंजस्य नहीं होगा और ऐसी स्थिति में कोई प्रभावी नेतृत्व सम्भव नहीं होगा। यद्यपि यह सत्य है कि नेता और अनुयायियों के हितो में पूर्ण सामंजस्य कभी सम्भव नहीं होता। इसलिए इस संदर्भ में महत्वपूर्ण यह है कि समाधान के लिए कुछ सामान्य दर्शन एवं आदर्श हों और अनुयायियों की कुछ सामान्य धारणाएं और विश्वास हों। इन्ही सामान्य एवं परस्पर हितों पर नेतृत्व हितों नेतृत्व जोर देता है तथा संगठन के उद्देश्यों, जिनका वह नेतृत्व करता है, के मध्य कोई व्यवहारिक समझौता लाने का प्रयास करता है|

- **सामूहिक प्रतिनिधित्व**

नेता अपने अनुयायियों के प्रतिनिधित्व का कार्य करता है | वे अपने नेता का अपने मित्र, दार्शनिक एवं पथ-प्रदर्शक के रूप में देखते है | इसलिए उसे उन आदर्शो, सिद्धान्तों, आवश्यकताओं, समस्याओं, हितों और दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करना चाहिए, जिनका वह अपने वर्ग की ओर से नेतृत्व करता है | उसे अपने समस्त अनुयायियों को एक साथ लेकर आगे बढ़ना चाहिए। उसका यह परम कर्तव्य है कि पारस्परिक भागीदारी, विचार-विमर्श, संदेशवाहन, मार्गदर्शन एवं शिक्षण द्वारा वह अपने अनुयायियों को यह स्पष्ट कर दे कि उनकी ओर से वह क्या प्रतिनिधित्व का पूरा दायित्व अपने ऊपर ले सकता है और अनुयायियों से पूर्ण सहयोग की आशा भी रख सकता है|

- **कार्यकारी सम्बन्ध**

नेतृत्व के लिए एक कार्यकारी सम्बन्ध की अत्यन्त आवश्यकता होती है | टैरी के अनुसार,'' नेतृत्व, नेता, अनुयायी, स्थिति और इनमें परस्पर सम्बन्धों का कार्य है।'' अतः इन तीनो में जब तक कोई कार्यवाही सम्बन्ध नहीं है, या नेता सक्रिय रूप से सामूहिक क्रियाओं और इच्छाओं को प्रभावित करने के लिए पहल, संगठन संदेशवाहन, पथ-प्रदर्शन एवं प्रोत्साहित करने, का कार्य नही करता, तो नेतृत्व का कोई अर्थ या उद्देश्य ही नही होगा।

- **प्रासंगिकता**

नेतृत्व प्रासंगिक होता है | किसी विशेष स्थिति या वातावरण का इसके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ता है | वही नेतृत्व जो उन्हें किसी विशेष परिस्थितियों में, किसी वर्ग के नेतृत्व में आशातीत सफलता पा चुका है, परिस्थिति, समय, वर्ग या समस्याओं के बदलने के साथ अयोग्य और असफल सिद्ध होता है | भिन्न दृष्टिकोण, भिन्न वर्ग, भिन्न समस्यांए, भिन्न समय और उनके लिए भिन्न गुणों, भिन्न

योग्यताओं, भिन्न अभिप्रेरण विधियों और भिन्न प्रयासों की नेतृत्व की सफलता के लिए आवश्यकता होती है |

16.5 नेतृत्व या नेता के प्रकार

नेतृत्व प्रकार या नेतृत्व शैली से इस बात का बोध होता है कि नेता का दृष्टिकोण क्या है, समूह के सदस्यों के साथ उसका सम्बन्ध कैसा हे, समूह लक्ष्य को किस प्रकार निर्धारित के साथ उसका सम्बन्ध कैसा है समूह लक्ष्य को किस प्रकार निर्धारित करता है तथा उसको प्राप्त करने के लिए कौन-सी विधि अपनाता है | अत: समूह की रचना, इसके लक्ष्य, सदस्यों के बीच सम्बन्ध आदि में अन्तर होने के कारण नेतृत्व में अन्तर होना स्वाभाविक है | समाज मनोवैज्ञानिकक ने नेतृत्व या नेता का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से किया है | हम यहां कुछ मुख्य वर्गीकरण का संक्षेप में उल्लेख करना चाहेंगे।

(क) मार्टिन कौनवे का वर्गीकरण -

मार्टिन कोनवे ने तीन प्रकार के नेतृत्व का उल्लेख किया है -

1. **भीड़ सम्मोहक -** इस प्रकार का नेता वह है जो किसी समूह को अस्थाई रूप से संगठित रखता है और बलपूर्वक अथवा चालबाजी से उसका नेता बन जाता है | सही अर्थ में वह अपने समूह का प्रतिनिधि नहीं होता है।
2. **भीड़ व्याख्याता -** इस प्रकार का नेता वह है जो समूह के सदस्यों के विचारों, आवश्यकताओं तथा भावनाओं को प्रस्तुत करता है | वह समूह के लक्ष्यों को प्राप्त करने के साथ-साथ सदस्यों की आवश्यकताओ की पूर्ति का प्रयास करता है |
3. **भीड़ प्रतिनिधि -** इस प्रकार का नेता वह है, जो सही अर्थ में अपने समूह का प्रतिनिधित्व करता है |

(ख) बार्टलेट का वर्गीकरण -

बार्टलेट ने नेता के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है -

1. **संस्थागत नेता-** इस प्रकार के नेता का सम्बन्ध किसी संस्था से होता है | यहॉ व्यक्ति किसी नियम, परम्परा या वरिष्ठता के आधार पर नेता बन जाता है | किसी कार्यालय के पदाधिकारी, कॉलेज के प्रिंसिपल, आदि ऐसे नेता के उदाहरण है |
2. **प्रभावी नेता -** इस प्रकार का नेता वह है जो बल या कुचक्र के आधार पर किसी समूह का नेता बन जाता है | यह नेता कौनवे के भीड़ सम्मोहक के समान है | संकट के समय ऐसे नेता अधिक देखे जाते है |
3. **अनुसारी नेता-** इस प्रकार का नेता वह है, जो खुशामद के आधार पर नेता बनता है | वह सदस्यों को सुझाव देकर तथा समझा बुझा कर बन जाता है |

(ग) किम्बल यंग का वर्गीकरण -

किम्बल यंग के अनुसार नेता के निम्नलिखित प्रकार है -

1- **राजनीतिक अधिपुरूष -** अधिपुरूष वह नेता है, जो अपनी चालबाजी के बल पर नेता बन जाता है | ऐसा नेता प्राय: ध्वंसात्मक होता है |

2- **प्रजातांत्रिक नेता -** इस प्रकार का नेता समूह के बहुमत का प्रतिनिधि होता है | वह नेता प्रजातांत्रिक समूह या राष्ट्र में पाया जाता है | वह सदस्यों द्वारा निर्वाचित होने के कारण सदस्य अभिमुखी होता है | इसकी पूरी व्याख्या बाद में की जायेगी।

3- **सुधारक -** सुधारक वह नेता है, जो समाज की बुराइयों को दूर करने का बीड़ा उठाता है और स्वयं दु:ख उठाकर दूसरो के हित का काम करता है | वह अपने लक्ष्यों को पूरा करने के लिए तर्को का सहारा लेता है | ऐसा नेता प्राय: अपालक होता है | महात्मा गांधी, राजाराम मोहन राय, आदि की गणना इस प्रकार के नेताओं में की जा सकती है |

4- **नौकरशाही -** इस प्रकार का नेता वह है जो प्रशासन चलाता है तथा नियम व कानून पर सख्ती से अमल करता है | ऐसा नेता अधिक व्यावहारिक होता है |

5- **आन्दोलक -** इस प्रकार का नेता वह है जो कटुपूर्ण सुधार होता है | लेकिन सुधारक जहाँ तर्क का सहारा लेता है, वहाँ आन्दोलन हिंसा तथा क्रांति के सहारे सुधार लाने का प्रयास करता है | उसमें सहनशीलता या समझौता का गुण नहीं देखा जाता है |

6- **कूटनीतिज्ञ -** कूटनीतिज्ञ वह नेता है, जो सरकार के प्रतिनिधि के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को सुधारने का प्रयास करता है | ऐसा नेता काफी सक्षम तथा कुशल होता है और समूह लक्ष्यों को पूरा करने के लिए उचित अनुचित किसी भी साधन का उपयोग कर सकता है |

7- **सिद्धान्तवादी -** इस प्रकार को नेता सिद्धांत से अधिक विश्वास रखता है | वह तर्क अधिक करता है | उसमें व्यावहारिकता का अभाव होता है | उसमें विचार की प्रधानता होती है |

(घ) सारजेन्ट का वर्गीकरण -

सारजेन्ट के अनुसार नेतृत्व या नेता के निम्नलिखित प्रकार है -

1- **चमत्कारी नेता -** इस प्रकार का नेता वह है जिसमें दैवी शक्ति अथवा अलौकिक शक्ति समझा जाता है | धार्मिक नेता, जैसे- कृष्ण, ईसा, मोहम्मद, आदि इस प्रकार के नेता थे।

2- **प्रतीकात्मक नेता -** इस प्रकार का नेता वह है जिसको कोई अधिकार नही होता है, केवल सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है | समाज सुधारक नेता को प्रतीकात्मक नेता कह सकते है |

3- **प्रधान -** किसी कार्यालय के प्रधान, किसी विद्यालय के प्रधानाध्यापक या किसी कॉलेज के प्राचार्य की गणना इसी प्रकार के नेतृत्व के अन्तर्गत की जाती है |

4- **विशेषज्ञ -** इस प्रकार को नेता वह है, जो किसी विशेष क्षेत्र में निपुण तथा विशेषज्ञ होता है | ऐसा विशेष क्षेत्र में कोई अदभुद उपलब्धि करता है | न्यूटन डार्विन इसी प्रकार के नेता हुए हैं|

5- **कार्यकारी या प्रशासक -** इस प्रकार का नेता वह है जो सरकारी विभागों में प्रशासन का काम करता है | ऐसा नेता नियम व कानून के आधार पर काम करता है |

6- **आन्दोलक -** इस प्रकार का नेता हिंसा के आधार पर सुधार लाने का प्रयास करता है | ऐसे नेता की व्याख्या पहले की जा चुकी है |

7- **अवपीड़क नेता -** नेतृत्व का यह प्रकार प्रभुत्व तथा अवपीड़न पर आधारित है | लुटेरो या डाकुओं के सरदार को अवपीड़क नेता कहेगें।

(ड) लिपीट का वर्गीकरण -

लेविन, लिपिट एवं हा्इट ने नेतृत्व के निम्नलिखित प्रकारो का उल्लेख किया है -

1**. सत्ताधारी नेतृत्व** -

सत्तवादी नेता उस कहते है जो अपने समूह में सर्वे सर्वा होता है | ऐसा नेता समूह की नीतियों का निर्माण स्वयं करता है और समूह की योजनाएं स्वयं तैयार करता है | वह निरपेक्ष अधिकार अधिक रखता है और समूह के सदस्यों के बीच कार्यों का बंटवारा मनमाने ढ़ंग से करता है | वह सदस्यों पर कड़ी निगरानी रखता है और उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार दण्ड या पुरस्कार दे सकता है | इसके लिए वह किसी के सामने उतरदायी नही होता है और न उससे इसके लिए औचित्य पूछा जा सकता है | इस प्रकार के नेतृत्व में नेता के अलावा दूसरे सदस्यों को समूह के भविष्य कार्य क्रम की जानकारी नहीं रहती है | नेता तथा सदस्यों के बीच सीधा सम्पर्क नही होता है | ऐसा नेता कार्य अभिमुखी होता है | वह सदस्यों के कल्याण की चिंता नहीं करता है और केवल समूह के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है | समूह में कई उपसमूहों का निर्माण हो जाता है और कई छोटे-छोटे नेता उभर आते है | समूह का मनोबल बहुत नीचा होता है | अत: नेता के मर जाने या अनुपस्थित हो जाने पर समूह टूटने लगता है | पाकिस्तान के जिया, याहिया खान, आदि सतावादी नेता के उदाहरण है | लिपिटि तथा हा्इट ने अपने अध्ययन के आधार पर सत्तावादी नेतृत्व की उक्त विशेषताओं पर प्रकाश डाला।

2. **प्रजातांत्रिक नेतृत्व** - प्रजातांत्रिक नेता उसे कहते हैं, जो समूह के बहुमत का प्रतिनिधि होता है और सदस्य अभिमुखी होता है | वह समूह के सदस्यों के बीच सम्बन्ध के सहयोग से नीतियों तथा योजनाओं का निर्माण करता है | वह सदस्यों के बीच सम्बन्ध सुधारने का हर संभव प्रयास करता है | वह समूह के कार्यों को सभी सदस्यों में बांट देता है | इस प्रकार के नेतृत्व में अधिकारों का विकेन्द्रीकरण देखा जाता है | यहाँ नेता तथा सदस्यों के बीच सीधा सम्बन्ध संभव होता है | उपसमूहों का निर्माण नही होता है अथवा बहुत कम होता है | अत: प्रजातांत्रिक समूह का मनोबल अधिक ऊँचा होता है | नेता के मर जाने या अनुपस्थित हो जाने पर भी समूह विघटित नहीं होता है | भारत में श्री जवाहर लाल नेहरू, श्री लालबहादुर शास्त्री, श्री अटल बिहार वाजपेयी, श्री मनमोहन सिंह आदि इस प्रकार के नेता के उदाहरण है | लिपिट तथा हा्इट ने अपने अध्ययन के आधार पर प्रजातांत्रिक नेतृत्व की इन विशेषताओं की पुष्टि की।

16.6 सत्तावादी तथा प्रजातांत्रिक नेतृत्व में अन्तर

सत्तावादी नेतृत्व तथा प्रजातांत्रिक नेतृत्व की विशेषताओं या आधार तत्वों की व्याख्या ऊपर की जा चुकी है | इससे दोनों प्रकार के नेतृत्व या नेताओं के बीच अन्तर कुछ अंशो में स्पष्ट हो चुका है | फिर

भी हम यहाँ इनके बीच अन्तरो की व्याख्या अलग से करना चाहेंगे। लेकिन, अन्तरों की व्याख्या करने से पहले यह कह देना आवश्यक है कि इन दोनों प्रकार के नेताओं के बीच अधिकार, शक्ति का कार्य में बड़ी समानता है | अन्तर केवल अधिकार या कार्यों को कार्यान्वित करने की विधियों में है | लिपिट एवं हाइट तथा न्यूकम्ब एवं हार्टले के अध्ययनों के अलोक में इन दोनों प्रकार के नेताओं में निम्नलिखित अन्तर देखे जाते हैं -

(i) सत्तावादी नेता में निरपेक्षी शक्ति अधिक होती है | वह समूह की नीतियों तथा योजनाओं के निर्माण में मनमानी करता है | उसके लिए समूह के सदस्यों से सलाह या सुझाव लेना आवश्यक नहीं है | दूसरी और प्रजातांत्रिक नेता में सापेक्ष शक्ति अधिक होती है | यहाँ नेता अपने समूह के लिए नीतियों तथा योजनाओं का निर्माण सदस्यों की सलाह के अनुसार करता है | प्राय: समूह के बहुमत को ध्यान में रखकर किसी नीति या योजना का निर्माण किया जाता है।

(ii) सत्तावादी नेतृत्व में अधिकारों का केन्द्रीकरण देखा जाता है | नेता ही अपने समूह के लक्ष्यों को निर्धारित करता है और वही लक्ष्यों को प्राप्त करने के साधनों को निर्धारित करता है | दूसरे सदस्यों को इसकी जानकारी नहीं रहती है | इसी तरह नेता स्वयं सदस्यों के बीच कार्य का बंटवारा करता है | दूसरी और प्रजातांत्रिक नेतृत्व में अधिकारों का विकेन्द्रीकरण देखा जाता है। प्रजातांत्रिक नेता समूह लक्ष्य का निर्माण सदस्यों से मिलकर करता है | अत: सदस्यों को समूह के लक्ष्य की पूरी जानकारी रहती है | इसी तरह प्रजातांत्रिक नेतृत्व नेता सदस्यों के सुझाव को भी कार्यों का बंटवारा करने समय ध्यान में रखता है |

(iii) सत्तावादी नेता कार्य-अभिमुखी होता है | वह सदस्यों के कल्याण की अपेक्षा समूह के कार्य पर अधिक बल देता है | वह किसी भी कीमत पर समूह के लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है, भले ही सदस्यों को नुकसान क्यों न हो जाए। इसके विपरीत प्रजातंत्रिक नेता सदस्य अभिमुखी होता है | वह समूह के कार्य के साथ-साथ सदस्यों के कल्याण को भी ध्यान में रखता है | वह सदस्यों के कल्याण के लिए हरं संभव प्रयास करता है, भले ही समूह लक्ष्य विलम्बित क्यों न हो जाए।

(iv) सत्ताधारी समूह के नेता अनुयायियों के बीच सामाजिक दूरी अधिक होती है | उनके बीच कोई सीधा सम्पर्क नहीं होता है | प्रत्येक सदस्य नेता के लेफ्टिनेंट से संबंधितरहता है | इस प्रकार नेताओं की एक श्रृंखला बन जाती है | ऐसा तब होता है जबकि समूह बड़ा होता है | यदि समूह छोटा हो तो प्रत्येक सदस्य सीधे नेता से संबंधित रहता है | इसके विपरीत प्रजातांत्रिक समूह में नेता तथा अनुयायियों के बीच सामाजिक निकटता अधिक होती है | समूह छोटा हो या बड़ा कोई भी सदस्य नेता से सम्पर्क स्थापित कर सकता है | इसके साथ-साथ सभी सदस्य आपस में ही संबंधितरहते हैं।

अत: सारांश में यह कहा जा सकता है की नेतृत्व के सामान्यतः चार प्रकार हैं:-

(अ) अधिनायकवादी

(ब) निरंकुशवादी

(स) प्रजातांत्रिक

(द) हस्तक्षेप-विहीन

16.6.1 अधिनायकवादी

अधिनायकवादी नेता कार्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति सदस्यों में भय उत्पन्न करके करता है | अनुयायियों-सदस्यों को दण्ड का भय रहता है, जिसके कारण वे विरोध नहीं करते हैं | इस प्रकार का नेतृत्व नकारात्मक कार्य-प्रणाली पर आधारित होता है, जिसकी यह मूल मान्यता होती है कि लोगों को कार्य करने के लिए प्रेरित किया गया और प्रेरित करने का सबसे अच्छा तरीका भय है | नेता भय द्वारा सदस्यों को इच्छित व्यवहार करने के लिए तैयार करता है | इस प्रकार से प्राप्त परिणाम अपने आपमें महत्वपूर्ण हो सकते हैं परन्तु सदस्यों में सदैव असंतोष बना रहता है।

16.6.2 निरंकुशवादी

निरंकुशवादी नेता शक्ति तथा निर्णय-प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु होता है | ऐसा नेता सदस्यों को उस पर विश्वास करने के लिए मजबूर करता है | वह ऐसा प्रभाव डालता है जिससे सदस्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उस पर निर्भर हो जाते हैं | कार्य पूरा करने का उत्तदायित्व नेता स्वयं ही लेता है | समूह-सदस्यों को निर्णय-प्रक्रिया में भाग लेने के अवसर नहीं देता है | वह यह भी नहीं चाहता है कि सदस्य पूर्व निर्धारित नियमों से जरा भी विचलित हों। निरंकुश नेता के साथ सदस्य अनुयायी विनय का व्यवहार करते हैं | ऐसा नेता इच्छित परिणाम शीघ्र प्राप्त कर लेता है | लेकिन समूह तभी तक अच्छा रहता है जब तक नेता अच्छा रखता है | यदि नेता कमजोर तथा अप्रभावकारी है तो सदस्य भी वैसे ही हो जाते हैं |

16.6.3 लोकतांत्रिक नेतृत्व

लोकतांत्रिक नेतृत्व शक्ति का निर्णय-प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण पर आधारित है | जो भी निर्णय होता है उसमें समूह के सभी सदस्य भागीदार होते हैं | किसी भी निर्णय के लिए लोगों की राय ली जाती है तथा विचार-विमर्श को काफी महत्व दिया जाता है | इस प्रकार के नेतृत्व में अनुकरण करने वाले लोग यह समझते हैं कि नेता जो कुछ कर रहा है वह उनकी भलाई के लिए है | इसमें लोग स्वेच्छा से नेता के आदेश का पालन करते हैं | इस प्रकार का नेतृत्व सदस्यों में उच्चतम निपुणताओं का विकास करता है तथा अधिकतम संतोष प्रदान करता है | इस प्रकार के सम्बन्धों में घनिष्ठता तथा पारस्परिक लगाव अधिक होता है | सदस्यों को एक आवश्यक ईकाई के रूप में देखा जाता है और मान्यता दी जाती है।

16.6.4 हस्तक्षेप-विहीन नेतृत्व

इस प्रकार के नेतृत्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें नेता समूह के ऊपर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डालता। वह न तो समूह के कार्यों में हस्तक्षेप करता है और न ही किसी प्रकार का सहयोग देता है | सदस्यों को स्वयं अपने लक्ष्य निर्धारित करने होते हैं तथा स्वयं निर्णय लेना होता है | इस प्रकार के नेतृत्व में सदस्यों को निराशा होती है | वे सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इधर-उधर भटकते रहते हैं | इस कारण असंगठन तथा दिशा भ्रम की स्थिति समूह में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

बोगार्डस ने भी नेतृत्व के कुछ प्रकार बतायें हैं जो निम्नवत हैं:-

प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष नेता

प्रत्यक्ष नेता वह है जो समूह के अन्य सदस्यों के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क रखता है | वह अपने समूह की आवश्यकताओं से परिचित होता है | वह समय-समय पर सदस्यों को उनकी समस्याओं को हल करने के तरीकों को बतलाता रहता है | वह समूह के बाहर प्रतिनिधित्व भी करता है, आपसी वैमस्यता को विचार-विमर्श के द्वारा निपटाता है तथा सामान्य समूह को विश्वास दिलाता है कि वह उन्हीं में से एक है | अप्रत्यक्ष नेता के अपने अनुयायियों से प्रत्यक्ष सम्पर्क बहुत कम होते हैं | इस तरह के नेता अपने कार्यों अथवा नीतियों की सहायता से बहुत दूर भी रहने वाले व्यक्तियों से सम्पर्क रख लेते हैं |

पक्षपातपूर्ण एवं वैज्ञानिक नेता

पक्षपातपूर्ण नेता का कार्य सदैव अपने समूह का पक्ष लेने को तथा अपने समूह के दुर्गणों को छिपाना होता है | जब कभी किसी समस्या पर विचार-विमर्श करता है, भले अपने समूह को ही लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करता है, भले ही इससे दूसरों को हानि पहुँचती हो । किसी राजनैतिक नेता द्वारा सदैव अपने दल का समर्थन करना इस प्रकार के नेतृत्व का उदाहरण है।

वैज्ञानिक नेता वह होता है जो यथार्थ बातों को ही समह के सामने लाता है, ये बातें चाहे समूह के हित में हों या अहित में। ऐसे नेता सामान्यतः सिद्धान्तवादी होते हें तथा प्रत्येक कार्य को करते समय सदैव अपने सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हैं |

सामाजिक एवं मानसिक नेता

सामाजिक नेता सामाजिक कार्यों के द्वारा समूह में लोकप्रियता प्राप्त करता है | इसका प्रमुख कार्य समूह की समस्याओं का समाधान करना और सदस्यों के प्रत्यक्ष सम्बन्ध बनाये रखना होता है | ऐसे नेता उत्साही और त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं |

मानसिक नेता वे होते हें जो अपने विचारों और क्रियाओं के द्वारा समूह के सदस्यों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन करते हैं | इनमें उत्तेजना की अपेक्षा बौद्धिकता अधिक होती है | मानसिक नेतृत्व तभी सफल हो पाता है जब ऐसे नेता को शान्तिपूर्ण वातावरण मिले तथा आजीविका के बारे में अधिक चिन्तित न होना पड़े।

अधिशासी नेता

अधिशासी नेता वह होता है जिसमें सामाजिक, बौद्धिक तथा प्रबन्धकीय गुणों का समावेश होता है | ऐसे नेता का कार्य एक विशेष समूह संगठित करना तथा उनके लिए कार्य-योजना बनाना होता है | यह कार्य केवल तभी सम्भव है जबकि वह सामाजिक क्षेत्र में सेवा कार्य कर रहा हो तथा व्यक्तियों को व्यावहारिक सुझाव दे रहा हो। ऐसे नेताओं को राज्य के द्वारा कुछ अधिकार मिले होते हैं, जिनका वे जनहित में उपयोग करते हैं |

16.7 नेतृत्व का उद्भव या आविर्भाव

नेतृत्व के सम्बन्ध में एक जटिल समस्या यह है कि नेतृत्व का उद्भव तथा विकास कैसे होता है | दूसरे शब्दों में समस्या यह है कि किन परिस्थितियों में किसी व्यक्ति के नेता के रूप में उभरने की संभावना अधिक होती है ? किसी व्यक्ति के नेता बनने में क्या केवल उसका अपना शीलगुण सहायक होता

है? केवल विशेष परिस्थिति सहायक होती है अथवा दोनों सहायक होते हैं ? इन समस्याओं के समाधान के सम्बन्ध में वॉरशेल तथा कूपर ने निम्नलिखित कारकों का उल्लेख किया है :-

(क) व्यक्तिगत कारक / महान मानव सिद्धांत या शीलगुण सिद्धांत -

यह सिद्धांत इस विश्वास पर आधारित है कि नेता जन्मजात होता है, बनाया नहीं जाता है | व्यक्ति में कुछ ऐसे शीलगुण होते है, जिनके कारण वह नेता बन जाता है और उन शीलगुणों के अभाव में दूसरा व्यक्ति समान परिस्थिति मिलने पर भी नेता नहीं बन पाता है | मार्टिन लुथर किंग, केनेडी, अब्राहम लिंकन, जवाहर लाल नेहरू, जमाल नासिर, आदि में कुछ ऐसे असाधारण शीलगुण थे, जिनके कारण वे न केवल नेता बन सके बल्कि अपने समूह (राष्ट्र) के इतिहास का निर्माता भी। यदि उनके स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति होता तो समूह की रूपरेखा कुछ और होती।

इस सिद्धांत के अनुसार नेतृत्व के उद्भव एवं विकास में तीन प्रकार के शीलगुण सहायक होते है - (1) शारीरिक शीलगुण (2) व्यक्तित्व शीलगुण तथा (3) अर्जित शीलगुण

(1) टरमन - के अनुसार शारीरिक आकार, लम्बाई, वजन, आकर्षण, आदि का प्रभाव नेतृत्व के आविर्भाव पर पड़ता है | अन्य बाते समान रहने पर अच्छे तथा आकर्षक शारीरिक शीलगुण वाले व्यक्ति के नेता के रूप में उभरने की संभावना अधिक होती है, यहाँ शारीरिक शीलगुण व्यक्तित्व शीलगुण की उपेक्षा अधिक प्रधान होते हैं |

(2) व्यक्तित्व शीलगुणों में बुद्धि शब्द भंडार, प्रभुत्व आत्म संस्थापन, आत्म विश्वास, संवेगात्मक नियंत्रण, अभियोजनशीलता, लचीलापन उदारता, आदि मुख्य हैं | अध्ययनों से पता चलता है कि अनुयायियों की उपेक्षा नेता अधिक बुद्धिमान होते है | इसका अर्थ यह हुआ कि अन्य बातें समान रहने पर मन्द बुद्धि की अपेक्षा तीव्र बुद्धि के सदस्य के नेता बनने की संभावना अधिक होती है | अध्ययन से यह भी प्रमाणित होता है कि शब्द भंडार तथा नेतृत्व के बीच धनात्मक सम्बन्ध होता है | अत: समूह के जिस सदस्य में शब्द भंडार की योग्यता अधिक होगी, उसके नेता बनने की संभावना भी अधिक होगी, यदि अन्य बाते समान हो। मनोविश्लेषको और विशेष रूप में एडलर के अनुसार नेतृत्व के उद्भव में दैहिक हीनता की अति क्षतिपूर्ति का हाथ होता है | जैसे रोजेवेल्ट एक रोगी बालक था, हिटलर नाटे कद का था और मनोग्रन्थि प्रतिक्रियाओं से पीड़ित था | लेनिन तथा महात्मा गांधी का पारिवारिक जीवन विशेष रूप से किशोरा अवस्था में तनावपूर्ण था | अत: कहा जा सकता है कि इन व्यक्तियों के महान नेता के रूप में उभरने के पीछे हीनता की अति क्षतिपूर्ति सक्रिय थी।

(3) महान मानव सिद्धांत (शीलगुण-सिद्धांत) के अनुसार नेतृत्व के उद्भव एवं विकास में अर्जित शीलगुणों का भी हाथ होता है | विशेष रूप से उच्च तथा प्रतिष्ठित परिवार में जन्म लेने वाले बच्चों में निम्न परिवार में जन्म लेने वाले बच्चों की अपेक्षा नेता बन जाने की संभावना अधिक होती है | मिल्स के अध्ययन से इन विचार का समर्थन होता है |

सियर्स आदि के अनुसार समूह के जिन सदस्यों में उच्च अभिलाषा एवं उपलब्धि की प्रेरणा होती है, उनके नेता बन जाने की संभावना अधिक होती है | ऐसे लोग सम्मान, उत्कर्ष तथा उत्तरदायित्व पाने के लिए अधिक इच्छुक रहते हैं |

एलिस के अनुसार नेता में अन्तवैयक्तिक कौशल अधिक होता है | उनमें सहकारिता समूह आवश्यकताओं को देखने की क्षमता तथा उनकी संतुष्टि की प्रेरणा अधिक होती है | अत: ऐसे शीलगुण वाले सदस्य के नेता के रूप में उभरने की संभावना अपेक्षाकृत अधिक होती है |

स्पष्ट है कि यह सिद्धांत शीलगुणों को नेतृत्व के उद्भव तथा विकास का आधार मानता है | इसका अर्थ है, नेता जन्मजात होता है | लेकिन, यह सिद्धांत नेता के आर्विभाव की व्याख्या करने से पूरी तरह सफल नहीं है - (i) यह सिद्धांत ऐसे शीलगुणों को नहीं बतला पाता है जो सभी नेताओं के समान रूप से पाये जाते है | (ii) यह सिद्धांत इस बात की व्याख्या नहीं कर पाता है कि प्रारंभिक जीवन में पिता के साथ संघर्ष रखने वाले दैहिक दोष के कारण हीनता का भाव रखने वाले कुछ लोग क्यों महान नेता बन जाते हैं और कुछ लोग नहीं बन पाते हैं |

अत: नेतृत्व के आविर्भाव की व्याख्या केवल शारीरिक या व्यक्तित्व-शीलगुणों के आधार पर संभव नहीं है |

(ख) परिस्थिति कारक/ समय सिद्धांत या परिस्थिति सिद्धांत -

इस सिद्धांत का विकास शीलगुण सिद्धांत की आलोचना के रूप में हुआ था। इस सिद्धांत के अनुसार नेतृत्व के आर्विभाव में व्यक्ति के शीलगुणों का हाथ नहीं होता है, बल्कि समूह परिस्थितियों की विशेषताओं का हाथ होता है | समूह का कौन सदस्य नेता होता, इसका निर्धारण व्यक्ति के शीलगुणों से नहीं समूह की परिस्थतियों से होता है | नेता जन्मजात नहीं, निर्मित होता है | व्यक्ति, बलवान नहीं, समय बलवान होता है | कूपर तथा मैक गौफ ने कहा कि यदि हिटलर ने जर्मनी के बदले अमेंरिका में अपने सिद्धांत को अपनाया होता तो उसे जेलखाने में फेंक दिया जाता या मानसिक संस्थान में रख दिया जाता है | जयप्रकाश नारायण वर्षो तक कांति का सबक पढ़ाते रहे, परन्तु वे क्रान्तिकारी नेता के रूप में उभर नहीं सके। जब 1974 में समय ने उनका साथ दिया तो उन्हें क्रांतिकारी नेता का स्थान मिल सका । इसी तरह अनूकूल समय या परिस्थिति ने महात्मा गांधी तथा राजीव गांधी अथवा मनमोहन सिंह को नेता बनने में मदद की। नेतृत्व के उद्भव तथा विकास पर परिस्थिति से संबंधित अनेक कारको का प्रभाव पड़ता हे, जिनमें निम्नलिखित अधिक महत्वपूर्ण है :-

1. **समूह का निर्माण -** जब कभी किसी नये समूह का निर्माण किया जाता है तो नेतृत्व के उभरने की संभावना बन जाती है | जब 1977 में जनता पार्टी का निर्माण हुआ तो श्री मोरारजी देसाई को तथा जब नता दल का निर्माण हुआ तो 1989 में श्री. वी.पी. सिंह को नेता बनने का अवसर मिला। इसी प्रकार जब संयुक्त परिवार टूट कर एकाकी परिवारों में विभाजित हो जाता है तो प्रत्येक एकाकी परिवार में किसी सदस्य को नेता या प्रधान बनने का अवसर मिलता है |
2. **समूह का आकार -** जब समूह बड़ा होता है तो उसकी क्रियाएं जटिल बन जाती है और कई उप-समूहो का निर्माण हो जाता है | प्रत्येक उप-समूह का कोई नेता बन जाता है | इस प्रका प्राथमिक नेता के साथ-साथ कई द्वितीयक नेता उभर आते है | स्पष्ट है कि समूह का आकार बढ़ने पर कई सदस्यों को नेता बनने का अवसर मिलता है | इतना ही नहीं, बल्कि समूह के आकार से नेतृत्व के प्रका का भी निर्धारण होता है | बड़े समूह में निष्पादन नेता तथा छोटे समूहो में संवेगात्मक नेता के विकसित होने की संभावना अधिक होती है |

3. **समूह संकट -** जब समूह पर बाहरी आक्रमण का खतरा पैदा हो जाये अथवा लक्ष्य की ओर समूह की प्रगति रूक जाये तो इसे संकट की स्थिति कहेगे। ऐसी परिस्थिति में समूह के पुराने नेता के हटने तथा नये नेता के उभरने की संभावना बन जाती है | ऐसे सदस्य को नेता बना दिया जाता है, जिसमें समूह के संकट को दूर करने की योग्यता, कौशल, ज्ञान, आत्म विश्वास या इसी तरह के अन्य शीलगुण का बोध समूह के दूसरे सदस्यों को होता है | समूह संकट का प्रभाव व केवल नेतृत्व के आविर्भाव पर पड़ता है, बल्कि नेतृत्व के प्रकार पर भी हैम्बलिन, क्लेविन, वरशेल आदि ने अपने अध्ययन में देखा कि अधिक संकट या बाहरी खतरों की अवस्था में सत्ताधारी नेता के उभरने की संभावना अधिक होती है | यह भी स्मरण रखना चाहिए कि संकट के कारण नेता की स्थिति अधिक मजबूत भी बन जाती है | और समूह के सदस्य उसका समर्थन करने लगते है | पाकिस्तान तथा भारत में जब-जब नेता को अपने नेतृत्व की कुर्सी हिलती हुई नजर आती है तो वे अपने समूह (राष्ट्र) के लोगों को एक दूसरे के आक्रमण का खतरा कर अपनी स्थिति मजबूत बना लेते हैं |

4. **समूह अस्थिरता -** कभी-कभी समूह के सदस्यों के आपसी मतभेद से समूह विघटित होने लगता है, समूह लक्ष्य खतरा में पड़ जाता है और अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है | ऐसे समय में पुराने नेता के हटने और नये नेता के बनने की संभा◌ावना बन जाती है | समूह के सदस्य ऐसे व्यक्ति को नेता चुन लेते हे जिसे वे अस्थिरता को समाप्त करने के योग्य समझने है | क्रौकेट ने अपने अध्ययन में देखा कि जिस समूह में समूह लक्ष्यों तथा उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के साधनों के विषय में सदस्यों के बीच मतभेद होता है उसमें नये नेता के उभरने की संभावना अधिक होती हे। यह एक वास्तविकता है कि नेता बनने की इच्छा रखने वाले अपने समूह में फूट डालकर अपने लिए परिस्थिति अनुकूल बना लेता है | वह जानना है कि गन्दे पानी में मछली मारना आसान होता है |

5. **वर्तमान नेता की असफलता -** जब समूह का वर्तमान प्रधान का नेता दायित्व को निभाने में असफल हो जाता है तो उसके स्थान पर किसी नये नेता के उभरने की संभावना काफी बढ़ जाती है | नेता के अनेक कार्य है जैसे समूह की नीति बनाना, योजनाओं का निर्माण करना, योजनाओं को कार्यरूप देना, सदस्यों को नियंत्रित रखना आदि। जब नेता इन कार्यों को समुचित रूप से नहीं कर पाता है और समूह लक्ष्य पूरा नहीं हो पाता है तो उसकी जगह किसी दूसरे सदस्य का नेता चुन लिया जाता है | क्रौकेट ने अपने अध्ययन में देखा कि 83 प्रतिशत असफल नेताओं तथा केवल 39 प्रतिशत सफल नेताओं के स्थान पर नये नेताओं का विकास हुआ। काज आदि ने भी अपने अध्ययन के आधार पर इसी तरह का परिणाम प्राप्त किया।

6. **नेता की आवश्यकताएँ -** जब समूह के किसी सदस्य में नेता बनने की आंतरिक आवश्यकता रहती है तो अन्य सदस्यों की अपेक्षा उसके नेता बनने की संभावना अधिक हो जाती है | नेता के रूप में वह प्रतिष्ठा की आवश्यकता आधिपत्य की आवश्यकता तथा अधिकार की आवश्यकता की संतुष्टि करने का प्रयास करता है | जब समूह के एक दो सदस्यों में ऐसी आवश्यकता होती है तो केन्द्रित नेतृत्व का विकास होता है और जब कई सदस्यों में यह आवश्यकता होती है तो विपरित नेतृत्व का विकास होता है | इस सम्बन्ध में हेमफिल का अध्ययन महत्वपूर्ण होता है |

7. **समूह की आवश्यकताएँ -** समय सिद्धांत अथवा परिस्थिति सिद्धांत के अनुसार किसी समूह का नेता कौन होगा, यह बात उस समूह की आवश्यकता विशेष पर निर्भर करती है | भारत में विभाजन के बाद खण्डित भारत का नेता जवाहर लाल नेहरू ही क्यों बने? परिस्थिति सिद्धांत के अनुसार इसका कारण यह था कि उस समय एक ऐसे नेता की आवश्यकता थी, जिसके दिल में किसी एक समुदाय का दर्द न हो, बल्कि सभी समुदायों का दर्द हो।

यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि समूह की आवश्यकता बदलने पर नेता भी प्राय: बदल जाया करता है | 1977 में भारत को ऐसे नेता की आवश्यकता थी, जिसमें प्रजातांत्रिक मनोवृत्ति प्रधान हो। फलत: श्रीमती इन्दिरा गांधी के स्थान पर मोरारजी देसाई को नेता मान लिया गया लेकिन, थोड़े दिनों बाद पुन: सत्ताधारी मनोवृत्ति वाले नेता की आवश्यकता महसूस हुई और श्रीमती इन्दिरा गांधी को नेता बना दिया वेल्स ने अपने अध्ययन में पाया कि जिस व्यक्ति ने समूह की समस्याओं के समाधान के संबंधमें सबसे अच्छा विचार दिया, उसे नेता माना गया। कुछ अध्ययनों में यह भी देखा गया कि समूह कार्य के बदलने पर नेतृत्व बदल जाता है |

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि नेतृत्व के आविर्भाव पर कई प्रकार के परिस्थिति कारको का प्रभाव पड़ता है | यह स्मरणीय है कि परिस्थिति से ने केवल इस बात का निर्धारण होता है कि नेता कौन होगा, बल्कि इस बात का भी निर्धारण होता है कि वह किस प्रकार का नेता होगा। सैनफोर्ड के अनुसार सत्ताधारी अनुयायी सत्ताधारी नेता पसन्द करते है | हाल्पिन के अनुसार कम खतरे वाली परिस्थितियों में सदस्य उन्मुख तथा अधिक खतरे वाली परिस्थिति में कार्य उन्मुख नेता के उभरने की संभावना अधिक रहती है |

समय -सिद्धांत या परिस्थिति सिद्धांत के पक्ष में अनेक प्रमाण उपलब्ध है | फिर भी यह सिद्धांत नेतृत्व के उद्भव एवं विकास की पूरी व्याख्या नहीं कर पाता है | यह सिद्धांत इस बात की व्याख्या नहीं कर पाता है कि समान परिस्थिति रहने पर भी क्यों कुछ लोग बराबर नेता बनते रहते है, ओर कुछ लोग हमेंशा अनुयायी बने रहते हैं | असलियत यह है कि शीलगुण सिद्धांत तथा परिस्थिति सिद्धांत एक-दूसरे के पूरक हैं। वरशेल तथा कूपर के शब्दों में ''इस प्रकार, ऐसा लगता है कि नेतृत्व का सर्वेश्रेष्ठ सिद्धांत वह जो परिस्थिति तथा शीलगुण दोनों विशेषताओं पर विचार करता है।'' इसे परस्पर सिद्धांत कहते हैं |

16.8 नेतृत्व के गुण

एक नेता में अपने वर्ग के अनुयायियों के कार्यों एवं भावनाओं को प्रभावित करने के लिए कुछ आवश्यक गुण होने चाहिए, जो निम्नलिखित हैं-

1. शारीरिक शक्ति

सफल नेतृत्व के लिए कठोर शारीरिक एवं मानसिक परिश्रम करना आवश्यक है | इसलिए अधिक समय और विषम परिस्थितियों में कार्य करने के लिए शारीरिक एवं मानसिक शक्ति होना आवश्यक है।

2. परिपक्वता

सफल नेतृत्व के लिए भावनात्मक परिपक्वता आवश्यक है | नेता को अपने निर्णय भावनाओं के बहाव में न आकर, विवेकपूर्ण एवं गहन विचार के उपरान्त ही लेना चाहिए। उसको भली प्रकार के पक्षपातों, दबावों, प्रलोभनों से ऊपर उठकर स्वतंत्र विचारों का सृजन करना चाहिए और अपने समस्त कार्यों और निर्णयों में उचित क्रमबद्धता और तारतम्यता रखनी चाहिए।

3. अंतर्दृष्टि

मानवीय आवश्यकताओं, व्यवहारों, आवश्यकताओं, भावनाओं, आकांक्षाओं और मनःस्थितियों की क्षमता एक सफल नेता का आवश्यक गुण है क्योंकि नेतृत्व का सम्बन्ध मानवीय क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं से ही विशेष रूप से होता है | यदि मानवीय सम्बन्धों को समझने की उसमें सूक्ष्म दृष्टि है, तो वह अपने निर्णय या व्यवहार की सम्भावित प्रतिक्रियाओं का सरलता से पूर्वानुमान कर सकता है।

4. वस्तुनिष्ठता

अपने व्यवहार और दृष्टिकोण में नेता को वस्तुनिष्ठ होना चाहिए। उसे कोई भी निर्णय डर, दबाव, पक्षपात, प्रलोभन या पूर्वाग्रहों से प्रेरित होकर नहीं लेना चाहिए । उसका हर निर्णय तथ्यों के विवेकपूर्ण और तर्कसंगत विश्लेषण पर आधारित होना चाहिए।

5. समानुभूति

चीजों को वस्तुनिष्ठ होकर, दूसरे दृष्टिकोण से देखने और समझने की योग्यता को परानुभूति कहते है | अर्थात अपने आपको मानसिक एवं भावनात्मक रूप से दूसरे की स्थिति में रखने की क्षमता को परानुभूति या तदानुभूति कहा जाता है | परानुभूति के लिए यह परम आवश्यक है कि व्यक्ति में दूसरों के प्रति सम्मान तथा उसके अधिकारों, विश्वासों और भावनाओं के लिए आदरभाव हो । यह लक्षण नेता को जिन व्यक्तियों से उसका सम्पर्क है, की प्रतिक्रियाओं, गतिविधियों तथा भावनाओं का पूर्वानुमान करने में सहायक होगा, जो उनके परिपेक्ष्य में वह उचित मोर्चाबन्दी भी कर सकेगा।

6. आत्मजागरूकता

नेतृत्व की जन्म अन्तःकरण से होना चाहिए। बाहरी शक्तियां इस इच्छा को उत्तेजित तो कर सकती है किन्तु आवश्यक तत्व जो प्रेरित करता है वह आत्मभिप्रेरण ही है | आत्मभिप्रेरण बहुत प्रकार से परिलक्षित हो सकता है, जैसे संकल्प की दृढ़ता, लम्बी अवधि तक कार्य करते रहने की प्रबल इच्छा, तीव्र लगन और असीम उत्साह। कोई भी बड़ी सफलता बिना आत्मभिप्रेरण के प्राप्त नहीं होती है।

7. सम्प्रेषण कौशल

अच्छे नेतृत्व के लिए यह आवश्यक है कि नेता में बातचीत, भाषण एवं लेखन के माध्यम से अपने विचारों और भावों को स्पष्ट, सुनिश्चित तथा शक्तिशाली ढंग से व्यक्त करने की क्षमता हो और दूसरों के भावों और विचारों को समझने और संक्षेप में उसका सार ग्रहण कर लेने की योग्यता हो। संदेशवाहन की क्षमता की आवश्यकता अनुनय-विनय करने, सूचना आदान-प्रदान करने, अभिप्रेरित एवं निर्देशित करने तथा स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त करने आदि में होती है।

8. शिक्षण एवं मार्गदर्शन

एक शिक्षक के आवश्यक गुण भी नेतृत्व के लिए आवश्यक है | किसी कार्य को स्वयं प्रदर्शित कर दिखाने की क्षमता, अनुयायियों की त्रुटियों को सुधारने एवं उन्हें आगे बढ़ाने की योग्यता तथा प्रश्न पूछने एवं सुझाव देने की क्षमता भी सफल नेतृत्व के लिए आवश्यक है।

9. व्यवहार कुशलता

नेतृत्व के लिए व्यवहार-कुशलता भी आवश्यक है | नेता में अपने वर्गानुयायियों एवं उनकी शक्तियों और कमजोरियों को समझने की भी योग्यता होनी चाहिए। उसमें उनके विश्वास पात्र बनने को चातुर्य होना चाहिए। उसे अपने अनुगामियों का सहायक मित्र और सुहृदय होना चाहिए। उनसे सम्पर्क बनाए रखना चाहिए एवं उसमें अपने अनुयायियों को सफलता प्राप्त होते देखने की आन्तरिक इच्छा होनी चाहिए।

10. दक्षता

नेता को अपने क्षेत्र से सम्बन्धित सभी विषयों, सिद्धान्तों, कार्यविधियों आदि की सम्पूर्ण जानकारी एवं क्षमता होनी चाहिए जो स्वयं अनभिज्ञ है वह दूसरों का मार्गदर्शक कैसे बन सकेगा। गुणों की यह सूची केवल संकेतात्मक है, परिपूर्ण नहीं है | यद्यपि यह सत्य है कि उपर्युक्त गुणों से सम्पन्न किसी व्यक्ति का मिलना सरल बात नहीं है, लेकिन यह भी ठीक है कि उपर्युक्त गुणों से युक्त व्यक्ति अवश्य ही एक सफल एवं आदर्श नेता होगा।

11. पहल करना

पहलकदमी करना नेतृत्व का प्रथम कार्य है | नेता जिन कार्यों की आशा अपने अनुयायियों से करता है वे उसे स्वयं भी करने चाहिए। उसे कार्यों में पहल करके अनुयायियों के समक्ष आदर्श स्थापित करना चाहिए। अनुयायी अपने नेता के आचरण से अधिक प्रभावित होता है, और बातों से कम। अतः सफल नेतृत्व के लिए आदर्श और सच्चा आचरण अत्यन्त आवश्यक होता है | इसी प्रकार जिस दर्शन तथा जिन सिद्धान्तों और मूल्यों में नेता विश्वास उत्पन्न करना चाहता है, उसमें उसकी अपनी निष्ठा और पक्का विश्वास होना चाहिए। अगुआई के लिए नेता में दूरदृष्टि, भविष्य के पूर्वानुमान करने की क्षमता, प्रबल इच्छाशक्ति, दृढ़ संकल्प, मूल्यों और लक्ष्यों में पक्का विश्वास, जोखिम उठाने की तत्परता, क्रियाओं के नियोजन एवं मार्गदर्शन की योग्यता जैसे गुण अवश्य होने चाहिए। नेता को अपने आदर्श, आचरण और निष्ठा से अनुयायियों को अनुगमन करने के लिए प्रेरित करना चाहिए, न कि उन्हें पीछे से धक्का मारकर आगे बढ़ जाने को कहना चाहिए।

12. प्रतिनिधित्व

नेतृत्व का दूसरा कार्य प्रतिनिधित्व करना होता है | नेता अपने वर्ग के उद्देश्य, आदर्शों, समस्याओं, विश्वासों, आशाओं, मूल्यों तथा भावनाओं का संगठन एवं संगठन के बाहर प्रतिनिधित्व करताहै | इनके लिए उसे अपने को समर्पित करना होता है | इससे उसके वर्ग समूह की पहचान होती है | अतः मिथ्या आचरण और प्रदर्शन बहुत घाती और भ्रामक होता है।

13. व्याख्या

नेता का यह भी कर्तव्य है कि वह अनुगमनीय लक्ष्यों, समस्याओं और आदर्शों की विवेकपूर्ण व्याख्या एवं विश्लेषण करके अपने अनुयायियों को समझाए, जिससे कि वे उन्हें सभी संदर्भ में समझ सकें, उनके प्रति आश्वस्त हो सकें और अपना स्वैच्छिक सहयोग प्रदान कर सकें।

14. अभिप्रेरण

नेतृत्व का परम कर्तव्य है कि वह अपने समूह के लक्ष्यों की ओर प्रेरित करे और उनमें उत्साहवर्धन करे। उन्हें निरन्तर कार्य की प्रेरणा दे और उनके मनोबल को उठाये रखे। उन्हें व्याप्त असंतोष, कुण्ठाओं, निराशाओं, शंकाओं और भ्रान्तियों को दूर कर, उन्हें सही मार्ग और उद्देश्यों की ओर अभिप्रेरित करे। उनमें दृढ़ विश्वास और निष्ठा का सृजन करे और उनकी सुषुप्त इच्छाओं और कार्यों को लक्ष्यों की प्राप्ति की प्रबल भावनाओं में परिवर्तित करने का प्रयास करें।

15. एकता स्थापित शैली

समस्त वर्ग की क्रियाओं, हितों एवं सदस्यों को एकसूत्र में पिरोना, नेतृत्व का एक आवश्यक कार्य है| नेता को संगठन के सामूहिक उद्देश्यों और अनुयायियों के व्यक्तिगत हितों में सामंजस्य स्थापित करना चाहिए। उसे ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए जिसमें सामूहिक कार्य एवं परस्पर सहयोग की भावना को बल मिले, कार्यों एवं पहुंच में एकता स्थापित हो और उद्देश्य-विरोधी क्रियाओं पर रोक लगे।

16. पथ प्रदर्शक

पथ प्रदर्शक भी नेतृत्व का एक अपरिहार्य कार्य है | अनुयायियों का बिना सही मार्गदर्शन किए कोई भी नेतृत्व अपने उत्तरदायित्व को पूरा नहीं कर सकता। कठिनाईयों एवं उलझनों में उन्हें सही दिशा बताना, आने वाली परेशानियों को अपनी दूरदृष्टि से जानना एवं अनुयायियों को सचेत करना, उन्हें आगे क्या करना है, इसके लिए आवश्यक आदेश और निर्देश देना, समय-समय पर उनके समक्ष उचित राय और विचार रखना और अपने आचरण से उनके समक्ष सही आदर्श उपस्थित करना, अच्छे मार्गदर्शन के लिए आवश्यक है।

17. अनुशासन

वर्ग के सदस्यों में निष्ठा और अनुशासन बनाए रखना भी कुशल नेतृत्व का कार्य होता है | किसी भी सामूहिक और संगठित प्रयास के लिए अनुशासन एक आवश्यक शर्त होती है | इसलिए नेता को अनुयायियों की क्रिया-कलापों एवं गतिविधियों पर दृष्टि रखनी चाहिए। उन्हें भटकने से रोकना चाहिए और अपने कुशल नियंत्रण और निरीक्षण से उनको सही दिशा में लाने के लिए निर्देशित करना चाहिए।

18. संदेशवाहन

एक कुशल नेता संदेश वाहक का कार्य भी करता है | उसका दायित्व है कि वह अनुयायियों को समय-समय पर तथ्यों से अवगत कराये, उन्हें आवश्यक आदेश और निर्देश तथा उनकी समस्याओं, विचारों और भावनाओं को समझे जो कि एक गतिशील और कुशल नेतृत्व के लिए आवश्यक है।

16.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त नेतृत्व की आवश्यकता की जानकारी प्राप्त की। नेतृत्व के प्रकारों का अध्ययन किया। इसके साथ ही नेतृत्व के गुणों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की गयी।

16.10 शब्दावली

- **नेतृत्व-** व्यक्ति की वह मौखिक योग्यता जिसके द्वारा वह दूसरों के विचारों मनोवृत्तियों व व्यवहारों को बदलता है और समूह में केंद्रीय स्थान प्राप्त करता है |
- **अधिनायकवादी नेतृत्व** – इसमें अधिनायकवादी नेता कार्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति सदस्यों में भय उत्पन्न करके करता है |
- **निरंकुशवादी नेतृत्व-** इसमें निरंकुशवादी नेता शक्ति तथा निर्णय-प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु होता है | ऐसा नेता सदस्यों को उस पर विश्वास करने के लिए मजबूर करता है |
- **लोकतांत्रिक नेतृत्व-** लोकतांत्रिक नेतृत्व शक्ति का निर्णय-प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण पर आधारित है | जो भी निर्णय होता है उसमें समूह के सभी सदस्य भागीदार होते हैं |
- **हस्तक्षेप –विहीन नेतृत्व-** इसमें नेता समूह के ऊपर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डालता। वह न तो समूह के कार्यों में हस्तक्षेप करता है और न ही किसी प्रकार का सहयोग देता है |

16.11 अभ्यास प्रश्न

1. नेतृत्व की आवश्यकता किन-किन क्षेत्रों में पड़ती है? चर्चा कीजिए।
2. नेतृत्व के कितने प्रकार होते है? बोगार्डस ने नेतृत्व के कितने प्रकार बताए है? स्पष्ट कीजिए।
3. नेतृत्व की परिभाषा तथा स्वरूप के बारे में लिखिये |
4. नेतृत्व क्या होता है और इसकी क्या आवश्यकता होती है ?
5. सत्तावादी तथा प्रजातांत्रिक नेतृत्व में अन्तर बताएँ |
6. नेतृत्व का उद्भव या आविर्भाव किस प्रकार होता है ?
7. नेतृत्व के किन किन गुणों की आवश्यकता होती हैं ?

16.12 संदर्भ ग्रंथ

- मिश्रा, पी0डी0 एवं मिश्रा बीना, असामान्य व्यवहार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1982
- शर्मा, सीमा, सामान्य मनोविज्ञान, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2011.
- मूरजानी, जानकी सामाजिक मनोविज्ञान, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2007.
- शर्मा, सुनीता, व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्त, रावत प्रकाशन, 2012
- मिश्रा, महेन्द्र कुमार, असामान्य मनोविज्ञान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2011
- सिंह, अरूण कुमार, आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।
- वर्मा, रामपाल सिंह, नैदानिक मनोविज्ञान, विनो पुस्तक मंदिर, आगरा, 1981

- चैबे, सरयू प्रसाद, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान के मूल तत्व, काॅन्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2002
- चैबे, सरयू प्रसाद, सामान्य मनोविज्ञान के मूल तत्व, काॅन्सेप्ट पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2005
- सुलेमान, मोहम्मद एवं तौबाब मुहम्मद, असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, 2004
- सिंह, रतन, सामाजिक मनोविज्ञान, ओमेंगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2009
- मिश्रा, पी0डी0, एवं मिश्रा बीना, व्यक्ति एवं समाज, न्यू रायल बुक कम्पनी, लखनऊ, 2010

इकाई -17

सामाजिक समस्याओं का अर्थ और विशेषताएँ, सामाजिक समस्याओँ के प्रकार

Meaning and Characteristics of Social Problems, Types of Social Problems

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 सामाजिक समस्या की अवधारणा, अर्थ और परिभाषा

17.4 सामाजिक समस्याओं की विशेषताएँ

17.5 सामाजिक समस्याओं के प्रकार

17.6 सामाजिक समस्या की प्रकृति

17.7 सामाजिक समस्या की कारण

17.8 सारांश

17.9 शब्दावली

17.10 निबंधात्मक प्रश्न

17.11 अतिरिक्त संदर्भ ग्रंथ सूची

17.1 प्रस्तावना

व्यक्ति और समाज एक दूसरे पर आश्रित हैं, जहाँ समाज ने एक ओर मानवीय अस्तित्व प्रदान किया हाय, वही समाज द्वारा निर्धनता, बेकारी जैसी विविद समस्याएं भी उत्पन्न हो गयी हैं| मादक द्रव्यों का सेवन,मद्यपान,आंतकवाद,गरीबी,बेरोजगारी और अपराध व्यक्तिगत समस्याएं नहीं हैं किन्तु जनसाधारण को समान्य रूप से प्रभावित करती है | व्यक्तिगत समस्या वह है जो एक व्यक्ति या एक समूह को प्रभावित करती है | उसका समाधान उस व्यक्ति/समूह के निकटतम वातावरण में होता है | इसके विपरित जन-विशय (public issue) वह है जिसका पूरे समाज पर या समाज की बड़ी संख्या पर प्रभाव पड़ता है | एक समाजशास्त्री का लक्ष्य यह जानना होता है की संरचनाओंके कार्य-निर्वाह में ये समस्याएं किस प्रकार उत्पन्न होती है | वह (समाज शास्त्री) समाज में आपसी सम्बंधों के विभिन्न संरूपो की कार्यप्रणाली का तथा लोगों पर उनका क्या प्रभाव पडता है, का अध्ययन करता है | वह इन समस्याओं के समाधान के लिये यह देखता है कि समाजिक संरचनाओंका किस प्रकार पुनर्गठन हो सकता है एवं समाजिक व्यवस्थाओं की किस प्रकार पुन: संरचनाक हो सकती है |

सिद्धान्त को प्रयोग से जोडने के फलस्वरूप समस्या के समाधान के लिये वैज्ञानिक प्ररिप्रेक्ष्य मिल जाता है।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे-

- सामाजिक समस्या की अवधारणा, अर्थ और परिभाषा |
- सामाजिक समस्याओं की विशेषताएँ |
- सामाजिक समस्याओं के प्रकार |
- सामाजिक समस्या की प्रकृति |
- सामाजिक समस्या की कारण |

17.3 सामाजिक समस्या की अवधारणा,अर्थ और परिभाषा

समाजिक समस्या को ''सामाजिक आदर्श का विचलन माना गया है जो सामूहिक प्रयत्न से ही ठीक हो सकता है।'' (वाल्श और फरफे,1961) | इस परिभाषा में दो तत्व महत्वपूर्ण हैं: (i) एक स्थिति जो आदर्श से कम है, यानि कि जो अवांछनीय या असाधारण है, और (ii) जो सामूहिक प्रयत्न से ठीक हो सकती है | यद्यपि इसका निर्धारण करना सरल नहीं है कि कौन सी स्थिति आदर्श है और कौन सी नहीं, और ऐसा कोई मापदंड भी नहीं जिसे इसको जांचने के लिये प्रयोग में लाया जा सके, फिर भी यह स्पष्ट है कि सामाजिक आदर्श कोई मनमाना विचार या मत नहीं है, और 'सामाजिक समस्या ' "शब्द उसी 'विषय ' के लिये प्रयोग किया जाता है जिसे सामाजिक आचार-शास्त्र (जो सामूहिक संबंधोमें आचार-व्यवहार को सही और गलत बतलाता है) और समाज 'जो सार्वजनिक कल्याण को प्रोत्साहित करता है और सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखता है, प्रतिकूल समझते हैं | विषय ऐसा भी होना चाहिये जिसे एक व्यक्ति स्वं समाधान न कर सके | यदि किसी व्यक्ति को नौकरी चाहिये और उसको पाने के लिए उसे दूसरों के साथ प्रतियोगिता में भाग लेना पड़ता है तो ये केवल व्यक्तिगत समस्या है | इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति को मादक प्रदार्थो की आदत पड गई है और उसे छोड़ने के लिए उसे यदि किसी चिकित्सालय या मनोचिकित्सालय में भर्ती होना पड़ता है तो वह भी उसकी व्यक्तिगत समस्या है | दूसरी ओर यदि किसी देश में तीन चार करोड़व्यक्ति बेरोजगार हैं और कोई व्यक्ति अकेला उसके लिए प्रभावी कदम नहीं उठा सकता तों उसके समाधान के लिए एक संगठित प्रयास की आवश्यकता है | इस प्रकार एक तरह की परिस्तिथि में एक समस्या व्यक्तिगत समस्या होती हैं तों दूसरी में वही एक सामाजिक समस्या | परन्तु समय के साथ साथ सामाजिक समस्याए बदलती रहती हैं |

सामाजिक समस्याओं को समाजशास्त्रियों ने भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों से समझाने का प्रयास किया है | इन सभी विद्वानों ने सामाजिक समस्या के विभिन्न स्वरूपों को निम्न परिभाषाओं के आधार पर समझने का प्रयास किया है |

1. **अरनोल्ड एम. रोज** लिखते हैं कि सामाजिक समस्या एक ऐसी अवस्था है जो किसी समूह के द्वारा स्वयं के सदस्यों के लिए असंतोष के उद्गम के रूप में पाई जाती है तथा इसमें उन विकल्पों को मान्यता प्रदान की जाती है जिसके द्वारा कोई समूह अथवा इसका सदस्य किसी ने किसी प्रकार का परिवर्तन लाने के लिए प्रेरित होता है | इसे (सामाजिक परिस्थिति / अवस्था) सामाजिक समस्या इसलिए स्वीकार किया जाता है क्योंकि यह सामाजिक परिवेश में ही पाई जाती है और इसके उत्तरदायी कारक सामाजिक 'परिवेश में ही विद्यमान रहते हैं |
2. **पॉल एच. लेडिस** के अनुसार सामाजिक समस्याएं व्यक्तियों के कल्याण से सम्बन्धित अपूर्ण आकांक्षाए होती है | सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में लेंडिस का अभिप्राय यह है कि जब व्यक्ति की इच्छाएं, आवश्यकताएं अथवा आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो पाती तब वे सामाजिक समस्याओं का स्वरूप ले लेती है |
3. **रिचर्ड सी. फुलर** एवं रिचर्ड मेंयर्स का कथन है कि व्यवहार के जिन मानदण्डों अथवा परिस्थितियों को किसी समय विशेष में समाज के अधिक सदस्य अवांछनीय स्वीकार करते हैं, सामाजिक 'समस्याएं कहलाती हैं | इन विद्वानों की मान्यता है कि इन समस्याओं के निराकरण तथा कार्यक्षेत्र को सीमित करने के लिए सुधारात्क नीतियों, कार्यक्रमों एवं सेवाओं की अपरिहार्यता होती है।
4. **रोब अर्ल एवं जी. जे. सेल्जनिक** सामाजिक समस्या के संदर्भ में लिखते हैं कि यह (सामाजिक समस्या) मानवीय सम्बंधों को खतरनाक तरीके से प्रभावित करती है और समाज के अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न कर देती है तथा अनेक लोगों की आशाओं पर तुषारापात करती है।
5. **क्लेरेंस मार्श केस** लिखते हैं कि सामाजिक समस्या का अभिप्राय किसी ऐसी सामाजिक परिस्थिति से है जो किसी भी समाज में योग्य अवलोकनकर्ताओं का ध्यान आकर्षित करती है तथा सामुहिक अथवा सामाजिक क्रियाविधि के द्वारा समाधान निकालने का प्रयास करती है।
6. **फ्रांसिस ई. मेंरिल** तथा एच. डब्ल्यू एल्डरिज सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति के संदर्भ में लिखते हैं कि सामाजिक समस्याएं उस अवस्था में जन्म लेती है जब गतिहीनता के कारण काफी संख्या में लोग स्वयं की अपेक्षित भूमिकाओं के निर्वहन में असमर्थ होते हैं |
7. **शेपर्ड तथा केस** के अनुसार सामाजिक समस्या समाज की कोई भी एक ऐसी सामाजिक दशा होती है जिसे समाज के बहुत बड़े भाग या शक्तिशाली भाग द्वारा अवांछनीय तथा ध्यान देने योग्य समझा जाता है।
8. **मेरी ई.वाल्श एवं पॉल एच.** फर्फ का मत है कि सामाजिक समस्याएं सामाजिक आदर्शो का विचलन है जिनका निराकरण सामूहिक प्रयासों से ही सम्भव हो सकता है।

9. **पॉल बी हॉर्टन एवं जीराल्ड आर. लेस्ती** लिखते है कि सामाजिक समस्या एक ऐसी स्थिति है जो अनेक व्यक्तियों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है तथा जिसका हल समूह द्वारा सामूहिक क्रिया द्वारा निकाला जाता है।
10. **रोबर्ट के. मर्टन एवं निस्वेत** का मत है कि सामाजिक समस्या व्यवहार का एक ऐसा रूप है जिससे समाज का एक बड़ा भाग व्यापक रूप से स्वीकृत तथा अनुमोदित मानदण्डो का उल्लंघन मानता है।
11. **वींन वर्ग** ने सामाजिक समस्या के निम्नलिखित घटकों का उल्लेख किया है : –

    1. वे व्यवहार प्रतिमान जिन्हें समाज के अधिकांश लोग आपत्तिजनक मानते हैं, आपत्तिजनक सामाजिक समस्या कहलाती है।
    2. सामाजिक समस्याएं समय, परिस्थिति, काल एवं सामाजिक दृष्टिकोण के आधार पर परिवर्तित हो जाती है।
    3. जनसंचार के माध्यम–दूरदर्शन, समाचार पत्र–पत्रिकाएं, रेडियो, चलचित्र, सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में समाज में जागृति पैदा करने में अहम भूमिका का निर्वहन करते हैं |
    4. सामाजिक समस्या सामाजिक प्रतिमान एवं सामाजिक मूल्य सापेक्ष होती है।
    5. सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण सामाजिक सम्बन्धों पर इसके प्रभाव को मद्देनजर रखते हुए किया जाता है।

फुल्लर सामाजिक समस्या के विश्लेषण में तीन तत्वों को प्रधानता प्रदान करते हैं –

1. **चेतनता :** चेतनता से तात्पर्य समाज के अधिकांश लोगों की यह मान्यता एवं विश्वास है कि समाज की अमुक दशा या परिस्थिति, समाज में मान्यता प्राप्त मानदण्डों एवं संस्थागत प्रतिमानों के प्रतिकूल व्यवहार है तथा इसके निराकरण एवं उन्मूलन हेतु समुचित प्रयासों की आवश्यकता होती है, अन्यथा यह समाज का विघटन कर सकती है।
2. **नीति निर्धारण :** समाज में सामाजिक समस्या के अस्तित्व को स्वीकार कर लेने के पश्चात इसके निराकरण एवं उन्मूलन के लिए लोगों से सुझाव मांगे जाते हैं तथा कमेंटियों की स्थापना की जाती है | इनके द्वारा सुझाए गए अनेक सुझावों में से कतिपय सुझावों के व्यावहारिक पक्षों को मद्देनजर रखते हुए, वर्णित सामाजिक समस्या के समाधान, निराकरण एवं उन्मूलन के वांछित प्रयास किए जाते हैं एवं उक्त विषय में स्पष्ट नीति निर्धारित की जाती है।
3. **सुधार :** सामाजिक समस्या के उपयुक्त साधन निर्धारित करने के पश्चात इन्हें व्यावहारिक रूप में प्रयुक्त किया जाता है तथा वांछित कार लाने के प्रयास किए जाते हैं|:-

सामाजिक समस्या की उपर्युक्त वर्णित परिभाषाओं के अनुशीलन से निम्नांकित निष्कर्ष स्थापित किए जा सकते हैं –

1. सामाजिक समस्या एक ऐसी अवस्था है जो सापेक्षिक रूप से अनेक लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है।
2. सामाजिक समस्या को समाज के अधिकांश लोगों द्वारा सामूहिक कल्याण के लिए खतरा माना जाता है।
3. सामाजिक समस्या सम्पूर्ण समाज के अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न करती है।
4. यह एक ऐसी कष्टप्रद अवांछनीय दशा है जो व्यक्ति एवं समाज के विकास में ,बाधा उत्पन्न करती है।
5. सामाजिक समस्या के प्रति अधिकांश लोग जागरूक होते हैं तथा इसके निराकरण हेतु सजग प्रयत्नशील रहते हैं |
6. सामाजिक समस्या के निराकरण हेतु समाज द्वारा वांछित प्रयास किए जाते हैं | इसके नियन्त्रण के लिए संस्थागत अभिकरण पाए जाते हैं |
7. सामाजिक समस्या के विषय में लोगों का यह दृढ़ विश्वास होता है कि समाज यह दशा सामाजिक मूल्यों का पतन कर देती है।
8. सामाजिक समस्या के अस्तित्व में आने के पश्चात् इसका निराकरण करने के लिए अनेक सुझावों में से किसी एक को स्वीकार कर तदनुरूप साधनों को प्रयुक्त किया जाता है जिससे कि इसको समूल रूप से नष्ट किया जा सकें।

सार रूप में हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक समस्याऐं किसी भी समाज की वे दशाएँ एवं परिस्थितियाँ हैं जो समाज के अस्तित्व, परस्पर अन्तनिर्भरता, सुदृढता तथा स्थापित मूल्यों के लिए खतरा उत्पन्न करती हो। सामाजिक समस्याएं सामूहिक कल्याण में बाधा उत्पन्न कर समाज को सचेतन एवं जागरूक बनाती हैं तथा इसके निराकरण एवं समाधान हेतु वांछित प्रयास किये जाते हैं |

17.4 सामाजिक समस्याओं की विशेषताएँ

वेनबर्ग (1960: 4) के अनुसार सामाजिक समस्याएं ऐसी व्यावहारिक संरूप और स्थितियां होती हैं जो सामाजिक प्रक्रियाओं से उत्पन्न होती हैं और समाज के कई सदस्य इनको इतना आपत्तिजनक और अवांछनीय मानते हैं कि उन्हें विश्वास हो जाता है कि इनका सामना करने के लिये सुधारक नीतियां, कार्यक्रम और सेवाएं आवश्यक है | वेनबर्ग ने समाजिक समस्याओं की छ: विशेषतायें बतलाई है:

1. सामाजिक समस्याएं वे है जिन्हे समाज के कई सदस्य आपत्तिजनक मानते हैं | इसलिये उन प्रतिकूल स्थितियों को जिन्हें समाज निन्दनीय नहीं मानता, सामाजिक समस्या नहीं माना जा सकता। उदाहरण के लिए यदि मदिरापान को समाज आपत्तिजनक नहीं समझता तो वह सामाजिक समस्या नहीं है | परन्तु यदि समाज मदिरा सेवन में अन्तर्निष्ठ समस्याओं के प्रति सजग है और उन पर वाद-विवाद करता है,उसके परिणामों का अध्ययन करता है और उसे नियन्त्रण में रखने के लिये किसी सुधारक कार्य की रूपरेखा बनाता है तो उसे सामाजिक समस्या का दर्जा प्राप्त हो जाता है, भले ही उसकी मूल स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ हो।

2. सामाजिक समस्याएं बदल जाती है यदि उनसे संबंधित व्यवहार के संरूपो की भिन्न-भिन्न रूपों से व्याख्या की जाती है | उदाहरण के लिऐ कुछ दशकों पूर्व तक मानसिक रोग को पागलपन कहा जाता था और इसको इतना लज्जाजनक माना जाता था कि परिवार अपने सदस्य के मानसिक रोग को गुप्त रखते थे। अब मानसिक रोग को एक प्रकार का 'विचलित व्यवहार ' (deviant behaviour) माना जाता है, और इसलिए इसका उपचार अब अधिक वास्तविक और प्रभावी ढंग से किया जाता है।

3. सामाजिक समस्याओं के क्षेत्र और महत्ता के बारे में जागरूकता उत्पन्न करने में जन संचार माध्यम (जैसे अखबार, दूरदर्शन, आकाशवाणी, पत्रिकाएं, सिनेमा) एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

4. सामाजिक समस्याएं समाज के मूल्यों और संस्थाओं के संदर्भ में देखी जानी चाहिये। उदाहरणार्थ, अमेंरिका में प्रजातीय प्रतिद्वन्द्व की समस्या भारत की छूआछूत की समस्या से भिन्न है।

5. सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण उन पर सामूहिक प्रतिक्रियाओं और सामाजिक संबंधों से पडने वाले प्रभावों को ध्यान में रख कर किया जाना चाहिये।

6. सामाजिक समस्याएं इतिहास के साथ-साथ बदलती रहती है | इसीलिऐ समकालीन समस्याएं आज के समाज के मामले है, जैसे कि 1947-48 में शरणार्थियों के बसाने की समस्या 1968 में असम के शरणार्थियों को बसाने की समस्या से भिन्न थी, वैसे ही 1988-89 में श्रीलंका से आये हुए तमिलों की या सितंबर,1990 में कुवैत और इराक में और जुलाई 2000 में फिजी से आये हुए भारतीयों की। इसी प्रकार इंगलैंड में 1988 में अप्रवासियों की समस्या 1967 और 1947 की समस्याओं से भिन्न थी।

इसके अतिरिक्त ,उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम सामाजिक समस्याओं की निम्नांकित विशेषताएं पहचान सकते हैं:

- सभी सामाजिक समस्याएं 'आदर्श ' स्थिति से विचलन है।
- सभी सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति का कोई समान आधार होता है।
- सभी सामाजिक समस्याएं मूल में सामाजिक है।
- सभी सामाजिक समस्याएं अंतर्संबंधित होती है।
- सभी सामाजिक समस्याओं के परिणाम सामाजिक होते है, यानि कि वे समाज के सभी खण्डों पर प्रभाव डालती है।
- सामाजिक समस्याओं का दायित्व सामाजिक है तथा उनके निवारण के लिऐ एक सामूहिक उपागम की आवश्यकता होती है।

17.5 सामाजिक समस्याओं के प्रकार

जोन जे. केन ने सामाजिक समस्याओं को दो भागो में विभाजित किया है :–

1. प्रकट सामाजिक समस्याएं
2. प्रच्छन्न/गुप्त सामाजिक समस्याएं

1. प्रकट सामाजिक समस्या :–

प्रकट सामाजिक समस्या एक ऐसी अवांछित सामाजिक अवस्था है जिसके " राज्य अथवा निजी अभिकरणों अथवा दोनों के द्वारा उपचारात्मक प्रयास किए जाते हैं | आमजन को प्रकट सामाजिक समस्या के प्रति जागरूक एवं सजग बना दिया जाता है और लोगों को यह विश्वास हो जाता है कि अमुक दशा समाज के अस्तित्व एवं मूलभूत व्यवस्थाओं के सुचारू रूप से संचालन के लिये खतरा, अपराध, बाल अपराध मद्यपान, बेरोंजगारी, जनसंख्या, विस्फोट, निर्धनता आदि सामाजिक समस्याओं को इस श्रेणी में समाविष्ट किया जाता है।

2. प्रच्छन्न / गुप्त सामाजिक समस्या:

गुप्त सामाजिक समस्या समाज की वह अवांछित दशा होती है जिसके निराकरण के लिये किसी ने प्रकार का उपचारात्मक प्रयास नहीं किया गया है, तथापि वह समाज के लिये खतरा होती। वस्तुत: प्रच्छन्न सामाजिक समस्या वास्तविक रूप में, यथार्थ के धरातल पर जो समाज को किसी भी प्रकार का खतरा तो पैदा नहीं करती परन्तु समाज का एक वर्ग इसे समाज के अस्तित्व के लिये भयावह अनुभूत करता है | यह तब तक सामाजिक समस्या के रूप में प्रतीत नहीं होती जब तक इसके प्रति लोगों में जगशित एवं जागरूकता पैदा नहीं की जाती और इसके उन्मूलन के लिए सामूहिक प्रयास नहीं किये जाते परन्तु, जब इन समस्याओं के प्रति समाज में जागरूकता उत्पन्न हो जाती है तब ये प्रकट सामाजिक समस्याओं का रूप ले लेती है तथा इनके समाधान एवं निराकरण हेतु समाज द्वारा वांछित प्रयास किए जाते हैं | इस सन्दर्भ में यह उल्लिखित करना उपयुक्त होगा कि अस्पृश्यता, सतीप्रथा, बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह, असमानता सदियों से अप्रकट सामाजिक समस्याएँ थीं, परन्तु धीरे–धीरे समाज में जागरूकता आने के पश्चात निजी संगठनों एवं समाज के पुरोधाओं ने इनके समाधान एवं उन्मूलन के लिए सामूहिक प्रयास किए।

इसके अतिरिक्त क्लैरैन्स मार्षल केस ने (1946: 3-4) सामाजिक समस्याएं उनकी उत्पत्ति के आधार पर चार प्रकार की बतलाई है:

(i) वे जिनका कारण प्राकृतिक पर्यावरण के किसी पहलू से होता है, (ii) जो सम्बन्धित जनसंख्या की प्रकृति या उससे वितरण में अन्तर्निहित होती है: (ii) जो कमजोर सामाजिक संगठन के कारण पैदा होती है: और (iv) जो समाज के सांस्कृतिक मूल्यों के टकराव से बनती है।

फुलर और मेंयर्स (1941: 367) ने तीन प्रकार की समस्याएं बतलाई है: (i) प्राकृतिक समस्याएं: यद्यपि समाज के लिये ये समस्याएं होती है | किन्तु उनका कारण मूल्य-संघर्ष पर आधारित नहीं होता: उदाहरणार्थ, बाढ़ और अकाल: (ii) सुधारात्मक समस्याएं: इन समस्याओं के दुष्प्रभावों के बारे में आपसी सहमति है, परन्तु उनके समाधान के बारे में मतभेद है: उदाहरण के लिये, अपराध, गरीबी, मादक पदार्थों के सेवन का आदि होना: और (iii) नैतिक समस्याएं: समस्याओं की प्रकृति और कारणों के बारे में आम सहमति नहीं है: उदाहरणार्थ, जुआ और तलाक।

17.6 सामाजिक समस्या की प्रकृति : व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्या

सामाजिक समस्या की अवधारणा को असंदिग्ध एवं स्पष्ट रूप से समझने के लिए व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्या के भेद को जानना अपरिहार्य है | व्यक्तिगत समस्या का तात्पर्य उस अवांछित अवस्था एवं परिस्थिति से होता है जो व्यक्ति के– समग्र व्यक्तित्व के विकास एवं अध्ययन में बाधा उत्पन्न करती है जिसके परिणाम स्वरूप उसके व्यक्तित्व में विघटन होने लगता है | लैमटं का मत है कि व्यक्तिगत समस्या वह परिस्थिति अथवा प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति अपना व्यवहार को समाज के अनुरूप स्थिर नहीं रख पाता। सामाजिक भूमिकाओं के चयन की प्रक्रिया में उसे असमंजस एवं भ्रम व्याप्त रहता है तथा उसके व्यक्तित्व में असंतुलन की स्थिति पैदा हो जाती है | वह संस्कृति द्वारा निर्धारित मानदण्डों एवं प्रतिमानों की अपेक्षाओं के अनुरूप पालना नहीं कर पाता जिससे उसके व्यवहार में विचलन तथा दृष्टिगोचर होता है | ई.आर.मॉवरर अपनी कृति **Disorganization Personal and Social** में लिखते हैं कि व्यक्तिगत समस्या व्यक्ति के उन व्यवहारों का प्रतिनिधित्व करती है जिन्हें संस्कृति द्वारा मान्य मापदंडो एवं प्रतिमानों के प्रतिकूल होते हैं तथा समाज उन्हें अस्वीकृति प्रदान करते हैं |

17.7 व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्या में अन्तर

1. व्यक्तिगत समस्या का प्रत्यक्ष सम्बन्ध एवं प्रभावक्षेत्र व्यक्ति विशेष तक सीमित रहता है | यह व्यक्ति की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाती है | व्यक्तिगत समस्या के समाधान हेतु व्यक्ति को ही प्रयास करना पड़ता है | सामाजिक समस्या का सम्बन्ध एवं प्रभाव क्षेत्र सम्पूर्ण समाज अथवा उसके एक बड़े भाग से होता है तथा इसके निवारण के लिए समाज सामूहिक रूप से प्रयत्नशील रहता है | यह समाज की निरन्तरता की भांति दीर्घ अवधि तक विद्यमान रहती है तथा इनके निवारण के पश्चात भी, ये समाज में किसी न किसी मात्रा में पाई जाती हैं|
2. व्यक्तिगत समस्या के जन्म के लिए व्यक्ति अथवा सीमित लोग ही उत्तरदायी होते हैं तथा इसका प्रभाव एवं परिणाम व्यक्ति तक ही सीमित रहता है | दूसरी ओर सामाजिक समस्या का जन्म समाज अथवा उसकी किसी इकाई द्वारा होता है | सामाजिक समस्या के परिणाम सम्पूर्ण समाज अथवा उसकी किसी इकाई से सम्बन्धित लोगों को ही प्रभावित करते हैं |
3. व्यक्तिगत समस्या व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व के विकास एवं उन्नयन में बाधा उत्पन्न करती है जिससे व्यक्ति के व्यक्तित्व में विघटन एवं असंतुलन की स्थिति पैदा हो जाती है परन्तु सामाजिक समस्या समाज की संरचना एवं संगठन को अव्यवस्थित कर देती है जिसमें समाज के विकास एवं प्रगति में बाधा उत्पन्न हो जाती है।

निम्नांकित चार्ट द्वारा व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्या के विभेद का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि ये परस्पर पृथक हैं, वरन इन दोनों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है | ये एक दूसरे से प्रभावित होती है तथा प्रभावित करने के साथ–साथ एक दूसरे को जन्म भी देती है।

क्र. स.	आधार	व्यक्तिगत समस्या	सामाजिक समस्या
1.	उत्पत्ति	व्यक्तिगत समस्या के लिए व्यक्ति स्वयं अथवा कुछ व्यक्ति उत्तरदायी होते हैं |	सामाजिक समस्या के उद्भव के लिए समाज की सामाजिक इकाईयाँ यथा– समूह, समुदाय, जाति अथवा कुछ सदस्य जिम्मेदार होते हैं |
2.	नुकसान	व्यक्तिगत समस्या सम्बन्धित व्यक्ति को ही नुकसान पहुंचाती है।	सामाजिक समस्याऐं समाज की कुछ इकाईयाँ या सम्पूर्ण संसार को नुकसान पहुंचाती है।
3.	प्रभाव क्षेत्र	व्यक्तिगत समस्या का सम्बन्ध एवं प्रभाव क्षेत्र व्यक्ति विशेष तक ही सीमित रहता है।	सामाजिक समस्या का सम्पूर्ण समाज अथवा इसकी इकाईयाँ को प्रभावित करता है।
4.	प्रभाव की प्रकृति	व्यक्तिगत समस्याएँ प्रभावित व्यक्ति के व्यक्तित्व का विखण्डन कर उसके व्यवहार को समाज के मानदण्डों एवं प्रतिमानों के प्रतिकूल बनाती हैं|	सामाजिक समस्याएं उस परिस्थिति में उत्पन्न होती है जब समाज के अधिकांश लोग समाज द्वारा स्वीकृत संस्थागत साधनों एवं सांस्कृतिक लक्ष्यों को अस्वीकृत कर देते हैं |
5.	लक्ष्य एवं साधन	व्यक्तिगत समस्याओं में व्यक्ति संस्थागत साधनों एवं सांस्कृतिक लक्ष्यों को त्याग देता है।	सामाजिक समस्याएं उस परिस्थिति में उत्पन्न होती है जब समाज के अधिकां शलोग समाज द्वारा स्वीकृत संस्थागत साधनों एवं सांस्कृतिक लक्ष्यों को अस्वीकृत कर देते हैं |
6.	बाधा क्षेत्र	व्यक्तिगत समस्या व्यंक्ति के व्यक्तित्व में असंतुलन उत्पन्न कर उसकी प्रगति एवं विकास में बाधा पैदा करती है।	सामाजिक समस्या समाज की प्रगति एवं विकास में बाधा उत्पन्न करती है।
7.	कालावधि	व्यक्तिगत समस्या का अस्तित्व व्यक्ति के जीवन काल तक ही सीमित रहता है | अत: यह सीमित अवधि तक ही विद्यमान रहती है।	सामाजिक समस्या दीर्घ अवधि तक समाज में विद्यमान रहती है | इसका अस्तित्व समाज में तब तक बना रहता है जब तक इसका निराकरण एवं उन्मूलन नहीं किया जाता। इन समस्याओं की समय अवधि, इनकी प्रकृति और निराकरण के उपायों की तीव्रता पर आधारित होती है।

8. समाधान	व्यक्तिगत समस्या से निजात पाने के लिये व्यक्ति एवं उससे सम्बन्धित कुछ लोग ही प्रयासरत रहते हैं |	सामाजिक समस्या का सम्बन्ध सम्पूर्ण समाज के अस्तित्व से सम्बद्ध होता है | इसीलिए इसके समान, निराकरण एवं उन्मूलन के लिए समाज अथवा समाज द्वारा निर्धारित अभिकरण एवं संस्थायें प्रयासरत रहती है।

17.8 सामाजिक समस्याओं के कारण

सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति अनेक कारकों एवं कारणों से होती है | समस्या की प्रकृति को समझकर ही कारणों का पता लगाया जा सकता है | यहाँ पर हम प्रमुख समाज वैज्ञानिकों के विचारों को उल्लिखित करने का प्रयास करेंगे।

रोबर्ट ए. निस्वेत ने सामाजिक समस्या के उद्भव के मूल में चार प्रमुख कारणों का उल्लेख किया है | ये निम्न प्रकार से हैं :–

1. संस्थाओं में संघर्ष
2. सामाजिक गतिशीलता
3. व्यक्तिवादी दृष्टिकोण
4. व्याधिकीय परिस्थिति

रॉब एवं सेल्जनिक ने सामाजिक समस्याओं के पांच प्रमुख कारणों को अपनी पुस्तक मेंजर सोश्यिल प्रोब्लम्स में उल्लिखित किया है | ये निम्न प्रकार से हैं :–

1. संगठित समाज के लोगों की पारस्परिक सम्बन्धों को सुचारू रूप से संचालित एवं नियमित करने की क्षमताओं का ह्रास होना।
2. समाज की संस्थाओं में विचलन का पाया जाना।
3. समाज के सदस्यों द्वारा समाज के मानदण्डों एवं नियमों का उल्लंघन करना।
4. समाज के मानदण्डों एवं मूल्यों का उचित रीति से एवं सम्यक रूप से सामाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा एक पीढी से दूसरी पीढी को हस्तान्तरण नहीं होना।
5. समाज के अधिकांश सदस्यों की आकांक्षाओं एवं अपेक्षाओं की संरचना में तारतम्यता का अभाव होना।

पॉल लैंण्डिस ने सामाजिक समस्याओं के चार प्रमुख कारणों का उल्लेख किया है, जो निम्नांकित हैं –

1. व्यक्तिगत समायोजन में असफलता का पाया जाना।
2. सामाजिक समस्या का त्रुटिपूर्ण होना।
3. संस्थागत समायोजन में असफलता का विद्यमान रहना।
4. सामाजिक नीतियों में संस्थागत विलम्बन का पाया जाना।

17.9 सारांश

उपर्युक्त वर्णित इकाई में आप सामाजिक समस्या की अर्थ , परिभाषा एवं अवधारणा से परिचित हुए होंगे। इस इकाई में सामाजिक समस्या की उत्पत्ति के प्रमुख कारक–कारण का भी वर्णन किया गया है| उक्त अध्याय को पढ़ने के बाद आप समझ पाए होंगे कि किस प्रकार एक सामाजिक समस्या अनेक सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित होती है तथा सामाजिक समस्या किस प्रकार समाज की व्यवस्था, स्थायित्व एवं संतुलन के लिए खतरा पैदा कर सकती है | जहां भी समाज है वहां पर सामाजिक समस्या तो विद्यमान रहती है । भारतीय समाज में बहुत सी सामाजिक समस्याएं है | यदि सामाजिक समस्या की प्रकृति, मूलभूत कारक एवं कारणों को समझा जाए , तों इसके समाधान के लिए प्रयास किए जा सकते हैं ।

17.10 कठिन शब्द

- **सामाजिक समस्याएं-** सामाजिक समस्याएं किसी भी समाज की वे दशाएँ एवं परिस्थितियाँ हैं जो समाज के अस्तित्व, परस्पर अन्तनिर्भरता, सुदृढता तथा स्थापित मूल्यों के लिए खतरा उत्पन्न करती हो ।

17.11 बोध प्रश्न

1. सामाजिक समस्या से आप क्या समझते हैं?
2. सामाजिक समस्या की अवधारणा स्पष्ट कीजिए ?
3. सामाजिक समस्या के प्रकार के बारे में लिखिये ?
4. सामाजिक समस्या की विशेषताओ के बारे में विस्तार से लिखिये ?
5. व्यक्तिगत और सामाजिक समस्या में क्या अंतर होता है ?
6. सामाजिक समस्या के कारणों के बारे में विस्तार से लिखिये ?

17.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

- W Wallace Weaver: Social Problems.
- Roab Earl and G.J.Selznick : Mojor Social Problems.
- Paul H Landis : Social Prblems.
- Paul B.Horton and Gerald R Leslie: The Sociology of Social problems .
- Marry E. Walsh and Paul H. Furfey : Social Problems and Social Action.
- E.R. Mowrer : Disorganization – Personal and Social.
- Alex lnkles : what is Sociology.
- Elliott and Merrill : Social Disorganization.
- Martin H. Newmeyer : Social Problems and the Changing Society.
- Noel Timms: A sociological Approach to Social Problems.
- Robert E.L.faris: Socila Disorganization.

इकाई - 18

निरक्षरता,निर्धनता,और बेरोज़गारी

(Illiteracy, Poverty and Unemployment)

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 निरक्षरता अर्थ एवं अवधारणा :

18.4 निरक्षरता के मूलभूत कारण

18.5 निरक्षरता के दुष्परिणाम

18.6 निरक्षरता उन्मूलन हेतु प्रभावशाली साधन

18.7 निरक्षरता उन्मूलन हेतु सरकारी नीतियां, कार्यक्रम एवं प्रयास

18.8 निर्धनता अर्थ एवं अवधारणा

18.9 निर्धनता सापेक्षिक दृष्टिकोण

18.10 निर्धनता के स्वरूपमाप ,कारण ,

18.11 निर्धनता के दुष्प्रभाव

18.12 भारत में निर्धनता के उन्मूलन हेतु पंचवर्षीय योजनाओं में किये गये प्रयास

18.13 निर्धनता उन्मूलन हेतु सुझाव

18.14 बेरोजगारी की अवधारणा, अर्थ एवं विशेषताएँ

18.15 बेरोजगारी के प्रमुख तत्व

18.16 बेरोजगारी के स्वरूप

18.17 बेरोजगारी के प्रमुख कारण

18.18 बेरोजगारी के दुष्प्रभाव

18.19 बेरोजगारी दूर करने हेतु विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के प्रयास

18.20 सारांश

18.21 शब्दावली

18.22 बोध–प्रश्न

18.23 संदर्भ ग्रंथसूची

18.1 प्रस्तावना

हम 2वी1 सदी में प्रवेश कर चुके हैं | 2वी1 शताब्दी में प्रवेश करने से पूर्व हमने इसके लिए बहुत तैयारी की थी । इन तैयारियों में एक नया दृष्टिकोण एवं दृढ़ इच्छा शक्ति समाहित है | सामाजिक विचारकों एवं नियोजनकर्ताओं ने समानता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व, न्यायपरकता के आधार पर समाज को एक नई दिशा एवं दशा प्रदान करने का–संकल्प लिया है | भारतीय समाज को इन विचारों के आधार पर ऊँचा उठाने के लिए अनेक चुनौतियों का सामना भी करना पड़ रहा है | भारत की जनसंख्या एक अरब से भी अधिक हो चुकी है, जो कि चीन के बाद दूसरे स्थान पर है | भारत में जनसंख्या विस्फोटक स्थिति में पहुँच रही है | यह राष्ट्र निर्माताओं के लिए प्रमुख चुनौती, चिन्ता एवं चिन्तन का विषय है | भारत की 65 प्रतिशत से अधिक आबादी ग्रामीण अंचल से सम्बद्ध होने के कारण प्रमुख रूप से कृषि क्षत्र में कार्यरत है | ग्रामीण जनसंख्या मुख्य रूप से गरीबी, बेरोजगारी एवं अशिक्षा से त्रस्त है | शिक्षा के अभाव में वह आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के साथ ताल–मेंल बिठाने में असमर्थ एवं असहाय महसूस करती है | जिस राष्ट्र की आधी जनसंख्या अशिक्षित हो, उसे आधुनिक विकास की दौड़ में परमावश्यक चुनौतियों का सामना किस प्रकार करना पड़ रहा है, यह 'सहज ही समझा जा सकता है | भारत में लगभग 52 करोड़ श्रम शक्ति उपलब्ध है, जिसमें से 3 करोड़ लोगों को रोजगार की आवश्यकता है | इसके अतिरिक्त मानवीय एवं क्षेत्रीय विषमताएं स्थायी समस्या के रूप में विद्यमान है जो कि हमारे राष्ट्र की एकता एवं विकास के लिए खतरा उत्पन्न कर रही हैं | पिछली इकाई में हम सामाजिक समस्याओ के बारे में विस्तार से पढ़ चुके हैं | सामाजिक समस्या की अवधारणा को समझने के बाद व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्या के भेद को जानना अपरिहार्य है | व्यक्तिगत समस्या का तात्पर्य उस अवांछित अवस्था एवं परिस्थिति से होता है जो व्यक्ति के– समग्र व्यक्तित्व के विकास एवं अध्ययन में बाधा उत्पन्न करती है जिसके परिणाम स्वरूप उसके व्यक्तित्व में विघटन होने लगता है | व्यक्तिगत समस्या के लिए व्यक्ति स्वयं अथवा कुछ व्यक्ति उत्तरदायी होते हैं | सामाजिक समस्या के उद्भव के लिए समाज की सामाजिक इकाईयाँ यथा– समूह, समुदाय, जाति अथवा कुछ सदस्य जिम्मेदार होते हैं | व्यक्तिगत समस्या सम्बन्धित व्यक्ति को ही नुकसान पहुंचाती है | सामाजिक समस्याएं समाज की कुछ इकाईयाँ या सम्पूर्ण संसार को नुकसान पहुंचाती है | व्यक्तिगत समस्या का सम्बन्ध एवं प्रभाव क्षेत्र व्यक्ति विशेष तक ही सीमित रहता है | सामाजिक समस्या का सम्पूर्ण समाज अथवा इसकी इकाईयाँ को प्रभावित करता है | व्यक्तिगत समस्याएँ प्रभावित व्यक्ति के व्यक्तित्व का विखण्डन कर उसके व्यवहार को समाज के मानदण्डों एवं प्रतिमानों के प्रतिकूल बनाती हैं | सामाजिक समस्याएं उस परिस्थिति में उत्पन्न होती है जब समाज के अधिकांश लोग समाज द्वारा स्वीकृत संस्थागत साधनों एवं सांस्कृतिक लक्ष्यों को अस्वीकृत कर देते हैं | व्यक्तिगत समस्याओं में व्यक्ति संस्थागत साधनों एवं सांस्कृतिक लक्ष्यों को त्याग देता है | सामाजिक समस्याएं उस परिस्थिति में उत्पन्न होती है जब समाज के अधिकांश लोग समाज द्वारा स्वीकृत संस्थागत साधनों एवं सांस्कृतिक लक्ष्यों को अस्वीकृत कर देते हैं | व्यक्तिगत समस्या व्यक्ति के व्यक्तित्व में असंतुलन उत्पन्न कर उसकी प्रगति एवं विकास में बाधा पैदा करती है | सामाजिक समस्या समाज की प्रगति एवं विकास में बाधा उत्पन्न करती है | व्यक्तिगत समस्या का अस्तित्व व्यक्ति के जीवन काल तक ही सीमित रहता है | अत: यह सीमित अवधि तक ही विद्यमान रहती है | सामाजिक समस्या दीर्घ अवधि तक समाज में विद्यमान रहती है | इसका अस्तित्व समाज में तब तक बना रहता है जब तक इसका निराकरण एवं उन्मूलन नहीं किया जाता । इन समस्याओं की समय

अवधि, इनकी प्रकृति और निराकरण के उपायों की तीव्रता पर आधारित होती है | व्यक्तिगत समस्या से निजात पाने के लिये व्यक्ति एवं उससे सम्बन्धित कुछ लोग ही प्रयासरत रहते हैं | सामाजिक समस्या का सम्बन्ध सम्पूर्ण समाज के अस्तित्व से संबंधहोता है | इसीलिए इसके समान, निराकरण एवं उन्मूलन के लिए समाज अथवा समाज द्वारा निर्धारित अभिकरण एवं संस्थायें प्रयासरत रहतीहै | इन सब तथ्यों से यह कहा जा सकता है कि सामाजिक समस्याएं किस प्रकार व्यक्तिगत समस्याओ से अधिक जटिल और कठिन होती हैं | किसी भी समाज के विकास और शांति वातावरण के लिए सामाजिक समस्याओ का समाधान करना अति आवश्यक होता है | स्वंत्रता प्राप्ति के बाद से ऐसी बहुत सी सामाजिक समस्याएं हैं जिनका 67 साल बाद भी कोई समाधान नहीं हुआ है | इनमें से निरक्षरताऔर,निर्धनता, बेरोज़गारी प्रमुख हैं | प्रस्तुत इकाई में हम इनके बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करेगें |

18.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे-

- निरक्षरता तमूलभू ,अवधारणा : कारणदुष्परिणाम , |
- निरक्षरता उन्मूलन हेतु प्रभावशाली साधनसरकारी , नीतियां, कार्यक्रम एवं प्रयास |
- निर्धनता अर्थ एवं अवधारणासापेक्षिक , दृष्टिकोणमाप एवं उसके दुष्प्रभाव ,कारण ,स्वरूप , |
- भारत में के उन्मूलन हेतु पंचवर्षीय योजनाओं में किये गये प्रयास एवं सुझाव |
- बेरोजगारी की अवधारणा, अर्थ एवं विशेषताएँप्रमुख , तत्त्वप्रमुख ,स्वरूप , कारण एवं उसके दुष्प्रभाव |
- बेरोजगारी दूर करने हेतु विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के प्रयास |

निरक्षरता

स्वतंत्रता के बहुत पहले से भारत में निरक्षरता को विकास में बाधा के रूप में माना गया है | सामान्यता यह विश्वास रहा है कि निरक्षरता का काफी हद तक हटाये बिना भारत एक संगठित राष्ट्र नहीं बन सकता और अपने नागरिकों को उस कोटि का जीवन प्रदान नहीं कर सकता जिसकी उन्हें वर्षों से लालसा रही हैं | इसलिए कोई आश्चर्य नहीं है कि शिक्षा को साधारणरूप से और साक्षरता को विशेषरूप से देश की विकास प्रक्रिया से उच्च प्राथमिकता दी गई है।

साक्षरता की क्या परिभाषा है ? साक्षर कौन है ? वह व्यक्ति 'साक्षर' है जो किसी भाषा को पढ़ और लिख सकता है | भारत में जनगणना आयोग ने 1991 में ऐसे व्यक्ति को 'साक्षर' माना है जो किसी भारतीय भाषा को 'समझ' के साथ (with understanding) पढ़ और लिख सकता है न कि केवल पढ़ और लिख सकता है | वे जो पढ़ सकते हैं परन्तु लिख नहीं सकते, साक्षर नहीं है | क्या एक व्यक्ति को साक्षर मानने के लिये स्कूल में औपचारिक शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक नहीं है।

निरक्षरता के कारण भारत अन्य राष्ट्रों से पिछड़ गया है, क्योंकि निरक्षर लोग सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक जगत में पिछड़ जाते हैं | निरक्षरता के कारण ही अन्धविश्वास

एवं रूढ़ियों का जन्म होता है | इसके अतिरिक्त, निरक्षर लोग राष्ट्रव्यापी गम्भीर समस्याओं से भी अनभिज्ञ रहते हैं जो उन्हें प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करती है | उदाहरण के लिए, वर्तमान भारत में जनाधिक्य के रूप में विद्यमान जनसंख्या विस्फोट के मूल में निरक्षरता रूपी दानव ही है | अत: निरक्षरता का जड–मूल से उच्छेदन करना ही समाज एवं राज्य का लक्ष्य है।

18. 3 निरक्षरता : अर्थ एवं अवधारणा

साक्षरता से हमारा तात्पर्य वर्णमाला के अक्षरों और शब्दों को समझने, पहचानने और आशय निकलने की योग्यता से है | साक्षर व्यक्ति किसी शब्द एवं उसके अर्थ को तथा शब्दों द्वारा नियोजित वाक्य एवं वाक्यांश को देखकर उनके अर्थ एवं आशय निकाल लेता है | सामान्य अर्थो में साक्षर वह व्यक्ति है जो किसी भी भाषा को पढ़ना और लिखना जानता है | इस दृष्टिकोण से साक्षरता का अर्थ सीमित है क्योंकि केवल साक्षर होना या साक्षरता प्राप्त करना समाज का लक्ष्य नहीं हो सकता और न ही साक्षरता समाज के किसी उद्देश्य की पूर्ति का साधन बन सकती है | भारत के जनगणना आयोग, 1991 में साक्षर व्यक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया है, "उस व्यक्ति को 'साक्षर' माना जा सकता है जो किसी भारतीय भाषा को 'समझ के साथ' पढ़ और लिख सकता है, न कि केवल पढ़ और लिख सकता है।" इस परिभाषा में निरक्षर का यह आशय निकाला जा सकता है– निरक्षर वह व्यक्ति है, जो केवल पढ़ सकता है, परन्तु लिख नहीं सकता । जो बिना तारतम्यता `एवं बोधपरक समझ के साथ केवल पढ़ना और लिखना सीख लेता है उसे भी साक्षरता की श्रेणी में सम्मिलित नहीं कर सकते । साक्षरता के लिए अपरिहार्य है कि साक्षर‘‘ व्यक्ति को 'बोधपूर्ण समझ के साथ' पढ़ना–लिखना आना चाहिए ।’’ इस सामर्थ्य को व्यक्ति औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से प्राप्त कर सकता है | साक्षर होने के लिए यह जरूरी नहीं है कि व्यक्ति किसी विद्यालय में जाकर औपचारिक शिक्षा ही ग्रहण करें। वह किसी स्वयंसेवी संस्था द्वारा संचालित केन्द्र में जाकर साक्षर हो सकता है ।

शिक्षा : परिभाषा एवं अर्थ

संस्कृति किसी भी राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों से विभेदीकृत कर एक नई पहचान प्रदान करवाती है | संस्कृति मानव द्वारा सीखा हुआ वह व्यवहार है जिसे वह एक पीढी से दूसरी पीढ़ी तक सामाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा हस्तांतरित करता है | ज्ञान की यह अनवरत परम्परागत सुखला शिक्षा ही है | शिक्षा मानव को सांसारिक एवं पारलौकिक जीवन जीने के योग्य बनाती है | शिक्षा का लक्ष्य मानव में पहले से विद्यमान समष्टि तत्वों की अभिव्यक्ति करना है ।

बी.एसफिलिप्स. के मतानुसार, "शिक्षा वह संस्था है जिसका मूल तत्व ज्ञान का संग्रह करना है | " महात्मा गाँधी ने लिखा हैं कि, "शिक्षा से मेंरा मंतव्य बच्चे के शरीर, मन और आत्मा में विद्यमान सर्वोत्तम गुणों का सर्वांगीण विकास करना है ।"

प्रख्यात समाजशास्त्री इमाईल दुर्खीम शिक्षा को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि "शिक्षा अधिक आयु के लोगों के द्वारा ऐसे लोगों के प्रति की जाने वाली प्रक्रिया है, जो अभी सामाजिक जीवन में प्रवेश करने के पात्र नहीं है | इसका ध्येय व्यक्ति में उन भौतिक, बौद्धिक एवं नैतिक विशेषताओं को विकसित करना है जो उसके लिए सम्पूर्ण समाज और पर्यावरण से अनुकूलन स्थापित करने के लिए आवश्यक है |

18.4 निरक्षरता के मूलभूत कारण

भारतीय समाज में निरक्षरता के लिए अनेक कारक उत्तरदायी हैं:–

जाति / वर्ण व्यवस्था–

भारतीय समाज में वैदिक युगीन समाज व्यवस्था को चार भागों– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वेश्य एवं शूद्र में विभाजित किया था। शिक्षा का अधिकार द्विजों तक ही सीमित कर दिया गया था और शेष लोगों को शिक्षा से वंचित कर दिया गया था। कालान्तर में वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था में रूपान्तरित हो गई। इस रूपान्तरण के साथ–साथ संस्कार भी एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था में हस्तांतरित हो गए। प्राचीन शिक्षा प्रणाली केवल उच्च वर्ण एवं उच्च जातियों के लोगों तक सीमित कर दी गई। यह शिक्षा–प्रणाली वैदिक कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड पर आधारित थी। इस प्रकार शिक्षा को अल्पसंख्यक उच्च वर्ण एवं उच्च जातियों के लोगों तक ही सीमित किया गया तथा शेष समाज को शिक्षा से पूर्णत: वंचित कर दिया गया। सामाजीकरण के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने और अशिक्षित रहने के संस्कार समाज में जड़ हो गए।

भाग्यवादिता :

भारतीय जीवन–शैली धर्म प्रदान रही है | पारलौकिक सत्ता के प्रति समर्पण का भाव जितना भारतीयों में पाया जाता है उतना अन्य कहीं भी देखने को नहीं मिलता। भारतीय संस्कृति में कर्म एवं भाग्यों का नियन्ता ईश्वर है | परमात्मा ने प्रत्येक मनुष्य के लिए उसके जीवन को निर्धारित कर दिया है | भाग्यवादी दृष्टिकोण के अनुसार "जीवन में उतना ही मिलेगा जितना ईश्वर ने लिख दिया है।" इसलिए शिक्षा ग्रहण करने से अतिरिक्त कुछ नहीं मिल सकता। भाग्य की लकीरें शिक्षा से बदली नहीं जाती। जब सब कुछ ईश्वर ने निर्णित कर दिया है तब किसी भी प्रकार के प्रयास करना व्यर्थ है | उक्त दृष्टिकोण भारतीय जनमानस में संस्कारित रूप से जड़वत हो गया है।

निर्धनता

भारत में अशिक्षा की वृद्धि के लिए निर्धनता एक महत्वपूर्ण कारक है | जिस देश में निर्धन लोगों को दो वक्त का भरपेट भोजन उपलब्ध नहीं हो पाता, उनसे शिक्षा ग्रहण करने की आशा करना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि शिक्षा ग्रहण करने के लिए वांछित रूपयों में गरीब लोग अपनी आजीविका की व्यवस्था करने को प्राथमिकता प्रदान करते हैं |

वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव

भारतीय समाज धर्म प्रधान, भाग्यवादी, रूढ़िवादी तथा परम्पराओं 'के प्रचलन एवं निरन्तरता पर बल प्रदान करता है | भारतीय जनमानस में कूपमंडूक सोच सदियों से संस्कारों के माध्यम से व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन चुकी है | वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं प्रगतिशील सोच के अभाव में चहुँ ओर निरक्षरता का बोलबाला रहा है।

ब्रिटिश का शासन

ब्रिटिश साम्राज्य ने प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था के स्थान पर ब्रिटेन में प्रचलित शिक्षा प्रणाली का क्रियान्वयन भारत में किया। इसका मूलभूत उद्देश्य भारत में आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा–प्रणाली से भारतीयों को अवगत कराना नहीं था। अंग्रेज यह भी नहीं चाहते थे कि भारत से अशिक्षा का

उन्मूलन हो और आधुनिक शिक्षा का प्रसार हो, वरन उनका उद्देश्य प्रशासनिक कार्यों की सुविधा हेतु बाबू वर्ग की स्थापना करना था। इसीलिए उन्होंने सर्वशिक्षा के लिए किसी भी प्रकार के प्रयास नहीं किए। अंग्रेजों ने ग्रामीण क्षेत्रों में भी शिक्षा के प्रबंधन की ओर ध्यान नहीं दिया। अंग्रेज इतने चतुर, धूर्त और चालाक थे कि उन्होंने बाबुओं की जननी–अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा के केन्द्र नगरों में स्थापित किये थे जहाँ पर उस समय देश में 10 प्रतिशत जनसंख्या भी निवास नहीं करती थी और इस 10 प्रतिशत से कम की आबादी में सीमित वर्ग के लोग ही अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा से अपने बच्चों को शिक्षित करना चाहते थे। इससे यह सिद्ध होता है कि अंग्रेजों ने 95 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या को नवीन शिक्षा–प्रणाली से अवगत कराने के लिए किसी भी प्रकार का कोई भी प्रबन्ध नहीं किया जिसका दूरगामी परिणाम वर्तमान भारत में परिलक्षित होता है|

18.5 निरक्षरता के दुष्परिणाम

किसी भी समाज एवं राष्ट्र के लिए निरक्षरता एक दाग है जो कि अनेक सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं की जननी है | निरक्षरता के कारण समाज एवं राष्ट्र की प्रगति तथा विकास में बाधाएँ उत्पन्न हो जाती है | निरक्षरता के मुख्य दुष्परिणाम निम्नलिखित हैं-

आर्थिक विकास में बाधक

किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए वहाँ के नागरिकों का शिक्षित होना अति आवश्यक है | शिक्षा के अभाव में लोगों को अपने राष्ट्र के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने, मशीनों का संचालन करने तथा व्यवसाय के सुचारू प्रबंधन का तकनीकी एवं प्रशासकीय ज्ञान नहीं होता। अशिक्षित व्यक्ति उच्च आय प्रदान करने वाली नौकरियों से वंचित हो जाता है | इससे केवल उसकी आर्थिक दशा ही प्रभावित नहीं होती है, वरन राष्ट्रीय आय एवं लाभांश पर भी प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ता है | अधिकांशत: अशिक्षित व्यक्ति निर्धनता एवं शोषणयुक्त सामाजिक जीवन जीने के लिए मजबूर होते हैं | ये लोग सूदखोरों एवं साहूकारों के खूनी पंजे में फंसकर अपना और अपनी आने वाली पीढ़ियों का जीवन सदा के लिए बर्बाद कर देते हैं |

प्रजातन्त्रीय शासन प्रणाली में बाधक

भारत में लोगों ने प्रजातन्त्रीय शासन प्रणाली को अंगीकार किया है | जिस देश में आधी से ज्यादा जनसंख्या अशिक्षित हो, वहाँ के लोग प्रजातन्त्रीय शासन प्रणाली को पूर्ण रूप से समझने में सक्षम नहीं हो सकते। जिसके फलस्वरूप कुछ अभिजात्य वर्ग के लोग, सीमित जातियाँ, संभ्रान्त परिवार, गुंडातत्व, धनिक वर्ग इत्यादि शासन पर कब्जा जमाए रखकर अधिसंख्यक लोगों को बेवकूफ बनाते हैं | इस प्रकार कतिपय जातियाँ एवं परिवार ही सदैव सत्ता पर अपना अधिकार बनाए रखते हैं तथा आमजन प्रजातन्त्र एवं इसके मूल्यों से लाभान्वित नहीं हो पाते।

समग्र व्यक्तित्व के विकास में बाधक

शिक्षा व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व का विकास कर उसे राष्ट्र एवं समाज निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करने में सहायता प्रदान करती है | शिक्षा के अभाव में बुद्धि एवं तर्क शक्ति का वर्तमान समय की आवश्यकता के अनुसार विकास नहीं हो पाता जिसके कारण व्यक्ति की सोचने–समझने एवं कार्य करने की शक्ति एवं क्षमता सीमित हो जाती है | परिपूर्ण व्यक्तित्व के अभाव में व्यक्ति वर्तमान

समय की आर्थिक एवं औद्योगिक आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को अनुकूलन करने में असमर्थ पाता है।

सामाजिक विकास एवं सामाजिक समस्याओं का जन्म

समाज के विघटन एवं समाज में नाना प्रकार की समस्याओं की उत्पत्ति के लिए अशिक्षा एक महत्वपूर्ण कारक है | अनेक सामाजिक समस्याऐं जातिप्रथा, विधवा पुनर्विवाह निषेध, ऋणग्रस्तता, बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिकता, भाषावाद, जातिवाद, धार्मिक कट्टरता, वेश्यावृति, बाल अपराध, अपराध इत्यादि अशिक्षा के कारण ही समाज में जन्म ले पाते हैं |

अन्धविश्वासों की पालना

अशिक्षा अनेक प्रकार के अन्धविश्वासों एवं रूढ़िवादी दृष्टिकोण को जन्म देती है | आधुनिक तथ्यपरक चिकित्सा प्रणाली का अशिक्षित लोग प्रयोग नहीं कर पाते। ये लोग केवल भूत–प्रेत, देवी–देवता, झाड–फूँक, मन्त्र–तन्त्र, भोपा इत्यादि पर ही विश्वास करते हैं जिसके कारण इन्हें अनेक बार अपने जीवन से भी हाथ धोना पड़ता है | अशिक्षा के कारण जाति, धर्म, परिवार, विवाह इत्यादि से संबंधितअन्धविश्वासों का, समाज में प्रचार–प्रसार होने में सहायता मिलती है | अशिक्षित वर्ग के लोगों की स्थिति का लाभ उठाकर पन्डेपुजारी, मुल्ला–मौलवी, मुनी–मठाधीश, साधु–साध्वियाँ, सेठ–साहूकार आदि शोषण करते हैं |

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में बाधक

वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व वैश्वीकरण, खुलापन एवं निजीकरण की विचारधारा से आप्लावित है | औद्योगिक एवं तकनीकी क्रांति के युग में शिक्षा के अभाव में कोई भी राष्ट्र तरक्की नहीं कर सकता। वस्तुत: शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा हम अन्य व्यक्तियों से अपने भावों एवं विचारों का सम्प्रेषण कर सकते हैं | वैश्वीकरण के इस दौर में शिक्षा के अभाव में कोई राष्ट्र पूर्णरूप से विश्व के अन्य राष्ट्रों से समुचित कूटनीतिक सम्बन्ध नहीं बना सकता। अनेक राष्ट्रों की भाषा अलग–अलग है | जापान में जापानी चीन में चीनी, पुर्तगाल में पुर्तगीज, अरब में अरबी, फ्रांस में फ्रेंच इत्यादि भाषाएँ प्रयुक्त की जाती हैं | शिक्षा के अभाव में भाषा का ज्ञान नहीं हो सकता। भाषा–ज्ञान के अभाव में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित होने में बाधा उत्पन्न होती है।

सभ्यता एवं संस्कृति निर्माण में बाधक

संस्कृति, समाज, समूह एवं समुदाय सम्मत तथा मान्यता प्राप्त वे भौतिक वस्तुऐं एवं अमूर्त विचार हैं जिन्हें समाज एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से हस्तान्तरित करता है | शिक्षा के अभाव में संस्कृति के समग्र तत्वों का हस्तान्तरण समुचित तरीकों से नहीं हो पाता। शिक्षा के द्वारा हम सांस्कृतिक तत्वों, संकुलों एवं प्रतिमानों को लिखित स्वरूप में स्थायित्व प्रदान करते हैं | शिक्षा के अभाव में नाना प्रकार के आविष्कार, खोजें, अन्वेषण एवं शोध कार्य व्यक्ति विशेष तक ही सीमित हो जायेंगे।

सामाजिक संघर्ष एवं संकुचित मानसिकता का उद्भव

अशिक्षा के कारण बौद्धिक विकास रूक जाता है तथा तर्क शक्ति क्षीण हो जाती है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति का दृष्टिकोण स्वकेन्द्रित हो जाता है | अशिक्षा, भेदभाव, संघर्ष, धार्मिक उन्माद मजहबी कट्टरपन, सामुदायिक विवाद इत्यादि को पनपाने में सहायक सिद्ध होती है | अशिक्षा के

कारण व्यक्ति अपनी समस्याओं का समाधान भी नहीं कर पाता तथा उसकी संकीर्ण बुद्धि उसे उचित–अनुचित भला–बुरा, सही–गलत, कर्म–अकर्म के बीच अन्तर करने में मदद नहीं कर पाती।

राष्ट्रीय प्रगति में बाधक

अशिक्षा किसी भी राष्ट्र की प्रगति में जड़ता पैदा करती है | अशिक्षित लोग केवल शारीरिक श्रम ही कर सकते हैं | ये लोग वैज्ञानिक अन्वेषण एवं आविष्कार करने में समर्थ नहीं पाते। वर्तमान कम्प्यूटरीकृत युग में शिक्षा के अभाव में व्यक्ति प्रगति एवं विकास की कल्पना नहीं कर सकता।

निरक्षरता के उन्मूलन के लिये किये गये उपाय (Measures Adapted for Eradicating Illiteracy)

मोटे तौर पर, अपने देश में निरक्षरता के उन्मूलन के लिये अनौपचारिक शिक्षा के अलावा तीन अन्य उपाय किये गये है | (i) राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम (ii) ग्रामीण प्रकार्यवादी साक्षरता कार्यक्रम, और (iii) राष्ट्रीय साक्षरता मिशन

अनौपचारिक शिक्षा (Non Formal Education)

अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम 1976 में 6 से 14 बच्चों के लिये आरम्भ किया गया था। सरकार का यह कहना कि इस कार्यक्रम में अध:संरचना (infrastructure) की आवश्यकता न होने, अंशकालिक स्तर पर शिक्षकों की नियुक्ति, और स्वार्थहीन शिक्षकों के कारण यह योजना बहुत सफल हुई है | परन्तु क्या स्कूल की पढाई और स्कूल के बाहर की अनौपचारिक पढ़ाई एक जैसी हो सकती है? क्या 200 शिक्षण धंटो में द्रव्य सीखने की विधि (rapid learning) द्वारा प्रकार्यात्मक साक्षरता का मूल्य है ? यदि वर्तमान आंकडो को ले तो जनसंख्या वृद्धि को देखते हुए यह कह सकते है कि हर वर्ष हमें लगभग 1.8 करोड अतिरिक्त शिक्षा कार्यक्रम द्वारा साल में 24 लाख बच्चों को शिक्षत किया जा रहा है और ये अशिक्षित वयस्क के रूप में समाज में बढ़ रहें है | इस समय देश में 40 करोड़ अशिक्षित व्यक्तियों के साथ जब हर वर्ष 1.44 करोड़ जुडेगें तो निरक्षरता कैसे समाप्त होगी?

18.6 निरक्षरता का उन्मूलन करने हेतु प्रभावशाली साधन

भारत में निरक्षरता उन्मूलन हेतु निम्नलिखित प्रयास किए जा सकते हैं –

1. शिक्षा को पूर्णत: निःशुल्क कर दिया जाए।
2. शिक्षा को कानूनी रूप से अनिवार्य बना दिया जाए।
3. शिक्षा का उचित प्रचार–प्रसार किये जाए जिससे कि लोगों, शिक्षा के प्रति व्यावहारिक जागरूकता पैदा हो सके।
4. देश में स्थानीय एवं मौखिक परम्परा से युक्त सांस्कृतिक कार्य के माध्यम से शिक्षा का जन सामान्य में प्रचार किया जाये।
5. शिक्षण पद्धति को रोचक एवं रोजगारोन्मुखी बनाने पर बल दिया जिससे कि सामान्य जन में शिक्षा के प्रति आकर्षण, जागरूकता एवं ललक पैदा हो सके।

6. शिक्षकों को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाए जिससे कि ग्रामीण में लोगों को शिक्षा के महत्व की वास्तविक जानकारी मिल सके।

7. ग्रामीण आँचल में कार्यरत शिक्षकों को वेतन, आवागमन के साधन, आवास इत्यादि की अतिरिक्त सुविधा देकर इन्हें शिक्षा के प्रति समर्पित भाव से कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

8. शिक्षित स्त्री सम्पूर्ण परिवार में अच्छे संस्कारों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित करने में मील का पत्थर साबित होती है | अत: स्त्री शिक्षा को निःशुल्क एवं कानूनी तौर पर अनिवार्य एवं सुविधाजनक बनाया जाए।

9. शिक्षा के प्रति लोगों की जागरूकता पैदा करने एवं रूचि जगाने के लिए चलचित्र, प्रदर्शनियों, क्रीडा–केन्द्रों इत्यादि की सुचारू रूप से उपलब्ध व्यवस्था करनी चाहिए।

10. वर्तमान समय में जनसंचार का प्रमुख माध्यम दूरसंचार के भिन्न– कार्यक्रम एवं केबल नेटवर्क डिश टीवी. इत्यादि हैं | शिक्षा के निःशुल्क प्रचार–प्रसार के लिए कानूनी रूप से बाध्य किया जाना चाहिए। इसी प्रकार सिनेमाघरों में शिक्षा के विषय में देना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए।

11. सरल, रोचक एवं जन सुलभ साहित्य सस्ती दर पर अथवा निःशुल्क बांटने की सुचारू प्रणाली का विकास करने की आवश्यकता है।

12. स्थानीय भाषा एवं स्थानीय लोगों के सांस्कृतिक तत्वों मूल्यों एवं जीवन–शैली के अनुरूप अनुसंधान कर लोगों को शिक्षित एवं प्रशिक्षित करने के सुगम तरीकों को खोजने के प्रयास करने चाहिए।

13. शिक्षा के पाठ्यक्रम का इस प्रकार निर्माण किया, जिससे उसमें शिक्षाप्रद कहानियों–किस्सों एवं रोचक जानकारियों की सूचना सम्मिलित हो सके जिससे कि राष्ट्र में शिक्षा के प्रसार–प्रचार के साथ–साथ उच्च नैतिकता वाले नागरिक भी तैयार हो सकें।

14. ऐसे घुमंतुक (मोबाईल) वाहनों की पर्याप्त संख्या होनी चाहिए जिसमें सरल एवं रोचक कहानियों एवं जानकारी से युक्त पुस्तकें पढ़ने और खरीदने के लिए उपलब्ध हों। इस घुमंतुक वाचनालय में मनोरंजक साहित्य के साथ–साथ सामाजिक, औद्योगिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक आविष्कारों और उपलब्धियों से संबंधित सूचनाऐं एवं जानकारी उपलब्ध करवाने वाला साहित्य भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

15. देश–विदेश के ताजा समाचारों एवं नवीन खोजों, उपलब्धियों एवं जानकारियों को दूरस्थ इलाकों तथा निर्धन लोगों को उपलब्ध करवाने के लिए विभिन्न औद्योगिक घरानों द्वारा संचालित DTH (सीधे आपके द्वार) सेवा को उपयोग में लेने की अति आवश्यकता है।

16. गाँधीजी की बुनियादी शिक्षा का प्रचार–प्रसार करने की वर्तमान समय में जरूरत है | इस शिक्षा का उद्देश्य केवल सैद्धान्तिक अक्षर–ज्ञान सिखाने वाली न होकर हस्तकला, लघु–कुटीर उद्योग सिखाने से संबंधित भी होना चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा विद्यार्थियों को स्वावलम्बी बनाने के साथ–साथ इनका मानसिक अभिमुखन रोजागारोन्मुखी जीवन–शैली स्वीकार करने में सहायता प्रदान करती है | बुनियादी शिक्षा का माध्यम देश या मातृभाषा

होनी चाहिए। बुनियादी शिक्षा के माध्यम से राष्ट्र को आदर्श नागरिक उपलब्ध होंगें जो कि उच्च चरित्र एवं संतुलित व्यक्तित्व धारण किए होंगे। इस शिक्षा को निःशुल्क उपलब्ध करवाया जाना चाहिये जिससे महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक विचार एवं प्रजातान्त्रिक मूल्य लोगों के व्यक्तित्व में समाविष्ट हो सकें।

17. प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहन – आमजन में शिक्षा का प्रचार–प्रसार करने के लिए प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता महसूस की गई थी क्योंकि प्रजातन्त्र की सफलता एवं स्थायित्व के लिए प्रत्येक व्यक्ति शिक्षित होना चाहिए। इस हेतु पूर्ण रूप से प्रौढ़ निरक्षरों को शिक्षा देना अपरिहार्य है | प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत साक्षरता प्रदान करने के साथ–साथ 15 से 35 वर्ष की आयु के लोगों को स्वास्थ्य एवं स्वच्छता संबंधित नियमों की जानकारी, आर्थिक उन्नयन के कार्यक्रमों का प्रशिक्षण, मनोरंजन, अधिकार एवं कर्त्तव्यों का बोध करवाया जाता है | प्रौढ़ शिक्षा को मनोरंजक कार्यक्रमों. चलचित्र, प्रदर्शनी, लोकगीत–नृत्य, भजन कीर्तन, पोस्टर इत्यादि के द्वारा मनमोहक एवं रोचक बनाने की आवश्यकता होती है, जिससे कि प्रौढ़ लोग शिक्षा के प्रति उत्साहित बने रहें। इसके अतिरिक्त इन लोगों के लिए निःशुल्क पुस्तकों का वितरण एवं पुस्तकालयों की व्यवस्था भी करनी चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत प्रौढ़ महिलाओं को अतिरिक्त सुविधा एवं आर्थिक लाभ देकर शिक्षा के प्रति प्रोत्साहित करने की कोशिश करनी चाहिए।

18.7 निरक्षरता उन्मुलन हेतु सरकारी नीतियों कार्यक्रम एवं प्रयास

सन् 1976 से पूर्व शिक्षा पूर्ण रूप से राज्यों का उत्तरदायित्व था। संविधान द्वारा 1976 में किए गए जिस संशोधन से शिक्षा को समवर्ती सूची में डाला गया जिसके सकारात्मक रूप से दूरगामी परिणाम देखने को मिले।

केन्द्र सरकार ने अपनी अगुवाई में शैक्षिक नीतियों एवं कार्यक्रम बनाने और उनके क्रियान्वयन पर नजर रखने के कार्य को जारी रखा है | इन नीतियों में सन् 1986 की शिक्षा–नीति (एनपीई) तथा वह कार्यवाही कार्यक्रम (पीओए) शामिल है, जिसे सन 1992 में अद्यतन गया। संशोधित नीति में एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली तैयार करने का प्रावधान है जिसके अंतर्गत शिक्षा में एकरूपता लाने, प्रौढाशिक्षा कार्यक्रम को जनांदोलन बनाने, सभी को शिक्षा सुलभ कराने, प्रत्येक जिले में नवोदय विद्यालय जैसे आधुनिक विद्यालयों की स्थापना करने, माध्यमिक शिक्षा को अनुशासनात्मक अनुसंधान करने, राज्यों में नए मुक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना करने, अखिल भारतीय प्रौद्योगिक शिक्षा परिषद को सुदृढ़ करने तथा खेलकूद, शारीरिक शिक्षा, योग को बढ़ावा देने एवं सक्षम मूल्यांकन प्रक्रिया अपनाने के प्रयास शामिल हैं।

एनपीई द्वारा निर्धारित राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली एक ऐसे राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचे पर आधारित है, जिसमें अन्य लचीले एवं क्षेत्र विशेष के लिए तैयार घटकों के साथ ही एक समान पाठ्यक्रम रखने का प्रावधान है | जहां एक ओर शिक्षा नीति लोगों के लिए अधिक अवसर उपलब्ध कराए जाने पर जोर देती है, वहीं वह उच्च एवं प्रौद्योगिक शिक्षा की वर्तमान प्रणाली को मजबूत बनाने का आहवान भी करती है | शिक्षा नीति शिक्षा के क्षेत्र में कुल राष्ट्रीय आय का कम से कम 6 प्रतिशत धन लगाने पर भी जोर देती है |

प्राथमिक शिक्षा

सर्वशिक्षा अभियान (एसएसए)

सर्वशिक्षा अभियान (एसएसए) की योजना 2001 में शुरू की गई थी। एक राष्ट्रीय योजना के रूप में यह देश के सभी जिलों में लागू की जा रही है | एसएसए का उद्देश्य तक 2010 6 से 14 वर्ष की आयु बर्ग वाले सभी बच्चों को उपयोगी और प्रासंगिक प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना है | एसएसए के लक्ष्य इस प्रकार हैं (1) सन 2005 तक सभी स्कूलों, शिक्षा गारंटी योजना केन्द्रों / ब्रिज पाठ्यक्रमों में 6– 14 वर्ष की आयु वर्ग के समस्त बच्चे। (2) सभी प्रकार के लैंगिक एवं सामाजिक भेदभाव प्राथमिक शिक्षा के स्तर वर्ष 2007 तक तथा 2010 तक बुनियादी शिक्षा स्तर पर समाप्त करना। (3) तक 2010 सभी के लिए शिक्षा। जीवन हेतु शिक्षा पर विशेष ध्यान देते हुए संतोषप्रद गुणवत्ता की प्राथमिक शिक्षा पर जोर। यह कार्यक्रम पूरे देश में लागू किया जा रहा है |

शिक्षा गारन्टी योजना तथा वैकल्पिक एवं अनूठी शिक्षा

शिक्षा गारंटी योजना तथा वैकल्पिक एवं अनूठी शिक्षा (ईजीएस तथा एआईई) स्कूल नहीं जा रहे बच्चों को बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम के तहत लाने का सर्वशिक्षा अभियान (एसएसए) का एक महत्वपूर्ण घटक है | इस योजना में स्कूली शिक्षा से अभी तक छूट गए प्रत्येक बच्चे के लिए अलग से योजना बनाने का प्रावधान है।

ईजीएस में ऐसे दुर्गम आबादी क्षेत्रों पर ध्यान दिया जाता है, जहां एक किलोमीटर के घेरे में कोई औपचारिक स्कूल नहीं हो और स्कूल नहीं जाने वाले 6– 14 वर्ष के आयु वर्ग के कम से कम 25 बच्चे वहां मौजूद हों। पर्वतीय क्षेत्रों के दुर्गम क्षेत्रों जैसे अपवादों में 15 बच्चों पर भी एक ईजीएस स्कूल खोला जा सकता है | वैकल्पिक शिक्षा की शुरूआत समाज के वंचित वर्ग के बच्चों–बाल श्रमिक, सडकों पर जीवनयापन करने वाले बच्चे, प्रवासी बच्चे, कठिन परिस्थिति में रहने वाले बच्चे और 9 वर्ष से अधिक आयु के बच्चों के लिए बनाई गई है | ईजीएस और एआईई में देश–भर में किशोरावस्था की बालिकाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

मध्याह्न भोजन योजना

नामांकन बढ़ाने, उन्हें बनाए रखने और उपस्थिति के साथ–साथ बच्चों के बीच पोषण स्तर सुधारने के दृष्टिकोण के साथ प्राथमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पोषण सहयोग कार्यक्रम 15 अगस्त, 1995 से शुरू किया गया। केन्द्र द्वारा प्रायोजित इस योजना को पहले देश के 2408 ब्लॉकों में शुरू किया गया।

मध्याह्न भोजन योजना के उद्देश्य हैं:–

1. सरकारी, स्थानीय निकाय तथा सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों, और ईजीएस तथा एआईई केन्द्रों में कक्षा एक से पांचवीं तक पढ़ने वाले बच्चों की पोषण स्थिति में सुधार।
2. सुविधाहीन वर्ग के गरीब बच्चों को कक्षाओं में नियमित उपस्थित रहने तथा कक्षाओं की गतिविधियाँ पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए प्रोत्साहित करना।
3. गर्मियों की छुट्टियों के दौरान सूखा प्रभावित क्षेत्रों में प्राथमिक स्तर के बच्चों को पोषण सहायता उपलब्ध कराना।

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम

केन्द्र द्वारा प्रायोजित जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम 1994 में शुरू किया गया था। इसका उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा प्रणाली में फिर से जान फूंकना और प्राथमिक शिक्षा के सावर्गीकरण का लक्ष्य पूरा करना था। डीपीईपी का लक्ष्य सभी को शिक्षा दिलाने, बच्चों को स्कूलों में बनाए रखने, शिक्षा के स्तर में सुधार करने तथा समाज के विभिन्न वर्गो में असमानता कम करके साथ–साथ काम करना है| कार्यक्रम के घटकों में नए स्कूल और कक्षाओं का निर्माण, अनौपचारिक / वैकल्पिक शिक्षण केन्द्रों की स्थापना, नए अध्यापकों की नियुक्ति, छोटे बच्चों के लिए शिक्षा केन्द्रों की स्थापना, राज्यस्तरीय शैक्षिक अनुसंधान केन्द्रों और प्रशिक्षण परिषदों (एससीईआरटी) जिला शैक्षिक प्रशिक्षण संस्थान (डीआईईटी) का सशक्तिकरण, प्रखण्ड (ब्लॉक) संसाधन केन्द्र समूह संसाधन केन्द्र, अध्यापक प्रशिक्षण, शिक्षण अध्यापन सामग्री का विकास, अनुसंधान आधारित पहल, वंचित समूहों, बालिकाओं, अनुसूचित जाति / जनजातियों आदि हेतु शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए विशेष पहल, विकलांग बच्चों को समन्वित शिक्षा देने हेतु पहल एवं अध्यापक प्रशिक्षण के लिए सुदूर (डिस्टेंस) शिक्षा को भी डीपीईपी योजना में शामिल किया गया है|

महिला समाख्या योजना

महिला समाख्या योजना ग्रामीण क्षेत्रों खासकर सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े समूहों की महिलाओं की शिक्षा तथा उनके सशक्तीकरण के लिए 1989 में शुरू की गई। महिला संघ गाँव स्तर पर महिलाओं को मिलने, सवाल करने और अपने विचार रखने तथा अपनी आवश्यकताओं को व्यक्त करने के अलावा अपनी इच्छाओं को जाहिर करने का स्थान मुहैया कराते हैं|

महिला संघों ने ग्रामीण महिलाओं के दृष्टिकोण में विभिन्न कार्यक्रमों और जागरूकता अभियानों के माध्यम से बदलाव ला दिया है जिसका प्रभाव अब घर, परिवार में, सामुदायिक तथा) ब्लॉक और पंचायत स्तर पर देखा जा सकता है | कार्यक्रम में बच्चों खासकर लड़कियों की शिक्षा की आवश्यकता पर जागरूकता पैदा करने पर भी केन्द्रित होता है।

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना मई, 1988 में की गई थी। इसका उद्देश्य तय समयावधि तक 15 से 35 वर्ष तक के आयु वर्ग के उत्पादक और पुनरोत्पादक समूह के निरक्षर लोगों को व्यावहारिक साक्षरता प्रदान करते हुए 75 प्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य हासिल करना है| व्यावहारिक साक्षरता के अंतर्गत पठन, लेखन गणना–बोध के साथ–साथ राष्ट्रीय एकता पर्यावरण संरक्षण, नारी समानता और सीमित परिवार के सिद्धान्त और मूल्य निहित हैं| जीवन की गुणवत्ता में एक निश्चित सुधार और सशक्तिकरण ही व्यावहारिक साक्षरता की प्रमुख उपलब्धि है।

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का उद्देश्य यह है कि सम्पूर्ण साक्षरता अभियान और साक्षरता के बाद के कार्यक्रम सफलतापूर्वक अनवरत शिक्षा–प्रक्रिया के रूप में जारी रहें और जीवन पर्यन्त साक्षरता के अवसर उपलब्ध कराते रहें।

निरक्षरता गैर सरकारी संगठनों की भूमिका

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन (एनएलएम) अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्वयंसेवी संगठनों की अपार क्षमताओं को मान्यता देता है| इसने स्वयंसेवी संगठनों के साथ साझेदारी मजबूत बनाने के लिए कई

उपाय किए हैं | इसके साथ ही साक्षरता आंदोलन में स्वयंसेवी संगठनों को सक्रिय उत्साहवर्धक भूमिका सौंपी गई हैं | साक्षरता उपलब्ध कराने के अलावा स्वयंसेवी संगठन प्रयोगात्मक और नवोन्मुख कार्यक्रमों के माध्यम से शैक्षिक और तकनीकी विशेषज्ञों की सेवाएं भी उपलब्ध कराता है | स्वयंसेवी संगठनों की ओर से संचालित राज्य संसाधन केन्द्रों से प्रशिक्षण सामग्री, विस्तारगत विधियां नवोन्मुख परियोजनाएं, अनुसंधान अध्ययन और मूल्यांकन सामग्री के रूप में अकादमिक और तकनीकी संसाधन सहयोग उपलब्ध कराया जाता है |

महिला साक्षरता के लिए विशेष हस्तक्षेप

2001 की जनगणना के अनुसार देश के या जिलों में महिला साक्षरता दर 30 प्रतिशत से नीचे है | इसलिए राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के लिए इतनी कम महिला साक्षरता दर एक चिंता का विषय है | इस बात को ध्यान में रखते हुए या जिलों में नीची महिला साक्षरता दर में सुधार का लक्ष्य निर्धारित किया गया । इन जिलों में महिला साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए विशेष प्रवर्तित कार्यक्रम शुरू किए गए हैं |

अवशेष निरक्षरता की परियोजनाएं –

सम्पूर्ण साक्षरता अभियान पूरे देश में एक जन आंदोलन के रूप में चलाया गया लेकिन कई इलाकों में यह प्राकृतिक आपदाओं तथा राजनीतिक इच्छा शक्ति में कमी के कारण पूरा नहीं हो सका। साक्षरता में सफलता के बावजूद अभी भी कुछ इलाकों में नीची महिला साक्षरता दर और अवशेष निरक्षरता मौजूद हैं | इस समस्या के निदान के लिए अवशेष निरक्षरता परियोजनाएं आरम्भ की गई । इसके तहत राजस्थान के 9 जिलों के करीब 6.6 लाख नव साक्षरों को शामिल किया गया ।

विशेष साक्षरता अभियान

एनएलएमए परिषद की अप्रैल, 2005 में हुई बैठक में देशभर से ऐसे 150 जिलों की पहचान की गई जिनमें साक्षरता दर सबसे कम थी । इन जिलों की क्षेत्रीय सामाजिक और सामुदायिक जरूरतों को ध्यान में रखते हुए विशेष रूप से अल्पसंख्यक समूह, अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति, महिलाएं और अन्य पिछड़े वर्ग के लिए विशेष साक्षरता अभियान की रणनीति तय की गई । अब तक राज्यों के कुल 134 जिलों को विशेष साक्षरता मिशन में शामिल किया जा चुका है | इनमें अरुणाचल प्रदेश के 7, आंध्र प्रदेश के 8 बिहार के 31, छत्तीसगढ़ के 2, जम्मू–काश्मीर के 8, राजस्थान के ।0, झारखंड के 12, कर्नाटक के 2, मध्यप्रदेश के 9, मेघालय के 3, नागालैण्ड के 2, उड़ीसा के 8, पंजाब के 1, उत्तरप्रदेश के 27 और पश्चिम बंगाल के 4 जिले शामिल हैं |

जनशिक्षण संस्थान

जनशिक्षण संस्थान का लक्ष्य सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़े तथा शहरी' ग्रामीण क्षेत्रों के शैक्षिक रूप से वंचित वर्गो विशेषकर नवसाक्षरों, अर्थ–शिक्षितों, अनुसूचित जाति जनजातियों, महिलाओं तथा बालिकाओं, मलिन बस्ती निवासियों और प्रवासी श्रमिकों का शैक्षिक और व्यावसायिक विकास करता है ।

प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय

केन्द्रीय प्रौढ़ शिक्षा निदेशालय राष्ट्रीय साक्षरता मिशन में शैक्षिक और तकनीकी संसाधन का सहयोग देता है | यह संसाधन सहयोग का नेटवर्क विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा

है, विशेष रूप से यह आदर्श शिक्षण अधिगम सामग्री, मीडिया सॉफ्टवेयर के उत्पादन तथा राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सभी तरह के मीडिया का सहयोग हासिल कराता है।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की शिक्षा

संवैधानिक प्रावधान, संविधान के अनुच्छेद 46 के अनुसार– "राज्य विशेष सावधानी के साथ समाज के कमजोर वर्गो, विशेषकर अनुसूचित जाति / जनजातियों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों के उन्नयन को बढ़ावा देगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के सामाजिक शोषण से उनकी रक्षा करेगा। "अनुच्छेद 330, 332, 335, 338 से 342 तथा संविधान के पांचवीं और छठवीं अनुसूची के अनुच्छेद 46 में दिए गए लक्ष्य हेतु विशेष प्रावधानों के संबंधमें कार्य करते हैं|

राष्ट्रीय न्यूनतम साझा कार्यक्रम (एनसीएमपी) के संकल्प

केन्द्रीय सरकार ने सुाशासन के लिए छह मूलभूत सिद्धान्त निर्धारित किए हैं | उनमें से एक है– अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग एवं धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए विशेषकर शिक्षा एवं रोजगार में पूर्ण अवसरों की समानता उपलब्ध कराना।

निर्धनता

निर्धनता एक ऐसी सामाजिक समस्या है, जिससे विकसित, विकासशील अविकसित तथा साम्यवादी देश पीड़ित हैं | वर्तमान समय में जनसंख्या वृद्धि एवं अशिक्षा गरीबी को प्रश्रय दे रही है | रूपये का अवमूल्यन, वस्तुओं की आपूर्ति में कमी तथा मूल्यों में वृद्धि एवं आय का असमान वितरण निर्धनता की वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं | निर्धनता के कारण लोगों को दो वक्त का पर्याप्त भोजन, तन ढकने के लिए कपड़ा तथा रहने के लिए मकान की समस्याओं से जूझना पड़ रहा है।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने अनके क्षेत्रों में प्रगति की है तथा वर्तमान समय में आर्थिक विकास की गति सम्मानजनक कही जा सकती है | यद्यपि, प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का वैज्ञानिक ढंग से दोहन नहीं हुआ है, जिसके फलस्वरूप भारत को आर्थिक दृष्टि से कम विकसित देश कहा जा सकता है | वर्तमान समय में विकास की समस्या भारत निर्धनता ही नहीं वरन विश्व के अन्य राष्ट्रों के लिए चिन्ता एवं चिन्तन का विषय है | यह एक निर्विवाद सत्य है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है परन्तु कृषि क्षेत्र की अवस्था भी काफी शोचनीय है | किसान इतने गरीब हैं कि कृषि क्षेत्र अनार्थिक एवं पिछडी अवस्था में विद्यमान है | हालांकि भारत का औद्योगिक ढाँचा विकास कर रहा है परन्तु वैश्विक दृष्टि से अभी भी हम अन्य देशों की तुलना में पिछडे हुए हैं |

भारत में बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि, गाँवों से शहरों की ओर पलायन, इत्यादि निर्धनता की ओर इशारा करते हैं | भारत को सही मायने में विकसित होने के लिए निर्धनता की समस्या पर नियंत्रण स्थापित करना होगा, जिसके लिए समग्र प्रयासों की महती आवश्यकता है | निर्धनता एक ऐसी जटिल अवधारणा हैं, जिसकी व्याख्या करना कठिन है | वस्तुत: निर्धनता एक ऐसी स्थिति है जिसमें कोई व्यक्ति जीवनयापन से सम्बन्धित मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वांछित आय अर्जित करने में सक्षम नहीं हो पाता। निर्धनता सापेक्ष एवं तुलनात्मक अवधारणा है | यह तुलना व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामूहिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राट्रीय सार पर की जा सकती है | प्रस्तुत इकाई में हम

निर्धनता को समझने का प्रयास करेंगे। इस इकाई में निर्धनता की परिभाषा, अर्थ, मापन, निवारण इत्यादि विषयों की विवेचना भी की जायेगी।

18.8 निर्धनता : अर्थ एवं अवधारणा

निर्धनता समाज की आर्थिक स्थिति का द्योतक होने के साथ–साथ सामाजिक प्रस्थिति का भी परिचायक है, क्योंकि व्यक्ति की आर्थिक स्थिति का घनिष्ठ सम्बन्ध सामाजिक वर्ग से भी है | गिलिन एवं गिलिन का मत है कि गरीबी एवं अमीरी तुलनात्मक सम्बोधन हैं | आमजन को भाषा में गरीबी का तात्पर्य आर्थिक असमानता, आर्थिक पराश्रित तथा आर्थिक अकुशलता से समझा जाता है | निर्धनता को केवल आर्थिक अभाव के रूप में समझने का अर्थ होगा, इसे संकुचित अर्थ देना। प्रमुख समाज वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत निर्धनता की परिभाषाएं निम्नांकित हैं:–

बीवर लिखते हैं कि गरीबी एक ऐसे जीवन स्तर के रूप में परिभाषित की जा सकती है कि जिसमें स्वास्थ्य एवं शारीरिक क्षमता बनी नहीं रहती।

गोडार्ड निर्धनता के इस प्रकार परिभाषित करते हैं ' 'निर्धनता उन वस्तुओं की अपर्याप्त पूर्ति की वह दशा है, जिनकी एक व्यक्ति को अपने तथा आश्रितों के स्वास्थ्य एवं शक्ति को बनाए रखने के लिए आवश्यकता होती है।

''गिलिन एवं गिलिन के अनुसार, "निर्धनता वह दशा है जिसमें एक व्यक्ति या तो अपर्याप्त आय अथवा मूखर्तापूर्ण व्यय के कारण अपने जीवन स्तर को इतना ऊँचा नहीं रख पाता कि उसकी, शारीरिक एवं मानसिक क्षमता बनी रह सके और उसको तथा उसके प्राकृतिक आश्रितों को अपने समाज के स्तरों के अनुरूप उपयोगी ढंग से कार्य करने के योग्य बनाये रख सकें। "इस प्रकार उपर्युक्त वर्णित परिभाषाओं में निर्धनता या गरीबी को इस आधार पर समझने का प्रयास किया है कि किसी व्यक्ति को जीवनयापन करने के लिए न्यूनतम कितना रूपया चाहिए तथा इस न्यूनतम सीमा से कम आय वाले व्यक्ति को निर्धन करार दिया जा सकता है।

प्रो. योगोश अटल के अनुसार "गरीबी की अवधारणा का सम्बन्ध सापेक्ष रूप से वंचित रहने के तथ्य से है | "इस प्रकार योगोश अटल वे गरीबी को तुलनात्मक दृष्टि से राष्ट्रीय आय से वंचित रहने के रूप में परिभाषित करते हैं | जब हम गरीब को राष्ट्रीय आय के पैमाने के द्वारा समझने का प्रयास करते हैं तब इसका तात्पर्य यह नहीं होता कि वह आय दोष के सभी लोगों में समान रूप से वितरित होती है, वरन राष्ट्रीय आय में से जिन लोगों को कम भाग मिलता है, गरीब कहलाते हैं तथा जिन्हें अधिक हिस्सा मिलता है, धनवान वर्ग में सम्मिलित किए जाते हैं | इस दृष्टि से गरीबी एक तुलनात्मक तथ्य है।

माईकल हैरिंगटन के अनुसार, "निर्धनता भोजन, स्वास्थ्य, घर, शिक्षा तथा मनोरंजन के उन न्यूनतम स्तरों का वंचन है जो एक विशिष्ट समाज की समकालीन प्रौद्योगिकी, विश्वास तथा मूल्यों के अनुसार होता है।

"मिलर तथा रोबी के अनुसार "निर्धनता एक प्रकार की असमानता है जो निर्धनों की जीवन–दशा तथा उनके जीवित रहने की सम्भावनाओं पर आय की असमानता से पड़ने वाले प्रभावों को स्पष्ट करती है | जिनके पास जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए साधन अथवा सामर्थ्य नहीं है, वे निर्धन कहलाते हैं तथा जो लोग आयक्रम के निम्नतम तल पर होते हैं, वे निर्धनों

की श्रेणी के अन्तर्गत समाविष्ट किए जाते हैं | उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर निर्धनता के सन्दर्भ में यह निष्कर्ष निकलता है:–

- निर्धनता जीवनयापन करने के लिए न्यूनतम आय का प्रतिबिम्ब है।
- निर्धनता निम्नतम जीवन निर्वाह के स्तर का परिचायक है।
- निर्धनता जीवनयापन करने के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं की पृष्ठ को दर्शाती है।
- निर्धनता समय एवं स्थान सापेक्षिक जीवन स्तर को दर्शाती है।
- निर्धनता प्रचलित मानदण्डों के अनुसार न्यूनतम जीवन स्तर है |
- निर्धनता असमानता तथा वंचना के आधार पर समझी जा सकती है |

18.9 निर्धनता : सापेक्षिक दृष्टिकोण

निर्धनता आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण से एक सापेक्ष अवधारणा है | आय के दृष्टिकोण से निर्धन वर्ग के लोगों की आय इतनी ही होती है कि वे अधिक से अधिक अपने जीवनयापन के मूलभूत पदार्थ ही जुटा पाते हैं, न कि ऐश्वर्य के साधन। गरीबी को वस्तुओं के चयन करने एवं पसन्द करने की सीमा के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है | इसी प्रकार एक राष्ट्र जिसे हम निर्धन कहेंगे, उसे अन्य राष्ट्र धनवान भी कह सकते हैं | भारत में निर्धनता की रेखा वह नहीं है जो अमेंरिका या अन्य विकसित देशों में है | प्रत्येक राष्ट्र की एक संस्कृति होती है | जिसके अनुसार वहाँ के लोग जीवन–शैली का एक आदर्श स्थापित करते हैं और उसी प्रकार आदर्श के अनुसार अपना आचरण करते हैं | जीवन स्तर किसी राष्ट्र के प्रथाओं, परम्पराओं, रीति–रिवाजों, मानदण्डों एवं मूल्यों पर आधारित होता है | संरचित जीवन स्तर के आदर्श प्रारूप से नीचे जीवन व्यतीत करने वालों का सापेक्षिक रूप से निर्धन एवं ऊँचा जीवन व्यतीत करने वालों को सापेक्षिक रूप से धनवान कहा जाता है | ठीक इसी प्रकार उचित जीवन स्तर को प्राप्त करने के पर्याप्त सुविधा–साधन तो उपलब्ध होते हैं, परन्तु इनका उचित एवं वांछित तरीके से सदुपयोग न करके दुरूपयोग किया जाता है | उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति अपनी आय सट्टा लगाने, लॉटरी खेलने, शराब पीने एवं जुआ खेलने में अपव्यय कर देता है एवं अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वांछित संसाधन नहीं जुटा पाता है।

निर्धनता की सापेक्षता का सन्दर्भ केवल दो राष्ट्रों तक ही सीमित नहीं है, वरन् एक राष्ट्र में निवास करने वाले विभिन्न वर्गो, जातियों, उपजातियों, समूहों, समुदायों, व्यवसायों, प्रान्तों, क्षेत्रों, संस्कृतियों, धर्मो को मानने वाले लोगों से भी है | उदाहरण के लिए जीवन जीने का स्तर जो डूंगरपुर के ग्रामीण खेतिहर आदिवासियों का है वही स्तर पढ़े लिखे नौकरीपेशा आदिवासियों का नहीं होगा। इसी प्रकार, पंजाब के लोगों के जीवन स्तर से झारखण्ड राजस्थान अथवा केरल में रहने वाले लोगों का जीवन स्तर भिन्न होगा। किसी संस्कृति विशेष में निर्धनता के मापने के आधार अन्य संस्कृतियों पर प्रयुक्त नहीं किए जा सकते हैं | इस प्रकार अगर हम किसी संस्कृति में निर्धनता को मापना चाहते हैं तो इसके लिए हमें सांस्कृतिक सापेक्षवाद का दृष्टिकोण अपनाना होगा तथा स्वकेन्द्रितवाद दृष्टिकोण को त्यागना होगा। गिलिन एवं गिलिन का मत है कि निर्धनता का सम्बन्ध एक ही सांस्कृतिक समूह से तुलनात्मक है और उसी आधार पर व्यक्ति की स्थिति निश्चित की जाती है कि वह निर्धन है या अमीर है।

जीवन स्तर प्रत्येक समाज, समूह, समुदाय, जाति, प्रजाति एवं धर्मों में भिन्न–भिन्न होता है | जीवन–स्तर को निर्धारित करने वाले तीन प्रमुख घटक निम्न प्रकार से हैं–

1. विवेकपूर्ण सामाजिक–सांस्कृतिक प्रथाएँ एवं परम्पराएँ।
2. निर्णय लेने की बुद्धि ।
3. आय |

इन तीनों घटकों में आय सर्वोच्च एवं महत्वपूर्ण स्थान रखती है क्योंकि गरीब लोगों की आय सिर्फ इतनी होती है कि वे अपने जीवन के अस्तित्व को ही बनाए रख पाते हैं | वे बचत करने में सक्षम नहीं होते। डब्ल्यू.डब्ल्यू. वीवर का यह कथन इस सन्दर्भ में समीचीन है कि "निर्धनता को ऐसी स्थिति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें वित्तीय बचत अनुपस्थित रहती है।"

सामाजिक एवं सांस्कृतिक रीति–रिवाज, प्रथाएँ, खान–पान, पहनावा, सोचने का ढंग किसी समूह एवं समुदाय तथा धर्म के लोगों के जीवन स्तर का निर्णय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं | अधिकांशतः ब्राह्मण शाकाहारी भोजन करते हैं तो इसाई एवं मुसलमान मांसाहारी भोजन खाने में प्राथमिकता प्रदान करते हैं | डूँगरपुर–बाँसवाड़ा क्षेत्र के ग्रामीण आदिवासी अपरिग्रह युवा सादा जीवन जीना पसन्द करते हैं | तीज–त्यौहारों एवं उत्सवों के सुअवसर पर खान–पान, वस्त्र–आभूषण पहनने का निर्णय सांस्कृतिक परम्पराएँ एवं प्रथाएँ करती हैं | किसी व्यक्ति की पसन्द और नापसन्द को निर्धारित करने में उसकी बुद्धि और निर्णय लेने की क्षमता का भी महत्वपूर्ण स्थान है | वस्तुओं के क्रय सम्बन्धी निर्णयों के लिए तार्किक बुद्धि महत्वपूर्ण होती है | साधारण जीवनयापन करने वाले प्रोफेसर के लिए मारूति कार से काम चल सकता है परन्तु अगर पति–पत्नी दोनों कार्यरत हैं तो महँगी गाड़ी रखना प्रस्थिति प्रतीक बन जाता है | वर्तमान समय में ' 'ऋण–व्यवस्था' ' इतनी आसान हो गई है कि कुछ वर्षो पूर्व जिन वस्तुओं को खरीदने के लिए लोग केवल सपने जिया करते थे , उनकी आपूर्ति के लिए आज सिर्फ एक मोबाईल करने की जरूरत है, वांछित वस्तुएँ आपके घर में उपलब्ध हो जायेंगी। परन्तु यहाँ पर ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि किसी भी वस्तु को ऋण व्यवस्था के अन्तर्गत लेना तो बहुत आसान होता है परन्तु ऋण चुकाने के लिए किश्तों की व्यवस्था करना थोडा कठिन है।

आय जीवन स्तर का निर्णय करने में सर्वोच्च स्थान रखती है | कम आय होने पर केवल जीवन–निर्वहन के लिए अपरिहार्य वस्तुओं की पूर्ति करना सर्वोच्च लक्ष्य होगा, जबकि अधिक आय होने पर विलासिता की वस्तुओं पर सहज रूप से खर्च किया जा सकता है | आय का प्रत्यक्ष सम्बन्ध आय के स्रोत एवं परिवार के आय अर्जन करने वाले सदस्यों से भी होता है | अगर, पति–पत्नी दोनों कमाते है और दोनों में सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध हैं तो दोनों की सम्मिलित आय से उच्च जीवन स्तर जिया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से हम यह कह सकते हैं कि निर्धनता एक सापेक्ष अवधारणा है जिसका सम्बन्ध किसी राष्ट्र. समाज, संस्कृति, समुदाय, व्यवसाय एवं पारम्परिक पेशे में प्रचलित जीवन स्तर के आदर्शों से होता है | किसी भी समाज में जीवन–स्तर का आदर्श यह समकालीन सामाजिक–सांस्कृतिक मान्यताओं, परम्पराओं एवं प्रथाओं, व्यक्ति की तार्किक बुद्धिमता, निर्णय लेने का कौशल तथा आय पर निर्भर करता है | निर्धनता के निर्धारण में धन का महत्वपूर्ण स्थान है परन्तु हम दैनिक जीवन में ऐसा देखते हैं कि कई जातियाँ एवं मत–मतान्तर को मानने वाले लोग धनी तो होते

हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि जितना उनके पास धन है उसी अनुपात में उनका जीवन स्तर भी होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेक धनी लोग निम्न जीवन स्तर व्यतीत करते हैं | इससे यह सिद्ध होता है कि निर्धनता केवल आर्थिक तथ्य और सत्य ही नहीं है वरन यह एक सामाजिक तथ्य भी है, जिसका समाजशास्त्रीय पद्धति के द्वारा अध्ययन किया जा सकता है।

18.10 निर्धनता के कारण

निर्धनता अनेक कारकों की मिली जुली पारस्परिक क्रिया एवं अन्त: का परिणाम है | निर्धनता के अनेक कारण होते हैं, जिनमें प्रमुख निम्नानुसार है:–

(1) भौतिक पर्यावरण

भौतिक पर्यावरण से हमारा तात्पर्य प्रकृति द्वारा प्रदत्त जलवायु, प्राकृतिक सम्पदा, खनिज, उपजाऊ भूमि नदियाँ, झीलें इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है | यदि किसी राष्ट्र में प्राकृतिक भण्डारों व खनिज पदार्थो का अभाव है | भूमि अनुपजाऊ है, रेगिस्तान में वर्षा की कमी है | वर्ष पर्यन्त बहने नदियों का अभाव है, इत्यादि तो ऐसी स्थिति में उस भू–भाग पर निवास करने वाले लोगों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में मुश्किलों का सामना करना पड़ेगा। अत: उक्त भू–भाग पर रहने वाले लोगों में देखने को मिलेगी। इसी प्रकार इसके ठीक विपरीत परिस्थितियों वाले राष्ट्र में समृद्धि देखने को मिलती है | लोग सुखी एवं धनवान होते हैं | मौसम की अनिश्चितता के कारण अत्यधिक गर्मी, सर्दी, अल्पवृष्टि, ' अतिवृष्टि के कारण फसलों का नुकसान हो जाता है तथा लोग अभाव एवं निर्धनता में जीवन जीने के लिए हो जाते हैं | आसाम, बिहार पश्चिम बंगाल, उत्तर–प्रदेश इत्यादि राज्यों में मौसम के कारण जान और धन की हानि होती है | इसी प्रकार समुद्र के किनारे रहने वाले लोगों को तूफान एवं कुसमय की वर्षा का सामना 'करना पड़ता है, जिससे जान और माल का भारी नुकसान होता है तथा लाखों लोग बेघर हो जाते हैं | कीडे–मकोड़े जीव–जन्तु इत्यादि फसलों और उद्योगों को नुकसान कर देते हैं तथा फलों, कागज, कपास, लकडी रेशम इत्यादि को नष्ट कर देते हैं | इससे इन उद्योगों से सम्बन्धित लोगों को निर्धनता का सामना करता है।

(2) वैयक्तिक कारण

जेफिगिन. ने अमेरिका में निर्धनता के कारणों को मालूम करने के लिए एक अध्ययन किया। जिसमें निर्धनता के लिए लोगों ने व्यक्ति को ही दोषी ठहराया। इन लोगों का मत है कि कोई भी व्यक्ति निर्धन इसीलिए है क्योंकि उसमें योग्यता, इच्छाशक्ति एवं प्रतिस्पर्धात्मक युग में जीवन-यापन करने की प्रेरणा का अभाव पाया जाता है | ऐसे लोग अपनी दरिद्रता के लिए स्वयं उत्तरदायी होते हैं | व्यक्ति की अयोग्यता निर्धनता को जन्म देती है | शारीरिक निर्बलता, वंशानुगत बीमारियां, दुर्घटना, मानसिक योग्यता, नैतिक पतन, अविवेकपूर्ण खर्च इत्यादि, व्यक्ति की निर्धनता के लिए व्यक्तिगत कारण होते हैं | अल्पकालिक और दीर्घकालिक बीमारियां परिवार में निर्धनता उत्पन्न करती हैं | इसी प्रकार किसी व्यक्ति की दुर्घटना ग्रस्त होने पर, अंग भंग ' होने पर, लूला–लंगड़ा अथवा अन्य किसी शारीरिक असक्षमता होने पर आर्थिक दशा प्रभावित होती है | बीमारी, बुढ़ापा, दुर्घटना, अपंगता इत्यादि शारीरिक क्षमताओं पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, जिसके कारण व्यक्ति अर्थोपार्जन नहीं करने के फलस्वरूप अन्य लोगों पर निर्भर रहता है।

(3) सामाजिक कारण

सामाजिक कारणों के अन्तर्गत शैक्षणिक दोष, स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं का स्थान, आवास की अनुपलब्धता, विवाह और पैतृक ज्ञान का अभाव इत्यादि को सम्मिलित करते हैं | दोषयुक्त शिक्षा व्यवस्था ने शिक्षित बेरोजगारी को जन्म दिया है | वर्तमान समय में विद्यमान शिक्षा–व्यवस्था रोजगारोन्मुखी न होकर डिग्री प्रदाता बन गई है, जिसके कारण बेकारी पनपी है | आधुनिक विज्ञान ने अनेक खोजों एवं अन्वेषण के द्वारा पूर्व में असाध्य बीमारियों पर नियंत्रण कर लिया है | फिर भी भारतवर्ष में लोगों के स्वास्थ्य रक्षण हेतु समुचित सुविधाओं का अभाव नजर आता है, जिसके कारण लोग अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं तथा परिवार को गरीबी का सामना करना पड़ता है | गन्दी बस्तियाँ, दवा, बिजली–पानी व प्रकाश का अभाव, भीड–भाड, युवा, घर व्यक्ति के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर डालते हैं, जो कि अन्ततोगत्वा निर्धनता को जन्म देते हैं | भारतवर्ष में बच्चों का विवाह कम उम्र में कर दिया जाता है | जिसके कारण वे पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन करने में असमर्थ रहते हैं तथा ये पराश्रित को जन्म देते हैं | 'औद्योगिक क्रान्ति, वैश्वीकरण, निजीकरण एवं स्वतंत्रता के विचारों ने नारी स्वातंत्रय है' पर बल दिया है, जिसके कारण आर्थिक उपार्जन के लिए घर की देहली लांघ कर बाहर काम करने के लिए तैयार हो जाती हैं | माता–पिता तथा बच्चों एवं पति–पत्नी के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों में व्यक्ति केन्द्रित भावना के अभ्युदय के कारण सम्बन्धों में शिथिलता देखने को मिलती है | भारत में जाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार प्रणाली तथा धार्मिक अन्ध–विश्वास भी गरीबी के उद्भव के लिए उत्तरदायी होते हैं | संयुक्त परिवार तथा जाति प्रथा व्यक्ति की गतिशीलता में बाधा उत्पन्न करते हैं तथा अपने सदस्यों को घर से बाहर जाने पर अंकुश लगाते हैं | जाति व्यवस्था के अन्तर्गत लोग परम्परागत पेशों पर ही अपना जीवनयापन करना पसन्द करते हैं तथा नवीन व्यवसाय को स्वीकार करने में संकोच एवं झिझक महसूस करते हैं | धार्मिक अन्धविश्वासों, कर्मवाद के सिद्धान्त तथा पूर्वजन्म के सिद्धान्तों के गलत निर्वचन ने लोगों को भाग्यवादी दृष्टिकोण अपनाने में मदद की है, जिसके कारण उनमें उद्यमशील प्रकृति एवं जोखिम लेने की प्रवृत्ति का अभाव पाया जाता है।

(4) आर्थिक कारक

आर्थिक आयाम के अन्तर्गत निर्धनता का सम्बन्ध आय और व्यय के सन्दर्भ में किया जाता है | अपर्याप्त उत्पादन, असमान वितरण, आर्थिक उतार–चढ़ाव, गरीबी का दुष्चक्र, मन्दी, बेरोजगारी इत्यादि निर्धनता को जन्म देने के प्रमुख कारक हैं | भारत कृषि प्रधान देश है | यहाँ पर कृषि एवं कुटीर उद्योगों में उत्पादन के लिए परम्परागत साधनों को प्रयुक्त किया जाता है | इन क्षेत्रों में आय सीमित ही होती है | अनेक बार मौसम के प्रतिकूल होने की स्थिति में उत्पादन पर्याप्त नहीं हो पाता। इसके आतिरिक्त उत्पादन के साधनों पर सीमित लोगों का एकाधिकार होने के कारण निर्धन व्यक्ति की आर्थिक दशा सुधरने की सम्भावना गौण ही रहती है | इस प्रकार सम्पत्ति तथा आय का असमान वितरण, बेरोजगारी की अवस्था एवं व्यापारिक मन्दी निर्धनता को जन्म देती है।

(5) सांस्कृतिक कारक

सनातन संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरूषार्थों की प्राप्ति हेतु समन्वयक प्रयास करने पर बल दिया। केवल अर्थ की प्राप्ति हेतु जीवन को प्रयुक्त करना एकांगी दृष्टिकोण खैर, जिसे पूर्ण रूप से नकार दिया गया है | अत: भारतीय सांस्कृतिक तत्वों में संतोष धन' को सबसे महत्वपूर्ण माना

गया है | इस सन्दर्भ में भारतीय संस्कृति में कुछ मत एवं विचारधाराएँ एवं जीवन शैली ऐसी भी है जो येन–केन–प्रकरण धन कमाने पर ही बल देती हैं |

(6) राजनीतिक कारक :

राजनैतिक उथल–पुथल एवं अस्थिरता निर्धनता को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है | इस प्रकार की स्थिति समाज में मुनाफाखोरी, जमाखोरी, कालाबाजारी एवं सूदखोरी अपनी चरम सीमा पर होती है | वर्तमान भारतीय राजनीति में केन्द्र में विद्यमान अस्थिरता केन्द्र सरकार को महँगाई नियन्त्रण करने में शिथिल कर देती है | सरकार की आर्थिक नीतियाँ एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे सरकार को अस्थिर बनाते हैं और इससे अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है | केन्द्र में अगर गठबंधन सरकार अस्तित्व में हो तो स्थिति बद से बदतर हो जाती है।

सरकार की कर नीति, आयात–निर्यात नीति, उत्पादन एवं वितरण व्यवस्था किसी भी राष्ट्र के लोगों की आर्थिक दशा को प्रभावित करती है | ब्रिटिश साम्राज्य ने भारत का जमकर आर्थिक शोषण किया हैं | इंग्लैण्ड के कारखानों की पूर्ति हेतु कच्चा माल भारत से निर्यात होता था एवं तैयार माल बिकने के लिए भारत ही आता था। अंग्रेजों ने भारतीय वसुंधरा पर कल–कारखाने एवं उद्योगों की स्थापना को कभी महत्व प्रदान नहीं किया।

(7) युद्ध :

युद्ध के दौरान आर्थिक अपव्यय बहुत ज्यादा होता है | किसी भी राष्ट्र को युद्ध के अवश्यभावी परिणाम के रूप में गरीबी रूपी बीमारी को सहन करना पड़ता है | विगत दो विश्वयुद्धों ने पश्चिमी देशों को आर्थिक पतन के कगार पर खड़ा कर दिया था। जर्मनी–जापान तो पूरी तरह नष्ट हो चुके। युद्ध के समय में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को गम्भीर क्षति होती है क्योंकि व्यापारिक मार्ग अवरूद्ध हो जाते हैं | व्यापारिक क्षति का दुष्परिणाम गरीबी के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

(8) परम्परागत कृषि :

भारतीय कृषि व्यवस्था मानसून पर आधारित होने के कारण इसे 'मानसून का जुआ' कहा जाता है | वर्षा की पर्याप्त मात्रा से निर्धन किसानों का भरण–पोषण सुचारू रूप से होने की होती है, अन्यथा ग्रामीण निर्धनों को भूखमरी का सामना करना पड़ता है | भारत में पर्याप्त सिंचाई के,साधनों का अभाव, उन्नत खाद, बीज एवं तकनीकी जानकारी का अभाव एवं परम्परागत कृषि करने के तरीकों पर अत्यधिक बल देने के कारण कृषि की उपज कम होती है।

(9) बेरोजगारी :

बेरोजगारी व्यक्ति को पराश्रित बना देती है | वांछित आय के अभाव में बेरोजगार व्यक्ति में कुंठाओं का जन्म होता है और उसे "अलगाव" का सामना करना पड़ता है | बेरोजगारी व्यक्ति की आवश्यकताओं को न्यून कर, निम्न जीवन स्तर जीने के लिए बाध्य कर देती है | अनेक बार बेरोजगार स्वयं का और अपने परिवार का भरण–पोषण भिक्षावृत्ति के माध्यम से करने में भी संकोच नहीं करता। इस प्रकार बेरोजगारी निर्धनता को जन्म देती है |

(10) जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धि :

भारत की जनसंख्या प्रतिवर्ष ऑस्ट्रेलिया की जनसंख्या के बराबर बढ़ है | जनाधिक्य निर्धनता को जन्म देता है | जिस तीव्र गति से भारत में जनसंख्या की वृद्धि हो रही है, उसी में जीवन-यापन के लिए वांछित एवं उपयुक्त संसाधनों एवं सुविधाओं में वृद्धि नहीं होती, जिसके परिणाम स्वरूप लोगों को बेरोजगारी, बेकारी एवं भूखमरी का सामना करना पड़ता है | माल्थस ने अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि को निर्धनता के लिये उत्तरदायी माना है | जब जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में उत्पादन की मात्रा में वृद्धि नहीं हो जाती, तब तक राष्ट्र का आर्थिक सन्तुलन चरमरा जाता है | माँग और पूर्ति के असन्तुलन के फलस्वरूप मूल्यों में वृद्धि होने के साथ–साथ महँगाई भी बढ़ जाती है, जिससे लोगों की क्रय शक्ति घट जाती है | अत: लोग अपनी आवश्यकताओं की समुचित पूर्ति नहीं कर पाते और उन्हें निर्धनता की स्थिति में जीवन-यापन करना पड़ता है।

(11) सूदखोरी प्रथा :

भारतीय ग्रामीण क्षेत्र में सहकारी समितियाँ पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाई हैं | किसानों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सूदखोरों के पास जाना पड़ता है | सूदखोर ग्रामीण किसानों की मजबूरी एवं अज्ञानता का फायदा उठाकर उनका आर्थिक, शारीरिक एवं मानसिक शोषण करते हैं | ऋण के दुष्चक्र से गरीब किसान एवं आदिवासी लोग मुक्त नहीं हो पाते। उनकी पीढ़ियाँ सूदखोर के ऋण चुकाने में अपना जीवन खपा देती हैं | डूँगरपुर–बाँसवाड़ा के ग्रामीण आँचल में सूदखोरों का ' खतरनाक ' जाल है | एक बार इन सूदखोरों के चुंगल में कोई आदिवासी परिवार फंस जाता है तो ये सूदखोर उसका आर्थिक एवं मानसिक शोषण कर उसे निर्धनता की पराकाष्ठा पर खड़ा कर देते हैं | भारत को आजाद हुए छ: दशक बीत चुके हैं परन्तु वर्तमान समय तक इन सूदखोरों पर अंकुश लगाने का प्रभावशाली कानून नहीं बना है।

राजस्थान में कुछ समय पूर्व तक सागड़ी प्रथा प्रचलन में थी। इस प्रथा के अनुसार उधार लेने वाले व्यक्ति अथवा परिवार को सूदखोर साहूकार के घर तब तक मुफ्त सेवाओं के रूप में कार्य करना पड़ता था, जब तक वह उस साहूकार के ऋण से उऋण न हो जाए। एक बार साहूकार के चुंगल में फँसने पर उससे मुक्ति असंभव थी और निर्धन व्यक्ति एवं उसका परिवार निर्धन एवं पराश्रित ही बना रहता था।

(12) अशिक्षा और अज्ञान :

भारत में शिक्षा का प्रतिशत काफी कम है | गाँवों में तो स्थिति भयावह है | शिक्षा की कमी के कारण लोग साहूकारों एवं सूदखोरों के चंगुल में फँस जाते हैं तथा अशिक्षा इन्हें अन्ध विश्वास एवं अवांछित परम्पराओं की पालना करने और करवाने में सहायक सिद्ध होती है |अशिक्षा के कारण इनमें वैज्ञानिक, तार्किक एवं बोधपरक बुद्धि का विकास नहीं हो पाता जिसके कारण निर्धन लोग उन सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं का निर्बाध गति से पालन करते रहते हैं, जिनका वर्तमान युग में किसी भी प्रकार का महत्व नहीं रह गया है | ग्रामीण परिवेश में अशिक्षा का लाभ उठाकर सूदखोर और आधुनिक जमींदार निर्धन लोगों का आर्थिक एवं शारीरिक शोषण करते हैं |

(13) सामाजिक कुरीतियाँ :

वर्तमान हिन्दू सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचना में अनेक कुरीतियों का समावेश है जैसे मृत्युभोज, दहेज प्रथा, खर्चीला विवाह एवं जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त तक अनेक संस्कार। इन रीति–रिवाजों को पूरा करने के लिए व्यक्ति अपनी आर्थिक क्षमता से अधिक खर्चा लेकर इसलिए करता है | जिससे कि समाज में उसकी प्रतिष्ठा बनी रहे। इसके लिए वह ऋण लेता है तथा अपनी भूमि, भवन, अन्य सम्पत्ति तथा आभूषण गिरवी रखने के कारण मजदूरी के द्वारा जीवनयापन करना पड़ता है | सूदखोरों एवं साहूकारों की ब्याज दरें इतनी अधिक होती हैं कि एक बार ऋण के दुष्चक्र में फँसने के बाद कई पीढ़ियों को ऋण होने के लिए सागडी प्रथा के अन्तर्गत मजदूरी करनी पड़ती है अथवा कम दर पर सूदखोर के यहाँ काम करना पड़ता है | महज इतना ही नहीं निर्धन लोग गरीबी को ईश्वर की देन भी मानते हैं | ये लोग सामाजिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक कुरीतियों को अन्धविश्वास, अज्ञान एवं रूढ़िवादिता के कारण त्यागते नहीं हैं एवं निर्धनता की चादर को अनवरत अपने ऊपर ओढ़े रहते हैं |

(14) नरम राज्य :

गुन्नार मिर्डल समस्त अविकसित राष्ट्रों में व्याप्त निर्धनता का एक कारण 'नरम राज्य' को मानते हैं | मिर्डल का नरम राज्य से अभिप्राय उस सामाजिक अनुशासनहींनता से है जो विभिन्न स्वरूपों में दृष्टिगोचर होती है, यथा कानून की कमियाँ एवं सीमाएँ तथा कानून का क्रियान्वयन करने में व्यापक खामियाँ, भिन्न–भिन्न स्तरों पर प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा इन नियमों एवं निर्देशों की बृहत् स्तर पर अवहेलना, जिनके क्रियान्वयन का उन पर उत्तरदायित्व होता है | वस्तुत: इन अधिकारियों के सम्बन्ध (अनैतिक) एवं साठ–गांठ उन से अन्त एवं सत्ताधीश वर्ग एवं जाति के लोगों से होते हैं, जिनके विपथगामी व्यवहार एवं आपराधिक आचरण को नियमित एवं रोकने की जिम्मेदारी इन्हीं अधिकारियों पर होती है, जो कि असंभव है | नरम राज्य की संकल्पना में भ्रष्टाचार भी समाहित है | नरम राज्य में सामाजिक, आर्थिक एवं. राजनीतिक संभ्रान्त निर्धन लोगों का शोषण करते हैं और समाज तथा राज्य के नियमों एवं मानदण्डों के विरूद्ध आचरण करते हैं | भ्रष्टाचार के कारण उच्च वर्ग निम्न वर्ग का शोषण करता है और निम्न वर्ग इनके खिलाफ वांछित कार्यवाही करने में संकोच करता है | वह यथास्थिति की पालना करते हुए निर्धनता में जीवन-यापन करता है।

(15) औद्योगिकीकरण एवं पूँजीवाद :

औद्योगिकीकरण एवं पूँजीवाद ने एक ऐसी नई सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था को जन्म दिया है | जिनके मूल में व्यक्तिगत मुनाफा एवं शोषण की मानसिकता निहित है | आधुनिक कल–कारखाना लगाने वाले पूँजीपतियों ने अपनी आर्थिक सत्ता के बल पर बड़े–बड़े कल–कारखाने स्थापित किए, परिणामस्वरूप ग्रामीण कुटीर उद्योग नष्टप्राय: हो गए और कुटीर व्यवसाय को संचालित करने वाला वर्ग मजदूर हो गया। नई व्यवस्था ने परम्परागत व्यवसायों को समाप्त कर बेरोजगारों की फौज खड़ी कर दी और इस नई व्यवस्था ने गरीबी के एक नए स्वरूप को जन्म दिया। नवीन उद्योग व्यवस्था ने समाज में मजदूर एवं मालिक दो ऐसे वर्ग खड़े कर दिए जो परस्पर विचारधारा में विरोधी थे। उत्पादन के साधनों पर नियन्त्रण करने वाले उद्योगपतियों ने गरीबों का शोषण किया। इन्होंने गरीबों को और अधिक गरीब बना दिया।

18.11 निर्धनता के दुष्प्रभाव

निर्धनता दुनिया में सबसे बड़ा अभिशाप है | निर्धनता किसी देश के लोगों के निम्न जीवन स्तर के लिए महत्वपूर्ण उत्तरदायी कारक है | निर्धनता के कारण लोगों में किसी कार्य के प्रति समर्पण, साहस एवं जोश की भावना का लोप हो जाता है | वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में चहुँ ओर निजीकरण एवं खुलेपन की विचारधारा का प्रबल स्वरूप देखने को मिल रहा है | प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन स्तर उठाने के लिए अधिक से अधिक धन अर्जन के लिये प्रयासरत है | धन सब कुछ नहीं है, परन्तु बहुत कुछ धन ही है | निर्धनता की स्थिति में व्यक्ति को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है | इसके कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व के समस्त आयामों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है | यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि निर्धनता समस्त बुराइयों की अमर बेल निम्नलिखित आधारों पर निर्धनता के दुष्प्रभावों को बिन्दुवार समझने का प्रयास किया गया है-

1. **शारीरिक दुष्प्रभाव :**

निर्धनता की अवस्था में व्यक्ति वांछित पोषक तत्वों एवं सन्तुलित आहार को अपने भोजन में सम्मिलित नहीं कर पाता। इसीलिए अनेक बीमारियों का जन्म निर्धनता से ग्रस्त सामाजिक परिवेश में देखने को मिलता है | मूलत: क्षय रोग (टीबी) को गरीबों की बीमारी की मान्यता मिली हुई है | दीर्घावधि तक रोगग्रस्त रहने के कारण व्यक्ति की कार्य करने ,की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है | धन के अभाव में निर्धन लोग उचित चिकित्सा सुविधा नहीं ले पाते तथा मृत्यु का अनचाहे वरण करते है | इसलिए निर्धनता का सम्बन्ध मृत्यु दर की वृद्धि से भी है | धनवान लोगों की अपेक्षा निर्धन लोगों के बच्चों की मृत्यु दर, गर्भपात दर तथा मृत बच्चे जन्म लेने की संख्या अधिक होती है | निर्धन देशों में माताएँ एवं गर्भस्थ महिलाएँ कुपोषण का शिकार होती हैं | अत: कुपोषण से शिकार महिलाओं के बच्चे भी निश्चित रूप से कुपोषित ही होते हैं | निर्धनता व्यक्ति की कार्य क्षमता को प्रभावित कर व्यावसायिक थकान पैदा करती है | निर्धन लोगों को वांछित धनाभाव के कारण चिकित्सा के प्रति उपेक्षा, दुर्गन्ध एवं गन्दगी युक्त आवासों में निवास, मनोरंजन का अभाव, अस्वस्थता, छूत एवं कुपोषण पर आधारित बीमारियों का सामना करना पड़ता है | निर्धनता के कारण जलवायु परिवर्तन के अनुरूप अपने एवं अपने बच्चों के बचाव के लिए निर्धन लोग उचित वस्त्रों की व्यवस्था भी नहीं करवा पाते।

2. **मानसिक दुष्प्रभाव :**

निर्धनता अनेक बीमारियों को जन्म देकर व्यक्ति के मानसिक असन्तुलन का कारण बनती है | निर्धनता कुपोषण का कारण बनती है तथा कुपोषण मानसिक व्याधियों को जन्म देता है | इसी प्रकार निर्धन बच्चों का कुपोषण एवं वांछित शारीरिक पुष्टि कारक तत्वों के अभाव में बौद्धिक स्तर निम्न रहने की प्रबल सम्भावना रहती है | ठीक इसी प्रकार निर्धनता के कारण गरीब लोग अपने बच्चों को उचित शिक्षा की व्यवस्था नहीं करवा पाते जिसके कारण उनके समुचित बौद्धिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है | सरकार के द्वारा पिछड़े वर्गो के लोगों के उन्नयन एवं विकास के लिए अनेक प्रकार की योजनाओं का क्रियान्वयन कर उनके समुचित विकास के लिए प्रयास किये जा रहे हैं |

3. सामाजिक दुष्प्रभाव :

निर्धनता प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सामाजिक पद, प्रतिष्ठा एवं मान–सम्मान को प्रभावित करती हैं | निर्धनता का सामान्य आशय निम्न सामाजिक प्रस्थिति से निम्न सामाजिक परिस्थति व्यक्ति के व्यक्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है | निर्धनता बाल अपराध, अपराध, भगोड़ेपन आवारागर्दी एवं मानसिक असन्तुलन को जन्म देती हैं | निर्धनता निर्धन लोगों की समस्त समस्याओं की जड़ है | गरीबी लोगों में मानसिक हीनता को जन्म देती है और इस प्रकार के व्यक्तित्व समाज में स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं |

4. अपराधग्रस्तता :

निर्धनता किसी व्यक्ति से समाज एवं कानून विरोधी कार्य करवाने में सक्रिय भूमिका का निर्वहन करती है | अपराध एवं बाल अपराध करने वाले अधिकांश अपराधी समाज के निर्धन वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं | इन लोगों के पास सामान्य जीवनयापन करने की मूलभूत सुविधाओं का अभाव रहता है | निर्धन लोगों के पास पोषण, स्वास्थ्य एवं आवास की पर्याप्त सुविधाऐ विद्यमान नहीं रहती । ये लोग अपनी तथा अपने परिवार की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चोरी, डकैती, जेब–तराशी, सेंधमारी इत्यादि कानून विरूद्ध कृत्य करते हैं |

5. पारिवारिक विघटन :

निर्धनता समाज में पारिवारिक विघटन को जन्म देने में प्रमुख भूमिका का निर्वहन करती है | निर्धनता के कारण माता–पिता को धन अर्जन के लिए घर से बाहर जाना पड़ता है तथा बच्चे भी पारिवारिक आय में मदद करने के लिए कुछ न कुछ कार्य करते हैं | यहाँ तक कि निर्धनता से निवृत्ति पाने के लिए घर की लड़कियाँ तथा स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति तथा कॉल गर्ल की भूमिका अनचाहे वरण करती हैं | आर्थिक अभाव परिवार के सदस्यों के मध्य तनाव मनमुटाव, संघर्ष एवं झगड़ों की स्थिति पैदा करता है | गरीब परिवारों के बच्चे आवारा, भगोड़े बाल–अपराधी हो जाते हैं | इन परिवारों की समाज में निम्न स्थिति होती है | निर्धनता गरीबों में व्यवस्था के प्रति रोष एवं असंतोष पैदा करती है तथा सुदृढ़ पारिवारिक संगठन एवं सामाजिक व्यवस्था के लिए खतरा उत्पन्न करती है | इस प्रकार गरीबी पारिवारिक विघटन करने के साथ–साथ गरीबों में निराशा, कुण्ठा, हीनता एवं निराशा के नकारात्मक भावों को जन्म देती है ।

6. भिक्षावृत्ति :

निर्धनता भिक्षावृत्ति को जन्म देने के लिए उत्तरदायी कारण है | निर्धन लोगों के पस आय के पर्याप्त साधन नहीं होने के कारण उनके लिए भीख माँगना ही आय अर्जन का एक सरलतम जरिया होता है | इन लोगों का व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं शिक्षा के अभाव में रोजगार प्राप्त करना मुश्किल होता है | ' अत: परिवार के भरण–पोषण के लिए भिक्षा को आय का जरिया बनाते हैं |

7. दुर्व्यसनों में वृद्धि :

निर्धनता के कारण लोग मानसिक अवसाद, चिन्ता एवं निराशा के शिकार हो जाते हैं | इनसे मुक्ति पाने के लिए अनेक दुर्व्यसनों को अपने व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बना लेते हैं | ये लोग अपने तनावों, कुण्ठाओं एवं निराशाओं का शमन करने के लिए मद्यपान, जुआ एवं वैश्यावृति का सहारा लेते हैं |

8. चारित्रिक हास :

निर्धनता की अवस्था में उच्च चरित्र बनाये रखना सम्भव नहीं हो पाता क्योंकि हम भूखे व्यक्ति से ईमानदार एवं शतक बने रहने की अपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि बुभुक्षं किं न करोती पापं (भूखा व्यक्ति कौन–सा पाप नहीं करता) आर्थिक अभाव के कारण परिवार के भरण–पोषण के लिए घर की लड़कियाँ एवं महिलाएँ तक वैश्यावृत्ति को आय का साधन बना कर पैसा कमाती हैं |

यहाँ पर यह लिखना उपयुक्त होगा कि निर्धनता एक ऐसा चक्रव्यूह है जो अनेक व्याधियों एवं सामाजिक बुराईयों को अपने अन्दर समाहित कर लेता है | निर्धनता एक कुचक्र है | अधिकांश लोग निर्धन हैं क्योंकि वे बेरोजगार हैं और अधिकांश लोग बेरोजगार हैं, क्योंकि वे निर्धन हैं | सामान्यत: निर्धन व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं आध्यात्मिक रूप से सम्पन्न एवं सशक्त नहीं होते। निर्धनता एक कुचक्र सामाजिक आर्थिक समस्या है जो अनेक समस्याओं की जननी है | यह भुखमरी, बेरोजगारी, बाल–अपराध, अपराध, पारिवारिक विघटन एवं सामाजिक अव्यवस्था तथा क्रान्ति के लिए उत्तरदायी सिद्ध होती है | निर्धनता के कारण समाज में अपराधों की दर बढ़ जाती है एवं लोग कुपोषण का शिकार हो जाते है, जिससे उनकी कार्य क्षमता घट जाती है तथा जीवन स्तर गिर जाता है।

18.12 भारत में निर्धनता के उन्मूलन हेतु पंचवर्षीय योजनाओं में किये गये प्रयास

भारत सरकार ने निर्धनता को समाप्त करने के लिए विशेष प्रयत्न किये हैं तथा गाँवों की दशा सुधारने के लिए सामुदायिक विकास योजनाएँ प्रारम्भ की गई हैं | जिनमें कृषि, पशु–पालन, कुटीर उद्योग, लघु उद्योग, सहकारी समितियाँ, शिक्षा, यातायात आदि अनेक विषयों के विकास पर जोर दिया गया है बेकारी को दूर करने के लिए रोजगार के नये अवसर प्रदान किये गये हैं तथा विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में निर्धनता व बेकारी को दूर करने, लोगों के जीवन–स्तर को उन्नत करने, उत्पादन और राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने आदि के लिए योजनाबद्ध प्रयत्न किये गए हैं | आवास, बिजली, पानी, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि की सुविधाएँ उपलब्ध कराने तथा अनुचित जातियों, जनजातियों एवं अन्य पिछड़ा वर्ग के लोगों के कल्याण कार्यक्रमों पर जोर दिया गया है |

प्रथम पंचवर्षीय योजना में किये गये प्रयास :

प्रथम पंचवर्षीय योजना में 2378 करोड़ रूपये विभिन्न कार्यक्रमों पर खर्च करने के लिए रखे गये। प्रथम पंचवर्षीय योजना में मुद्रा–स्फीति को रोकने एवं खाद्य सामग्री के अभाव को दूर करने, लोगों का जीवन–स्तर ऊँचा करने और उन्हें अच्छा जीवन व्यतीत करने की सुविधाएँ देने आदि के लक्ष्य तय किये गये। कृषि श्रमिकों की स्थिति में सुधार के लिए कई कार्य किये गये, जैसे कम मजदूरी वाले क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी तय करना, भूमिहीन श्रमिकों के लिए पुनर्वास योजना बनाना, श्रमिक सहकारिताओं का संगठन, निवास स्थान के सम्बन्ध में श्रमिकों को दखली अधिकार देना आदि। बढती हुई बेरोजगारी को दूर करने के लिए 309 करोड रूपयों की अतिरिक्त व्यवस्था करके रोजगार देने का प्रावधान किया गया। इस योजना काल में 45 लाख लोगों को प्रत्यक्ष रूप से रोजगार दिया गया।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में किये गये प्रयास :

इस योजना काल में उद्योगों के विकास पर जोर दिया गया और योजना की 20 प्रतिशत रकम उद्योगों पर खर्च करने का प्रावधान किया गया। देश का औद्योगीकरण करने के लिए 690 करोड़ रूपये खर्च करने का प्रावधान रख कर तीव्र औद्योगिक विकास का कार्यक्रम तैयार किया गया तथा एक करोड़ लोगों को रोजगार देने का प्रावधान था जिसमें से 65 लाख लोगों को गैर–कृषि क्षेत्र में लाभान्वित किया गया।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में किये गये प्रयास :

तृतीय पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य राष्ट्रीय आय में 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि करना तथा प्रति वर्ष उपभोग को 4 प्रतिशत से अधिक बढ़ाना था। खाद्य–सामग्री के क्षेत्र में आत्म–निर्भर होने तथा औद्योगिक माँगों के लिए कृषि की उपज बढ़ाने. तथा आय व सम्पत्ति की असमानता को समाप्त करने आदि का लक्ष्य रखा गया। इस योजनाकाल में कृषि–श्रमिकों की स्थिति सुधारने पर पर्याप्त जोर दिया गया। इसके लिए विभिन्न विकास कार्यक्रमों जैसे कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास, ग्रामीण विद्युतीकरण, ग्रामीण आवास, जल सिंचाई, कृषि उत्पादन में वृद्धि तथा शिक्षा आदि पर जोर दिया गया।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में किये गये प्रयास :

चौथी योजना में कुल 24882 करोड़ रूपये खर्च करने का प्रावधान था। इस योजना के तीन प्रमुख उद्देश्य थे,। आत्म–निर्भरता प्राप्त करना, 2. विकास के लाभों का समान रूप से वितरण 3. विकास के लाभों में समान रूप से वृद्धि करना। इस योजना काल में भूमिहीन कृषि मजदूरों को भूमि वितरण तथा उन्हें पशुपालन उद्योग में लगाने का कार्यक्रम भी रखा गया।

पांचवी पंचवर्षीय योजना

इस योजना में गरीबी दूर करने के लिए प्रति व्यक्ति उपभोग बढ़ाने एवं कीमतों को स्थिर रखने के प्रयासों पर जोर दिया गया। इस योजना में 69000 करोड़ रूपये खर्च करने का प्रावधान रखा गया। कृषि एवं उससे सम्बन्धित कार्यों पर 4643 करोड, उद्योग एवं खनिजों पर 10200 करोड़, सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाओं पर 4,760 करोड़ तथा पर्वतीय एवं जनजातीय क्षेत्रों के विकास के लिए 450 करोड़ रूपये खर्च करने का प्रावधान रखा गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री ने केवल राष्ट्रीय आय की वृद्धि करने के स्थान पर गरीबी का अन्त करने के लिए उचित वितरण नीति पर जोर दिया। उन्होंने अपना नया नारा दिया 'गरीबी हटाओ। ' इस नयी नीति में कई बातें तय की गयी, जैसे – (1) यदि हम निर्धनता हटाने का प्रयास करेंगे, तो राष्ट्रीय आय में स्वत: वृद्धि होगी। (2) उत्पादन के आयोजन के स्थान पर उपभोग के आयोजन पर अधिक जोर दिया गया। (3) उत्पादन बढ़ाने के साथ–साथ उसका उचित वितरण किया जाये। (4) रोजगार के अवसर को प्राथमिकता दी जाये। (5)प्रत्येक व्यक्ति को जिसकी आय एक निश्चित सीमा से कम है, सरकार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सहायता देकर उसे निर्धारित सीमा तक लाने का प्रयास करे। (6) देश के पिछड़े क्षेत्रों का विकास क्रिया जाय ताकि उन्हें कम से कम उपभोग स्तर तक पहुँचाया जा सके। इसके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी आदि की पिछड़े क्षेत्रों में सुविधाएँ प्रदान की गई तथा समाज कल्याण सेवाओं पर जोर दिया गया।

छठी पंचवर्षीय योजना में किये गये प्रयास

इस योजना में गरीबी को समाप्त करने के लिए विशेष प्रावधान किये गये। 'न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम' बनाया गया। इस योजना में पीने के पानी की सुविधा, गृह–विहीन लोगों के लिए मकान बनाने के लिए भूमि देने, गाँवों को मुख्य सडकों से जोड़ने, ग्रामीण गरीबों को प्राथमिक शिक्षा देने, ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा में विस्तार करने, गाँवों में बिजली उपलब्ध कराने, गन्दी बस्तियों का पर्यावरण सुधारने, पोषण की सुविधाएँ जुटाने एवं प्रौढ़ शिक्षा आदि के कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया। निर्धनता को दूर करने के लिए कृषि में सुधार एवं उन्नति करने बेरोजगारी को समाप्त करने, कुटीर व्यवसायों को प्रोत्साहन देने एवं भूमि–सुधार आदि के कार्यक्रम अपनाये गये। भारत में निर्धनता का केन्द्रीयकरण अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछड़े वर्गो में पाया जाता है | अत: न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम में पिछड़े वर्गो एवं अन्य लोगों के बीच जो दूरी विद्यमान है उसे कम करने का प्रयास किया गया।

नयी छठी पंचवर्षीय योजना में किये गये प्रयास

नयी छठी पंचवर्षीय योजना में निर्धनता उन्मूलन के लिए अनेक कार्यक्रमों की व्यवस्था की गयी। खाली समय में रोजगार देने, एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के कल्याण कार्यक्रमों के लिए पर्याप्त धनराशि की व्यवस्था की गयी थी।

सातवी पंचवर्षीय योजना में किये गये प्रयास

सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सरकार का लक्ष्य गरीबी–रेखा से 'जीवन व्यतीत कर रहे लोगों का प्रतिशत 23 तक लाना था। इस योजना में गरीबी समाप्त करने के लिए ने काम के बदले अनाज योजना शुरू की थी। 1981 में इस योजना का नाम बदल कर राष्ट्रीय ग्रामीण नियोजन कार्यक्रम कर दिया गया और इसे सातवीं योजना का आवश्यक कार्यक्रम बना दिया गया। इसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण श्रमिकों को खाली समय में रोजगार प्रदान करना है।

अन्त्योदय योजना – इस योजना के तहत प्रत्येक गाँव से पाँच निर्धनतम परिवारों का चयन किया जाता है और उन्हें आत्मनिर्भर बनने एवं व्यवसाय करने आदि के लिए सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है | इस योजना का शुभारम्भ सर्वप्रथम राजस्थान सरकार ने 2 अक्टूबर 1978 में किया।

पंचवर्षीय योजनाओं में देश में निर्धनता को समाप्त करने के लिए अनेक योजनाबद्ध कार्य किये गये हैं | इसके अतिरिक्त भी कुछ इस प्रकार के प्रयास किये गये हैं -

कृषि का विकास – निर्धनता दूर करने के लिए कृषि उत्पादन बढ़ाने, पड़त भूमि को जोतने एवं बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने के प्रयास किये गये हैं | इसके लिए उन्नत बीज, उर्वरक, वैज्ञानिक यन्त्र एवं नवीन सिंचाई के साधनों का प्रयोग किया जा रहा है | (ब) प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में रोजगार के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध कराये गये हैं | (स) परिवार नियोजन के विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा बढ़ती जनसंख्या पर रोक लगायी गयी है | (द) ग्रामीण विकास के लिए सरकार ने सामुदायिक विकास योजनाएँ प्रारम्भ की, जिनका उद्देश्य ग्रामीण निर्धनता को समाप्त करने के लिए पशु–पालन, कृषि का

विस्तार, सिंचाई, भूमि–सुधार आदि कार्यों में वृद्धि लाना है | (य) सरकार ने देश के विभिन्न भागों में बड़े–बड़े उद्योगों की स्थापना की, जिससे कई लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ।

18.13 निर्धनता उन्मूलन हेतु सुझाव

यद्यपि निर्धनता का उन्मूलन करना असम्भव सा कार्य प्रतीत होता है तथापि इस सामाजिक–आर्थिक समस्या के समाधान हेतु निम्नलिखित सुझावों को मस्तिष्क पटल पर रख कर ईमानदारी से प्रयास किये जा सकते हैं :–

1. जनसंख्या विस्फोट पर प्रभावी नियन्त्रण स्थापित करना।
2. कृषि व्यवस्था में वैज्ञानिक एवं तकनीकी सुधार करने के लिए असक्षम किसानों की मदद करना।
3. बेरोजगारी का उन्मूलन करने के लिए उत्पादकता से सम्बद्ध श्रम जुटाने की व्यवस्था करना।
4. संसाधनों का उचित वितरण करने के लिए प्रभावशाली तंत्र की स्थापना करना।
5. कुटीर एवं लघु उद्योगों का समुचित विकास करना।
6. रोजगारोन्मुखी शिक्षा–प्रणाली का वैज्ञानिक तरीके से विकास करना।
7. सामाजिक कुप्रथाओं को प्रभावशाली कानून के द्वारा नियंत्रित करना।
8. भ्रष्टाचार का उन्मूलन करना।
9. सामाजिक बीमा योजना को भारत के गरीब लोगों तक पहुँचाना।
10. प्राकृतिक विपदाओं से सुरक्षा के पुख्ता प्रबन्ध करना।
11. 11 मद्यपान को पूर्णत: समाप्त करना।
12. गन्दी बस्तियों के स्थान पर साफ–सुथरे आवास की व्यवस्था करना।
13. मुफ्त चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करवाना।
14. ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात एवं सड़क सम्पर्क स्थापित करना।
15. बचत की आदत को प्रोत्साहन देना।

18.14 बेरोजगारी

नोबल पुरस्कार प्राप्त प्रमुख अर्थशास्त्री अमृत्य सेन ने अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक उत्तरदायित्व के मध्य समुचित सामंजस्य स्थापित करने वाली नीतियों को अपनाने, पर बल दिया है | भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष बेरोजगारी सर्वोच्च प्राथमिकता से निराकरण करने वाली चुनौती है, जिसका त्वरित गति से समाधान करना होगा अन्यथा ये भारतीय समाज को छिन्न–भिन्न कर सकती है | मूलत: गरीबी और बेरोजगारी एक सिक्के के दो पहलू हैं | इसे हम इस तरह समझ सकते हैं कि एक व्यक्ति गरीब है क्योंकि वह बेरोजगार है और वह बेरोजगार है इसलिए गरीब है | भारतीय समाज के ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश में बेरोजगारी की समस्या का समाधान करना एक महत्वपूर्ण चुनौती के साथ–साथ नैतिकता के उत्तरदायित्व को भी रेखांकित करता है | बेरोजगारी की भयावहता को दर्शाते हुए प्रमुख समाज विज्ञानी एवं अर्थशास्त्री 'जनसंख्या विस्फोट' की भाँति ' 'बेरोजगारी विस्फोट' ' की अवधारणा पर चिन्तन कर रहे हैं | आजादी के पश्चात् भारत ने इस ओर समुचित प्रयास किए हैं | हमारे नीति निर्माताओं ने गरीबी उन्मूलन को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की है | लाखों लोगों को रोजगार देने की व्यवस्था की है और तीव्र गति से बढ़ रही श्रम शक्ति के लिए रोजगार के अवसर जुटाने के प्रयास भी किए जा रहे हैं |

वर्तमान में बेरोजगारी एक गंभीर सामाजिक एवं आर्थिक समस्या है | बेरोजगारी ने विकसित. अर्द्ध–विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है | बेरोजगारी का स्वरूप अनेक प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में अलग–अलग रूपों में देखा जा सकता है | पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में इसकी प्रकृति साम्यवादी अर्थव्यवस्थाओं से भिन्न हो सकती है | इसी प्रकार अफ्रीका के अति पिछड़े राष्ट्रों में इसके कारण, अविकसित राष्ट्रों में व्याप्त बेरोजगारी से भिन्न हो सकते हैं | बेरोजगारी स्वयं में तो एक समस्या है ही परन्तु यह अनेक समस्याओं का कारण भी है | गरीबी, भिक्षावृत्ति, बाल–अपराध, वेश्यावृत्ति, छात्र–असंतोष. युवा आंदोलन एवं अपराध इत्यादि समस्याओं की पृष्ठभूमि में बेरोजगारी एक प्रमुख कारण है | वर्तमान में वैश्वीकरण की विचारधारा के अभ्युदय के फलस्वरूप, विश्व के सभी राष्ट्र मिलजुलकर इस समस्या के निदान के लिए प्रयासरत हैं | प्रजातांत्रिक लोक कल्याणकारी शासन व्यवस्था बेरोजगारी को दूर करने के लिए अनेक कार्यक्रमों का नियोजन एवं क्रियान्वयन करती है।

स्वतंत्रता के पश्चात से ही भारत में बेरोजगारी एक प्रमुख चुनौती के रूप में सदैव विद्यमान रही है | भारत में प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में पूर्व सिंचित (एकत्रित) बेरोजगारी का खजाना अत्यधिक होने के साथ–साथ निरन्तर तीव्र गति से बढ़ रहा है | सन् 1951 से 1981 की अवधि के बीच में औसतन वार्षिक रोजगार वृद्धि दर 2.1 प्रतिशत रही है और इसी अवधि के दौरान वार्षिक श्रम शक्ति की वृद्धि दर 2.5 प्रतिशत थी। बड़ी संख्या में ग्रामीण एवं नगरीय, स्त्री एवं पुरूष इस समूह में सम्मिलित हो रहे हैं | निम्न तालिका संख्या 1 विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि को प्रदर्शित करते हैं |

तालिका 1

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में बेरोजगारी (मिलियन –, दस लाख)

क्र.सं	पंचवर्षीय योजना की अवधि	योजना के प्रारम्भ में बेरोजगारी	योजना के अंत तक अतिरिक्त श्रम शक्ति	योग (I+II)	नये रोजगार	कुल रोजगार
1.	प्रथम योजना 1951-56	3.3	9.0	12.3	7.0	5.3
2.	द्वितीय योजना 1956-61	5.3	11.8	17.1	10.0	7.1
3.	तृतीय योजना 1962-67	7.1	17.0	24.1	14.5	9.6
4.	चतुर्थ योजना 1969-74	12.6	20.4	33.0	19.0	14.0
5.	पाँचवी योजना 1974-79	14.0	22.0	36.0	15.4	20.6
6.	छठी योजना 1980-85	20.6	35.4	56.0	46.8	9.2
7.	सातवीं योजना 1986-91	9.2	39.4	46.6	40.0	8.6
8.	आठवीं योजना 1992-97	23.0	35.0	58.0	50.0	8.0
9.	नवीं योजना 1997-2002	8.0	41.0	49.0		

Ref%&Indian Economy in the Twenty First Centry, B.N. Singh, M.P.Shrivastava N. Prasad, 2000

18.15 बेरोजगारी की अवधारणा : अर्थ एवं विशेषताएँ

बेरोजगारी की अवधारणा को स्पष्ट करने से पूर्व 'रोजगार' शब्द के अर्थ को समझना उपयुक्त होगा। मूलत: रोजगार शब्द से अभिप्राय किसी भी व्यवसाय से संबंधितकार्य को इस प्रकार करना है जिससे कि कार्य के प्रतिफल (परिणाम) के रूप में या तो धन (रुपये) मिल जाये अथवा उक्त कार्य के बदले न्याय सम्मत वस्तुएं मिल जाए। इस प्रकार से अर्जित धन उन वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन से होता है जिनको बाजार में खरीदा या बेचा जा सकता हो। बेरोजगारी की अवधारणा को समझने के लिए हम प्रमुख विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गई विभिन्न परिभाषाओं का अवलोकन करेंगे :–

- काल प्रिब्राम (Kall Pribram us Encyclopedia of Social Sciences में लिखा है कि "बेरोजगारी श्रम बाजार की वह "दशा" है जिसके अन्तर्गत श्रमशक्ति की पूर्ति कार्य करने के स्थानों की संख्या से अधिक होती है।"
- जी. आर. मदान का मत है कि "जब स्वस्थ शरीर वाले ऐसे व्यक्तियों को मजदूरी के सामान्य स्तर पर कार्य नहीं मिल पाता है तो वह स्थिति बेरोजगारी की स्थिति मानी जा सकती है।"
- फेयर चाइल्ड के अनुसार :– "बेरोजगारी वह स्थिति है जिसमें सामान्य दशाओं तथा सामान्य वेतन–दर पर किसी व्यक्ति को बलपूर्वक एवं अनैच्छिक रूप से वेतन के कार्य से अलग कर दिया जाता है।"
- एसी.पीगू का दृष्टिकोण है कि – "बेकारी का तात्पर्य वेतन अर्जित वर्ग में विद्यमान बेरोजगारी से है और इसका सम्बन्ध केवल मजदूरी कार्य से ही होता है।
- बैंक ऑफ बड़ौदा द्वारा सम्पादित "वीकली रिव्यू नामक पत्रिका में बेरोजगारी को श्रम शक्ति की पूर्ति तथा श्रम शक्ति की मांग के मध्य पाए जाने वाले अन्तर को माना है।
  इंटरनेट पर उपलब्ध बेरोजगारी को निम्नांकित रूप से परिभाषित किया है :–
- जब पूर्व में कार्यरत श्रमिक को कार्य से हटा दिया जाता है अथवा स्वैच्छिक रूप से आर्थिक लाभप्रद रोजगार में संलग्न नहीं रहता।
- श्रमिकों का वह माप जिसमें ये (श्रमिक) कार्य तो करना चाहते हैं परन्तु इनके पास कार्य उपलब्ध नहीं है|
- बेरोजगारी उस वक्त उत्पन्न होती है जब उत्पादन के किसी भी एक साधन – श्रम, भूमि, पूँजी एवं उद्यमशीलता, को वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में नियोजित नहीं किया जाता। बेरोजगारी उस परिस्थिति में उत्पन्न होती है जब श्रम (उत्पादन के साधन के रूप में) को उपयुक्त कार्य के अभाव में पूर्ण रूप से इस्तेमाल नहीं किया जाता।
- वे लोग जो किसी कार्य में संलग्न नहीं हैं परन्तु क्रियाशील रूप से कार्य करना चाहते हैं तथा इसके लिए सतत प्रयासरत रहते हैं|
- एक ऐसी स्थिति जिसमें किसी व्यक्ति के पास उपयुक्त कार्य उपलब्ध नहीं है|
- बेरोजगारी किसी व्यक्ति की वह दशा होती है जिसमें वह प्रतिफल के रूप में आय प्रदान करने वाले कार्य की तलाश में रहता है परन्तु उसे उपयुक्त कार्य नहीं मिलता। बेरोजगारी के अंतर्गत

पूर्णकालिक छात्र, सेवानिवृत, बच्चे अथवा वे लोग जो आय प्रदान करने वाले कार्य की तलाश नहीं करते, को सम्मिलित नहीं किया जा सकता।

18.16 बेरोजगारी के स्वरूप

1. **संक्रमणकालीन ' त्रिशंकू बेरोजगारी**:

बेरोजगारी की वह अवस्था जब कोई व्यक्ति एक स्थान पर किसी दिए हुए समय में किसी कार्य को पूर्ण करने के पश्चात् उसे कार्य का अभाव रहता है तथा वह अन्य स्थान पर कार्य की तलाश में क्रियाशील रहता है | बेरोजगारी की इस अवस्था को दो कार्यों के बीच की उस समय अवधि के सन्दर्भ में परिभाषित कर सकते हैं जिसमें व्यक्ति कार्य की तलाश तो करता है परन्तु कार्य उपलब्ध नहीं होता है | उदाहरण के लिये, माना कि एक व्यक्ति ने किसी कार्य स्थान से स्वेच्छा से काम करना छोड़ दिया अथवा उसे नौकरी से निकाल दिया गया हो अथवा कार्य पूर्ण हो गया हो ओर वह अन्य काम की तलाश कर रहा हो, तब हम उक्त अवधि, जिसमें उसे कार्य नहीं मिल रहा है, को संक्रमणकालीन बेरोजगारी कहेंगे । उदाहरण के लिए भवन निर्माण श्रमिक नल–बिजली फिटिंग कारीगर।

सामान्य रूप से किसी व्यक्ति को एक काम पूरा करने के पश्चात् दूसरा काम खोजने में समय लग जाता है | इस प्रकार वह व्यक्ति दो कार्यों के मध्य त्रिशंकू की भाँति रहता है | इसे ही संक्रमणकालीन बेरोजगारी या तलाश बेरोजगारी से अभिहित किया जा सकता है | वैश्वीकरण के प्रतिस्पर्धा–युक्त वर्तमान समय में पुराने उद्योग व्यवसाय बन्द हो जाते हैं अथवा इनमें आधुनिक तकनीकी के अनुकूल श्रमिकों की आवश्यकता होती है | पुराने व्यवसाय में संलग्न श्रमिक नए व्यवसायों को सीखने की अवधि में बेरोजगार रह सकते हैं |

2. चक्रीय बेरोजगारी

चक्रीय बेरोजगारी का सम्बन्ध व्यापारिक उतार–चढ़ाव से होता है | मंदी के दौरान श्रम शक्ति की आवश्यकता कम हो जाती है | इस प्रकार, अल्प अवधि के दौरान, श्रम शक्ति की मांग में कमी बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न करती है | इस प्रकार की बेरोजगारी को चक्रीय बेरोजगारी कहा जाता है | चक्रीय बेरोजगारी की अवधारणा में श्रम शक्ति की अतिरिक्त उपलब्धता का बोध निहित है।

3. संरचनात्मक बेरोजगारी

बेरोजगारी का यह स्वरूप वृहद स्थिति में देखने को मिलता है, जब नियोक्ता की आवश्यकताओं और श्रम शक्ति के मध्य अनुकूलन की स्थिति नहीं होती। इस प्रकार की बेरोजगारी उन परिस्थितियों में भी देखने को मिलती है जब कुशल श्रमिक कार्य की खोज में संलग्न होते हैं परन्तु वांछित पद रिक्त नहीं होते। इस प्रकार की स्थिति किसी भी राज्य की तीव्र से रूपांतरित अर्थव्यवस्था की संरचना में वांछित रिक्तियाँ और कुशल श्रमिकों के बीच बेमेलता को प्रदर्शित करती है | संरचनात्मक बेरोजगारी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में हो रहे आमूल–चूल परिवर्तनों का परिणाम होती है।

उदाहरण के लिए, वर्तमान संदर्भ में, जब आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था में तीव्र गति से तकनीकी परिवर्तन हो रहे होते हैं और उनके अनुकूल श्रम बाजार में गतिशीलता का अभाव होता है, तब बेरोजगारी का जो स्वरूप देखने को मिलता है उसे संरचनात्मक बेरोजगारी की अवधारणा से अभिहित किया जाता है | 'तकनीकी बेरोजगारी' जो कि मानव श्रम की अपेक्षा रोबोट पर आधारित

होती है, को संरचनात्मक बेरोजगारी में सम्मिलित किया जा सकता है | इसी प्रकार "मौसमी बेरोजगारी" भी संरचनात्मक बेरोजगारी का ही एक स्वरूप है, क्योंकि यह बेरोजगारी भी विशिष्ट प्रकार के कार्यों से सम्बद्ध होती है | उदाहरण के लिए, निर्माण कार्य, खेतों में कार्य करने वाले प्रवासी श्रमिक इत्यादि।

4. आवृत प्रच्छन्न ' छिपी बेरोजगारी

आवृत अथवा प्रच्छन्न बेरोजगारी उन सम्भावित श्रमिकों को दर्शाती है जिन्हें शासकीय (Official) बेरोजगारों को प्रदर्शित करने वाले सांख्यिकीय आकड़ों में दर्शाया नहीं जा सकता। अनेक देशों में वे व्यक्ति जिनके पास करने के लिए कोई कार्य नहीं है परन्तु सक्रिय रूप से किसी कार्य की खोज में जुटे हुए हैं, को बेरोजगारों की सूची में सम्मिलित किया जाता है परन्तु जिन्होंने काम खोजने की तलाश को बंद कर दिया है, को भी शासकीय (Official) रूप से बेरोजगारों की श्रेणी में नहीं रखा जाता।

इस प्रकार की बेरोजगारी का स्वरूप उन लोगों में भी देखने को मिलता है जो समय से पहले रिटार्यमेंट (सेवा मुक्ति) इस कारण से ले लेते हैं कि उनके नियोक्ता उन्हें कार्य छोड़ने के लिए कह सकते हैं या बाध्य कर सकते हैं, परन्तु ये लोग कार्य करना पसंद करते हैं | इसी प्रकार हम देखते है कि सांख्यिकीय आकड़े अल्प बेरोजगारी (Under employment(की भी गणना नहीं करते हैं | अल्प बेरोजगारी से तात्पर्य मौसमी कार्य (Seasonal job) अथवा आशिक समय कार्य (Part time job) करने से है | अल्प रोजगारी में व्यक्ति कुछ समय की अवधि में ही कार्य करता है।

5. तकनीकी बेरोजगारी

समाज में तकनीकी बेरोजगारी उस स्थिति में होती है जब नवीन खोजों एवं आविष्कारों के फलस्वरूप मानव श्रम का उपयोग घट जाता है | उत्पादन से संबंधित अनेक कार्य स्वचालित मशीनों एवं रोबोट के द्वारा किए जाते हैं तथा इसमें संलग्न श्रमिकों की संख्या कम हो जाती है | आधुनिक वैश्वीकरण के दौर में श्रमिकों को इस स्थिति का सामना करना पड़ रहा है जिसके परिणाम स्वरूप बेरोजगारी की समस्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है | नए आविष्कार पुराने उद्योगों एवं व्यवसायों को बन्द करके बेरोजगारी की समस्या को जटिल बना देते हैं तथा नए बाजारों के क्षेत्रों को समाप्ति के कगार पर पहुँचा देते हैं | तथापि नवीन प्रौद्योगिक क्रान्तियाँ एवं खोजें एक नए व्यवसाय एवं रोजगार का सृजन तो अवश्य करते हैं, परन्तु इस प्रकार की मशीनीकृत क्रान्तियाँ, रोजगारी एवं बेरोजगारी दोनों को जन्म देती है | बड़े एवं आधुनिक उद्योगों की स्थापना कुटीर एवं हाथकरघा उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों के सामने बेरोजगारी की समस्या को जन्म देते हैं | उद्योगों में नवीन तकनीकी का अभिनव प्रयोग, गला–काट प्रतिस्पर्धा एवं समय–समय पर उद्योग जगत में आर्थिक मन्दी के कारण भी बेरोजगारी की समस्या विकराल रूप धारण कर लेती है।

6. अस्थायी बेरोजगारी

अस्थायी बेरोजगारी का सामना उन शिक्षित एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों को करना पड़ता है जिन्हें अपनी शिक्षा एवं प्रशिक्षण समाप्त करने के तत्काल बाद रोजगार उपलब्ध नहीं होता। रोजगार प्राप्त होने तक ये लोग अस्थायी रूप से बेरोजगारी का सामना करते हैं | उदाहरण के लिए B.Ed. की डिग्री मिलने के पश्चात् शिक्षक की नौकरी नहीं मिलने के कारण इस डिग्री के धारकों को अस्थायी बेरोजगारी की स्थिति से गुजरना पड़ता है | नौकरी मिलने के पश्चात यह बेरोजगारी स्वत: ही समाप्त हो जाती है।

7. ऐच्छिक बेरोजगारी

ऐच्छिक बेरोजगारी की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब कोई व्यक्ति वांछित क्षमताओं एवं गुणों के होने के उपरान्त भी आलस्य वश कम वेतन या वेतन में कटौती इत्यादि कारणों से कार्य करना नहीं चाहता है तो उसे ऐच्छिक बेरोजगार माना जाएगा।

8. शिक्षित बेरोजगारी

शिक्षा एवं वांछित प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् भी जब व्यक्ति होता है तब इस प्रकार की बेरोजगारी को शिक्षित बेरोजगारी की अवधारणा से रेखांकित किया जाता है | के लिए B.A, M.A, B.Ed., NET,SLET, MBBS या B.E. करने के पश्चात किसी व्यक्ति का होना शिक्षित बेरोजगारी के अन्तर्गत समाहित किया जायेगा। शिक्षित बेरोजगारी की अवधारणा अस्थाई बेरोजगारी की अवधारणा के बोध से सामिप्य रखती है | '

18.17 बेरोजगारी के प्रमुख कारण

इलियट एवं मेंरिल ने अपनी पुस्तक "Social Disorganization" में के कारणों को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया है।

(1) व्यक्तिगत कारण

(2) अवैयक्तिक कारण

(1) व्यक्तिगत कारण :

इलियट एवं मेंरिल ने बेरोजगारी के व्यक्तिगत कारणों में किसी व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक अक्षमता को उत्तरदायी माना है | व्यक्तिगत कारणों में आयु, व्यावसायिक उपयुक्तता तथा बीमारी एवं शारीरिक अक्षमता को सम्मिलित किया जाता है।

प्रस्तुत अध्याय में हम बेरोजगारी के अवैयक्तिक कारणों पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

(2) अवैयक्तिक कारण

1. **जनसंख्या वृद्धि :–** भारत में बेरोजगारी का सबसे महत्वपूर्ण कारण जनसंख्या का विस्फोटक गति से बढ़ना है | जिस अनुपात में भारत में जनसंख्या की वृद्धि होती है उसी अनुपात में रोजगार के अवसर नहीं बढ़ते क्योंकि रोजगार के अवसरों, यथा – नये उद्योग, व्यवसाय, नौकरियाँ इत्यादि स्थापना में कुछ समय लगता है | इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि ओर रोजगार के अवसरों के मध्य एक अंतर स्थापित हो जाता है, जिसकी भरपाई करना लगभग असंभव है।
2. **जलवायु एवं प्राकृतिक आपदायें :–** भारत कृषि प्रधान देश है | भारतीय कृषि मानसून की वर्षा पर निर्भर करती है तथा मानसून की अनिश्चित एवं अनियमितता के फलस्वरूप फसल नष्ट हो जाती है | प्राकृतिक रूप से अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चक्रवात, ओले पडना, शीत लहर, टिड्डियों का हमला, विषाणुओं का आक्रमण इत्यादि कारण कृषि–उत्पादन को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं, जिसके कारण गरीबी एवं बेरोजगारी का सामना करना पडता है।
3. **भूमि का सीमित आकार :–** जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि में निश्चित रूप से कमी हो जाती है | बटवारे के कारण भी कृषि–जोत में कमी आती है, जिसके

परिणाम–स्वरूप भूमि का सीमित भाग अपनी क्षमता के अनुरूप उत्पादन नहीं दे पाता। भूमि पर परिवार के सभी सदस्य कार्य करते हैं जो कि प्रच्छन्न बेरोजगारी को प्रश्रय प्रदान करते हैं |

4. **कृषि का पिछड़ापन** – भूमि का सीमित आकार एवं परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों एवं आर्थिक सीमाओं (गरीबी) के कारण खेतों पर कृषि परम्परागत औजारों एवं यन्त्रों की सहायता से की जाती है | गरीबी और अशिक्षा के कारण भारतीय किसान उन्नत किस्म की तकनीकों एवं वैज्ञानिक विधियों से परिचित रहता है, जिससे कृषि उत्पादन में वांछित वृद्धि नहीं हो पाती। कृषि का पिछड़ापन बेरोजगारी को उत्पन्न करता है।

5. **दोषयुक्त भूमि व्यवस्था** – सैकड़ों वर्षो से भारत में दोषयुक्त भूमि व्यवस्था चली आ रही है | वर्तमान समय में समाज के अल्पसंख्यक लोगों के पास उपजाऊ युक्त अधिक भूमि है तथा अधिसंख्यक कृषक मजदूर भूमि विहीन हैं | बड़े–बड़े भू–स्वामी वैज्ञानिक पद्धतियों का सहारा लेकर कृषि उत्पादन करते हैं जिसके कारण कृषि मजदूर बेरोजगारी की समस्या से पीड़ित हो जाते हैं |

6. **अविकसित उद्योग जगत :– भारत तीव्र गति से औद्योगिक विकास के लिए दृढ़** संकल्प है परन्तु विस्फोटक गति से बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में उद्योग जगत की प्रगति नहीं हो रही, जिससे कि बढ़ती जनसंख्या के लिए रोजगार के पर्याप्त अवसर सृजित नहीं हो पा रहे। वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास ने बेरोजगारी के संदर्भ में कोढ़ में खाज का काम किया है | बड़ी–बड़ी फैक्टरियाँ एवं उद्योग धन्धे नगरों तक सीमित हो गये हैं | काम करने की इच्छा से ग्रामीण समुदाय शहरों में पलायन करता है जो कि श्रम की पूर्ति बढ़ा देता है | श्रमिकों की बेतहाशा वृद्धि के कारण सभी इच्छुक श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध नहीं हो पाता।

7. **श्रमिकों में दक्षता का अभाव** :– वर्तमान समय में जिस तीव्र गति से आविष्कार, खोजें एवं तकनीकी विकास हो रहा है, उसी के अनुरूप वांछित प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना नहीं हो पा रही, जिससे कि उद्योगों में दक्ष एवं कुशल कारीगरों का अभाव रहता है, इसी कारण अकुशल श्रमिकों को उद्योगों एवं तकनीकी के क्षेत्र में रोजगार नहीं मिल पाता और बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है' |

8. **पारम्परिक मूल्य एवं गतिशीलता का अभाव** – भारतीय संस्कृति प्रधानत: स्थानीयता, पारम्पारिकता नातेदारी, प्रान्तीयवाद भाषा एवं धर्म के मूल्यों से गूंथे हुए संरचित ताने–बाने के जैसी है | इस ताने–बाने को तोड़कर बाहर निकलना, भारतीय जनमानस के लिए एक गंभीर चुनौती है | भारतीय लोग अर्थ अभाव की मानसिकता में जीवनयापन करना पसन्द करते हैं तथा धनोपार्जन के लिए दूरस्थ क्षेत्रों में कार्य करने की उपेक्षा करते हैं | इस कारण परम्परागत सांस्कृतिक मूल्य बेरोजगारी को प्रश्रय प्रदान करते हैं |

9. **औद्योगिक जगत में अभिनव प्रयोग** एवं आधुनिक क्रान्तिकारी तकनीकी की स्थापना।

10. हाथकरघा एवं कुटीर उद्योगों का पतन एवं सार्वभौमिक शिक्षा का अभाव।

11. गैर व्यावसायिक शिक्षा दोषयुक्त शिक्षा प्रणाली।

12. उद्योग जगत की अस्थिरता के कारण श्रम की माँग व पूर्ति में असन्तुल न।

13. व्यवसाय एवं उद्योग धन्धों में मौसम का प्रभाव।

14. उत्थान एवं पतन युक्त व्यापारिक चक्र।
15. व्यापारिक जगत एवं औद्योगिक जगत में अनुकूलनशीलता एवं सामंजस्य का अभाव।
16. विभिन्न उद्योग एवं व्यापारों के मध्य पारस्परिक निर्भरता।
17. उद्योग एवं व्यापारिक जगत के उन्नयन के लिए वांछित पूंजी का अभाव।
18. वस्तुओं की माँग एवं पूर्ति का समय एवं स्थान सापेक्षिक होना।
19. दोषयुक्त कर प्रणाली।
20. भिन्न–भिन्न राजनीतिक दलों की सरकारों की अलग–अलग औद्योगिक नीतियाँ।
21. औद्योगिक जगत में तनाव, हड़ताल एवं तालाबन्दी।

योजना आयोग ने बेरोजगारी के प्रमुख रूप से निम्नांकित कारण बताये हैं:–

1. जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होना।
2. हाथकरधा ग्रामीण एवं कुटीर व्यवसायों का पतन।
3. शरणार्थियों की समस्या।
4. कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों का अनुपयुक्त विकास।
5. कृषि क्षेत्र में पारम्परिक एवं गैर–वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रचलन।

18.18 बेरोजगारी के दुष्प्रभाव

बेरोजगारी एक ऐसा अभिशाप है जो अन्य सामाजिक एवं आर्थिक बुराइयों को जन्म देती है | समस्त सामाजिक दुष्परिणामो का कारण गरीबी है और इस गरीबी का मूल कारण बेरोजगारी है | बेरोजगार व्यक्ति मानसिक हीनता की भावना का शिकार होता है तथा उसकी समाज में प्रतिष्ठा धूमिल हो जाती है, रिश्तेदार, आस–पड़ोस तथा परिवार के सदस्य बेरोजगार व्यक्ति को उचित सम्मान नहीं प्रदान करते। बेरोजगारी पराश्रित एवं गरीबी को बढ़ावा देती है तथा व्यक्ति में आक्रामक प्रवृत्ति एवं तनावयुक्त प्रकृति को जन्म देती है | वैयक्तिक असंतोष एवं दुश्चिन्तायें पारिवारिक तनाव को पैदा करती हैं और दीर्घ अवधि में ये स्थितियाँ राजनैतिक उथल–पुथल एवं क्रान्तिकारी स्थितियों को जन्म देती है | प्रधानत: बेरोजगारी के निम्नांकित दुष्प्रभाव समाज में देखने को मिलते हैं :–

1. **बेरोजगारी एवं वैयक्तिक विघटन :–** बेरोजगारी की अवस्था में बेरोजगार व्यक्ति को समाज में उपयुक्त सम्मान नहीं मिलता तथा उसके व्यक्तित्व में चिड़चिड़ापन तनाव समाहित हो जाता है | औद्योगिक जगत में मन्दी के दौरान सम्पत्ति सम्बन्धी अपराधों की वृद्धि हो जाती है तथा बेरोजगारी की अवस्था में भिक्षावृत्ति, गुण्डागर्दी, आवारागिर्दी को बढ़ावा मिलता है | विवाहों की दर घट जाती है एवं अनैतिक सम्बन्धों का समाज में प्रचलन होने लगता है तथा मानसिक रोगियों की संख्या भी बढ़ जाती है | बेरोजगारी से व्यक्ति के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है | उसके मस्तिष्क में विकृत दृष्टिकोण पनपने लगता है एवं कार्यक्षमताओं में कमी होने लगती है | व्यक्ति अपनी असफलता एवं बेरोजगारी का जिम्मेदार समाज को मानता है | बेरोजगारी की अवस्था में व्यक्ति ऋणग्रस्तता का शिकार भी हो जाता है।

वैयक्तिक विघटन के दृष्टिकोण से बेरोजगार व्यक्तियों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है:–

(अ) शिक्षण एवं प्रशिक्षण समाप्त करने वाले नवयुवक, जिन्हें वांछित योग्यता एवं उपाधि प्राप्त करने के बाद तत्काल कार्य नहीं मिलता, जिसके कारण उनमें निराशा की भावना का प्रादुर्भाव होने लगता है | अगर सही समय पर इन नवयुवकों को कार्य नहीं मिलता तो ये गैर–सामाजिक गतिविधियों में संलग्न हो जाते हैं |

(ब) किन्हीं कारणवश जब कोई व्यक्ति बेरोजगार हो जाता है तब उसे एवं उसके परिवार को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है | ये व्यक्ति बीमारी एवं मानसिक विकार से ग्रसित हो जाते हैं तथा अपने परिवार के लालन–पालन के लिए ऋण एवं उधारी से अपना घर चलाते हैं तथा सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से अवांछित एवं अनुचित कार्य करने लगते हैं |

(स) पाश्चात्य देशों में वृद्धावस्था में व्यक्ति को भोजन एवं रूग्णता की स्थिति में दवाओं की व्यवस्था की चिन्ता सताने लगती है, जिसके परिणाम घातक होते हैं | वृद्ध व्यक्ति मानसिक रूग्णता के कारण आत्म–हत्या तक कर लेते हैं | इस प्रकार शारीरिक अक्षमता के कारण ये बेरोजगारी की अवस्था का सामना करते हैं तथा इनका वैयक्तिक विघटन तीव्र गति से होता है।

(द) मन्दीकाल के दौरान जब किसी व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार कार्य नहीं मिलता; तब वह अनेक मानसिक विकृतियों का शिकार हो जाता है जो कि उसके व्यक्तित्व में विघटन की प्रवृत्तियों को जन्म देता है | आर्थिक मन्दी के दौरान श्रमिकों को कम वेतन मिलता है जिससे उनका एवं उनके परिवार का उचित लालन–पालन, शिक्षा एवं चिकित्सा का प्रबन्ध नहीं हो पाता, जो कि कर्ता पर अतिरिक्त मानसिक दबाव डालता है | इसके कारण परिवार का रोजगार युक्त मुखिया मानसिक विघटन का शिकार हो जाता है |

2. **पारिवारिक विघटन एवं बेरोजगारी** – बेरोजगारी एक सामाजिक तथ्य है जिसका विघटनकारी प्रभाव परिवार पर पड़ता है | बेरोजगारी की स्थिति में पारिवारिक जमा पूँजी स्थापना हो जाती है, जमीन–गहने इत्यादि गिरवी रख दिये जाते हैं या बेच दिये जाते हैं तथा परिवार ऋणग्रस्तता का शिकार हो जाता है | परिवार के भरण–पोषण की समस्या उत्पन्न होने लगती है तथा परिवार के बीमार सदस्यों की उचित चिकित्सकीय सेवायें नहीं हो पाती हैं | बच्चों की शिक्षा–दीक्षा में प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा उन्हें भी आय–अर्जन करने के किसी न किसी कार्य में संलग्न होना पडता है | परिवार के सफल संचालन के लिए माता–पिता दोनों को ही अर्थोपार्जन हेतु घर से बाहर जाना पड़ता है, ऐसी स्थिति में बच्चे आवारा हो जाते हैं | वे अनैतिक कार्य करने लगते हैं तथा समाज विरोधी गतिविधियों में संलग्न हो जाते हैं | इसके अतिरिक्त परिवार की स्त्रियाँ भरण–पोषण के लिए वैश्यावृत्ति का सहारा भी ले लेती हैं | पारिवारिक सदस्यों में तनाव होने संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती है | कई बार परिवार के समस्त सदस्य आत्म–हत्या तक कर लेते हैं |

3. **सामाजिक विघटन एवं बेरोजगारी** :– बेरोजगारी के परिणामस्वरूप सामाजिक संरचना में अव्यवस्था पनपने लगती है जो अन्ततोगत्वा समाज के विघटन के लिए असरदायी होता है | परिवार एवं समुदाय के लोगों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में धीरे–धीरे पतन होने लगता है तथा समाज में अनेक सामाजिक समस्याओं का प्रचलन भी बढ़ जाता है | उदाहरण के लिए

बेरोजगारी की दशा में भ्रष्टाचार, बेईमानी, रिश्वतखोरी, व्यभिचार, वैश्यावृत्ति, भिक्षावृत्ति इत्यादि सामाजिक समस्याओं का प्रचलन बढ़ जाता है।

4. **बेरोजगारी एवं जनस्वास्थ्य** – बेरोजगारी की अवस्था में व्यक्ति के स्वास्थ्य में. गिरावट आने लगती है | आमजन में सामान्य रूप से विद्यमान बेरोजगारी की स्थिति के कारण इनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है |

अर्थाभाव के कारण स्वास्थ्यप्रद आवासीय व्यवस्था नहीं हो पाती एवं व्यक्ति सीलनयुक्त गन्दी बस्तियों में निवास करते हैं जिसके कारण उनके व उनके परिवाए के सदस्यों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है | ये लोग रूग्ण अवस्था में वांछित दवाओं एवं अन्य सुविधाओं को जुटाने में असमर्थ हो जाते हैं तथा शीघ्र ही मृत्यु दर में इजाफा करवाने में सहायक सिद्ध होते हैं |

बेरोजगारी जनित अन्य सामाजिक समस्याएँ निम्नांकित हैं

1. नैतिक एवं चारित्रिक पतन एवं बेरोजगारी
2. आर्थिक दुष्प्रभाव (गरीबी, ऋणग्रस्तता, उद्योगों का पतन आदि) एवं बेरोजगारी
3. राजनैतिक विद्रोह एवं क्रान्तियों का जन्म एवं बेरोजगारी
4. सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मूल्यों का पतन एवं बेरोजगारी

18.19 बेरोजगारी दूर करने हेतु विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के प्रयास

प्रथम पंचवर्षीय योजना में भारत में बेरोजगारी की समस्या के निराकरण हेतु वांछित प्रयास नहीं किया गया। सन् 1953 में योजना आयोग ने बेरोजगारी की समस्या की गंभीरता को समझते हुए इसके निराकरण हेतु 300 करोड़ रुपये से ऊपर खर्च करने के प्रावधान रखे। योजना आयोग ने रोजगार प्रदान करने के लिए 11 सूत्रीय कार्यक्रम रखा, जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण देने की सुविधा, लघु उद्योगों एवं व्यवसायों के लिए आर्थिक सुविधा आदि कार्य सम्मिलित किये गये। इस योजना में 75 लाख लोगों को कार्य देने का लक्ष्य रखा गया, परन्तु लगभग 54 लाख लोगों को ही काम दिया जा सकता। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में नये बेरोजगार समूह को रोजगार देने का लक्ष्य रखा गया और पुराने बेरोजगारों के लिए अलग से योजना बनाने हेतु कहा गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना में जनसंख्या वृद्धि के कारण बेरोजगारी की समस्या ने गंभीर रूप ले लिया। इस योजना के अन्तर्गत रोजगार की सुविधा प्रदान करने के लिए औद्योगिकीकरण के लिए व्यापक कार्यक्रम चलाये गये लेकिन अथक प्रयासों के बावजूद 2 करोड़ 30 लाख लोगों को ही रोजगार दिया जा सका।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में गैर कृषि कार्य में वृद्धि करने, कृषि का तीव्र विकास करने, ग्रामीण विद्युतीकरण, शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार–नियोजन, खनिज एवं निर्माण उद्योग आदि क्षेत्रों में विस्तार करने का प्रावधान रखा गया। सन् 1971 में क्रेश योजना के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार प्रदान करने की योजना प्रारम्भ की गई। इस योजना में प्रत्येक जिले के 1000 लोगों को प्रतिवर्ष 10 महीने तक कार्य देने का प्रावधान किया गया। इस योजना अन्तर्गत बेरोजगारों को मुख्यत: सड़क निर्माण, नालियाँ बनाना, लघु सिंचाई योजना इत्यादि योजनाओं में लगाया गया।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना में निर्धनता एवं बेरोजगारी की समस्या का करने हेतु बड़े पैमाने पर रोजगार उपलब्ध करवाने का प्रावधान रखा गया। पाँचवी पंचवर्षीय योजना में सेवा क्षेत्रों के विस्तार की व्यवस्था की गई :–

(1) भू–संरक्षण
(2) दुग्ध शालाओं का विकास
(3) पशुपालन
(4) वन विकास
(5) मछली पालन
(6) कृषि एवं लघु उद्योग विस्तार
(7) सड़क निर्माण आदि।

इसी योजना के अन्तर्गत शिक्षित बेरोजगार, इंजीनियर एवं कृषि विशेषज्ञों को ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में रोजगार प्रदान करने के वांछित संसाधन उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई।

TRYSEM(Training of Rural Youth Self–Employment) – इस योजना का शुभारम्भ 15 अगस्त 1979 को किया गया। इसके अन्तर्गत ग्रामीण युवकों को रोजगार प्रदान करने के लिए तकनीकी प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की गई। इस योजना के द्वारा प्रत्येक वर्ष में प्रत्येक ब्लॉक से 40 युवकों को प्रशिक्षण देकर कुल मिलाकर 2 लाख युवकों को प्रशिक्षण देने का लक्ष्य रखा गया।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम – 'काम के बदले अनाज योजना' को 1981 में इस नाम से रूपान्तरित किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य खाली समय में ग्रामीण श्रमिकों को अतिरिक्त रोजगार प्रदान करना है | इसमें केन्द्र एवं राज्य सरकारें बराबरी का खर्चा वहन करती हैं |

बेरोजगारी दूर करने के दीर्घकालिक अल्पकालीन उपाय

(1) दीर्घकालिक उपाय :

1. विस्फोटक रूप से बढ़ती हुई जनसंख्या का प्रभावशाली ढंग से नियन्त्रण किया जाना चाहिये। इसके लिए परिवार नियोजन के कार्यक्रमों को प्रभावशाली तरीकों से लागू किया जाना चाहिए।
2. देश में आर्थिक विकास की गति को तीव्र किया जाना चाहिए। इसके अन्तर्गत औद्योगिकीकरण की रफ्तार को तीव्र करना, शिक्षित बेरोजगारों को काम में लगाना तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि पर जोर दिया जाना चाहिए।
3. निर्माण कार्य में वृद्धि किया जाना चाहिए। शिक्षा प्रणाली में वांछित सुधार कार्यक्रम लागू किया जाना चाहिए।
4. शिक्षा तथा रोजगार के मध्य रोजगार परक समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।
5. युवा एवं बेकार जनशक्ति को तकनीकी के अनुकूल प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये।
6. भारतीय सामाजिक संरचना में निहित उन बुराइयों को समाप्त करने के प्रयास किये जाने चाहिये, जिनके कारण बेरोजगारी जन्म लेती है | श्रमिकों में गतिशीलता उत्पन्न करने के लिए जाति प्रथा एवं छुआछूत सम्बन्धी नियमों का कठोरता से पालन किया जाना चाहिए। उपयुक्त औद्योगिक तकनीकी एवं कम्प्यूटरीकृत शिक्षा से श्रमिकों को अवगत कराना चाहिए।

(2) अल्पकालीन उपाय :

1. **हाथकरघा एवं कुटीर उद्योगों को समुचित प्रोत्साहन एवं उनका विकास :** भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा बहुसंख्यक आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है जहाँ बेरोजगारी की समस्या भयावह रूप से पाई जाती है | अत: ग्रामीण क्षेत्रों में मिट्टी, चमड़ा, कताई, बुनाई से सम्बन्धित हाथ करघा उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त उन उद्योगों को भी

प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, जो कृषि व्यवस्था के अन्तर्गत सहज रूप से लगाये जा सकते हों, जैसे – मुर्गी पालन, मत्स पालन, पशु पालन. गौशाला की स्थापना, मधुमक्खी पालन, सूअर एवं बकरा–बकरी पालन इत्यादि।

2. **सघन खेती को प्रोत्साहन** : उन्नत खाद–बीज एवं फसल रक्षक दवाओं का सदुपयोग कर अत्यधिक मात्रा में फसल उगाई जा सकती है | फल सब्जी एवं बागवानी को भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी अधिनियम, 2005 भारत सरकार द्वारा दिनांक 2 फरवरी 2006 से देश के 200 व राजस्थान के छह जिलों में क्रियान्वयन किया जा रहा है | 1 अप्रेल 2008 से सम्पूर्ण भारत में इसे लागू किया गया है | इस अधिनियम का उद्देश्य प्रत्येक वित्तीय वर्ष में प्रत्येक ग्रामीण परिवार, जिसके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक कार्य करने के इच्छुक हों, को कम से कम 100 कार्य दिवसों का मजदूरी रोजगार प्रदान करके ग्रामीण क्षेत्रों के परिवारों को आजीविका की सुरक्षा प्रदान करना है | इस अधिनियम के उद्देश्य हैं –

1. ग्रामीण परिवारों को अकुशल शारीरिक श्रम वाले कार्यों में गारंटीशुदा मजदूरी योजना मुहैया कराकर उनके जीवनयापन को सुरक्षा प्राप्त होगी।
2. गांवों में स्थायी सामुदायिक परिसम्पत्तियों का सृजन हो पाएगा, जो ग्रामीण गरीबों के आजीविका संसाधन आधार को सुदृढ़ बनाएगी।
3. पंचायती राज संस्थाओं को वित्तीय एवं प्रशासनिक रूप से अधिकार सम्पन्न बनाया जाएगा।

18.20 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने देश में व्याप्त मूल सामाजिक समस्याए निरक्षरतानिर्धनता और बेरोज़गारी के , | बारे में अध्ययन किया इन सभी सामाजिक समस्याओं के मूल कारण लगभग एक समान है | जिनका समाधान होना अत्यंत ज़रुरी है | किसी भी समाज और देश की प्रगति तभी संभव हैं जब , वहाँ के लोग साक्षर हो क्योंकि यह सभी समस्याओं की जड़ है | विकासशील राष्ट्र का पर्याय लगभग पूर्ण साक्षरता से लगाया जाता है | भारत सरकार एवं प्रान्तीय सरकार विभिन्न लुभावनी योजनाऐं चलाकर निरक्षर लोगों को शिक्षा की ओर प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वहन कर रही हैं | इस हेतु समस्त जागरूक लोगों का यह कर्त्तव्य है वह राष्ट्र के प्रति अपने समर्पण को प्रदर्शित करे। साथ ही निर्धनता एक ऐसी सामाजिक–आर्थिक चुनौती है, जिसके निराकरण के लिए समन्वित प्रयासों की जरूरत है क्योंकि इसकी उत्पत्ति के लिए अनेक शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं प्राकृतिक कारक उत्तरदायी होते हैं | इस समस्या के निराकरण हेतु राजकीय एवं गैर सरकारी संगठनों द्वारा विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन करने के प्रयास किये जा रहे हैं | भारत में निर्धनता की समस्या बड़ी विकट है इसका समाधान करने के लिए रोजगारोन्मुखी शिक्षा–प्रणाली को विकसित करने के साथ–साथ इसका औद्योगिक तंत्र के साथ समन्वय एवं तालमेंल होना अनिवार्य है | इसके अतिरिक्त जनसंख्या को कारगर तरीके से नियन्त्रण करना, कृषि एवं भूमि सुधार करना, सामाजिक बीमा योजना लागू करना, सामाजिक चेतना विकसित

करना, भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाना इत्यादि प्रयास आन्तरिक प्रबल इच्छा शक्ति से सकारात्मक सोच के साथ किए जाने की महत्ती आवश्यकता है | निर्धनता को दूर करने के लिए विकास का लाभ समाज के निर्धनतम लोगों तक उचित वितरण प्रणाली के माध्यम से पहुँचना भी चाहिए। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त वर्णित इकाई में बेरोजगारी की अवधारणा पर प्रकाश डाला गया है | बेरोजगारी क्या है ?, इसके कौन–कौन से स्वरूप हैं ? एवं इसके दुष्प्रभावों को समझने का प्रयास किया गया है | प्रस्तुत अध्याय में बेरोजगारी के भिन्न–भिन्न स्वरूपों को समझाने का प्रयास भी किया गया है | बेरोजगारी किसी भी समाज एवं राष्ट्र के लिए भयावह समस्या है जिसका निराकरण करना अपरिहार्य है, अन्यथा यह संपूर्ण समाज की संरचना को छिन्न–भिन्न कर विघटन की स्थिति उत्पन्न कर देती है | अत: इसके निराकरण हेतु सभी राष्ट्र सदैव प्रयत्नशील रहते हैं | भारत सरकार विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से बेरोजगारी के निराकरण हेतु नाना प्रकार के कार्यक्रम ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में क्रियान्वयन करती है | राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 के अंतर्गत राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना एक मील का पत्थर साबित होगी।

18.21 कठिन शब्द

- **साक्षरता -** साक्षरता से हमारा तात्पर्य वर्णमाला के अक्षरों और शब्दों को समझने, पहचानने और आशय निकलने की योग्यता से है |
- **साक्षर -** जो किसी भारतीय भाषा को 'समझ' के साथ (with understanding) पढ़ और लिख सकता है न कि केवल पढ़ और लिख सकता है |
- **निरक्षर -** निरक्षर वह व्यक्ति है, जो केवल पढ़ सकता है, परन्तु लिख नहीं सकता।
- **निर्धनता -** निर्धनता या गरीबी को इस आधार पर समझने का प्रयास किया है कि किसी व्यक्ति को जीवनयापन करने के लिए न्यूनतम कितना रूपया चाहिए तथा इस न्यूनतम सीमा से कम आय वाले व्यक्ति को निर्धन करार दिया जा सकता है।
- **बेरोजगारी -** बेरोजगारी श्रम बाजार की वह "दशा" है जिसके अन्तर्गत श्रमशक्ति की पूर्ति कार्य करने के स्थानों की संख्या से अधिक होती है।"

18.22 बोध–प्रश्न

1. निरक्षरता को परिभाषित कीजिये तथा इसके दुष्परिणामों की व्याख्या कीजिये ?
2. निरक्षरता उन्मूलन हेतु सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों पर प्रकाश डालिये ?
3. सर्वशिक्षा अभियान से आप क्या समझते हैं ?
4. महिला शिक्षा हेतु किये गये प्रयासों का उल्लेख कीजिये ?'
5. निर्धनता से आप क्या समझते हैं ?
6. निर्धनता के प्रमुख स्वरूपों की व्याख्या कीजिये ?
7. निर्धनता के कौन–कौन से कारण है ?
8. निर्धनता के दुष्प्रभावों को लिखिये ?
9. भारत में निर्धनता के उन्मूलन हेतु किये गये प्रयासों पर प्रकाश डालिये ?
10. भारत में ग्रामीण एवं नगरीय निर्धनता के बारे में प्रकाश डालिये ?

11. बेरोजगारी को परिभाषित कीजिये।
12. बेरोजगारी के स्वरूपों पर प्रकाश डालिये।
13. बेरोजगारी निराकरण के उपाय बताइये।
14. बेरोजगारी के प्रमुख कारणों को समझाइये।

18.23 सन्दर्भ –ग्रन्थ सूची

- सिंह, अरुण कुमार सिंह, समाजशास्त्र की मूलभूत अवधारणायें, न्यू रायल बुक कम्पनी, लखनऊ, 2009
- हसनैन, नदीम, समकालीन भारतीय समाजजशास्त्रीय परिदृश्यएक समा :, भारत बुक सेंटर, लखनऊ, 2007
- चन्द्र, एस) .एस.2002) भारत में सामाजिक समस्याएं नई दिल्ली :कनिष्का पब्लिशर्स :
- दोषी, एसएवं जैन .एल ., पी) .सी.2005) भारतीय समाज, नेशनल पब्लिसिंग हाउसः जयपुर
- शर्मा, आरशर्मा .एवं.एन., आर) .के .2002) सामाजिक विघटन, एटलांटिक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटस
- लवानिया, एमएवं राठौड़ .एम., ए) .एस.1999) भारतीय समाज, रिसर्च पब्लिकेशनः जयपुर
- गुप्ता, एमएवं शर्मा .एल., डी) .डी.2004) समकालीन भारतीय सामाजिक विचारक एवं सामाजिक आन्दोलन, साहित्य भवन पब्लिकेशनः आगरा
- लवानिया, एमएवं पडियार .मए., जी) .2010) भारत में सामाजिक समस्यायें, रिसर्च पब्लिकेशनः जयपुर
- गुप्ता, एम.डी.एवं शर्मा डी .एल ., मानव समाज, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2001।
- आहूजा, राम, सामाजिक समस्याऐं, रावत पब्लिकेशन्स, द्वितीय संस्करण, जयपुर एवं नई दिल्ली, 2000
- अहूजा, आर) .अहूजा एम .एवं .2008) समाजशास्त्रविवेचना एवं परिप्रेक्ष्य :, रावत पब्लिकेशन्सः जयपुर
- चन्द्र, एस) .एस.2002) भारतीय सामाजिक संरचना, कनिष्का पब्लिशर्सनई दिल्ली :
- सिंह, अरुण कुमार सिंह, समाजशास्त्र की मूलभूत अवधारणायें, न्यू रायल बुक कम्पनी, लखनऊ, 2009।
- हसनैन, नदीम, समकालीन भारतीय समाजएक समाजशास्त्रीय परिदृश्य :, भारत बुक सेंटर, लखनऊ, 2007
- चन्द्र, एस) .एस.2002) भारत में सामाजिक समस्याएंनई दिल्ली :कनिष्का पब्लिशर्स :

इकाई -19

जनसंख्या विस्फोट, लैंगिक असमानता , नगरीकरण एवं आधुनिकीकरण

Population, Explosion & Gender biasness, Modernization & Urbanization

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 जनसंख्या विस्फोट

9.4 लैंगिक असमानता

9.5 नगरीकरण

9.6 आधुनिकीकरण

9.7 सारांश

9.8 कठिन शब्दार्थ

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

9.10 सन्दर्भ सूची

9.1 प्रस्तावना

वर्तमान में वैश्विक परिदृश्य बहुत तेजी से परिवर्तित हो रहा है | हम अपने समाज में बदलाव के अनेक रूप देखते हैं | इनमें से कुछ बदलाव तो नयी सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओं का परिणाम है परन्तु कुछ बदलाव उन सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओं का नवीन परिणाम है , जो समाज में बहुत पहले से प्रारम्भ हो गयी थी | आप इस इकाई में कुछ ऐसी ही समाजिक प्रक्रियाओं को समझने का प्रयत्न करेंगे जो हमारे सामाजिक विकास को गहराई से प्रभावित करती है | भारत की अनेक सामाजिक समस्याओं जैसे -पर्यावरण असंतुलन, बेरोजगारी , गरीबी एवं बढते अपराध की समस्या आदि का प्रमुख कारण जनसंख्या में अतिशय वृद्धि है | जनसंख्या में अतिशय वृद्धि जनसंख्या विस्फोट की स्थिति को उत्पन्न करती है | सर्वप्रथम आप इस इकाई में जनसंख्या विस्फोट की दशा को समझेंगे | तत्पश्चात लैंगिक असमानता की अवधारणा को जानने का प्रयास किया जाएगा | लैंगिक असमानता किस प्रकार एक स्त्री के जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं का कारण बनती है यह जानने का प्रयत्न करेंगे | लैंगिक असमानता के विविध स्वरुप हैं जो हमें गावों से लेकर नगरों तक हर स्थान पर दिखाई देती है | भारत गाँवों का देश माना जाता है, परन्तु विगत कुछ दशकों से

तेजी से बढ़ती नगरीय क्षेत्रों में वृद्धि नगरीकरण की बढती प्रक्रिया को दर्शाता है | इस इकाई में आगे हम भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया को समझेंगे | नगरीकरण से सम्बंधित एक और अवधारणा है आधुनिकीकरण| जैसे –जैसे नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि होगी वैसे –वैसे समाज आधिनिकीकरण की ओर अग्रसर होगा | प्रस्तुत इकाई में हम नगरीकरण के साथ –साथ आधुनिकीकरण को भी जानेंगे |

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्यन के पश्चात आप :-

- जनसंख्या विस्फोट के अर्थ , कारण एवं प्रभाव को जान सकेंगे |
- लैंगिक असमानता किसे कहते है , लैंगिक असमानता के विविध स्वरूपों का ज्ञान प्राप्त करेंगे |
- नगरीकरण की प्रक्रिया के अर्थ एवं परिणामों को समझ सकेंगे |
- उद्योगीकरण तथा उद्योगीकरण के समाजिक ,आर्थिक एवं राजनितिक परिणामों को जानेंगे|

9.3 जनसंख्या विस्फोट

किसी देश की जनसंख्या का अर्थ उस देश के निश्चित भू –भाग में निवास करने वाले लोगो की कुल संख्या से है | देश की जनसंख्या उस देश के मानव संसाधन को दर्शाती है | आज विश्व की जनसंख्या लगभग 7 अरब से भी ज़्यादा है | भारत की जनसंख्या लगभग 1 अरब, 21 करोड़, 1 लाख, 93 हज़ार, 422 है | भारत की पिछले दशक की जनसंख्या वृद्धि दर 17.64 प्रतिशत है | भारत के पास 1357.90 लाख वर्ग किमी भू-भाग का मात्र 2.4 प्रतिशत आबादी का भार वहन करता है | बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत की आबादी 23 करोड 84 लाख थी जो 21वी शताब्दी 2011 में एक अरब 21 करोड पहुँच गयी है | भारत की प्रथम सम्पूर्ण जनगणना 1881 में हुई थी | सन 1951 में स्वतंत्र भारत में प्रथम जनगणना हुई थी | भारत में 1901 की जनगणना के बाद से हर 10 साल पर जनगणना होती है | भारत की जनसंख्या में 1911-21 कि अवधि को छोडकर प्रत्येक दशक में वृद्धि दर्ज की गयी है |

विश्व की कुल आबादी का आधा या कहें इससे भी अधिक हिस्सा एशियाई देशों में है | भारत और अन्य एशियाई देशों में शिक्षा और जागरुकता की कमी की वजह से जनसंख्या विस्फोट के गंभीर खतरे साफ दिखाई देने लगे हैं | स्थिति यह है कि अगर भारत ने अपनी जनसंख्या वृद्धि दर पर रोक नहीं लगाई तो वह 2030 तक दुनिया की सबसे बड़ी आबादी वाला देश बन जाएगा । भारत की निरन्तर बढती जनसंख्या न केवल अपने आप में एक समस्या है बल्कि आने सामाजिक –आर्थिक एवं पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं का कारण भी है|

'जनसंख्या विस्फोट' का अर्थ :- जब किसी देश की जनसंख्या वहाँ पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों की तुलना में बहुत अधिक बढ़ जाती है और वहाँ जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणाम सामने आने लगते हैं, तब उस स्थिति को 'जनसंख्या विस्फोट' अथवा 'अति जनसंख्या' की संज्ञा दी जाती है | इस

स्थिति में जन्म दर, मृत्यु दर की तुलना में पर्याप्त अधिक होती है | भारत में जिस दर से प्रतिवर्ष जनसंख्या में वृद्धि हो रही है यदि यही स्थिति रही तो देश में इस दशक के समाप्त होने तक जनसंख्या विस्फोट की स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो जाएगी, जो समाज के लिए पर्याप्त घातक सिद्ध होगी। भारत में निरन्तर बढ़ती आबादी के आकडों को आगे सारणी में दर्शाया गया है |

भारत में जनसंख्या और इसकी वृद्धि Population and its Growth, India: 1901-2011

Census Years	Population	Decadal growth		Change in decadal growth		Average annual exponential growth rate (percent)	Progressive growth rate over 1901 (percent)
		Absolute	Percent	Absolute	Percent		
1901	23,83,96,327		-	-	-	-	-
1911	25,20,93,390	1,36,97,063	5.75	-	-	0.56	5.75
1921	25,13,21,213	-7,22,177	(0.31)	-14469240	-6.05	-0.03	5.42
1931	27,89,77,238	2,76,56,025	11.00	28428202	11.31	1.04	17.02
1941	31,86,60,580	3,96,83,342	14.22	12027317	3.22	1.33	33.67
1951[1]	36,10,88,090	4,24,27,510	13.31	2744168	-0.91	1.25	51.47
1961[1]	43,92,34,771	7,81,46,681	21.64	35719171	8.33	1.96	84.25
1971	54,81,59,652	10,89,24,881	24.80[6]	30778200	3.16	2.20	129.94
1981[2]	68,33,29.097	13,51,69,445	24.66[6]	26244564	-0.14	2.22	186.64

1991[3]	84,64,21,039	16,30,91,942	23.87	27922497	17.12	2.16	255.05
2001[4]	1,02,87,37,436	18,23,16,397	21.54	19224455	10.54	1.97	331.52
2011[5]	1,21,01,93,422	18,14,55,986	17.64	-860411	-0.47	1.64	407.64

भारत में जनसंख्या विस्फोट के कारण

भारत की जनसंख्या निरन्तर बढ़ रही है | जनसंख्या की यह वृद्धि हमारे लिए सर्वाधिक गम्भीर समस्या है | जनसंख्या की तीव्र वृद्धि (जिसे अधिकतर लोग जनसंख्या विस्फोट की स्थिति भी कहते हैं) के कारण हमारी प्रगति की सभी योजनाएँ असफल हो रही हैं | अब प्रश्न उठता है कि हमारे देश में जनसंख्या की वृद्धि के मुख्य कारण क्या हैं ? भारत में जनसंख्या की वृद्धि के मुख्य कारण निम्नांकित हैं —

(1) **विवाह की अनिवार्यता तथा कम उम्र में विवाह** — भारतीय धार्मिक विश्वासों तथा संस्कारों के कारण सभी स्त्री—पुरूष के लिए विवाह अनिवार्य माना जाता है | इस विश्वास एवं प्रचलन के कारण सभी स्त्री—पुरूष विवाह करके बच्चों को जन्म देते हैं | इससे जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होती रहती है | यहाँ यह स्पष्ट कर देना अनिवार्य है कि अनेक पाश्चात्य देशों में अनेक स्त्री पुरूष आजीवन अविवाहित रहना समान्य माना जाता है | इस प्रचलन के कारण उन देशों में जन्म दर नियन्त्रित रहती है तथा जनसंख्या में अधिक वृद्धि नहीं होती।

विवाह की अनिवार्यता के साथ ही साथ, भारतवर्ष में कम आयु में विवाह करने का भी प्रचलन है | कम आयु में विवाह हो जाने पर स्त्री—पुरूष का प्रजननकाल बढ़ जाता है | इसस बच्चों के अधिक उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है | यह कारण भी जनसंख्या की वृद्धि के लिए उत्तरदायी है।

(2) **संयुक्तपरिवार प्रणाली का प्रभाव** — संयुक्त परिवार प्रणाली भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता है | इस प्रकार की पारिवारिक व्यवस्था में प्रत्येक सदस्य का अधिक दायित्व नहीं होता। परिवार का आकार बढ़ता चला जाता है तथा उसका व्यय संयुक्त कोष से होता है | इस स्थिति में बच्चों का स्पष्ट दायित्व न होने के कारण अधिक संख्या में बच्चों को जन्म देने को भी बुरा नहीं समझा जाता है तथा परिणामस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि हो जाती है।

(3) **प्रचलित धार्मिक विश्वास** — भारतीय समाज में, विशेष रूप से हिन्दू समाज में यह एक धार्मिक विश्वास प्रचलित है कि मोक्ष—प्राप्ति के लिए पुत्र होना अनिवार्य है | इस विश्वास के कारण बहुत से दम्पति पुत्र की लालसा के लिए अनेक बच्चों को जन्म देते हैं | इस प्रकार पांच—छह पुत्रियों के उत्पन्न हो जाने पर भी पुत्र की कामना बनी रहती है | यह प्रवृति जन्म दर एवं जनसंख्या की वृद्धि का एक उल्लेखनीय कारण बन जाती है।

(4) **गर्म जलवायु** — भारत में सामान्य रूप से गर्म जलवायु पाई जाती है | यह एक जैवकीय त थ्य है कि गर्म जलवायु में रहने वाले की प्रजनन क्षमता अधिक होती है | प्रजनन क्षमता अधिक होने के कारण जन्म दर अधिक होती है | पहले मृत्यु दर भी भारत में अधिक थी जिससे जनसंख्या में इतनी तेजी से वृद्धि नहीं होती थी ,परन्तु अब स्वास्थ्य सुविधाओं में वृद्धि के कारण जन—स्वास्थ्य स्तर बढ़ा है तथा मृत्यु दर कम हुई है जिसके परिणास्वरूप जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होती जाती है |

(5) **मनोरंजन के अन्य साधनों की कमी** — भारतीय समाज में विशेष रूप से ग्रामीण तथा समाज में गरीब लोगों के पास स्वस्थ मनोरंजन के साधनों का प्राय: अभाव ही रहा है | इस स्थिति में ये लोग यौन—सुख को ही मनोरंजन का एकमात्र साधन मानकर यौन—सम्बन्धों में अधिक लिप्त रहते हैं | इस प्रवृति के परिणामस्वरूप बच्चों की जन्म दर में वृद्धि होती है तथा जनसंख्या बढ़ जाती है।

(6) **गर्भ निरोधक सुविधाओं की कमी** — अधिकांश भारतीय क्षेत्रों में अभी भी गर्भ निरोधक सुविधाओं के व्यापक प्रचार—प्रसार का अभाव है | अत: असंख्य पति—पत्नि गर्भ—निरोधक सुविधाओं एवं साधनों के ज्ञान से प्राय: वंचित रहते हैं | अशिक्षा एवं अज्ञानता के कारण भी, गर्भ निरोध के अनेक नवीन एवं अचूक उपयोग का इन्हें ज्ञान ही नहीं। इस कारणवश, चाहते हुए भी लोग अपने परिवार को सीमित नहीं रख सकते तथा जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होती रहती है।

(7) **पारिवारिक प्रतिष्ठा** — भारतीय समाज में आज भी यह मान्यता पाई जाती है कि बड़ा परिवार सम्मान का प्रतीक है | लोग बड़े परिवार को गौरव का विषय मानते हैं | इस कारण से भी अनेक व्यक्ति परिवार के बड़े आकार को महत्व देते है, जिससे जनसंख्या बढ़ जाती है।

(8) **मृत्यु दर का घट जाना** — आधुनिक युग में चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विज्ञान ने अपने अपने क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति की है | इसके परिणास्वरूप अनेक भयंकर रोगों का उपचार सम्भव हो सका है | इसके अतिरिक्त अनेक संक्रामक रोगों एवं महामारियों पर पर्याप्त सीमा तक नियन्त्रण पा लिया गया है | यही नहीं, आज अधिकांश व्यक्ति सन्तुलित भोजन एवं स्वास्थ्य के नियमों से परिचित हो रहे हैं | इस ज्ञान से भी व्यक्ति के सामान्य स्वास्थ्य में सुधार हुआ है तथा मृत्यु दर में कमी आने के परिणास्वरूप औसत आयु में वृद्धि हुई। इससे भी जनसंख्या में वृद्धि होना स्वाभाविक ही है।

(9) **शिक्षा :-** शिशु जन्म -दर का स्त्री शिक्षा से नकारात्मक सहसंबंध होताहै | भारतीय राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण द्वरा यह निष्कर्ष दिया गया है कि इंटरमीडिएट पास स्त्री के दो बच्चे , हाई स्कूल पास के 4.6, मिडिल पास या निरक्षर के 5 बच्चों का औसत आता है | इसके अतिरिक्त शिक्षित व्यक्ति अपने जीवन –स्तर के प्रति जागरूक होता है तथा परिवार नियोजन के उपायों को अपनाता है | अत: शिक्षा का अभाव जनसंख्या वृद्धि में सहायक होता है |

(10) **सामाजिक –आर्थिक प्रस्थिति** :- प्रजनन दर पर व्यक्तियों की सामाजिक –आर्थिक प्रस्थिति का भी प्रभाव पड़ता है | प्रायः उच्च सामाजिक –आर्थिक प्रस्थिति वाले लोगों की प्रजनन दर निम्न सामाजिक –आर्थिक प्रस्थिति वाले लोगों की अपेक्षा कम होती है |

(11) स्त्री की सामाजिक प्रस्थिति :- प्रजननता का महिलायों के सामाजिक स्तर विशेष सम्बन्ध होता है |भारतीय समाज में प्रायः स्त्रियों को बच्चों को पालन –पोषण ,घरेलू कार्यों तक ही सीमित रखा जाता है इस कारण भी महिलायों की प्रजनन दर अधिक होती है| समाज में कई वर्ग अभि भी स्त्री को संतानोत्पत्ति का साधन मात्र मानते हैं |

भारत में जनसंख्या विस्फोट के दुष्परिणाम

भारज में जनसंख्या विस्फोट या अत्याधिक वृद्धि का भारत की सामाजिक संरचना पर दूरगामी प्रभाव पड़ा है | भारत में अनेक समस्याओं तथा कुरीतियों का कारण जनसंख्या वृद्धि ही है | इसके प्रमुख दुष्परिणाम निम्नलिखित हैं -

(1) जनसंख्या वृद्धि से भारत में निर्धनता में वृद्धि हुई है, क्योंकि आय में उसी अनुपात में वृद्धि नहीं हो रही है।

(2) जनसंख्या वृद्धि के कारण भारत में बेरोजगारी बढ़ी है | यद्यपि उघोगों का विकास हुआ है, फिर भी यह जनसंख्या में वृद्धि के अनुपात की तुलना में कम है।

(3) जनसंख्या वृद्धि के कारण भारत में कुपोषण की समस्या में वृद्धि हुई है।

(4) गन्दी बस्तियों का विकास भी जनसंख्या में वृद्धि का कारण है | इन बस्तियों के दूषित वातावरण ने अपराध, बाल अपराध, मघपान, वैश्यावृति, जुआखोरी व अन्य ऐसी समस्याओं में वृद्धि की है।

(5) पारिवारिक विघटन भी जनसंख्या वृद्धि का ही परिणाम है।

(6) बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार भी जनसंख्या वृद्धि का परिणाम है, क्योंकि व्यक्ति अवैध तरीकों से धन कमाकर अपने बढ़ रहे परिवार की आवश्यकताओं की अधिकतम पूर्ति करना चाहते हैं |

(7) जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप निर्धनता व बेरोजगारी में जो वृद्धि हुई है, उससे अपराधों की संख्या बढ़ी है।

भारत में जनसंख्या नियन्त्रण हेतु सुझाव

यद्यपि भार की सरकार जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण हेतु प्रत्यनशील है तथा अनेक परिवार कल्याण कार्यक्रम बनाए गए हैं, तथापि इसमें वांछित सफलता नहीं मिल पाई है | जनसंख्या नियन्त्रण हेतु निम्नांकित उपाय सहायक हो सकते हैं —

(1) शिक्षा को अधिक उपयोगी व व्यावहारिक बनाया जाए ताकि शिक्षित व्यक्ति जनसंख्या विस्फोट से होने वाली हानि के प्रति सचेत हो सके। शिक्षा के माध्यम से भी उन्हें छोटे परिवारों के लिए मानसिक रूप से तैयार किया जाए।

(2) बाल विवाह यद्यपि वैधानिक रूप से समाप्त कर दिए गए हैं परन्तु इनका प्रचलन व्यवहार में आज भी है; अत: इन पर कठोरता से अंकुश लगाया जाए तथा विलम्ब विवाहों को प्रोत्साहन दिया जाए।

(3) बाल विवाह की प्रथा को भारत में पूर्णतया समाप्त किया जाए।

(4) परिवार नियोजन की शिक्षा स्कूलों व कॉलेजों में प्रदान की जाए तथा इनसे सम्बन्धित कार्यक्रमों को अधिक प्रभावशाली बनाया जाए।

(5) ऐच्छिक परिवार नियोजन करने वालों को और अधिक सुविधाएँ प्रदान की जाएँ ताकि इस प्रवृत्ि में वृद्धि हो।

(6) नौकरियों के लिए परिवार नियोजन अपनाने वालों को प्राथमिकता दी जाए। अधिक बच्चों वालों को नौकरी में कुछ सुविधाओं से वंचित किया जाए ताकि इसका निरोधात्मक प्रभाव पड़ सके।

(7) जनसंख्या नियन्त्रण के उपायों के बारे में ग्रामवासियों को सचेत किया जाए तथा उन्हें मुफ्त या अत्यन्त सस्ती दरों पर गर्भ—निरोध के साधन उपलब्ध कराए जाएँ।

(8) स्वंसेवी संगठनों की सहायता लेकर जनसंख्या नियन्त्रण के पक्ष में जनमत तैयार किया जाए।

(9) स्त्री शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार किया जाए, क्योंकि भारत में जनसंख्या वृद्धि की समस्या मूल रूप से महिलाओं की शिक्षा से भी जुड़ी हुई है | शिक्षित महिलाएँ भाग्यवादिता की भावना छोड़कर, बच्चों के जन्म में अन्तर रखकर तथा सरकार द्वारा चलाए जाने वाले परिवार कल्याण कार्यक्रमों का लाभ उठाकर जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगा सकती है।

19.4 लिंग असमानता (gender inequality)

लिंग असमानता एक ऐसा मुद्दा है जिसके विषय में आप आये दिन समाचार पत्रों , टी०वी०, द्वारा एवं अपने आस पास के लोगो से सुनते होंगे | आपके आसपास लैंगिक असमानता अनेक रूपों में विद्यमान है परन्तु यह हमारी सामाजिक व्यवस्था में इतनी घुलमिल गयी है कि हमें यह ना तो गलत लगती है और न ही हम इसके विषय में विचार करते है | बल्कि हम इसे सामाजिक व्यवस्था का अनिवार्य अंग मानकर स्वीकार कर लेते है | लिंग असमानता को जानने से पहले आपको यह समझना आवश्यक है कि लिंग य जेंडर का क्या अर्थ है ?

यहाँ यह जानना आपके लिए आवश्यक है की यौन (sex) एवं जेंडर(gender) में अंतर है | सर्वप्रथम फ्रांस की एक लेखिका एवं राजनितिक चिन्तक सिमोन द बुआ (Simone De Beauvoir) ने अपनी किताब 'द सेकेण्ड सेक्स ,1949'(The Second Sex, 1949) में यौन (sex) एवं जेंडर(gender) में अंतर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बनायी जाती है | "(one is not born a women but becomes one),सिमोन द बुआ के इस कथन के बाद ब्रिटिश समाजशास्त्री ऐन ओकले ने 1972 में प्रकाशित अपनी पुस्तक सेक्स ,जेंडर एंड सोसायटी (sex, gender and society)में सेक्स एवं जेंडर के मध्य अंतर को परिभाषित करते हुए लिखा है कि सेक्स हमें जन्मजात मिलाती है और जेंडर हम अर्जित करते हैं | (sex we are born with and gender we acquire).

मनुष्य के जन्मजात शारीरिक बनावट या संरचना के आधार पर उनके बीच जो नर एवं मादा का अंतर या भिन्नता स्पष्ट होती है वह जैवकीय भिन्नता, यौन (sex) कहलाती है , परन्तु एक नर एवं

मादा रुपी जैवकीय विभेद को जब सामाजिक –सांस्कृतिक संरचना के अंतर्गत एक पुरूष एवं स्त्री के रूप में पहचान मिलती जो समाज द्वारा प्रदत्त होती है, इसे 'जेंडर' (Gender) कहते है | इस प्रकार 'जेंडर' एक पुरूष एवं स्त्री की समाजिक –संस्कृतिक पहचान को दर्शाती है | जेंडर , सामाजिक – संस्कृतिक उत्पाद एवं विचारधारा है | जेंडर ,एक श्रेणीबद्ध सामाजिक व्यवस्था या संरचना (hierarchical social structure) है , जिसमें पुरूष उच्च श्रेणी में तथा स्त्री पुरूषों की तुलना में निम्न श्रेणी में आती हैं | यह श्रेणीबद्ध सामाजिक व्यवस्था समाज में पितृसतात्मक सामाजिक व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है | पितृ सतात्मक सामाजिक व्यवस्था में सभी अधिकार, सत्ता एवं शक्ति पुरूषों को प्राप्त होती है | भारतीय समाज एक पितृसत्तात्मक समाज है जिसमें एक स्त्री को जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक प्रकार की असमानताओं एवं भेदभाव का सामना करना पड़ता है | मैत्रीय चौधरी कहती हैं कि, भारत में स्त्रियों की जो दलित स्थिति है उसके पीछे विचारधारा एवं सामाजिक संरचना बहुत बड़ा कारणहै |

पितृसतात्मक समाज में स्त्री एवं पुरूष के मध्य अनेक प्रकार के भेदभाव एवं असमानता पायी जाती है यह असमानता लैंगिक असमानता(Gender inequality) कहलाती हैं | लैंगिक असमानता के कारण समाज में स्त्री एवं पुरूष को मिलने वाले प्रस्थिति, भूमिका ,अधिकार , मूलभूत सुविधाओं, समाज के दृष्टिकोण एवं सामाजिक स्वतंत्रता में असमानता दिखाई देती है | चूंकि समाज में स्त्री की प्रस्थिति पुरूष की अपेक्षा निम्न है, अतः उन्हें उनके अधिकारों , मूलभूत सुविधाओं एवं सामाजिक स्वतंत्रता से भी वंचित होना पड़ताहै | लैंगिक असमानता के परिणामस्वरूप समाज में स्त्री तथा पुरुष के शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक गुणों का भी विभाजन किया गया है | स्त्री में स्त्रियोचित गुण जैसे ,सहनशीलता , मधुरता ,कोमलता ,नम्रता ,आज्ञाकारिता , भावनात्मक स्तर पर कमजोर, शर्मीली, आदि गुण अपेक्षित है तथा पुरूष में पुरूषोचित गुण जैसे – साहसी , निर्भीक , बलशाली , बुद्धिमान ,भावनात्मक स्तर पर कठोर,आत्मविश्वास आदि आवश्यक माने जाते हैं | इस प्रकार समाज इन गुणों के आधार पर एक स्त्री के स्त्रीत्व तथा पुरूष के पुरुषत्व को मापती है | हमारे समाज में समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा बालक में पुरूषोचित एवं बालिका में स्त्रियोचित गुणों का विकास करने का प्रयास किया जाता है |

भारत में लिंग असमानता (gender inequality in India):- लिंग असमानता एक ऐसा समाजिक- सांस्कृतिक मुद्दा है जिससे देश का सामाजिक –आर्थिक विकास प्रत्यक्ष – अप्रत्यक्ष रूप से सम्बंधित है | वैश्विक स्तर पर देखें तो लिंग असमानता को मापने के लिए वर्ल्ड इकोनोमिक फोरम द्वारा जारी जेंडर गैप इंडेक्स (gender gap index) में 142 देशों में भारत का 114वां स्थान है | जेंडर गैप इंडेक्स आर्थिक सहभागिता , शैक्षणिक उपलब्धि , स्वाथ्य एवं उत्तरजीविता आदि मानकों पर आधारित है | भारत में लिंग असमानता की जड़ों की गहराई को मापने का सबसे महत्वपूर्ण सूचक है लिंग अनुपात तथा बाल लिंग अनुपात | भारत की 2011 की जनगणना के अनुसार लिंग अनुपात 943 है तथा बाल लिंग अनुपात 919 है | लिंग अनुपात यह दर्शाता है कि 1000 पुरुष पर 943 महिलाये है तथा 0-6 वर्ष की आयु के 1000 बालको पर 919 बालिकाएं जीवित हैं | ये आकडे यह दर्शाते हैं कि भारत में लैंगिक असमानता की स्थिति बहुत भयावह है |

भारत में लैंगिक असमानता के स्वरूप(different forms of gender inequality in india)

नोबेल पुरस्कार विजेता डा०अमर्त्य सेन ने भारत में लैंगिक असमानता की स्थिति पर अपने लेख 'many faces of gender inequality'में लिखा है कि लैंगिक असमानता एक समजातीय घटना (homogeneous phenomenon) नहीं है ,अपितु यह कई भिन्न–भिन्न एवं अंतर्संबंधित समस्याओं का एक संकलन (collection) है | डा०सेन ने लैंगिक असमानता के सात भिन्न- भिन्न स्वरूपों का उल्लेख किया है | हम इन सातों स्वरूपों को भारतीय समाज के अंतर्गत देखने का प्रयास करेंगे , जो इस प्रकार है :-

1. **मर्त्यता संबंधी असमानता (Mortality inequality) :-** लैंगिक असमानता , जीवन एवं मृत्यु के अवसर को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है | भारत में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की अधिक मर्त्यता दर , कन्या भ्रूण हत्या एवं बालिका हत्या आदि कुरीतियों के कारण पुरुषों की तुलना में महिलायों के जीवित रहने के अवसर कम हो जाते हैं | इसी प्रकार परिवार में बालक की तुलना में बालिका तथा पुरुष की अपेक्षा महिला के स्वास्थ्य एवं पोषण पर कम ध्यान दिया जाता है | समाजीकरण द्वारा बचपन से बालिका को भी ऐसी ही शिक्षा दी जाती है जिसके कारण वह अपने पोषण तथा स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान नहीं देती |
2. **जन्म संबंधी असमानता (Natality inequality):-** पितृसत्तात्मक समाज में एक स्त्री को जन्म लेने के अधिकार से भी वंचित होना पड़ता है | परिवार में जब किसी शिशु का जन्म होने वाला होता है तो माता –पिता , सभी लोग पुत्र की ही कामना करते हैं | यहाँ तक कि बड़े बुजुर्गो द्वारा दिया गया आशीर्वाद ('दूधो नहाओ पूतो फलो) भी पुत्र प्राप्ति की कामना से प्रेरित होता है| जन्म से पूर्व लिंग पता लगाने की आधुनिक तकनीक ने पुत्र प्राप्ति की कामना को यथार्थ का रूप दे दिया है | डा०सेन इसे लैंगिक असमानता की उच्च तकनीक (high-tech sexism) मानते हैं|
3. **मूलभूत सुविधाओं से सम्बंधित असमानता (Basic facility inequality) :-** शिक्षा हर बच्चे का मूलभूत अधिकार है परन्तु दुर्भाग्यवश शि क्षा प्राप्त करने के अधिकार के सम्बन्ध में भी बालक एवं बालिका के बीच भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है | यद्यपि भारत सरकार ने बालिकाओं की शिक्षा को बढावा देने के लिए कई योजनाओं की घोषणा की है परन्तु वर्तमान में भी लड़कियों की शिक्षा के प्रति समाज का दृष्टिकोण नकारात्मक ही है | लड़कियों की शिक्षा के प्रति अभिभावको के नकारात्मक दृष्टिकोण के पीछे कई विचारधाराएँ है जैसे लड़कियों को पढ़ाना पैसे की बर्बादी है लड़कियां ज्यादा पढ़ेंगी तो विवाह में परेशानीआएगी,पढने से लड़किया बिगड जायेंगी आदि | शिक्षा के अवसर के अभाव में लडकी का बौद्धिक विकास अवरूद्ध हो जाता है | इतना ही नहीं हमारे समाज में लड़कियों को उनकी नैसर्गिक एवं जन्मजात प्रतिभा को विकसित करने का अवसर भी नहीं मिलता है | उनकी समाजिक आयोजनों में स्वतंत्र सहभागिता प्राप्त नहीं होने के कारण उनमें आत्मविश्वास की कमी हो जाती है |
4. **विशेष अवसर संबधी असमानता (Special opportunity inequality) :-** विशेष अवसर संबधी असमानता के असमानता का वह स्वरूप आता है जिसमें कुछ विशेष अवसर केवल लड़कों को ही मिलते हैं लड़कियों को नहीं | विशेष अवसर संबधी असमानता में उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर तथा कुछ विशेष प्रकार की तकनीकी शिक्षा या तकनीकी विषयो में पुरूषों को प्राथमिकता देना आदि शमिल हैं |
5. **व्यवसाय सम्बन्धी असमानता (Professional inequality):-** नौकरीयों की भर्ती प्रक्रिया, नौकरी में पदोन्नति ,एवं वेतन आदि के सम्बन्ध में महिलायों के साथ भेदभावपूर्ण

व्यवहार होता है | महिलायों को उनके कार्य के लिए किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं दिया जाता है | कार्यशील महिलाओं को अन्य प्रकार की आवश्यक सुविधाए जैसे प्रसूति अवकाश , प्राथमिक चिकित्सा , उनके बच्चों के लिए बाल गृह, बोनस आदि भी आसानी से नहीं मिलते हैं |

6. **स्वामित्व सम्बन्धी असमानता (Ownership inequality):-** प्रत्येक पितृसत्तात्मक समाज की तरह भारत में भी परिवार की पैतृक संपत्ति पर परिवार के पुरुषों का अधिकार होता है| परम्परागत रूप से पैतृक संपत्ति का स्वामित्व एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के पुरूष को ही मिलता है| स्त्रियों को पैतृक संपत्ति पर स्वामित्व नहीं होने के कारण उन्हें अनेक प्रकार की आर्थिक वंचनाओं का सामना करना पड़ता है | इससे स्त्रियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता समाप्त हो जाती है और किसी प्रकार की विपत्ति में पुरुषों पर आश्रित रहती हैं |
7. **घरेलू असमानता (Household inequality):-** परिवार एक ऐसी सामाजिक संस्था है जिसमें लैंगिक असमानता का जन्म होता है एवं आकार निर्धारित होता है | परिवार लैंगिक असमानता का वाहक एवं पोषक है जो समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा इस कार्य को करता है| परिवार में लैंगिक असमानता के अनेक स्वरूप होते हैं | परिवार में प्रस्थिति के सम्बन्ध में दो प्रकार की असमानता देखने को मिलती है पहली आयु के आधार और दूसरी लिंग के आधार पर| पुत्री का जन्म ही माता –पिता के लिए समाज में अपनी प्रतिष्ठा का हास महसूस होता है | भारतीय परम्परागत परिवारों में एक स्त्री एवं पुरुष के सम्बन्ध अनेक रूपों में असमानता देखने को मिलती है | परिवार में स्त्री एवं पुरुष की प्रस्थिति एवं भूमिका अलग –अलग होती है | पुरुषों की प्रस्थिति स्त्रियों से उच्च होती है | पुरुष को परिवार के मुखिया के रूप में देखा जाता है| परिवार के सभी निर्णय लेने का उसे अधिकार प्राप्त है | सामाजिक आयोजनों में परिवार की ओर से भी पुरुष ही जाते हैं | वह समाज में परिवार का प्रतिनिधि माना जाता है | वह परिवार की आर्थिक जिम्मेदारीयों का निर्वाह करता है | पुरुष घर के बाहर की सभी भूमिकाओं का निर्वाह करना होता है | दूसरी ओर महिलाओं भूमिका घर की चारदी वारी के अंदर तक सीमित होती हैं|बच्चों की देखभाल तथा अन्य सभी घरेलू कार्यों को करने की होती है | वह समाज में अपने पति या परिवार के पुरुष सदस्य के पहचान से जानी जाती है, उसकी अपनी कोई पहचान नहीं होती है | यहाँ तक की एक स्त्री को अपने जीवन और शरीर के विषय में भी निर्णय लेने का अधिकार भी पुरुष वर्ग द्वारा नहीं दिया जाता | भारत में स्त्री एवं पुरुष की असमानता का एक बहुत बड़ा स्वरूप एवं कारण दोनों है 'दहेज प्रथा'| आज भी हम देखते हैं की समान शिक्षा प्राप्त लड़के एवं लड़की के बीच विवाह होता है तो भी वधु पक्ष को वर पक्ष को दहेज देना पड़ता है | दहेज प्रथा के कारण ही कई अभिभावक पुत्री को जन्म नहीं लेने देना चाहते हैं | उन्हें लगता है कि पुत्री के जन्म से उनके ऊपर दहेज रुपी दानव के कारण आर्थिक बोझ आ जायेगा |

उपरोक्त विवरण से यह तो आपको स्पष्ट हो गया होगा कि लैंगिक असमानता कितने भन्न –भिन्न रूपों में हमारे समाज में व्याप्त है जो रोजमर्रा के जीवन में हमें दिखाई तो देती है परन्तु हम इस ओर ध्यान नहीं देते |

भारत में लैंगिक असमानता के लिए उत्तरदायी कारक

(factors responsible for the gender inequality in India)

भारत में स्त्रियों की निम्न स्थिति के लिए निम्नलिखित कारणों उत्तरदायी है :-

1. **वंश परम्परा** – भारत में अधिकांश धर्मों विशेषकर हिन्दू धर्म में पुत्र ही पिता के वंश या नाम को आगे बढाता है | पुत्री का उपनाम विवाह के बाद बदल जाता है और वह पति के उपनाम को अपना लेती है | अतः अपने वंश को आगे बढाने के लिए पुत्र की कामना करते हैं |
2. **धार्मिक मान्यतायें** :- हिंदू धार्मिक मान्यता के अनुसार माता –पिता की मृत्यु के बाद उन्हें मुखाग्नि अर्थात उनकी चिता को कंधा देने का अधिकार केवल पुत्र को है | ऐसी मान्यता है की पुत्र द्वारा मुखाग्नि देने से माता –पिता को मोक्ष की प्राप्ति होती है |
3. **दहेज प्रथा** :-दिनों –दिन बढ़ती दहेज प्रथा का समाज में लड़कियों की प्रस्थिति को निम्न करने में बहुत बड़ा योगदान है | पुत्री के जन्म से ही अभिभावक उसके विवाह में दहेज देने के लिए धन इकठ्ठा करने लगते हैं | कभी –कभी दहेज देने के लिए वो इतना कर्ज ले लेते हैं कि जीवन भर उस कर्ज को चुकाते रहते हैं | दहेज प्रथा के कारण पुत्री का जन्म अभिभावक के लिए दुःख एवं चिंता का विषय बन जाता है |
4. **सामाजिक प्रतिष्ठा:-** भारतीय समाज में पुत्र का होना प्रतिष्ठा का कारण माना जाता है | जिन लोगों के पुत्र नहीं होता उन्हें दयनीय समझा जाता है | ऐसी मान्यता है कि पुत्र से मान –सम्मान बढ़ता है | ऐसी सामाजिक विचारधारा एवं दृष्टिकोण समाज में महिलायों की दोयम दर्जे की प्रस्थिति के लिए जिम्मेदार है |
5. **सामाजिक सुरक्षा :-** वृद्धावस्था में आदमी शारीरिक रूप से कमजोर हो जाता है अतः उसे देखभाल के लिए किसी का सहारा चाहिए | भारत में पुत्र को माता –पिता के बुढ़ापे का सहारा माना जाता है | सरकार वृद्धावस्था में द्वारा सामाजिक सुरक्षा का कोई ठोस विकल्प नहीं होने तथा पुत्री का विवाह के पश्चात ससुराल में बसने के कारण माता –पिता को अपने पुत्र पर ही पूर्णतः निर्भर हो जाते हैं | अतः अभिभावक पुत्र को अपने बुढ़ापे का सहारा के रूप में महत्वपूर्ण एवं आवश्यक समझते हैं और पुत्री की अपेक्षा अधिक महत्व देतेहैं |

6. **स्त्री–शिक्षा की उपेक्षा** – भारत में अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कारणों से स्त्री शिक्षा की उपेक्षा की जाती रही है । यह माना जाने लगा कि स्त्रियों को नौकरी नहीं करनी है, अत: उन्हें शिक्षा दिलाने की कोई आवश्यकता नहीं है | शिक्षा के अभाव में स्त्रियां अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं रह सकीं और एक–एक करके उनके सभी अधिकार छिनते गये । अशिक्षा के कारण वे अन्धविश्वासों, कुसंस्कारों और रूढ़ियों में इस प्रकार जकड़ गयी कि अब उनमें चेतना नाम की कोई वस्तु शेष नहीं रह गयी । परिणाम यह हुआ कि पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की स्थिति काफी निम्न हो गयी ।
7. **हिन्दू आदर्श एवं मूल्य** – हिन्दू विवाह से सम्बंधित कन्यादान के आदर्श ने भी स्त्रियों की स्थिति को निम्न करने में योग दिया। प्रारम्भ में ब्राह्य–विवाह के अन्तर्गत योग्य वर को ढूंढ कर पिता वस्त्र और आभूषणों से सुसज्जित अपनी लड़की को दान के रूप में उसे देता था। उस समय कन्यादान का महत्व योग्य वर को ढूंढने से सम्बन्धित था। धीरे–धीरे स्मृतिकाल के बाद कन्यादान की धारणा के अन्तर्गत कन्या को एक वस्तु के रूप में समझ लिया गया । अब यह माना जाने लगा कि जो वस्तु दान में दी जा चुकी है, उसे न तो वापस लिया जा सकता है और न ही पुन: उसका दान किया जा सकता है | जिस व्यक्ति ने कन्यादान के रूप

में उन्हें ग्रहण किया है, वह जैसा चाहे वैसा ही उसका उपयोग कर सकता है | इस प्रकार के विश्वासों का परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों के अधिकार छिनते गये।

8. **वैवाहिक कुरीतियां** – स्मृतिकार बाल–विवाह के पक्ष में थे। जो हिन्दु समाज की कुरीति है| उन्होंने कम आयु में ही लड़की का विवाह कर देना माता–पिता का धार्मिक कर्तव्य माना। परिणाम यह हुआ कि लड़कियों के लिए विवाह संस्कार ने ही उपनयन संस्कार का स्थान ले लिया और लड़कियों के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं रही। ऐसी स्थिति में उन्हें अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर नहीं मिला। बाल विवाह के अतिरिक्त कुलीन विवाह, अन्तविवाह विधवा विवाह पर प्रतिबन्ध, दहेज प्रथा आदि का लैंगिक असमानता में काफी योगदान रहा है।
9. **संयुक्त परिवार व्यवस्था** – संयुक्त परिवार प्रणाली ने स्त्रियों की स्थिति को गिराने में सक्रिय योग दिया है | संयुक्त परिवार में स्त्रियों को कोई स्वतन्त्रता नहीं होती और न ही उनके कोई आर्थिक अधिकार होते हैं | उन्हें तो पुरुषों की कृपा पर निर्भर रहने वाली आश्रित नारियों के रूप में जीवन बिताना पड़ता है | परिवार में वयोवृद्ध स्त्रीयों की आज्ञा का पालन और सभी सदस्यों की सेवा करना ही उनका प्रमुख धर्म माना गया। संयुक्त परिवार ने स्त्रियों को चेतना–शून्य बनाकर सब अधिकारों से वंचित कर दिया।
10. **पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता** – पति ही पत्नी का भरण–पोषण करने वाला माना गया है और इसी कारण उसे 'भर्ता' कहा गया है | ऐसी स्थिति में पत्नी का अपने पति पर आश्रित होना स्वाभाविक ही है | उत्तर–वैदिक काल के बाद स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार समाप्त कर दिये गये। उन्हें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ा। पति पर आर्थिक निर्भरता के कारण पत्नी किसी भी अवस्था में पति से सम्बन्ध विच्छेद करने या परिवार की सदस्यता छोड़ने की बात सोच भी नहीं सकती थी। पुरुषों पर इस आर्थिक निर्भरता का परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों की स्थिति निम्न होती गयी।

11. **अशिक्षा** – स्त्रियों में अशिक्षा के कारण भी समाज में उनकी स्थिति निम्न हो गयी। अशिक्षा के कारण वे रूढ़िवादी, धर्मान्ध एवं अन्धविश्वासी हो गयी और सामाजिक कुरीतियों में जकड़ गयी। उन्हें इस प्रकार के धार्मिक आदेश दिये गये जिससे वे ऊपर न उठ सकें, पति परमेश्वर, पतिव्रता, कन्यादान और सतीत्व के आदर्श उसे बचपन से ही सिखाये गये और स्त्री का जीवन घर की चहारदीवारी तक ही सीमित हो गया।

9.5 नगरीकरण (urbanization)

भारत की लगभग अस्सी प्रतिशत आबादी गाँवों में निवास करती है, परन्तु वर्तमान समय में आधुनिक भारत विकास के जिस पथ पर अग्रसर हो रहा है , उसके फलस्वरूप भारत में नगरीकरण की प्रकिया को निरन्तर बढ़ावा मिला है | नगरीकरण की वृद्धि से अनेक प्रकार की सामाजिक समस्याओं , अपराध तथा वयैक्तिक विघटन जैसी समस्याओं को भी बढ़ावा मिला है | 'नगरीकरण' के बारे में विभिन्न विषयों में अलग –अलग दृष्टिकोण है , अर्थशास्त्र के अनुसार नगरीकरण का अर्थ कृषि अर्थव्यवस्था से अधिकांश जनसंख्या का उद्योग की ओर अग्रसर होना है , भूगोल की दृष्टि से नगरीकरण का अर्थ प्राकृतिक वातावरण का शहरी वातावरण में परिवर्तित होना है ,

समाजशास्त्र में नगरीकरण का अर्थ ग्रामीण समाज का शहरी समाज के मूल्यों को अपनाना है , जनांकिकीय क्षेत्र में नगरीकरण उस प्रकिया को माना जाता है जब गाँवों की आबादी की तुलना में शहरों की आबादी समानुपातिक रूप से बढ़ जाती है |

एक सामान्य तथा सर्वमान्य अर्थ में 'नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें ग्रामीण जनसंख्या नगरीय क्षेत्रो में निवास करने हेतु जाती है जिसके फलस्वरूप नगरों की जनसंख्या में वृद्धि होती है तथा नए नगरों का विस्तार भी होता है | '

नगरीकरण की परिभाषाएँ:-

थौमसन वारन के अनुसार, " यह एक ऐसे समुदाय के व्यक्तियों , जो पूर्णरूपेण से कृषि से जुड़े हुए हैं , का उन समुदायों में जाना है जो आकार में उनसे बड़े हैं, और जिनकी गतिविधियाँ मुख्यरूप से सरकार ,व्यापार ,उत्पादन या इनसे सम्बंधित कारोबारों पर निर्भर है |"

एंडरसन के अनुसार " नगरीकरण एकतरफा प्रक्रिया ना होकर दो तरफ़ा प्रक्रिया है | इसमें केवल गावों से शहरों की ओर जाना नहीं होता है , परन्तु इसमें प्रवासी के रूखों ,विश्वासों ,मूल्यों और व्यवहार के संरूपों में भी परिवर्तन होता है |" एंडरसन ने नगरीकरण की पांच विशेषताएं बतायी हैं : मुद्रा अर्थव्यवस्था, सरकारी प्रशासन , सांस्कृतिक परिवर्तन , लिखित अभिलेख और अभिनव परिवर्तन |

डी.एफ. पाकॉक के अनुसार, " नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत ग्रामीण लोग शहर की ओर प्रवास करते हैं और नगरों के प्रभाव में उनके ग्रामीण जीवन के तौर –तरीको में परिवर्तन आता है |"

उपरोक्त समाजविदों ने नगरीकरण को प्रवास तथा जीवन –शैली दोनों से जोड़कर देखते हैं , परन्तु कुछ समाजविद प्रवास तथा नगरीकरण को अलग अलग प्रक्रिया मानते हैं | लोगो का गाँव से शहरों की ओर जाना नगरीकरण की प्रक्रिया है न कि प्रवास की | हांलाकि नगरीकरण और प्रवास आपस में एक –दूसरे से संबद्ध हैं |

नेल्स एंडरसन के अनुसार मात्र ग्रामीणों का शहरों में जाना और परम्परागत ग्रामीण जीवन में परिवर्तन ही नगरीकरण नहीं है बल्कि यह एक वृहत्तर प्रक्रिया है | प्रवास के अभाव में भी नगरीकरण की प्रक्रिया सम्भव है | यदि गाँव के लोग वहीँ रहकर नगरीय जीवन शैली अपनाते हैं तो वह भी नगरीकरण के अंतर्गत ही आता है |

विभिन्न मतों के बावजूद नगरीकरण की प्रक्रिया के निम्नलिखित प्रमुख आधार माने जाते है :-

(i) प्रवसन या देशान्तर द्वारा शहरों की जनसंख्या में वृद्धि होना |
(ii) कृषि केन्द्रित पेशों से निकलकर औद्योगिक पेशो को अपनाना |
(iii) कृषि प्रधान या प्राकृतिक वातावरण का नगरीय कृत्रिम वातावरण में परिवर्तित होना |
(iv) ग्रामीण आबादी की तुलना में शहरी आबादी के अनुपात में तेजी से वृद्धि होना |
(v) लोगो द्वारा नगरीयता या नगरीय जीवन शैली को अपने जीवन में आत्मसात करना |
(vi) पुराने शहरों की आबादी में वृद्धि तथा नए शहरों की उत्पत्ति |

इस प्रकार हम देखते हैं कि नगरीकरण न केवल एक प्रक्रिया है बल्कि एक जीवन शैली भी है | इस सम्बन्ध में लुईस वर्थ ने अपने प्रसिद्ध लेख 'urbanization as a way of life ' में नगरीकरण से संबद्ध 'नगरीयता'की अवधारणा दी है | लुईस वर्थ ने नगरीयता की चार विशेषताएं बतायी हैं –

जनसंख्या की विषमता (heterogeneity of population), कार्य और व्यवहार की विशेषज्ञता(specialization of function and behaviour),गुमनामी और अवयेक्तिकरण(anonymity and impersonality), व्यवहार का मानकीकरण (standardistion of behaviour).

नगरीय सामाजिक जीवन के आधारभूत लक्षण-

1. **सामाजिक विजातीयता** :- नगरीय जनसंख्या के रहन –सहन ,खान –पान ,सांस्कृतिक मूल्यों , रीति-रिवाजों में बहुत विभिन्नतायें होती हैं |
2. **गैर कृषि व्यवसाय** :- शहरी अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार व्यापार ,उद्योग, नौकरी , आदि होता है |
3. **जनसख्या का आकार एवं घनत्व** :- नगरों में गावों की अपेक्षा जनसख्या का आकार एवं घनत्व दोनों बहुत अधिक होता है | लोग रोजगार ,शिक्ष,चिकित्सा, मनोरंजन ,भौतिक सुख –सुविधाओं आदि की तलाश में अधिक संख्या में नगरों का ओर प्रस्थान करते हैं | जनसंख्या के दबाव के कारण शहरों का घनत्व बढ़ता जाता है |
4. **सामाजिक गतिशीलता** :- नगरों में आवागमन , संचार , शिक्षा,व्यवसाय ,नवीन उद्द्योग आदि अधिक सुविधाये होने के कारण लोगो को सामाजिक गतिशीलता के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं |
5. **द्वितीयक समितियाँ** :- नगरीय समुदाय में द्वितीयक समितियों य साहचार्य की प्रधानता होती है | नगरों में लोगो के मध्य द्वितीयक , अप्रत्यक्ष, औपचारिक एवं अव्येक्तिक संबंधों की बहुलता होती है |
6. **द्वितीयक नियंत्रण** :- नगरीय समुदाय में द्वितीयक नियंत्रण के साधनों की प्रधानता होती है| द्वितीयक नियंत्रण के साधनों में क़ानून ,पुलिस ,शिक्षा प्रमुख है |
7. **व्यक्तिवादिता** :- समाजिक गतिशीलता , स्वयं निर्णय लेने की प्रवृति , तार्किक सोच , प्रतियोगिता की भावना, एवं भौतिकतावादी दृष्टिकोण के कारण नगरों में व्यक्ति में व्यक्तिवादिता की भावना अधिक होती है |
8. **सामाजिक सहिष्णुता**:- नगरों में अलग –अलग क्षेत्रो ,धर्मों , जातियों , प्रजातियों , विचारों , सांस्कृतिक मूल्यों , के लोगे एक साथ रहते हैं , जिससे उनके बीच सामाजिक सहिष्णुता में वृद्धि होती है |
9. **स्थानीय पृथक्करण**:- :- नगरों में गतिशीलता , प्रतियोगिता ,एवं विजातीय प्रकृति के कारण व्यक्तियों के कार्यों में स्पष्ट पृथक्करण होता है | नगरों में विभिन्न वर्ग के लोग निवास करते हैं | जगह की कमी , महंगाई, एवं वर्ग विभिन्नता के कारण नगरों में प्रायः अलग –अलग वर्ग एवं व्यवसाय के लोग अलग –अलग क्षेत्रो में निवास करते हैं |

भारत में नगरीकरण का प्रभाव (Effects of Urbanization in india)

भारत में नगरीकरण का प्रभाव विभिन्न रूपों में पड़ा है | यह प्रभाव सामजिक, आर्थिक, पारिवारिक, राजनीतिक एवं अन्य व्यवस्थाओं पर पड़ा हैं | भारत में नगरीकरण के प्रभाव को इस प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है |

(1.) **सामाजिक प्रभाव-** सामाजिक संस्थाओं एवं सामाजिक व्यवस्थाओं पर भारत में नगरीकरण का प्रभाव बहुत ही गंभीर रूप से पड़ा है | भारत में सामाजिक रूप से नगरीकरण के निम्नलिखित प्रभावों की चर्चा की जा सकती है-

- **संयुक्त परिवार का विघटन** :-भारत में संयुक्त परिवार का विघटन नगरीकरण का पहला व्यापक प्रभाव है | भारतीय ग्रामीण समाज में जिस अनुपात में जनसंख्या की वृद्धि हो रही है उस अनुपात में वहाँ जीविका के साधनों में वृद्धि नहीं हो रही है, इसलिए ग्रामीण व्यक्ति रोजगार की खोज में नगरों में आते हैं तथा वह नगरीय चकाचौंध से प्रभावित होकर वहीं बस जाते हैं | धीरे—धीरे वे अपने परिवार को भी वहीं ले जाते हैं | इस तरह संयुक्त परिवार से क्रमश: उनका नाता कम होने लगता है | संयुक्त परिवार का विघटित होना ही उसका परिणाम है | इस तरह संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ है।
- **पारिवारिक नियंत्रण का हास** :-भारत में नगरीकरण का दूसरा सामाजिक प्रभाव पारिवारिक नियंत्रण का हास कहा जा सकता है | अब व्यक्ति पर परिवार का पूर्ण नियंत्रण नहीं रह गया है क्योंकि नगरीकरण के कारण संयुक्त परिवार के स्थान पर एकाकी परिवारों का चलन हो गया है | संयुक्त परिवार व्यवस्था में व्यक्ति पर परिवार का पूर्ण नियंत्रण रहता था। नगरों में व्यक्ति अपनी मनमानी करने के लिए पूर्णतया स्वतंत्र होता है क्यों कि उस पर कोई नियंत्रण या बंधन नहीं रहता है | इसलिए कहा जाता है कि भारतीय जन जीवन में सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन का कारण नगरीकरण भी रहा है।
- **सहिष्णुता -** भारत में नगरीकरण का तीसरा सामाजिक प्रभाव सहिष्णुता को कहा जा सकता है | नगर को एक तरफ सुविधाओं का केंद्र कहा जा सकता है तो दूसरी तरफ इस समस्याओं का केंद्र स्थल भी कहा जा सकता है। यहाँ बड़ी — बड़ी समस्याओं का सामना व्यक्ति अकेले करता है जो व्यक्ति को सहनशील बना देते है | नगरों में व्यक्ति अपने धर्म ,जाति, खान –पान ,रहन –सहन वाले लोगों के बीच रहकर सामंजस्य स्थापित करना सीख जाता है | इस तरह कहा जा सकता कि नगरीकरण का एक सामाजिक प्रभाव सहिष्णुता है |
- **परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन:-** सदियों से भारतीय समाज में प्रचलित सांस्कृतिक मूल्यों में नगरीकरण से परिर्वतन आया है | नगर को प्रगतिशील संस्कृति का द्योतक कहा जाता है | ज्ञान—विज्ञान एवं शिक्षा का प्रभाव यहाँ सरलता से देखा जा सकता है | इसके कारण नगर में परम्परात्मक मूल्य से जुड़े हुए अनेक विचार एवं धारणाएँ टूटती जा रही है | संभवत: इसीलिए नगर में व्यक्ति सामूहिक मूल्यों के स्थान पर वैयक्तिक मूल्यों को महत्व देता है |
- **रूढ़िवादी धर्म का हास :-**भारत में नगरीकरण का पाँचवाँ सामाजिक प्रभाव रूढ़िवादी धर्म का हास कहा जा सकता है | नगरीकरण के कारण आज समाज में धर्म की परंपरागत मान्यताएँ टूट रही हैं | नगर में एक ही मुहल्ले में कई जाति,धर्म एवं संप्रदाय के लोग निवास करते हैं | विभिन्न जाति एवं धर्म के व्यक्ति एक साथ काम करते हैं | तथा एक साथ खाना भी खाते हैं | इन सभी कारणों से नगरों में धार्मिक कट्टरता समाप्त होती जा रही है , तथा व्यक्ति प्रगतिशील बनता जा रहा है | नगरीकरण की प्रक्रिया से आज धार्मिक परिर्वतन देखने को मिल रहा है, उसे धर्मनिरपेक्षता एवं लौकिकीकरण के रूप में समझा जा सकता है |

नगरीय संरचना में विभिन्न समूहों के बीच निकटता बढ़ने से लोगों में आपसी विश्वास एवं धार्मिक सहिष्णुता का विकास हुआ है। धर्म में होने वाला दूसरा परिर्वतन लौकिकीकरण के रूप में हुआ है। प्रो. श्रीनिवास ने लौकिकीरण की प्रक्रिया में तीन विशेषताओं को शामिल किया है, जो निम्नलिखित हैं— (क) जिस कार्य या व्यवहार को पहले धार्मिक माना जाता था, उसे अब वैसा नहीं माना जाता है, (ख) परंपरागत विश्वासों के स्थान पर तर्क एवं बुद्धिवाद का महत्व बढ़ने लगता है तथा (ग) धार्मिक व्यवहारों का विश्लेशण सामाजिक मूल्यों तथा मानवादी मूल्यों को ध्यान में रखते हुए किया जाने लगा है | आज नगरीकरण की प्रक्रिया ने लौकिकीकरण ही इन सभी विशेषताओं को अत्यधिक स्पष्ट और क्रियात्मक रूप दे दिया है | इस तरह यह पता चलता है कि भारत में नगरीकरण का एक सामाजिक प्रभाव रूढ़िवाद धर्म का हास है।

- **सामाजिक संबंधों में परिर्वतन :-**भारत में नगरीकरण के परिणामस्वरूप सामाजिक संबंधोंमें परिर्वतन कहा जा सकता है | नगरों में सामाजिक संबंध औपचारिक होता है। अत: नगरीकरण से यहाँ सामाजिक संबंधोंमें परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है।
- **सामाजिक संस्कृति सम्पर्कों के क्षेत्र का विस्तार** :-भारत में नगरीकरण के कारण सामाजिक संस्कृति सम्पर्कों के क्षेत्र का विस्तार हुआ है | नगर विभिन्न संस्कृतियों के केंद्र होते हैं | यहाँ विभिन्न धर्म, जाति एवं संप्रदाय आदि के व्यक्ति एक साथ निवास करते हैं जिनका प्रभाव एक —दूसरे पर वेशभूषा आदि पर एक दूसरे का प्रभाव देखा जा सकता है | उदाहरण के लिए , अगर दिल्ली महानगर का उदाहरण लिया जाए तो यह पता चलता है कि यहाँ रहने वाले व्यक्तियों पर एक खास संस्कृति का प्रभाक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है |
- **मनोरंजन के साधनों का व्यवसायीकरण** :-नगरों में मनोरंजन के साधनों का व्यवसायीकरण हुआ है | पहले समाज में मनोरंजन के साधन इस तरह व्यवसायिक नहीं थे | नगरों में मनोरंजन का क्रय—विक्रय होता है | नगरों में क्लब,सिनेमा,थियेटर, रेस्तरां आदि पाए जाते हैं | यहाँ व्यक्ति खर्च के अनुरूप मनोरंजन का मजा ले सकता है | दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि नगरों में मनोरजंन का व्यापारीकरण हो गया है | इस तरह यह पता चलता है कि नगरीकरण के कारण मनोरंजन का व्यापारीकरण हो गया है। इस प्रकार भारत में नगरीकरण का एक सामाजिक प्रभाव मनोरंजन का व्यापारीकरण है।
- **महिलाओं के प्रस्थिति पर प्रभाव :-**नगरीकरण का व्यापक प्रभाव समाज में महिलाओं की दशा में सुधार पर परिलक्षित होता है | यहाँ महिलाओं में सामाजिक एवं आर्थिक समानता के प्रति जागरूकता बढ़ी है | शिक्षा एवं तार्किक दृष्टिकोण के प्रसार के साथ—साथ सामाजिक अधिकारों के प्रति भी जागरूकता उत्पन्न हुई है | इन्हीं कारणों से महिलाएँ आज सभी क्षेत्र में कार्य कर रही हैं | अब महिलाएँ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही हैं | अब महिलाएँ बाल—विवाह दहेज प्रथा का विरोध करती हैं, तथा अपने जीवन—साथी के चयन में व्यक्तिगत रूप से रूचि लेती हैं | आज महिलाएँ बहुत हद तक आत्मनिर्भर हो गई हैं | वे विभिन्न तरह की नौकरियाँ करती हैं | तथा इस कारण आर्थिक रूप से भी वे आत्मनिर्भर हो गई है | इस तरह महिलाओं की परिस्थिति में अनेक परिवर्तन हो गए हैं , जो प्रत्यक्ष या

अप्रत्यक्ष रूप से नगरीकरण की देन कहा जा सकता है | इन्हीं कारणों से महिलाएँ बहुत से अन्य मामलों में भी कदम उठाने के लिए बहुत हद तक स्वतंत्र हो गई हैं | भारत में नगरीकरण का सामाजिक प्रभाव बहुत व्यापक रहा है | इसने सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों एवं पहलुओं को प्रभावित किया है | अगर एक और इसके कुछ बुरे परिणाम हैं तो दूसरी ओर अच्छे परिणाम भि देखने को मिलते हैं |

(2.) राजनीतिक जीवन पर प्रभाव — नगरीकरण से समाज का राजनीतिक वातावरण भी प्रभावित हुआ है | इसे निम्नलिखित तथ्यों के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

- **राजनीतिक जागरूकता** :-भारत में नगरीकरण का राजनीतिक जीवन पर पहला प्रभाव राजनीतिक जागरूकता कहा जा सकता है | नगरीय क्षेत्रों में व्यक्ति तुलनात्मक रूप से राजनीति के प्रति जागरूक रहता है | उसे अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का बोध रहता है | नगर में राजनीतिक जागरूकता इतनी अधिक होती है कि छोटी—छोटी बातों को लेकर जुलूस, हड़ताल एवं बंद आयोजित होते हैं | नगरों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में व्यक्ति देश एवं विदेश की राजनीति से पूर्णतया अवगत नहीं रहते हैं | उनमें अपेक्षित राजनीतिक जागरूकता आज भी जागृत नहीं हो सकी है।
- **राजनीतिक क्षेत्र में सक्रियता** :-भारत में नगरीकरण का राजनीतिक जीवन पर दूसरा प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र में सक्रियता कहा जा सकता है | नगरों के व्यक्ति राजनीतिक गतिविधियों में खुले रूप से भाग लेते हैं | नगर के व्यक्ति राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर मुक्त होकर अपने विचार व्यक्त करते हैं | ऐसा नहीं है कि ग्रामीण व्यक्ति ऐसा नहीं करते परन्तु अपेक्षित रूप से कम करते हैं | नगरों में स्त्री एवं पुरूष दोनों की राजनीति में सक्रियता देखने को मिलती है।

(3.) पारिवारिक व्यवस्था पर प्रभाव— नगरीकरण के कारण समाज में व्यक्ति का पारिवारिक जीवन भी प्रभावित हुआ है | आजादी के पश्चात् नगरीय प्रवृत्ति नगरीय उद्योगों ने व्यक्ति को स्वतंत्र रूप से आजीविका उपार्जित करने का अवसर भी प्रदान किया है | इससे नगरों में संयुक्त परिवार विघटित होकर एकाकी परिवारों में बदल गया है | क्योंकि आज न केवल पुरूष बल्कि शिक्षित महिलाएँ भी अर्थोपार्जन करके आत्मनिर्भर बनने का प्रयत्न करने लगी हैं | इसका परिणाम यह हुआ है कि आज स्त्रियाँ संयुक्त परिवार में रहना पसंद नहीं करती हैं | नगरीकरण के कारण आज परिवार का आकार छोटा हो गया है | लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि संयुक्त परिवार व्यवस्था में नगरीकरण के कारण बहुत परिवर्तन हुआ है | संयुक्त परिवार के साथ—साथ परिवार व्यवस्था में इसके कारण अनेक परिवर्तन हुए हैं | नगरीकरण की प्रक्रिया ने भारत में एक सीमांत परिवार व्यवस्था का निर्माण किया है | इसमें परंपरागत संयुक्त परिवारों तथा पश्चिम के एकाकी परिवारों की मिली—जुली विशेषताओं का समावेश है | इससे विवाह की प्रक्रिया का स्वरूप समाज में परिवर्तित हो रहा है |

(4.) आर्थिक प्रभाव— वर्तमान नगर समाज की आर्थिक प्रणाली के स्वरूप में आये व्यापक परिवर्तनों की ही उपज है | इसे निम्नलिखित तथ्यों द्वारा स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है –

- **व्यवसायों में वृद्धि एवं प्रगति** :-इस क्रम में नगरीकरण का पहला प्रभाव समाज में व्यवसायों में वृद्धि एवं प्रगति की प्रक्रिया में देखा जा सकता है | नगरीकरण के कारण विभिन्न व्यवसायों को प्रोत्साहन मिला है | नगर को व्यवसाय एवं उद्योग के केन्द्र का स्थल कहा जा सकता है | यहाँ जीविकोपार्जन के अनेक साधन पाए जाते हैं | व्यक्ति नौकरी, व्यवसाय एवं उद्योग किसी को भी अपनाकर अपनी आर्थिक स्थिति को उन्नत बना सकता है | नगरों में व्यवसाय की प्राथमिकता पाई जाती है | इसका कारण यह है कि उत्पादित वस्तु के उपभोक्ता भी नगर में उपलब्ध रहते हैं | इस तरह यह पता चलता है कि भारत में नगरीकरण का आर्थिक जीवन पर एक प्रभाव व्यवसायों में वृद्धि एवं प्रगति है।
- **उत्पादन एवं विपरण विस्तृत केन्द्रों की स्थापना :-**भारत में नगरीकरण का आर्थिक जीवन पर दूसरा प्रभाव यहाँ उत्पादन एवं विपरण विस्तृत केन्द्रों की स्थापना के रूप में देखा जा सकता है | नगरीकरण से बाजार का विकास हुआ है तथा वस्तुओं के उत्पादन और उपभोग में वृद्धि हुई है।
- **व्यापारी या सट्टेबाजी के केन्द्र :-**यहाँ व्यापारी या सट्टेबाजी के केन्द्र होते हैं | इनके चलते नगरों में बेईमानी एव कालाबाजारी को प्रोत्साहन मिलता है | साथ ही बेरोजगारी एवं आर्थिक अपराधों में भी वृद्धि होती है | व्यापार में उतार—चढ़ाव के लिए व्यापारी ही जिम्मेदार होते हैं | इस तरह यह पता चलता है कि भारत में नगरीकरण का आर्थिक जीवन पर एक प्रभाव आर्थिक उलटफेर है।
- **आर्थिक असमानताओं का केंद्र स्थल :-** आर्थिक विकास की प्रक्रिया में नगर कई विसंगतियों के केन्द्र भी बनकर उभरे हैं | यहाँ बहुत से व्यक्ति गंदी बस्तियों में रहते हैं | दूसरी ओर बहुत से व्यक्ति ऐसे होते हैं , जो वातानुकुलित महलों में भी निवास करते हैं | भारत में नगरीकरण का एक आर्थिक प्रभाव आर्थिक असमानता में वृद्धि है।
- **धनोपार्जन की प्रवृतियों का विकास :-**नगरीकरण का आर्थिक जीवन पर प्रभाव समाज में धनोपार्जन की प्रवृतियों का विकास भी है | नगर अर्थजीवन के केन्द्र हैं | यहाँ व्यक्ति धनोपार्जन की प्रवतियों का विकास भी है | यहाँ व्यक्ति धनोपार्जन में इतना व्यस्त रहता है कि उसे अन्य कार्यों की भी चिंता नहीं रहती है | यहाँ व्यक्ति अधिक से अधिक कार्य करके धन अर्जित करना चाहता है | नगरों में संबंधधन के आधार पर की कायम होते हैं | अगर यह कहा जाए कि यहाँ व्यक्ति का महत्व न होकर धन का महत्व होता है, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

  उपर्युक्त विवरणों से यह पता चलता है कि भारत में नगरीकरण का आर्थिक जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है | इस प्रकार नगरीकरण को सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों कहा जा सकता है।

(5.) मानवीय व्यवहारों तथा मनोवृत्तियों पर प्रभाव भारत में नगरीकरण का प्रभाव व्यवहारों एवं मनोवृतियों पर भी पड़ा है नगरीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय समाज के लोगों के व्यवहारों एवं मनोवृतियों को काफी हद तक प्रभावित किया है | समाज में अंधविश्वासों एवं रूढियों को दूर करने में नगरीकरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है | यहाँ व्यक्तियेां के व्यवहारों में समय की नियमितता तार्किकता, नम्रमा पूँजी के अधिकतम उपयोग तथा परिर्वतनशीलता की स्पष्ट झलक

दिखाई देती है | फिर भी नगरों में व्यक्तिक मनोवृतियों का निर्धारण जागरूकता, तार्किकता एवं औपचारकिता के द्वारा होता है | अगर यह कहा जाए कि नगरीकरण के कारण मानवीय व्यवहारों एवं मनोवृतियों पर जो प्रभाव पड़ रहा है , वह पश्चिमकीकरण से प्रभावित है, तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी | वास्तविकता यह है कि केवल पश्चिमी संस्कृति का अधाधुँध अनुकरण ही पष्श्चिमीकरण का तात्पर्य नहीं है |

नगरीकरण पश्चिमकीकरण से प्रभावित हैं | नगरीकरण से आज ग्रामीण समुदायों में भी ये विशेषताएँ परिलक्षित होने लगी, इससे स्पष्ट है कि भारत में नगरी करण का प्रभाव नये मानवीय व्यवहारों तथा मनोवृत्तियों का विकास है |

(6) ग्रामीण समुदाय पर प्रभाव — देश में नगरीकरण से यहाँ का ग्रामीण समाज काफी प्रभावित हुआ है | नगरीकरण की प्रक्रिया से केवल भारत के नगरीय समुदाय ही प्रभावित हैं | डा. डी.एन. मजूमदार Dr. D.N. Majumdar) ने अपने सर्वेक्षण के द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की थी। लेकिन बाद में किए गए सर्वेक्षणों से यह ज्ञात हुआ कि नगरीकरण के प्रभाव से ग्रामीण समुदायों में भी परिर्वतन दृष्टिगोचर होने लगे हैं | इस संबंध में के.एम.कपाड़िया ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि नगरीकरण के प्रभाव से गाँवों की आत्मनिर्भरता नष्ट हो गई है | तथा गाँवों की परंपरागत संस्कृतियों पर नगरों की नई संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट होने लगा है | इनके विचार में नगरीकरण के कारण ग्रामीण समुदाय में द्रव्यीकरण का विकास हुआ है एवं खेती में व्यापारीकरण की प्रवृत्ति स्पष्ट होती जा रही है| गाँवों में व्यक्ति अपने परंपरागत कार्यों को छोड़कर अब नई सेवाओं के आकर्षण के कारण नगरों में प्रवेश कर रहे हैं | इससे गाँव में परंपरागत व्यवसायों के साथ—साथ जजमानी व्यवस्था की भी नगरीय उद्योग —धंधों में कार्य करने के कारण ग्रामीण लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ तथा उनमें आत्मनिर्भरता उत्पन्न हुई। नगरीकरण की प्रवृत्ति ने ग्रमीण समुदाय को परंपरावादिता से दूर किया है | अब ग्रामीण समुदायों में भी नगरों के समान संबंधोंमें अवैयक्तिकता एवं औपचारिकता की झलक मिलने लगी है | इन परिवर्तनों का प्रभाव बहुआयमी हो गया है और ग्रामीण जनजीवन में इनमें व्यापक बदलाव प्रकट हुए हैं |

(7) जाति—व्यवस्था पर प्रभाव — नगरीकरण से भारत में जाति व्यवस्था भी प्रभावित हुई है | इसने भारत की परंपरागत जाति बंधन को बहुत हद तक कम किया है | नगरों में विभिन्न जाति के व्यक्ति एक साथ कार्य करते हैं | भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया से जाति—व्यस्था में होने वाले परिवर्तन को कई रूपों में समझा जा सकता है |

भारत में नगरीकरण से जाति—व्यवस्था, छुआछुत, अस्पृश्यता का हास हुआ है | नगर के प्रगतिशील वातावरण तथा औधोगिकरण के कारण अस्पृश्यता की भावना में बहुत हद तक हास हुआ है | इस तरह से सामाजिक वातावरण सुधार एवं सहिष्णुता की ओर अग्रसर हुआ है | भारत में नगरीकरण का तीसरा प्रभाव जाति,धर्म एवं संस्कृति के परिवर्तन की प्रक्रिया में देखा जा सकता है |

(8,) गन्दी बस्तियों का विकास :- नगरों में आवास की समस्या बहुत ही गंभीर है | नगरों पर जनसंख्या के बढते बोझ के कारण सरकार एवं पूंजीपति भी आवास की समस्या को पूरी तरह हल नहीं कर पा रहे हैं |

(9.) पर्यावरण पर प्रभाव:- शहर हमारे पर्यावरण को बहुत प्रदूषित करता है | शहरों में गंदा पानी,मल-मूत्र ,कचरा और औद्योगिक कचरा 40% से 60% तक सीधे निकटतम नदियों में प्रवाहित कर दिया जाता है , जिसके कारण नदियों का जल प्रदूषित होता जा रहा है | शहरी क्षेत्रो में

परिवहन एवं यातायात के बढते साधनों एवं उद्योगों से निकलने वाले जहरीली गैसों के कारण वातावरण में वायु प्रदूषण बढ़ता जा रहा है|

(10) अन्य समस्याओं की उत्पत्ति :- नगरों में यातायात एवं परिवहन , जल –आपूर्ति , जल – निकास ,बिजली की कमी , आदि की समस्याएं भी विकराल रूप लेती जा रही है |

उपर्युक्त विवरणों से यह पता चलता है कि भारत में नगरीकरण का जाति व्यवस्था पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है | इसने जाति—व्यवस्था के अनेक परंपरागत नियमों एवं आदर्शों को परिवर्तनशील बना दिया है | नगरीकरण ने भारत में जाति—व्यवस्था के साथ—साथ सामाजिक, राजनितिक, आर्थिक, पारिवारिक एवं व्यक्तिगत क्षेत्रों में भी अपना प्रभाव छोड़कर अनेक परिवर्तनों को कायम किया है | नगरीकरण के कारण सामाजिक परिवेश में होने वाले ये बदलाव संस्थागत रूप में भारतीय समाज को परिवर्तित कर रहे हैं |

19.6 आधुनिकीकरण (Modernization)

आधुनिकीकरण की अवधारणा विगत वर्षों में भारत में होने वाले समाजिक परिवर्तनों को स्पष्ट करता है | हम अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होने वाले उन आधुनिक परिवर्तनों को देखते एवं महसूस करते हैं , जिससे हमारे परम्परागत भारतीय समाजिक संरचना एवं व्यवस्था में अनेक परिवर्तन आये हैं | भारत में आधुनिकीकरण मुख्यतः पश्चिमीकरण एवं औद्यौगिकीकरण का परिणाम हैं |

आधुनिकीकरण की अवधारणा दूसरे विश्व युद्ध के बाद के दशकों में तीसरी दुनिया के द्वारा अनुभव की जाने वाली चुनौतियों के प्रति पश्चिमी विज्ञान की प्रतिक्रिया है | इस काल में राजनैतिक उपनिवेशों की समाप्ति हुई और एक एक करके साम्राज्य भी समाप्त होने लगे । आधुनिकीकरण एक सम्मोहक तथा बड़ी संख्या में इन राष्ट्रों को आकर्षित करने कल प्रारूप सिद्ध हुआ। गरीबी तथा इससे संबन्धित सभी बुराइयों को दूर करने के लिए इन्होने आधुनिकीकरण के प्रारूप को अपनाया। आधुनिकीकरण की जड़े 15वी और 16वी शताब्दी के यूरोप में देखी जा सकती है | इससे समन्धित उल्लेखनीय परिवर्तन 19 वी शताब्दी के मध्य और अन्त के दशकों में हुए थे।

आधुनिकीकरण की अवधारणा (Concept of Modernization)

आइजेनस्टॉट (1969) के अनुसार आधुनिकीकरण एक प्रकार की सामजिक ,आर्थिक एवं राजनितिक व्यवस्थाओं की ओर परिवर्तन की प्रक्रिया है जो ,17 वीं से 19वीं शताब्दी तक पश्चिमी यूरोप तथा उत्तरी अमेंरिका में और 20 वीं शताब्दी तक दक्षिणी अमेंरिका .एशिआई व अफ़्रीकी देशों में विकसित हुई | आइजेनस्टॉट ने आधुनिकीकरण की परिभाषा देते हुए लिखा है कि यह प्रौद्यौगिकीय क्षेत्र से आरम्भ होकर राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में दिखाई देता है और अन्ततोगत्वा सामाजिक क्षेत्र को प्रभावित करता है | उनके अनुसार आधुनिकीकरण पर्यावरण को प्रभावित करने वाला बहुत बड़ा कारक है।

अलतास (1972) के अनुसार आधुनिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान का समाज में प्रचार प्रसार होता है, जिससे समाज में व्यक्तियों के जीवन स्तर में सुधार और समाज अच्छाई की ओर बढ़ता है |

एप्टर डेविड इ., आधुनिकीकरण की प्रकिया में विश्व संस्कृति का प्रसार, जो उच्च तकनीकी व विज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित जीवन के प्रति तर्कपूर्ण दृष्टिकोण, सामाजिक संबंधों में लोकिक

उपागम और आधुनिक होने का अभिप्राय जीवन को विकल्प, वरीयता और चुनाव के रूप में देखता है

माइकल एम्स ने आधुनिकीकरण की प्रकिया में कुछ अत: सम्बन्धित प्रक्रियाओं और परिवर्तनों को सम्मिलित किया है जिसके अंतगर्त मशीनीकरण औद्यौगिकीकरण, नगरीकरण, नौकरशाही आदि को सम्मिलित किया है और इन शक्तियों का सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को सम्मिलित किया है।

डेनियल लर्नर ने शक्ति, तरूणाई, निपुणता, एवं तार्किकता को आधुनिकीकरण की प्रमुख विशेषता के रूप में देखा है|

प्रो०योगेन्द्र सिहं ने आधुनिकीकरण को एक सांस्कृतिक प्रत्यय के रूप में स्वीकार किया है| इसके अंतर्गत उन्होंने तार्किक अभिवृत्ति,परानुभुति , वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण , मानवता , प्रोद्योगिकी प्रगति को सम्मिलित किया है|

एस. सी. दुबे ने आधुनिकीकरण को मूल्यों से मुक्त मानते हैं| प्रो. एस. सी दुबे आधुनिकता को मूल्य निरपेक्ष धारणा मानते है तथा इस धारणा को किसी भी एक सैद्धान्तिक मॉडल में रखे जाने का विरोध करते है | उनके अनुसार की आधुनिकीकरण के फलस्वरूप व्यक्तियों में तर्क ,परानुभूति, गतिशीलता एवं सहभागिता बढ़ती है|

मैरियन जे लेवी ने आधुनिकीकरण को प्रोद्यौगिक वृद्धि (technological growth)के रूप में परिभाषित किया है उनकी आधुनिकीकरण की परिभाषा शक्ति के जड़ और प्रबल के प्रभाव को बढ़ाने के लिए उपकरणों के प्रयोग पर आधारित है | इन दोनों तत्वों में से प्रत्येक को उन्होने सातत्य का आधार माना है।

डा. एम. एन. श्री निवास ने सोशल चेंज इन मार्डन इंडिया (1966) तथा माडर्नाइजेशन ए फ्यू क्वेरिज (1969) में आधुनिकीकरण के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किये है| श्री निवास आधुनिकीकरण के अंतर्गत भौतिक संस्कृति ,सामजिक संस्थाओं तथा ज्ञान ,मूल्य एवं मनोवृत्तियो के क्षेत्र को सम्मिलित किया है|

बी. वी. शाह ने प्राबलम्स ऑफ माडर्नाइजेशन ऑफ एजूकेशन इन इंडिया (1969) नामक लेख में आधुनिकीकरण को बहु–दिशा मूलक प्रक्रिया माना है जो आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रो में व्याप्त है।

ए. आर. देसाई आधुनिकीकरण का प्रयोग केवल सामाजिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं करते बल्कि जीवन के सभी पहलुओं तक इसका प्रभाव मानते हैं|

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आयामी प्रक्रिया है जो भारत में पश्चिमी देशो के प्रभाव के परिमाणस्वरूप प्रारंभ हुई | वैश्वीकरण के कारण आज आधुनिकीकरण के आदर्श या मॉडल के लिए विश्व के अनेक देशों के विकल्प मौजूद है|

आधुनिकीकरण की विशेषतायें :-

1. समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा मिलता है|
2. लोगो में तर्क एवं बुद्धिवाद में वृद्धि होती है और भाग्यवादी विचारों की जड़े कमजोर होती हैं|
3. व्यक्ति को विश्वास में धर्मनिरपेक्षता की भावना अधिक प्रबल होती है|
4. व्यक्तियों में उच्च आकांक्षा एवं उपलब्धि की मनोवृत्तिमें वृद्धि होती है|

5. समाज की परम्परागत मनोवृत्ति, मानदंडो एवं मूल्यों में परिवर्तन दिखाई देताहै |
6. समाज में नवीन प्रकार्यात्मक संस्थाओं का विकास होता है |
7. मानव संसाधनों में गुणात्मक विकास के लिए पूँजी निवेश में वृद्धि होती है तथा विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था की प्रधानता होती है |
8. सामाजिक व्यवस्था में खुलापन आता है , जिससे व्यक्ति के विकास के पर्याप्त अवसर मिलता है |
9. नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि होती है |
10. स्वास्थ्य सुविधायों में वृद्धि होती है फलस्वरूप मृत्यु –दर में कमी होती है |

आधुनिकीकरण के आयाम -

1. **बौद्धिक क्षेत्र** में आधुनिकीकरण का अर्थ है, तर्क शक्ति का बढ़ना जिससे भौतिक व सामाजिक घटनाओं की तार्किक व्याख्या की जाती है | धर्मनिरपेक्ष तार्किकता का ही परिणाम है जिसके फलस्वरूप अलौकिक जगत के स्थान पर इस दुनिया का दृष्टिकोण पनपता है।लोगो में उपलब्धि की मनोवृत्ति भी बढ़ती है |
2. **सामाजिक क्षेत्र में** - आधुनिकीकरण से सामाजिक गतिशीलता बढ़ती है | लोग पुरानी सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक धारणाओं को तोड़कर व्यक्ति नये प्रकार के व्यवहार को अपनाने को प्रस्तुत होता है | सामाजिक संरचना में परिवर्तन के कारण व्यक्ति के व्यवसायिक एवं राजनीतिक कार्यों में परिवर्तन आता है | प्रदत्त के स्थान पर अर्जित पदों का महत्व बढ़ता है।
3. **राजनीतिक क्षेत्र में** –सार्वभौमिक सत्ता की वैधता अलौकिक शक्ति से प्राप्त न होकर नागरिकों द्वारा प्राप्त होती है | राजनीतिक शक्ति का लोगों के व्यस्क मताधिकार के आधार पर हस्तान्तरण,समाज की केन्द्रीय कानूनी, प्रशासकीय तथा राजनीतिक संस्थाओं का विस्तार एवं प्रसार ,प्रशासकों द्वारा जनता की भलाई की नीति अपनाना।
4. **आर्थिक क्षेत्र में** – आधुनिकीकरण का अर्थ उत्पादन, वितरण, यातायात तथा संचार आदि में पशु और मानव शक्ति के स्थान पर जड़ शक्ति का प्रयोग करना,आर्थिक क्रियाओं का परम्परात्मक स्वरूप से पृथक्करण,मशीन, तकनीकी व औजारों का प्रयोग, आर्थिक कार्यों में विशेषीकरण का बढ़ना, साथ ही उत्पादन, उपयोग व बाजार में वृद्धि, उच्च तकनीकी प्रभाव के कारण उद्योग, व्यवसाय, व्यापार आदि में वृद्धि ,अर्थव्यवस्था में उत्पादन तथा उपभोग में वृद्धि, बढ़ता हुआ औद्योगीकरण जिसे हम आर्थिक आधुनिकीकरण की मुख्य विशेषता कह सकते हैं | परिस्थतिकीय क्षेत्र में नगरीकरण में वृद्धि होती है।
5. **सांस्कृतिक क्षेत्र में -**आधुनिकीकरण का अर्थ है शिक्षा का विस्तार तथा विशेष प्रकार की शिक्षा देने वाली संस्थाओं में वृद्धि ,नये सांस्कृतिक दृष्टिकोण का विकास जो उन्नति व सुधार योग्यता सुख अनुभव व क्षमता पर जोर दे, सभी प्रकार के समाजों के साथ समायोजन करने की धारणा का विकास, रूचि का बढ़ना, दूसरे लोगों के प्रति परानुभूति का बढ़ना , दूसरों का सम्मान करना, ज्ञान व तकनीकी में विश्वास पैदा होना तथा व्यक्ति को उसके कार्यों का प्रतिफल मिलना और मानवतावाद में विश्वास,समाज द्वारा ऐसी संस्थाओं और योग्यताओं का विकास करना जिससे की लगातार बदलती हुई मांगों और समस्याओं से समायोजन किया जा सके।

आधुनिकीकरण के कारक:- मायरन वीनर ने आधुनिकीकरण के पांच प्रमुख कारक बताए हैं :

(1) **शिक्षा** – शिक्षा के द्वारा व्यक्ति की ज्ञान एवं कुशलता में वृद्धि होती है , जिससे उसमें आविष्कार एवं नवीन प्रोद्योगिकी की खोज करने की क्षमता विकसित होती है | शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में तार्किक बुद्धि एवं नवीनता को अपनाने की समझ भी विकसित होती जाती है| अतः जैसे- जैसे ज्ञान एवं विज्ञान का समाज में प्रचार प्रसार होता है , आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को भी बल मिलता है |

(2) **संचार** – आधुनिकीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा देने में संचार के साधनों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है | संचार के आधुनिक साधन जैसे कि – टेलीफोन , टी०वी०,इंटरनेट , प्रिंट मीडिया ,मोबाइल आदि से लोगो में सूचना ,ज्ञान –विज्ञान एवं तकनीकी आदि का प्रचार प्रसार बढ़ जाता है ,जिससे व्यक्ति परम्परागत एवं रूढ़िवादी विचारधारा से आधुनिक विचारधारा की ओर अग्रसर होता है |

(3) **राष्ट्रवादी विचारधारा** – आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को बढाने के लिए लोगो में राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करना अत्यंत आवश्यक है | यदि एक राष्ट्र के लोग क्षेत्रवाद ,जातिवाद , भाषावाद ,संजतिकेंद्रियता जैसी भावनाओं को त्यागकर राष्ट्र हित को सर्वोपरि मानेगें तो इससे उनमें आधुनिक विचारों को अपनाने में मदद मिलेगी |

(4) **करिश्माई नेतृत्व** - परम्परागत सामाजिक ढाँचे में आसानी से परिवर्तन संभव नहीं होता है| परम्परागत समाज के लोगों के विचारों में परिवर्तन लाने के लिए ऐसे करिश्माई नेतृत्व की आवश्यकता होती है जो परम्परागत समाज के दकियानूसी समाज को विकासोन्मुख एवं आधुनिक समाज बनने की ओर अग्रसर करे | इतिहास इस बात का गवाह है कि विश्व के अनेक देशों समेंत भारत में भी समय –समय पर ऐसे नेता हुए है जिन्होंने समाज में ऐसे परिवर्तन संभव करके दिखाए हैं जो परम्परागत समाज के लिए बहुत मुश्किल से संभव हैं|ऐसे नेताओं में महात्मा गांधी , डा ० भीमराव आम्बेडकर, राजा राम मोहन राय, मुहमद अली जिन्ना , अब्राहम लिंकन ,नेल्सन मंडेला आदि प्रमुख है |

(5) **अवपीड़क सरकारी प्राधिकार** – कभी –कभी समाज की रूढ़िवादी , अर्थहीन परम्पराओं एवं कार्य –प्रणाली को बदलने के लिए सरकार नए योजनाओ एवं क़ानून को लागू करती है| प्रारम्भ में लोग नवीन विचारों , कार्य –प्रणाली एवं उपकरणों का विरोध करते हैं , परन्तु सरकार के सख्त नियमों एवं बलप्रयोग के पश्चात लोग इन्हें धीरे –धीरे अपनाने लगते हैं | इसके बाद समाज में इन्हें स्वीकृति प्राप्त हो जाती है | जैसे भारत में लोगो ने परिवार नियोजन एवं भूमि सुधार जैसी योजनाओं का काफी विरोध किया था ऐसी दशा में सरकार की अवपीड़क सरकारी प्राधिकार द्वारा आधुनिक परिवर्तन को लाने में सफलता प्राप्त हुई|

(6) **उद्योगीकरण** - उद्योगीकरण के बिना आधुनिकीकरण संभव नहीं है | उद्योगीकरण से अतिरिक्त उत्पादन एवं उच्च जीवन स्तर प्राप्त होता है | उद्योगीकरण द्वारा आर्थिक विकास

, वैज्ञानिक चिंतन एवं उद्यम शीलता को बढावा मिलता है | उद्योगीकरण के फलस्वरूप समाज एवं व्यक्ति के व्यक्तित्व में गतिशीलता आती है |

डॉ० योगेन्द्र सिंह ने लिखा है कि आधुनिकता में चार लक्षण पाये जाते हैं -

1. व्यक्तिवादिता
2. समानता
3. परिवर्तन के प्रति आस्था
4. धर्म निरपेक्षता

सामाजिक दृष्टिकोण की तुलना में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण, भेदभाव की तुलना में समानता, स्थिरता या जड़ता की तुलना में परिवर्तन और धर्म के प्रति कट्टरता की तुलना में धर्म निरपेक्षता आधुनिकता की अवधारणा का निर्माण करते हैं।

लर्नर ने आधुनिकीकृत व्यक्तित्व की निम्न तीन विशेषताओं का उल्लेख किया है –

1. **परानुभूति (Empathy)** : लर्नर के अनुसार इस विशेषता के अनुसार व्यक्ति दूसरों के दृष्टिकोण से भी घटना व परिस्थितियों का मूल्यांकन करता है | आधुनिकीकरण की प्रक्रिया व्यक्ति में परानुभूति की विशेषता को पैना बनाती है | इसे सुदृढ़ बनाकर मानवीय अन्तक्रिया में गुणात्मक परिवर्तन भी पैदा करती है।

2. **गतिशीलता (Mobility)** : आधुनिक समाज निरन्तर और तीव्र परिवर्तनशील होता है | इन समाजों में भौतिक और सामाजिक दोनों प्रकार की गतिशीलताएँ बहुत अधिक सक्रिय होती है | व्यक्ति नवीन पदों और भूमिकाओं को सीखने, अपनाने और परिवर्तन करने के लिये अवसरों के अनुसार प्रयास करता रहता है | आधुनिक समाज के अनुसार स्तरीकरण की व्यवस्था होती है | इसके लिये व्यक्ति में मानसिक गतिशीलता का गुण आवश्यक होता है ।

3. **उच्च सहभागिता (High Participation)** : परंपरागत संरचना में व्यक्ति पूर्व निश्चित प्रस्थिति और भूमिकाओं को अपनाने के लिये बाध्य था। व्यक्ति गतिशीलता के प्रति निष्क्रिय था। किन्तु आधुनिकीकृत समाज में व्यक्ति अपने प्रयास कठोर परिश्रम, ईमानदारी आदि के द्वारा अपनों प्रस्थिति और भूमिकाएँ बदल सकता है | वह अपना मत व्यक्त करने, निर्णय की प्रक्रिया में सक्रियता से भाग लेने का अधिकार रखता है | आधुनिकीकृत समाज व्यक्ति से उच्च सहभागिता की अपेक्षा रखता है।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करने के लिये आवश्यक है कि व्यक्ति की क्षमता में विश्वास को सुदृढ़ करना होगा । धन, कार्य, बचत तथा जोखिम आदि उठाने की नवीन विशेषताओं का विकास करना होगा। व्यक्ति को राष्ट्रीय सम्पदा में विकास के लिये कठोर परिश्रम करना होगा। इससे व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन आयेगा जो उसे नवीन अनुशासन की भावना और समर्पण के लिये तैयार करेगा ।

डेनियल लर्नर ने आधुनिकता को कुछ कारकों के आधार पर परिभाषित किया है जिनमें संचार के साधनों की विविधता, औद्योगीकरण के प्रभाव स्वरूप बढ़ता हुआ नगरीकरण' संसाधनों की वृद्धि ज्ञान के नये आयाम विकसित होना आदि सम्मिलित हैं |

सी.ई. ब्लेक ने आधुनिकता को एक मूल के रूप में परिभाषित किया है | ऐसा मूल्य जो वांछनीय है तथा जो सामाजिक परिवर्तन का पक्षधर है |

भारत में आधुनिकीकरण (modernization in india)

भारत एक बहुल समाज है इसलिए भारत में आधुनिकीकरण का प्रक्रिया का प्रभाव भिन्न –भिन्न क्षेत्रो में भिन्न –भिन्न प्रकार ,रूपों एवं गति से हुआ है | भारत में आधुनिकीकरण की शुरुआत ब्रिटिश सरकार के आने के बाद हुई | **रूडाल्फ एवं रूडाल्फ** (1965) के अनुसार "अंग्रेजों ने ही भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की नीवं डाली | भारत को नयी अर्थव्यवस्था एवं राजनितिक एकता भी अंग्रेजो की ही देन थी | भारत में शिक्षित वर्ग को जन्म देने का श्रेय प्रेस एवं नयी शिक्षा प्रणाली को है | हम भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर स्पष्ट रूप से समझ सकते है :-

भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करने में शिक्षा एक बहुत सशक्त माध्यम है | भारत में आधुनिक शिक्षा एवं शिक्षण संस्थाओं को स्थापित करने का श्रेय ब्रिटिश शासन को जाता है | आधुनिक शिक्षा ने देश में नवीन शिक्षित वर्ग को जन्म दिया | इस नवीन शिक्षित वर्ग का भारत की स्वतंत्रता आंदोलन , सामाजिक –सांस्कृतिक परिवर्तन एवं सामाजिक सुधार आंदोलनों में विशेष योगदान रहा है | प्रो० योगेन्द्र सिंह के अनुसार, "आधुनिक शिक्षा ने नयी बौद्धिक चेतना को जीवंत किया है | राष्ट्रवाद , उदारवाद तथा स्वतंत्रता के प्रति लोगो को उत्प्रेरित किया है |" वर्तमान में आधुनिक शिक्षा सभी वर्ग ,घर्म एवं जाति के लोगो के लिए सुलभ हो गयी है | शिक्षा एवं ज्ञान के क्षेत्र में विशेषीकरण ने भी भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तेज किया है |

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से भारत में जहा एक ओर आर्थिक विकास और नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि हुई है ,वहीं दूसरी ओर नगरीकरण एवं आर्थिक विकास ने आधुनिकीकरण को भी बढ़ावा दिया है |संचार तथा यातायात के नए साधनों एवं नए उद्योगों के विकास तथा कृषि प्रणाली में सुधार के कारण देश में नवीन आर्थिक प्रणाली की नींव पड़ी | उद्योगीकरण की प्रक्रिया में तेजी आने से आर्थिक विकास की दरों में भी तेजी आई है | भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने बाजारवाद को भी बढ़ाया है |

आधुनिकीकरण का प्रभाव हमारे गाँवों में भी दिखाई देता है | जमींदारी और जागीरदारी प्रथा के उन्मूलन से शोषणमुक्त ग्रामीण समाज का उदय हुआ | सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा पंचायती राज व्यवस्था ने जातीय पंचायतो का महत्व कम हो गया | लोग न्याय के लिए परम्परागत तरीको के ब्याज आधुनिक नया व्यवस्था में विश्वास करने लगे हैं | आधुनिकीकरण के कारण गाँवों एवं नगरों के बीच की दूरी कम हो गयी है | आधुनिकीकरण से ग्रामीण लोगो की मानसिकता में परिवर्तन हुआ है| गाँवों में जजमानी प्रथा एवं छुआछूत के भावना में कमी आईहै | ग्रामीण लोग कृषि के क्षेत्र में नए - नए प्रयोग कर रहे हैं | नयी तकनीकों के प्रयोग से कृषि से पहले की अपेक्षा अधिक लाभ हो रहा है , जिसे ग्रामीण जनता का जीवन स्तर बेहतर हुआ है |

आधुनिकीकरण का प्रभाव हमारे देश की राजनितिक व्यवस्था पर भी पड़ा है | प्रो० योगेन्द्र सिंह के अनुसार स्वतंत्रता आंदोलन ने भारत में नयी राजनितिक संकृति का विकास किया है | भारतीय संविधान में समता, स्वतंत्रता ,न्याय एवं मानव अधिकारों की वकालत, लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास , देश में वयस्क मताधिकार , पिछड़े वर्ग को आरक्षण का प्रावधान आदि नवीन परिवर्तन भारत को एक आधुनिक राजनितिक व्यवस्था की ओर अग्रसर करता है | लोकप्रिय प्रजातांत्रिक

विचारघारा होती है | चुने हुए प्रतिनिधियों की जनता के प्रति जवाबदारी होती है | समाज अनेक केन्द्रीय प्रशासनिक व राजनैतिक भागों में बंटा होता है |

आधुनिकीकरण से हमारी परम्परागत समाजिक संरचना में अनेक परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं | बाल –विवाह निरोधक , विधवा पुनर्विवाह , स्त्री संपत्ति अधिकार , उत्तराधिकार एवं सटी प्रथा निरोधक अधिनियम ब्रिटिश शासन काल में ही बन गए थे | आधुनिकीकरण के कारण हमारी परम्परागत संयुक्त परिवार व्यवस्था के स्थान पर एकल परिवारों की संख्या में वृद्धि हुई है | नवीन शिक्षा के कारण परिवार में महिलाओं की प्रस्थिति में बदलाव आया है | समाज में महिलायों के अधिकार तथा समानता का मुद्दा बलवती हो गया है | जाति, धर्म , लिंग ,आधारित भेदभाव कम हुए हैं | लोगो की सोच में तार्किकता का समावेश हुआ है जिससे अंधविश्वास एवं धर्मान्धता में कमी आयी है | अर्जित पदों को महत्व दिया जाता है तथा प्रदत्त प्रस्थितियाँ महत्वहीन हो जाती हैं |

उपरोक्त विवरण से पता चलता है की आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने हमारे समाज को सभी रूपों में प्रभावित किया है |

19.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने हमारे देश की दो प्रमुख समस्याओं जनसंख्या विस्फोट एवं लिंग असमानता के विषय में समझा है | भारत में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति देश के विकास के लिए प्रतिकूल है | जनसंख्या विस्फोट की स्थिति के अनेक कारण हैं , परन्तु सबसे प्रमुख कारण जनसमुदाय में जनसंख्या पर नियंत्रण प्रति जागरूकता एवं दृढ इच्छाशक्ति का अभावहै | सकारी प्रयासों के साथ-साथ यदि जनसमुदाय का सहयोग प्राप्त हो तो हम इस पर नियंत्रण पा सकते हैं | दूसरी प्रमुख समस्या लिंग असमानता की है | लिंग असमानता पितृसत्तात्मक समाजिक –सांस्कृतिक व्यवस्था एवं वैचारिकी का परिणाम है| यह हमारे समाज में महिलायों की निम्न प्रस्थिति का कारण है | यधपि आधुनिक भारत में लिंग असमानता के कई स्वरूपों में परिवर्तन आया है , परन्तु आज भी हमारे समाज में के विकास को बाधित कर रहा है | प्रस्तुत इकाई में हमने आधुनिक भारत की दो प्रमुख प्रक्रियायों नगरीकरण एवं आधुनिकीकरण, की विस्तृत विवेचना की है| ये दोनों प्रक्रियाये आपस में अंतर्संबंधित हैं | वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने वर्तमान में नगरीकरण की प्रक्रिया में तीव्रता ला दी है | उपभोगवादी संस्कृति तथा भौतिकतावाद के नगरों के विकास एवं विस्तार को बढ़ाया है | महानगरों एवं नगरों में बढते अपराध ,प्रदूषण ,भ्रष्टाचार ,बेरोजगारी ,हिंसा , नैतिक मूल्यों के पतन को रोकने की जिम्मेदारी हम सभी नागरिकों की है | भारतीय समाज में आधुनिकता एवं परम्परा दोनों विद्यमान है | कभी-कभी आधुनिकता एवं परम्परा एक दूसरे के लिए बाधक होती है तो कभी पूरक | आधुनिकता में तीन तत्व निहित है | तार्किकता वैज्ञानिकता तथा आर्थिक संरचना की विशिष्टता। आधुनिकता से जुड़ी हमारी भ्रमित धारणाएँ है एवं आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधाएँ एवं अवरोध हैं|

19.8 शब्दावली

- **'जनसंख्या विस्फोट'** - 'जनसंख्या विस्फोट' का अर्थ जब -: किसी देश की जनसंख्या वहाँ पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों की तुलना में बहुत अधिक बढ़ जाती है और वहाँ जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणाम सामने आने लगते हैं, तब उस स्थिति को 'जनसंख्या विस्फोट' अथवा 'अति जनसंख्या' की संज्ञा दी जाती है |

- **लैंगिक असमानता** - पितृसतात्मक समाज में स्त्री एवं पुरूष के मध्य अनेक प्रकार के भेदभाव एवं असमानता पायी जाती है यह असमानता लैंगिक असमानता(Gender inequality) कहलाती हैं |
- **नगरीकरण** - नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें ग्रामीण जनसंख्या नगरीय क्षेत्रो में निवास करने हेतु जाती है जिसके फलस्वरूप नगरों की जनसंख्या में वृद्धि होती है तथा नए नगरों का विस्तार भी होता है |
- **आधुनिकीकरण** - आधुनिकीकरण की प्रकिया में कुछ अत: सम्बन्धित प्रक्रियाओं और परिवर्तनों को सम्मिलित किया है जिसके अंतगर्त मशीनीकरण औद्यौगिकीकरण, नगरीकरण, नौकरशाही आदि को सम्मिलित किया है और इन शक्तियों का सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को सम्मिलित किया है।

19.9 अभ्यास प्रश्न

1. जनसंख्या विष्फोट से आप क्या समझते हैं ? भारत में जनसंख्या वृद्धि के प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिये |
2. भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया एवं इसके प्रभाव की व्याख्या किजिये |
3. जेंडर को परिभाषित कीजिये | जेंडर असमानता के विविध स्वरूपों का उल्लेख कीजिये |
4. आधुनिकीकरण को परिभाषित कीजिये | आधुनिकीकरण के कारकों की विवेचना कीजिये
5. 'भारत में आधुनिकीकरण' विषय पर एक निबंध लिखिए |

19.10 संदर्भग्रंथ सूची

- आहूजा ,राम ,2013.सामाजिक समस्याएं , रावत प्रकाशन ,जयपुर .
- भारत ,2014,प्रकाशन विभाग , सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार .
- Bhende,Asha and Kanitkar, Principles of Population studies,Himalaya publishing house,Mumbai,2011
- Stevi , Jackson and Jaclie Jones (ed.) , Contemporaray feminist theory,Rawat publications, Jaipur,1998
- Rege , Sharmaila , Sociology of gender, Sage Publication india Pvt. Ltd. , New Delhi,2003
- Singh , Yogendra ,1973,Modernisation of indian tradition, Thomsen press, new delhi.
- Sen, Amartya, 2001, Many Faces of Gender Inequality, Frontline ,Vol-18, Issue 22,oct 27-nov09,
- कुमार,आलोक , नगरीय समाजशास्त्र , (2012)इशिका पब्लिकेशन हाउस ,जयपुर

- राधवेंद्र, सिंह , भारत में जनसंख्या , (2011) रजत प्रकाशन ,नई दिल्ली |
- दोषी ,एम.एल एवं जैन, पी०सी० ,भारतीय सामाजिक व्यवस्था (2007) , नेशनल पब्लिशिंग हाउस ,नई दिल्ली ,
- सिंह , जे०पी० , आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, ,(2008) PHI, Learning Pvt.Ltd, New Delhi.

इकाई - 20

सामाजिक शोषणसामाजिक एवं घरेलु , बाल श्रम, विभिन्न सामाजिक , कार्यस्थल शोषण , हिंसा समस्याओँ के समाधान

Social Exploitation, Child Labour, Social and Domestic Violence, Workplace Exploitation, Various Solutions of Social Problems

इकाई की रूपरेखा

20.1 प्रस्तावना

20.2 उद्देश्य

20.3 सामाजिक शोषण

20.4 बाल श्रम

20.5 धार्मिक हिंसा

20.6 क्षेत्रवाद और भाषावाद द्वारा उत्पन्न हिंसा

20.7 जातिगत हिंसा

20.8 कार्यस्थल पर महिलाएँ

20.9 सामाजिक समस्याओं के समाधान

20.10 सारांश

20.11 कठिन शब्द

20.12 निबंधात्मक प्रश्न

20.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

20.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयों में हमने सामाजिक समस्याओं के बारे में पढ़ा ह |में यह पता चला कि व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याएं किस प्रकार भिन्न होती हैं और किस तरह से सामाजिक समस्या से समाज की

प्रगति में बाधा आती है | परन्तु इसके अतिरिक्त एक और पहलु हैजिस पर गौर करना अति , ,आवश्यक हैवह है सामाजिक शोषण बाल,श्रम सामाजिक एवं घरेलु,हिंसा ,कार्यस्थल शोषण|

20.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ सकेंगे।

- सामाजिक शोषण के बारे में |
- बाल श्रम के बारे में |
- सामाजिक और घरेलू हिंसा के बारे में |
- कार्यस्थल हिंसा के बारे में |
- विभिन्न सामाजिक समस्याओँ के समाधान |

20.3 सामाजिक शोषण

सामाजिक शोषण प्राचीन समय से चली आ रही प्रक्रिया है ,पुरुषों द्वारा महिलाओं का शोषण | षण एवं और भी अन्य प्रकार के उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग का शो ,मालिक द्वारा श्रमिकों का शोषण हमारे समाज में देखने को मिलते :शोषण प्रायहैं इसी क्रम | में हम इसे विस्तृत रूप में पढेंगे |

महिलाओं का शोषण

आज भारत में दुनिया के विभिन्न भागो में भिन्न भिन्न अवसरों के माध्यम से-महिलाएँ अपने विकास का झंडा आसमानों में लहरा रही हैं ,परन्तु इनके शोषण में कोई कमी नहीं दिख रही है | तमाम कानूनी अधिकारों के बावजूद आज भारत में आम महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं है उच्च पदों | परमहिलाओं के होने के बावजूद भी आज आम महिला को उसका अधिकार व सम्मान प्राप्त नहीं है| ग्रामीणों में महिला शिक्षा का प्रचार प्रसार होने के बावजूद भी अभी गाँवों में महिलाओं की अज्ञानता मिटी नहीं है अशिक्षित |महिलाओं का अपने अधिकारों के बारे में न जानना बहुत बड़ा अभिशाप है क्योंकि विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से सरकार महिलाओं को जागरूक करने का प्रयास कर रही है, फिर भी ग्रामीण महिलाओं में कोई सुधार नहीं हो पा रहा है | यह कहा जा सकता है कि शैक्षिक व कानूनी जागरूकता के महिलाओं को अधिकार व सम्मान मिलना मुश्किल ही नहीं नामुमकीन है भारत में सामाजिक व पारिवारिक स्तर पर देखा जाए तो स्त्री की दशा दयनीय |है | नारी को पारिवारिक हिंसा का शिकार होना पड़ता है | महिलाओं को देश के तमाम कानूनी अधिकार प्राप्त है इसके बावजूद आम महिलाओं को अपना समय घर की चारदीवारी में पारिवारिक दायित्वों को पूरा करते हुए गुजारना पड़ रहा है | महिला संरक्षण अधिनियम 2005 के तहत महिलाओं को परिवारिक हिंसा के विरुद्ध संरक्षण व सहायता का कानूनी अधिकार प्राप्त है | यदि कोई भी व्यक्ति अपने साथ रह रही महिला को शारीरिक हिंसा अर्थात मारपीट करके शारीरिक क्षति पहुचाता है तो पीड़ित महिला संरक्षण अधिनियम 2005 के तहत सहायता प्राप्त करती है | मौखिक और भावनात्मक हिंसा जिसमें अपमान, गालीया देना,चारीत्रिक दोषारोपण, संतान न होने पर अपमानित करना, दहेज मागना, शैक्षणिक संस्थान के अध्यन से रोकना, नौकरी करने से मना करना, समान्य परिस्थियों में व्यक्ति से मिलने पर रोक लगानावि ,वाह करने के लिए जबरदस्ती करना, पसंदीदा

व्यक्ति से विवाह पर रोक लगाना आत्महत्या की धमकी देकर कोई कार्य करवाने की चेष्ठा करना ,, मौखिक दुर्व्यवहार के साथ साथ-महिलाओं को आर्थिक हिंसा के विरुद्ध भी उक्त अधिनियम में कानूनी अधिकार प्राप्त है आर्थिक हिंसा को श्रेणी में |महिलाओं को या उसके बच्चों को गुजारा भत्ता न देना, खाना, कपड़ा , दवा न उपलब्ध कराना, महिलाओं को रोजगार चलाने से रोकना या विघ्न डालना, रोजगार की अनुमति न देना, घरेलू उपयोग की वस्तुओ के उपयोग पर पाबंदी लगाना फिर | भी ग्रामीणमहिलाओं में कोई सुधार नहीं हो पा रहा है | इसके अतिरक्त देवदासी प्रथा के रूप में भी महिलाओं का शोषण किया जाता है | **देवदासी,** हिन्दू धर्म में ऐसी स्त्रियों को कहते हैं जिनका "विवाह" मन्दिर या अन्य किसी धार्मिक प्रतिष्ठान से कर दिया जाता है | समाज में उन्हें उच्च स्थान प्राप्त होता है और उनका काम मंदिरों की देखभाल तथा नृत्य तथा संगीत सीखना होता है| परंपरागत रूप से वे ब्रह्मचारी होती हैं पर अब उन्हें पुरुषों से संभोग का अधिकार भी रहता है| यह एक अनुचित और गलत सामाजिक प्रथा है | इसका प्रचलन दक्षिण भारत में प्रधान रूप से था। बीसवीं सदी में इनकी स्थिति में कुछ परिवर्तन आया। । कुछ लोगों ने अंग्रेजों के इस विचार का विरोध किया कि देवदासियों की स्थिति वेश्याओं की तरह होती है ।

बालकों का शोषण

शारीरिक, यौन और भावनात्मक शोषण एवं बालिका उपेक्षा

कई जगह देखा जाता है कि बालक शारीरिक शोषण के शिकार बनते हैं | शोध के अनुसार , शारीरिक रूप से शोषित 69 प्रतिशत बच्चों में 54.68 प्रतिशत लड़के थे। 50 प्रतिशत से अधिक बच्चे किसी न किसी प्रकार के शारीरिक शोषण के शिकार थे । पारिवारिक स्थिति में शारीरिक रूप से शोषित बच्चों में 88.6 प्रतिशत का शारीरिक शोषण माता-पिता करते हैं | 50.2 प्रतिशत बच्चे सप्ताह के सात दिन काम करते हैं | इसी के साथ यह भी पाया जाता है कि 53.22 प्रतिशत बच्चों ने एक या अधिक प्रकार के यौन शोषण का सामना करते हैं | 20.90 प्रतिशत बच्चों ने गंभीर यौन शोषण का सामना करने की बात कही, जबकि 50.76 प्रतिशत बच्चों ने अन्य प्रकार के यौन शोषण की बात स्वीकारी । यह तथ्य भी सामने आता है कि 50 प्रतिशत शोषण के लिए बच्चों के जान-पहचान वाले या विश्वसनीय लोग जिम्मेदार होते हैं | हर दूसरा उत्तरदाता बच्चा भावनात्मक शोषण का शिकार है | उनका कहना है कि बच्चों के शोषण को रोकने के लिए सरकार को तत्काल क़ानून कड़े करने चाहिए | बालक और बालिका के समान प्रतिशत ने भावनात्मक शोषण का सामना करने की बात स्वीकार की । 83 प्रतिशत मामलों में माता-पिता ही शोषक थे । 48.4 प्रतिशत लड़कियों ने कहा कि वे लड़के होते तो अच्छा था ।

जातिगत शोषण

आजादी के 65 वर्षों के बाद भी , दलित समुदाय के साथ भेदभाव लगातार जारी है और यह समुदाय अभी तक हाशिये पर जिंदगी जीने को मजबूर है पहले की ही तरह उनका शोषण अब भी | हो रहा है औरमूलभूत मानव अधिकारों तक से उन्हें वंचित रखा जाता है | आर्थिक और प्राकृतिक संसाधनों तक उनकी पहुँच नहीं है और उन्हें सिर पर मैला ढोने जैसे काम करने के लिए आज भी मजबूर किया जा रहा है समाज | से उनको अलग- थलग किये जाने का आलम यह है कि आज भी उन्हें बचा हुआ खाना खाने को दिया जाता है और सबके लिए उपयोगी चीज़ों तक का प्रयोग करने से वंचित रखा जाता है उन्हें सरकार द्वारा .यह समुदाय संगठित नहीं है इसलिए पिछड़ा हुआ है|

चलायी जा रही विभिन्न योजनाओं और प्रावधानों की जानकारी नहीं है , जिसके चलते वे इसका फायदा नहीं उठा पाते दलित महिलाओं की स्थिति और भी ख़राब है | बलात्कार और यौन शोषण | अब एक सामान्य सी बात हो चुकी है और कई महिलाओं को वेश्यावृत्ति करने तक के लिए मजबूर होना पड़ता है |

बाल श्रम का शोषण

बाल-श्रम का मतलब ऐसे कार्य से है जिसमें कार्य करने वाला व्यक्ति कानून द्वारा निर्धारित आयु सीमा से छोटा होता है | इस प्रथा को कई देशों और अंतर्राष्ट्रीय संघटनों ने शोषित करने वाली माना है | अतीत में बाल श्रम का कई प्रकार से उपयोग किया जाता था, लेकिन सार्वभौमिक स्कूली शिक्षा के साथ औद्योगीकिकरण, काम करने की स्थिति में परिवर्तन तथा कामगारों श्रम अधिकार और बच्चों के अधिकार की अवधारणाओं के चलते इसमें जनविवाद प्रवेश कर गया । बाल श्रम अभी भी अपने देश में आम है | वेश्यावृत्ति या उत्खनन, कृषि, माता पिता के व्यापार में मदद, अपना स्वयं का लघु व्यवसाय (जैसे खाने पीने की चीजे बेचना), या अन्य छोटे मोटे काम हो सकते हैं | कुछ बच्चे पर्यटकों के गाइड के रूप में काम करते हैं, कभी-कभी उन्हें दुकान और रेस्तरां (जहाँ वे वेटर के रूप में भी काम करते हैं) के काम में लगा दिया जाता है | अन्य बच्चों से बलपूर्वक परिश्रम-साध्य और दोहराव वाले काम लेते हैं, जैसे :बक्से को बनाना, जूते पॉलिश, स्टोर के उत्पादों को भंडारण करना और साफ-सफाई करना. हालांकि, कारखानों और मिठाई की दूकान, के अलावा अधिकांश बच्चे अनौपचारिक क्षेत्र में काम करते हैं, जैसे सड़कों पर कई चीज़ें बेचना, कृषि में काम करना या बच्चों का घरेलू कार्य या घरों में छिप कर काम करना आदि और ये सभी काम सभी प्रकार के मौसम में तथा न्यूनतम वेतन पर किये जाते हैं |

20.4 बाल श्रम

अपने देश के समक्ष बालश्रम की समस्या एक चुनौती बनती जा रही है | सरकार ने इस समस्या से निपटने के लिए कई कदम भी उठाये हैं | समस्या के विस्तार और गंभीरता को देखते हुए इसे एक सामाजिक-आर्थिक समस्या मानी जा रही है जो चेतना की कमी, गरीबी और निरक्षरता से जुड़ी हुई है| इस समस्या के समाधान हेतु समाज के सभी वर्गों द्वारा सामूहिक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है ।

यूनिसेफ (Unicef) बाल श्रम को ऐसे कार्यों के रूप में परिभाषित करता है, जो एक बालक के लिए हानिकारक समझे जाते हैं, और घंटों की न्यूनतम संख्या को पार कर जाते हैं |

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन बाल श्रम को बच्चे के स्वास्थ्य की क्षमता, उसके शिक्षा को बाधित करने और उसके शोषण के रूप में परिभाषित करता है | यह बाल श्रम के सबसे विकृत स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इसमें बालकों के सशस्त्र सेनाओं में प्रयोग, यौन शोषण जैसे वेश्यावृत्ति एवं पोर्नोग्राफी और अवैधानिक गतिविधियों जैसे मादक पदार्थों की तश्करी को शामिल करता है | सामान्य रूप से बाल श्रम को बालकों द्वारा किए गए ऐसे कार्यों के रूप में निरूपित किया जाता है, जो उनके शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक क्षमता को प्रभावित कर व्यक्तित्व के बहुआयामी विकास को प्रभावित करते हैं |

भारत में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (National Sample Survey) की परिभाषा के अनुसार, कोई भी 14 वर्ष से कम आयु का बच्चा जो मजदूरी करता है, बाल श्रमिक की श्रेणी में आता है, वहीं 2001 की जनगणना के आँकड़ों के बाल श्रमिकों को दिहाड़ी श्रमिक बल के रूप में सम्मिलित किया गया है।

बाल श्रम की अवधारणा

बाल श्रम बाल उत्पीड़न का एक प्रकार है। परिवार की सीमित आमदनी, निम्न जीवन स्तर, परिवार का वृहत आकार तथा पारिवारिक उपेक्षा और उत्पीड़न के परिणाम स्वरुप एक कम आयु का बालक श्रमिक की स्थिति में पहुँच जाता है अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के निदेशक ने बाल श्रम मजदूरों को परिभाषित करते हुए कहा है कि – " ये वे किशोर नहीं हैं जो दिन के कुछ घंटे खेल और अध्ययन में से निकाल कर जेब खर्च के लिए काम करते हैं। ये वे बच्चे भी नहीं हैं जो वयस्कों को जिन्दगी – व्यतीत करने को मजबूर हैं। दस से अठारह घटे काम करके, कम वेतन पर अधिक श्रम बेचते, बुनियादी शिक्षा और खेल से वंचित और कभी- कभी परिवार से अलग अलग होकर रहते हुए .....।"

अंतराष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार भारत में 30 करोड़ बच्चों में से 4.44 करोड़ बाल श्रमिक के रूप में विभिन्न उद्योगों में काम करते हैं। देश का प्रत्येक सातवां बच्चा बाल श्रमिक के रूप में जन्म लेता है। एक दुखद पहलू यह है कि हमारे देश में दुनिया के सबसे अधिक बच्चे अनाथ हैं। प्रतिवर्ष लगभग 11.5 लाख 'अमान्य बच्चे' जन्म लेते हैं, जिनमें से अधिकांश 5-6 वर्षों के पश्चात बाल-श्रमिक बना दिए जाते हैं।

बाल श्रमिक शोषित, जोखिमपूर्ण कार्य परिस्थितियों में असुरक्षित तथा कम वेतन में अधिक कार्य का जीवन व्यतीत करते हैं। ये वे बच्चे हैं जो बाल्यावस्था को नहीं जानते। हमारे संविधान में कहा गया है की :-

- कोई बालक जिसकी आयु 14 वर्ष से कम है, उसे कारखानों या जोखिमपूर्ण कार्यों में नहीं रखा जायेगा, (अनूच्छेद-24)

- बाल्यावस्था तथा युवावस्था को शोषण तथा नैतिक व भौतिक दुर्व्यसनों से सुरक्षित रखा जाएगा (अनुच्छेद- 39 एफ)

- राज्यों को यह प्रयत्न करना होगा कि 14 वर्ष तक के बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाए।

भारत जैसे देश में जहाँ 40 प्रतिशत आबादी अत्यधिक निर्धन हैं, वहाँ बाल श्रम एक जटिल मुद्दा है। बच्चों में अपराध – बोध की भावना को दबाने का तर्क देते हैं। उनका कहना है कि बच्चों को रोजगार पूरक बनाने से भुखमरी की स्थिति को दूर किया जा सकता है | नौकरशाहों का विचार है कि बाल श्रम का पूर्णत: उन्मूलन अव्यावहारिक है क्योंकि सरकार ने उनके लिए कोई ठोस विकल्प नहीं बनाए हैं | समाज वैज्ञानिकों का मत है कि बाल श्रम का मुख्य कारण गरीबी है। ऐसी स्थिति में बच्चे पारिवारिक आय में वृद्धि करते हैं या वे अपने परिवार में आय का एकमात्र स्रोत होते हैं। बाल श्रम का एक अन्य कारण सस्ते श्रम की उपलब्धता है। बाल श्रम का एक अस्तित्व इसलिए भी है क्योंकि

इनसे उद्योगों को लाभ मिलता है। उदाहरणार्थ उत्तरप्रदेश के कालीन उद्योग में 1990 में 75000 बच्चे बाल मजदूर के रूप में संलग्न थे जिन्होंने 300 करोड़ की विदेशी मुद्रा अर्जित की।

बाल उत्पीड़न

सरकार तथा जनता की अरूचि के कारण बाल उत्पीड़न की समस्या संबंधी आंकड़े संकलित नहीं किए जाते। भारत में गरीबी – अशिक्षा तथा परिवार वृहद आकार आदि मुख्य कारणों से बच्चे अभिभावकों/संरक्षकों तथा रोजगार देने वालों द्वारा उत्पीड़ित किये जाते हैं। मनोवैज्ञानिक स्पष्टीकरण के अनुसार अंत: वैयक्तिक असामान्यता, मानसिक रूग्णता तथा वैयक्तिक विकार बाल उत्पीड़न के मुख्य कारण हैं। एक अभिभावक द्वारा अपने बच्चे को उत्पीड़ित करना उसकी भावात्मक आवश्यकताओं की अतृप्ति से संबंधित है। बच्चों की आवश्यकता एवं स्वयं की प्रत्याशाओं की बीच संतुलन क्षमता का अभाव, स्वयं की उत्पीड़ित या वंचित पारिवारिक पृष्ठभूमि से प्राप्त भावात्मक चिन्ह अभिभावकों द्वारा अपने बच्चों के संरक्षण को प्रभावित करते हैं।

सामाजिक – सांस्कृतिक स्पष्टीकरण के अनुसार संरचनात्मक तनाव तथा सांस्कृतिक प्रतिमान उत्पीड़न तथा हिंसा के मुख्य कारण हैं। निम्न आय, बेरोजगारी, पृथक्कता, अनिच्छित गर्भधारण तथा दाम्पत्य संबंधी में तनाव आदिसंरचनात्मक तनाव के कारण हैं, जो घर में बच्चों के उत्पीड़न के लिए जिम्मेदार हैं।

बाल श्रम के प्रमुख कारण (Main Causes of Child Labour) :

बाल श्रम एक प्रमुख सामाजिक आर्थिक समस्या है जो बालक की शारीरिक-मानसिक क्षमता को प्रभावित करता है | यह एक गंभीर समस्या है क्योंकि यह बालक के कार्य करने, विचार एवं अनुभव करने, दृष्टिकोण निर्मित करने आदि की अवस्थाओं पर नकारात्मक प्रभाव डालता है | बाल श्रम के प्रमुख कारण निम्नवत हैं-

सामंतवादी, जमींदारी प्रणाली व उसके आज के बचे अवशेषों ने बाल श्रम की समस्या को निरंतरता प्रदान की है।

निर्धनता, बेरोजगारी जैसी स्थिति ने विभिन्न ग्रामीण परिवारों को बालकों के विभिन्न कार्यों में नियोजन हेतु आधार प्रदान किया है।

a) अशिक्षा, असाक्षरता और इसके चलते अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता के अभाव की स्थितियों ने भी बाल श्रम को बढ़ावा दिया है।

b) संयुक्त परिवार की संस्कृति व पारंपरिक पारिवारिक मूल्यों ने स्वैच्छिक स्तर पर बाल श्रम की समस्या को बढ़ाने में काफी हद तक भूमिका निभायी है।

c) वैश्वीकरण, निजीकरण, उपभोक्तावादी संस्कृति के विकास के साथ सस्ते श्रम (Cheap Labour) की आवश्यकता व बच्चों की आर्थिक जरूरतों के मध्य संपर्क से बाल श्रम को बढ़ावा दिया है।

d) ठोस स्तर की राज्य स्तरीय व राष्ट्रीय नियमों/कानूनों के अभाव के चलते बाल श्रम की समस्या बनी हुई है।

बाल श्रम का प्रभाव (Impact of Child Labour) :

बाल श्रम के चलते व्यापक स्तर पर मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है | इसीलिए 'एगमार्क' जैसे बाल श्रम के मानक अस्तित्व में आये।

बालक के शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक विकास व क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव। कुपोषण, बाल अपराध, संस्कारहीनता जैसी अनेक समस्याएँ बाल श्रमिक की मानसिकता से ही जुड़ी हुई है।

शिक्षा प्राप्त करने व भारत के ज्ञान समाज की स्थापना के मार्ग में अवरोधक है | राष्ट्रीय सेंपल सर्वे संगठन के अनुसार, भारत का प्रत्येक चौथा बालक बाल श्रम के चलते स्कूल नहीं जा पाता है। बाल श्रम व उसकी निरंतरता ने पारिवारिक मूल्यों में अवनति को बढ़ावा दिया है।

बाल श्रमिकों के शोषण (यौन शोषण) पोर्नोग्राफी में उन्हें अभिकरण बनाया जाना ऐसे अनेक मुद्दे हैं जिन पर गंभीर विचार करना आवश्यक है।

बालक की वैधानिक परिभाषा (Legal Definition of a Child) :

दुकान एवं स्थापना अधिनियम, 1948 (Shops and Establishment Act, 1948) की धारा 2 (2) में कहा गया है कि एक बालक वह है जिसने 15 वर्ष की उम्र पूरी न की हो।

फैक्टरी अधिनियम, 1948 की धारा 2 (2) में बालक को 15 वर्ष से कम उम्र के बच्चे के रूप में परिभाषित किया गया है।

भारतीय संविधान का अनु० 45 बालक को 15 वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति के रूप परिभाषित करता है।

गार्डन वर्कर एक्ट, 1951 में बालक को 12 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है।

खनन अधिनियम, 1952 में एक बालक को 16 वर्ष से अधिक के व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है।

महिलाओं एवं बालिकाओं में अनैतिक तस्करी के प्रतिषेध अधिनियम, 1956 के अनुसार एक बालक 21 वर्ष से अधिक आयु का व्यक्ति है।

बीड़ी और सिगरेट श्रमिक अधिनियम (रोजगार दशाएँ) 1966 में एक बालक को उस व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है जिसकी उम्र 14 वर्ष न हुई हो।

किशोर न्याय (बालक के संरक्षण व ध्यान) अधिनियम, 1986 के अनुसार, एक बालक वह व्यक्ति है, जिसने 18 वर्ष की आयु पूरी न की हो।

बाल श्रम का अंतर्राष्ट्रीय विनियमन (International Regulation of Child Labour):

बालकों के अधिकारों पर अभिसमय (Convention on the Rights of the Child) जिसे 1989 में अपनाया गया था, का अनुच्छेद-32 कहता है कि सरकारों को यह महसूस किये जाने की आवश्यकता है कि आर्थिक शोषण को हटाकर बालकों के अधिकारों का संरक्षण किया जाए क्योंकि इस स्थिति के बालकों के शिक्षा पर प्रभाव डालने की पूर्ण संभावना रहती है | अभिसमय के अनुसार बालकों का आर्थिक शोषण बच्चे के स्वास्थ्य, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक व सामाजिक विकास को क्षति पहुँचाता है।

अभिसमय का अनुच्छेद-28 प्रावधान करता है कि प्रत्येक बालक के पास शिक्षा का अधिकार है | अनुच्छेद-34 कहता है कि सरकारों को बच्चों को यौन शोषण (Sexual Exploitation) और प्रताड़ना से सुरक्षित करना चाहिए।

यूरोपियन यूनियन ने यूरोपीय परिषद् की बैठक में निर्णय किया कि यूरोपीय संघ की नीति व कार्यवाही में बाल अधिकारों को संरक्षित किया जाए। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमय 138 व 182 में भी बाल अधिकारों के संरक्षण पर जोर दिया गया है।

भारत ने संयुक्त राष्ट्र की आम सभा के अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष (1979) जिसका मूल विषय "वंचित बच्चों तक पहुँचे" था, के प्रस्ताव का सह-आयोजन (Co-sponsership) किया भारत पहला देश बना जिसने इस संबंध में कार्रवाई के लिए राष्ट्रीय योजना भी तैयार की।
भारत की जनगणना व बच्चे (India's Census and Children) :

भारत की कुल जनसंख्या के अनुपात में बच्चों की भी विशाल संख्या है | वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार, देश में 6 वर्ष तक की आयु के कुल बच्चों की संख्या लगभग 16 करोड़ तथा 6 से 14 वर्ष की आयु के कुल बच्चों की संख्या लगभग 19 करोड़ है | बच्चों के अंतर्गत किशोर न्याय अधिनियम, 1986 के प्रावधानों के अनुसार 18 वर्ष तक की आयु के बच्चे किशोर के अंतर्गत आते हैं |14 से 18 वर्ष तक की आयु के बच्चों की संख्या भी करीब 6 करोड़ है।

जनगणना में बाल श्रम अथवा बाल श्रमिक से संबंधित मामलों की परिसीमा यह है कि जनगणना अधिकारी बाल श्रमिकों की गणना करते समय उनके द्वारा किये गये घरेलू कार्यों जैसे सफाई, खाना बनाना, पशु चराना, खेती बाड़ी के कार्यों में अभिभावकों की सहायता करना आदि कार्यों को अनुत्पादक मानते हैं | इसी कारण इन्हें बाल श्रम में सम्मिलित नहीं किया जाता। अन्य तथ्य जैसे कर्ज चुकाने के बदले बच्चे को गिरवी रखना, सड़क के साथ चलने वाले ढाबों पर कार्य करना, ऑटोमोबाइल कार्यशालाओं तथा निर्माण कार्यों में बच्चों द्वारा किये गये अन्य कार्यों जैसे बूट-पॉलिश करना, कूड़ा छाँटना, अखबार बेचना तथा रेहड़ी लगाना आदि की भी जनगणना अधिकारियों द्वारा अनदेखी कर दी जाती है।

बाल श्रम उन्मूलन का प्रयास व वैधानिक प्रावधान (Efforts of Elimination of Child Labour and Legal/ Legislative Provision):

भारत में बाल श्रम को एक सामाजिक-आर्थिक समस्या माना गया है और इस समस्या के निराकरण के लिए कई वैधानिक प्रावधान किये गये। इनमें से कुछ प्रमुख प्रावधान निम्नवत् हैं-
कारखाना अधिनियम, 1948
न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948
गार्डेन वर्कर अधिनियम, 1951
अपरेन्टिसशिप अधिनियम, 1961
मोटर वाहन अधिनियम, 1961
खनन अधिनियम, 1952
दुकान एवं स्थापन अधिनियम, 1961
शिशु अधिनियम, 1961 (यथासंशोधित, 1978)
बीड़ी व सिगरेट श्रमिक अधिनियम, 1966
बंधुआ श्रम प्रणाली अधिनियम, 1976
बालश्रम (निषेध एवं नियमन) अधिनियम, 1986
किशोर न्यायालय अधिनियम, 1986

किशोर न्याय (बच्चों की देख रेख एवं संरक्षण) अधिनियम, 2000
बाल श्रम (निषेध एवं नियमन) संशोधन अधिनियम, 2006
भारतीय दंड संहिता धारा 82 जिसके तहत प्रावधान है कि 7 वर्ष या इससे कम आयु के बच्चों को किसी भी अपराध में दंडित करना वर्जित है।
दंड प्रक्रिया संहिता धारा 125 जिसके तहत यह प्रावधान किया गया है कि संतान चाहे वे वैध हों अथवा अवैध हो भरण-पोषण के भत्ते के हकदार होंगे।

संवैधानिक प्रावधान :

बाल श्रम की समस्या से निपटने के अलावा बालकों के बहुआयामी व्यक्तित्व के विकास के लिए भारतीय संविधान में निम्नांकित प्रावधान किये गये हैं, जिनका समय-समय पर पुनरावलोकन भी किया गया है ।
भारतीय संविधान के अनुच्छेद-21 में शिक्षा के मौलिक अधिकार का प्रावधान है | 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 द्वारा संविधन में एक नवीन अनु० (21) जोड़ा गया है, जो यह उपबंधित करता है कि राज्य ऐसी रीति से विधि के तहत 6 वर्ष की आयु से 14 वर्ष की आयु के सभी बालकों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के लिए उपबंध करेगा।
भारतीय संविधान के अनु० 24 के तहत कारखाना आदि में बालकों के नियोजन पर प्रतिषेध लगाया गया है | अनु० 24 किसी फैक्ट्री, खान अथवा अन्य परिसंकटमय गतिविधियों यथा निर्माण कार्य अथवा रेलवे में 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के नियोजन पर रोक लगाता है | बाल-श्रम का निषेध करने के लिए अनुच्छेद-24 का राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों से प्रत्यक्ष संबंध है, जिसमें 14 वर्ष तक के बालकों को निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देना राज्य का कर्त्तव्य बताया गया है।
संविधान के अनुच्छेद-39(e) द्वारा नीति निदेशक तत्त्वों के तहत राज्य पर यह कर्त्तव्य अधिरोपित किया गया है कि वह ऐसा प्रावधान करे कि बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो तथा आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु एवं शक्ति के अनुकूल न हो। इसके अलावा संविधान के अनु० 39(f) में प्रावधान किया गया है कि बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएँ दी जाये तथा शैशव और किशोर अवस्था के शोषण से, नैतिक और आर्थिक परित्याग से संरक्षण हो।
भारतीय संविधान के भाग-4 में राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों के अंतर्गत अनु० 45 द्वारा सभी बालकों को 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रावधान किया गया है | मूल संविधान में इस अनुच्छेद में निर्धारित किया गया था कि राज्य इस संविधान के प्रारम्भ से 10 वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालकों को 14 वर्ष की आयु पूर्ण होने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का उपबंध करने का प्रयास करेगा।
86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 द्वारा संविधान के मूल कर्त्तव्यों के अध्याय में एक अन्य खंड 51(k) जोड़ा गया है जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि 6 से 14 वर्ष की आयु के बालकों के माता-पिता अथवा अभिभावकों का यह कर्त्तव्य होगा कि वे उन्हें शिक्षा का अवसर प्रदान करें।
भारतीय संविधान के अनु० 39 में राज्यों से बालकों के संदर्भ में की गयी नीतिगत अपेक्षाओं के क्रम में कुछ विशेष कानून अधिनियमित हुए। उदाहरण के लिए, बालक नियोजन अधिनियम, 1938, कारखाना अधिनियम, 1948; खान अधिनियम, 1952; वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1958; बीड़ी तथा सिगार कर्मकार अधिनियम, 1966 आदि।

बाल श्रम (निषेध व विनियमन) अधिनियम, 1986 :

वर्तमान में 1986 का बाल श्रम (निषेध व विनियमन) अधिनियम व्यापक कानून है जो 14 साल से कम उम्र के बच्चों को नियोजित करने पर रोक लगाता है | इस अधिनियम के अंतर्गत 13 व्यवसायों व 57 प्रक्रियाओं को प्रतिबंधित किया गया है| जिन प्रक्रियाओं को प्रतिबंधित किया गया है उनमें से मुख्य हैं- बीड़ी निर्माण, कालीन, नाई, सीमेंन्ट विनिर्माण, वस्तु मुद्रण, माचिस, विस्फोट व आगजनी पदार्थों का विनिर्माण, अभ्रक कटाई, साबुन निर्माण, तंबाकू प्रसंस्करण आदि।

अधिनियम के अंतर्गत एक तकनीकी परामर्शदात्री समिति के गठन का प्रावधान है जो बाल श्रम से संबंधित व्यवसायों (Occupations) व प्रक्रियाओं (Processes) के विस्तार की आवश्यकता से संबंधित सिफारिशें केन्द्र सरकार को करता है।

इस अधिनियम के अंतर्गत प्रावधान किया गया है कि इसके प्रावधानों का उल्लंघन करने की स्थिति में कम से कम 3 माह की सजा जो बढ़ाकर 1 वर्ष तक भी की जा सकती है, दी जा सकती है, जबकि न्यूनतम 10,000 रुपये का जुर्माना जिसे अधिनियम की धारा 14 के तहत बढ़ाकर 20,000 भी किया जा सकता है, का प्रावधान भी किया गया है | केन्द्र सरकार व राज्य सरकार अपने-अपने क्षेत्रों में इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू कराने का प्रयास करते हैं |

बाल श्रम (प्रतिषेध और नियमन) अधिनियम, 1986 में कुछ संशोधन वर्ष 2006 में किये गये। इन संशोधनों के प्रमुख बिन्दु निम्नवत हैं-
13 औद्योगिक सेक्टरों में बाल-श्रम को प्रतिबंधित कर दिया गया है और 52 तरह के कामों को बाल श्रम (निषेध) कानून में सूचीबद्ध किया गया है।
यदि इस कानून में संशोधन हो जाता है तो ये 13 औद्योगिक क्षेत्र 14 से 18 वर्ष की उम्र के बच्चों को अपने यहाँ नियोजित नहीं कर सकते।
यह कानून कुछ निश्चित एवं विनिर्दिष्ट जोखिम भरे कामों और प्रक्रियाओं में बच्चों के नियोजन पर रोक लगाता है और साथ ही अन्यों के कार्य-शर्तों को नियमित करता है।
इस कानून के अंतर्गत गठित बाल श्रम तकनीकी सलाह समिति की अनुशंसाओं के आधार पर जोखिम भरे कामों की सूची को बढ़ाया गया है।
वर्ष 2006 के संशोधन ने घरेलू कार्य आतिथ्य उद्योग को भी इस कानून के दायरे में ला दिया है।
इस कानून का उल्लंघन करने पर तीन महीने की कारावास की सजा हो सकती है।

बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) नियम, 1988 [The Child Labour (Prohibition and RegulationRules, 1988] :

बाल श्रम (निषेध और विनियमन) नियमों, 1986 के तहत सौंपे गये शक्तियों के प्रयोग करने के साथ ही केन्द्र सरकार द्वारा बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) नियमों, 1988 को प्रारूपित किया गया। इन नियमों में बात श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 1986 में प्रयुक्त शब्दों जैसे 'अधिनियम', 'समिति', 'चेयरमैन', 'स्वरूप', 'रजिस्टर', 'अनुसूची', 'धारा', आदि का आशय स्पष्ट किया गया है | इसमें कहा गया है कि अधिनियम से आशय 'बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 1986 से है | समिति का आशय बाल श्रम तकनीकी परामर्श समिति से है | चेयरमैन का आशय अधिनियम की धारा 5 की उपधारा 2 में नियुक्त किये गये व्यक्ति से है | रजिस्टर का आशय अधिनियम की धारा 11 के तहत आवश्यक समझे जाने वाले रजिस्टर से है।

इस प्रकार इस नियम (1988) का प्रमुख उद्देश्य 1986 के अधिनियम को विनियमों के संदर्भ में अधिक स्पष्ट व सारगर्भित बनाना था।

बाल श्रम पर तकनीकी परामर्श समिति (Technical Advisory Committee on Child Labour) :

बाल श्रम तकनीकी परामर्श समिति [The Child Labour Technical Advisory Committee (TAC)] का गठन बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 1986 की धारा 5 के प्रावधानों से संगति रखते हुए गठित किया गया है | इस समिति का प्रमुख कार्य बाल श्रम के संदर्भ में रोजगार एवं प्रक्रियाओं (Occupations and Processes) के मामले में केन्द्र सरकार को परामर्श देना है | इस समिति में केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त एक अध्यक्ष व 10 अन्य सदस्य होते हैं |

कुछ अन्य प्रयास (Few Other Efforts)

1996 में उच्चतम न्यायालय ने बाल श्रम पुनर्वास कल्याण कोष (Child Labour Rehabilitation Welfare Fund) की स्थापना का निर्देश दिया, जिसमें बालकों को नियोजित करने वाले व्यक्ति द्वारा प्रति बालक 20,000 रुपये कोष में जमा कराने का प्रावधान है | ध्यातव्य है कि इस प्रावधान की पृष्ठभूमि एम.सी. मेंहता बनाम तमिलनाडु राज्य बाद में बनी थी। सर्वोच्च न्यायालय ने 1996 में बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं पोषण में भी सुधार के निर्देश दिये। बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 ने बालकों के अधिकारों के संरक्षण के लिए एक राष्ट्रीय आयोग और राज्य आयोगों के गठन का प्रावधान किया। इस कानून को बालकों के विरुद्ध अपराधों अथवा बाल अधिकारों के उल्लंघन पर शीघ्र विचारण के लिए अधिनियमित किया गया था।

वर्ष 2006 में भारत सरकार ने बच्चों के घरेलू नौकरों के रूप में काम करने पर अथवा व्यवसायिक प्रतिष्ठानों जैसे-होटलों, रेस्तरां, दुकानों, कारखानों, रिसॉर्ट, स्पा, चाय की दुकानों आदि में नियोजन पर रोक लगा दी। इसमें 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को नियोजित करने वालों के विरुद्ध अभियोजन और दंडात्मक कार्यवाही की चेतावनी दी गई है।

न्यायिक निर्वचन (Judicial Interpretation) :

शीला बारसे बनाम सेक्रेटरी, चिल्ड्रेन एंड सोसाइटी एवं अन्य, 1987 मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि, "यदि आज बच्चों का उचित वृद्धि/विकास नहीं होगा, तो देश का भविष्य अंधकारयुक्त रहेगा। प्रत्येक पीढ़ी के बच्चों को, जो कल के नागरिक होंगे, सही दिशा में ले आना दायित्व होगा। आज के बच्चे कल के नेता होंगे जिनके हाथ में देश की प्रतिष्ठा होगी।"

एम.सी. मेंहता बनाम तमिलनाडु राज्य वाद, 1991 में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिबंधित व्यवसायों में बच्चों के कार्य करने की अनुमति नहीं दी। सर्वोच्च न्यायालय का इस वाद में निष्कर्ष था कि बाल श्रम के चलते अनु० 45 में राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के तहत 14 वर्ष तक के बच्चों के अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की दशा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

राजबहादुर बनाम लीगल रिमेंम्ब्रान्सर मामले (1953) में न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया है कि अनु० 23 में वर्णित शोषण शब्द में स्त्रियों व बच्चों का क्रय-विक्रय ही नहीं वरन् स्त्रियों व बच्चों का अनैतिक व्यापार भी शामिल हैं |

उन्नीकृष्णनन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य मामले (1993) में अपने ऐतिहासिक निर्णय में सर्वोच्च

न्यायालय ने निर्धारित किया है कि 14 वर्ष के बालकों को निःशुल्क शिक्षा देना राज्य का संवैधानिक दायित्व है, क्योंकि अनुच्छेद-21 के अधीन शिक्षा पाने का अधिकार एक मूल अधिकार है। मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य मामले (1992) में भी सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा को शिक्षा के मौलिक अधिकार के रूप में रुपांतरित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

बाल श्रम पर आयोग/समितियाँ :

श्रम पर राष्ट्रीय आयोग (1969) तथा बाल श्रम पर समिति (1981) की रिपोर्टों में भारत में बाल श्रम के कारण तथा परिणामों की जाँच की गई है | बाल श्रम संबंधी समिति की संस्तुति पर सरकार ने बाल श्रम पर विशेष केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड का गठन श्रम मंत्रालय के अंतर्गत किया। यह बोर्ड मौजूदा कानूनों के कार्यान्वयन की समीक्षा करता है तथा नये कानून व कल्याणकारी उपायों का सुझाव देता है।

1974 में भारत सरकार द्वारा बच्चों पर राष्ट्रीय नीति की घोषणा के बाद 1975 में बच्चों के लिए राष्ट्रीय नीति का प्रस्ताव पारित होने के साथ ही एक राष्ट्रीय बाल बोर्ड का भी गठन किया गया था जिसका उद्देश्य बच्चों की समस्याओं के बारे में चेतना जागृत करना, कल्याण, प्रोत्साहन तथा बच्चों के लिए चल रहे शैक्षणिक तथा कल्याणकारी कार्यक्रमों की समीक्षा के साथ ही उनका समुचित क्रियान्वयन सुनिश्चित करना था।

14 अगस्त, 1987 को भारत सरकार की 'बच्चों पर राष्ट्रीय नीति' में इस बात पर बल दिया गया था कि बच्चे देश की सबसे महत्त्वपूर्ण और कीमती संपत्ति हैं | देश ही उनकी 'देखरेख और विकास' के लिए जिम्मेदार होगा। यह भी कहा गया है कि "मानव संसाधन विकास के लिए बनाई जाने वाली राष्ट्रीय योजनाओं में बच्चों के कार्यक्रमों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए ताकि वे भविष्य में एक स्वस्थ नागरिक की भूमिका का निर्वहन कर सकें। बच्चों के लिए निर्धारित किया है कि 14 वर्ष के बालकों को निःशुल्क शिक्षा देना राज्य का संवैधानिक दायित्व है, क्योंकि अनुच्छेद-21 के अधीन शिक्षा पाने का अधिकार एक मूल अधिकार है।

मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य मामले (1992) में भी सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा को शिक्षा के मौलिक अधिकार के रूप में रुपांतरित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

बाल श्रम पर आयोग/समितियाँ :

श्रम पर राष्ट्रीय आयोग (1969) तथा बाल श्रम पर समिति (1981) की रिपोर्टों में भारत में बाल श्रम के कारण तथा परिणामों की जाँच की गई है | बाल श्रम संबंधी समिति की संस्तुति पर सरकार ने बाल श्रम पर विशेष केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड का गठन श्रम मंत्रालय के अंतर्गत किया। यह बोर्ड मौजूदा कानूनों के कार्यान्वयन की समीक्षा करता है तथा नये कानून व कल्याणकारी उपायों का सुझाव देता है।

1974 में भारत सरकार द्वारा बच्चों पर राष्ट्रीय नीति की घोषणा के बाद 1975 में बच्चों के लिए राष्ट्रीय नीति का प्रस्ताव पारित होने के साथ ही एक राष्ट्रीय बाल बोर्ड का भी गठन किया गया था जिसका उद्देश्य बच्चों की समस्याओं के बारे में चेतना जागृत करना, कल्याण, प्रोत्साहन तथा बच्चों के लिए चल रहे शैक्षणिक तथा कल्याणकारी कार्यक्रमों की समीक्षा के साथ ही उनका समुचित क्रियान्वयन सुनिश्चित करना था।

निष्कर्षत: एक बात कही जा सकती है कि बाल श्रम का महापाप अपने आप में खतरे का सूचक हो गया है और इसके साथ ही कार्यरत बच्चों के महाशोषण के भरे घड़े का प्रकटाव है। उस देश में, जहाँ करोड़ों व्यस्क लोग बेरोजगार हैं (जो कोई भी काम करने को तैयार हैं) वहाँ बच्चों को काम पर क्यों लगाया जाता है या उन्हें प्राथमिकता दी जाती है ? इस तथ्य की वास्तविकता यह है की दो आयु समूहों के बीच में कड़ा मुकाबला है। जो की सीमित एवं रोजगार बाजार में सरकते रोजगार अवसरों की कृपा का फल है। जो की उन बच्चों या उनके माता- पिताओं को लम्बे समयों के लिए श्रम करने को बाध्य करता है। यह परस्पर विरोधी तथ्य, जहाँ एक ओर उनकी मजदूरी दर को घटाता है, वहीं वयस्कों के लिए रोजगार के अवसरों को भी कम करता है | विद्यमान बाल श्रम के चाहे कुछ भी परिणाम हो पर यह मुद्दा न केवल बच्चों के स्वंय के लिए व्यापक ध्यान देने योग्य है ; बल्कि माता-पिता, समाज तथा देश के लिए भी संवेदनशील मुद्दा है। सभी तरह के सर्वेक्षण से यही बात निकलकर आती है कि ज्यादातर कार्यरत बच्चे गरीब परिवारों से होते हैं और उनकी कमाई परिवार के लिए सम्पूरक सिद्ध होती है। बच्चों के रोजगार पर काम करने वाले समूह ने सालों पहले कहा था, " ख़राब आर्थिक दशाएं व्यापक रूप से भरी जनसंख्या का एक भाग है और परिवारों की भरी मात्रा में निर्भरता एक अनिवार्यता है जो जीवन यापन का शुद्ध कारण है खासकर उन सदस्यों की कमाई पर जो जिन्दगी की शूरूआत में कर सकते हैं। किसी भी काम धंधे में, चाहे वह समय का या आधे समय का, एक बच्चे के श्रम को प्रयोग करने का सीधा अर्थ है कि बच्चे के बचपन का पूरा या आधा हनन। उसे अपनी खुशीयों एवं उन्मुक्त जिन्दगी से जुदा नहीं किया जाना चाहिये, बल्कि शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए भी अवसर दिए जाने चाहिए।

सामाजिक हिंसा

साठ साल पहले जिस देश की जनता ने सत्य और अहिंसा के बल पर आज़ादी हासिल की थी। उसी देश की जनता में हिंसा की प्रवृति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है | भले ही वो हिंसा वैध समस्याओं के निदान हेतु ही क्यों न हो। अहिंसात्मक आंदोलन का जो मंत्र राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने दिया था, ऐसा लगता है कि लोगों ने उसे पूरी तरह से भुला दिया है | लोकतांत्रिक मान्यताओं के मुताबिक शांतिपूर्ण और वैधानिक उपायों के ज़रिए किसी भी समस्या का अहिंसक तरीके से सर्वमान्य हल निकाला जा सकता है | लेकिन इसके ठीक विपरीत लोकतांत्रिक देशों में हिंसक संघर्ष तेजी से बढ़ रहे हैं | पाकिस्तान और म्यांमार में हिंसा की कई और वजहें भी है | मसलन धार्मिक कट्टरता, आतंकवाद और तानाशाही व्यवस्था। लेकिन भारत और श्रीलंका में बढ़ती हिंसक घटनाओं ने लोकतंत्र के साथ साथ बदलते सामाजिक सरोकार एवं लोगों की बदलती मानसिकता की एक नई तस्वीर ज़माने के सामने पेश की है | यह एक ऐसी तस्वीर है जिसे देखकर सीधेनतीजे पर सीधे किसी-नहीं पहुंचा जा सकताहै | आतंकवादी हिंसा और आपराधिक हिंसा पर तो पूरी दुनिया में चिंता जताई जाती है | लेकिन समाज के अंदर पिछले कुछ वर्षों में हिंसक गतिविधियों में लगातार बढ़ोतरी हो रही है | लेकिन इस सामाजिक हिंसा पर कोई भी गंभीरतापूर्वक ध्यान नहीं देता है | छोटीछोटी -बातों पर लोगों की जान ले ली जातीहै | ऐसी घटनाएं वाकई में चौकाने वाली है | आखिर समाज का ये कौन सा रूप है जो एकाएक जमाने के सामने हिंसक रुप लेकर खड़ा हो गया है | हाल की घटनाएं इस बात की गवाह है कि हिंसक घटनाओं में सिर्फ वयस्क ही शामिल नहीं होते है बल्कि अब छोटे छोटे बच्चे भी हिंसक गतिविधियों में शामिल हो गए है | दिल्ली में एक छह साल के लड़के ने चार साल के लड़के की जान ले ली। गुंड़गांव में एक नामी स्कूल के छात्र ने अपने साथी की

स्कूल परिसर में ही गोली मारकर हत्या कर दी। यानि अब समाज में हिंसा इस हद तक फैल चुकी है कि इसका बुरा असर बच्चों पर भी दिखाई देने लगा है | यहीं वजह है कि अब बच्चे भी हिंसक होते जा रहे हैं | कहा जाता है कि मारपीट और किसी की हत्या कर देना, इस काम को अशिक्षित और मानसिक रूप से बीमार लोग अंजाम देते हैं | लेकिन भारत का पढ़ा लिखा तबका या आधुनिक समाज इतना क्रूर क्यों होता जा रहा है | वैसे हिंसक गतिविधियों के मामलों में भारतीय समाज का अतीत ठीक नहीं रहा है | भारतीय समाज में बुद्ध, महावीर और गांधी जैसे लोगों का होना ही यह साबित करता है कि यहां हिंसा का बोलबाला रहा है | भारतीय समाज ने हजारों वर्ष पुरानी सभ्यता में संघर्ष के साथ साथ सह अस्तित्व को भी विकसित किया है और इसे भी एक जीवन मूल्य के रूप में स्थापित किया है | लेकिन आज़ादी के बाद के वर्षों में सहअस्तित्व की भावना धीरे धीरे हमारे समाज से खत्म होती जा रही है | आंतरिक हिंसा में बढ़ोतरी का यह एक मुख्य कारण है | इस सबके अलावा बाज़ार का उन्मादक होते जाना और उपभोक्तावाद का सांस्कृतिक स्तर पर आक्रामक होना भी इस बढ़ती हुई हिंसा की एक प्रमुख वजह है | आज़ादी के बाद हमने कोई नए मूल्य तो अर्जित नहीं किए, बल्कि जो मूल्य विकसित हो रहे थे उन्हें भी हमने खो दिया है | अब लोगों के पास कोई मूल्य नहीं होता है, बस एक लक्ष्य होता है और उसे पाने के लिए कोई कुछ भी करने को तैयार रहता है | इस कुछ भी में हिंसा भी शामिल है | भारत में लोकतंत्र की जड़ें इतनी मजबूत होने के बावजूद अगर हिंसक आंदोलन इतनी तेजी से फैल रहे हैं, तो हिंसा के इस नए ट्रेंड की गहराई से जांच पड़ताल होनी चाहिए। वैसे तो आधुनिक समाज में बढ़ती हुई हिंसा के लिए किसी एक वजह को जिम्मेदार नहीं माना जा सकता है | देश में आतंकवाद की जड़े दिन्प्रतिदिन गहरी होती जा रही है तथा नक्सलवाद और-प में फैलती जा रहीजिहाद के रूहै | आतंकवाद ने भारत ही नहीं पूरे विश्व को हिला के रख दिया है| हाल ही में छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा में नक्सली हमले में सीआरपीएफ के 76 जवान शहीद हुए, यदि इस प्रकार की हिंसा देश में चलती रही तो देश का अमन चैन खतरे में पड़ जायेगा। देश की सरकार व कानून से अपेक्षा करते हुए देश के नागरिक से अपील है कि इस मानवीय हिंसा को रोकें तथा शांति की स्थापना करने के लिये कदम बढ़ायें।

आगे हम हिंसा के विभिन्न रूप जो प्राय: समाज में देखने कों मिलते हैं जैसे धार्मिक हिंसा, महिलाओं पर हिंसा, जातिवाद द्वरा उपजी हिंसा, क्षेत्रवाद और भाषावाद द्वारा उत्पन्न हिंसा के बारे में अध्ययन करेंगे -

20.5 धार्मिक हिंसा

भारत में सांप्रदायिक संघर्षब्रिटिश शासन से आज़ादी के आसपास के समय से ही प्रचलित हैं | भारत में सांप्रदायिक हिंसा की सबसे पुरानी घटनाओं में केरल मोप्लाह (Moplah) विद्रोह था, जब कट्टरपंथी इस्लामी जंगियों ने हिंदुओं की हत्या कर दी. भारत विभाजन के दौरान हिंदुओं/ सिखों और मुसलमानों के बीच सांप्रदायिक दंगों में बड़े पैमाने पर हुई हिंसा में लोग बड़ीसंख्या में मारे गए थे। जब भी कोई धर्म अथवा धार्मिक समुदाय सिर्फ अपने धर्म अथवा आस्था को पूरी दुनिया पर थोपने का प्रयास करता है तो हिंसा का रूप ले लेता है, यह कट्टरता और अन्य धर्मों के प्रति ईर्ष्या, असहिष्णुता धार्मिक दंगों के रूप में समाज को झेलने पड़ते हैं | जिनसे सैकड़ों व्यक्ति अकाल मौत के शिकार होते हैं और हजारों व्यक्ति घायल एवं अपाहिज हो जाते हैं| इंसान धर्म के नाम पर इंसान से हैवान बनते देखा जाता है | वह जानवर का रूप ले लेता है | ऐसे धार्मिक अनुयायी से तो किसी

धर्म को न मानने वाला (नास्तिक) जो ईर्ष्या और हिंसा से दूर रहता है समाज के लिए उपयोगी होता है।यदि वह अपने कार्यों को इंसानियत के दायरे में रहकर करता है वह समाज का हितैषी होता है | प्रत्येक धर्म का उद्भव समाज को व्यवस्थित और मानवता के दायरे में रखने के लिए हुआ था जिसने कालांतर में अवांछित रूपधारण कर लिया।

1984 के सिख विरोधी दंगों में चार दिन की अवधि के दौरान भारत की नरमदलवादी धर्मनिरपेक्ष कांग्रेस पार्टी के सदस्यों द्वारा सिखों की हत्या होती रही, कुछ लोगों का अनुमान है कि 2,000 से अधिक मारे गए थे। अन्य घटनाओं में 1992 के मुंबई दंगे तथा 2002 के गुजरात की हिंसा की घटनाएं शामिल हैं- उत्तरार्द्ध वाली घटना में, इस्लामी आतंकवादियो ने हिंदू यात्रियों से भरी गोधरा में खड़ी ट्रेन को एक हमले में जला डाला, जिसमें 58 हिंदू मारे गए थे , इस घटना के परिणामस्वरूप 1000 से अधिक मुसलमान मारे गए थे |कई कस्बों और गांवों को छिटपुट छोटी -मोटी घटनाएं त्रस्त करती रही हैं; जिसमें से एक उदहारण स्वरुप उत्तर प्रदेश के मऊ में हिंदू-मुस्लिम दंगे के दौरान पांच लोगों की हत्या थी, जो एक प्रस्तावित हिंदू त्योहार के समारोह के उपलक्ष में भड़का दिया गया था। ऐसी ही एक अन्य घटना में को सांप्रदायिक दंगों में2002 मराद नरसंहार शामिल है, जिसे उग्रवादी इस्लामी गुट राष्ट्रीय विकास मोर्चा द्वारा अंजाम दिया गया था, साथ ही साथ तमिलनाडु में इस्लामवादी तमिलनाडु मुस्लिम मुनेत्र कज़घमद्वारा निष्पादित हिन्दुओं के खिलाफ सांप्रदायिक दंगे हैं |आज तो पूरी दुनिया में धार्मिक कट्टरता को आतंकवाद का रूप दे दिया गया है।शायद कुछ कुटिल बुद्धि लोग धर्म-मजहब का सहारा लेकर जनता को गुमराह करना चाहते हैं | उनका आहवान अपने धर्मावलंबियों से होता है कि वे अपने धर्म को पूरे विश्व में लागू करवायें, भले ही उसके लिए उन्हें हिंसा और आतंकवाद-आत्मघात का सहारा लेना पड़े। इसी आहवान के जरिये भोली-भाली जनता से समर्थन, सहयोग, उन्माद, सहानुभूति पाने में सफल होते हैं | पूरी दुनिया में आतंकवाद विभिन्न रूपों में उभर रहा है।

प्रत्येक धर्मानुयायी को यह समझना आवश्यक है कि धर्म का अस्तित्व मानवता की सेवा के लिए है न कि मानव का अस्तित्व धर्म के लिएं धर्म एक आस्था है, विश्वास है, आस्था और विश्वास डंडे के जोर से उत्पन्न नहीं होता। अपनी आस्था, विचारों, इच्छाओं को किसी अन्य व्यक्ति अथवा समाज पर थोपने का अधिकार किसी को नहीं हो सकता।

प्रत्येक धर्म के अनुयायी को अपने प्रचार प्रसार करने, उसके लाभों से किसी को प्रेरित करना, वांछनीय है| परन्तु अपने धर्म के प्रचार को जेहाद अथवा आतंकवाद का रूप देकर पूरी दुनिया अपनी मुट्ठी में करने का इरादा रखना धर्म विरूद्ध है | इंसानियत के विरूद्ध है | ऐसा व्यक्ति अथवा समुदाय मानवता का दुश्मन है | आतंकवादी धार्मिक व्यक्ति नहीं बल्कि हैवानियत का पर्याय है| वह न स्वयं जीना चाहता है और न ही अन्य को जीने देता है| क्योंकि उसे भ्रम है कि धर्म के लिए मरने वाला जन्नत का भागीदार बनता है | उसकी यही कट्टरता उसे हिंसक बना देती है।

धार्मिक कट्टरता जो हिंसा का रूप लेती है वह भी शिक्षा का अभाव और देशप्रेम की कमी के कारण होती है जो आतंकवाद तक परिवर्तित हो जाती है।आतंकवाद को फल-फूलने में अनेक कारक सहयोग करते हैं, उनमें उनमें भ्रष्टाचार,गरीबी,देशभक्ति का अभाव, नेताओं की कमजोर इच्छाशक्ति, आम जनता की उदासीनता प्रमुख है।

20.6 क्षेत्रवाद और भाषावाद द्वारा उत्पन्न हिंसा

देश क्षेत्रवाद और जातिवाद के कारण खड़ी होने वाली दर्जनों समस्याओं से जूझ रहा है | समाज में हिंसा कों बढ़ाने वाले यह मुख्य कारकों में से हैं | क्षेत्रवाद और जातिवाद देश की एकता, अखंडता के लिए खतरा होने के साथ ही राष्ट्रनिर्माण और विकास में बाधाएं भी डाल रहा है | क्षेत्र एक भौगोलिक शब्द है | भौगोलिक परिदृश्य में क्षेत्र स्थिर रहता है, लेकिन जैसे ही इसे सामाजिक और राजनीतिक परदृिश्य में देखा जाता है, तो इसकी कई दिशाएं व सिरे नजर आने लगते हैं, जो काफी गतिमान होते हैं | इसी क्षेत्र को जब राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पहलू से समझा जाता है, तो इसमें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व भूगर्भ तथ्य शामिल हो जाते हैं | क्षेत्र में ऐसे ही कई तथ्य और पहलू शामिल रहते हैं, जो मिलकर इसे एक इकाई बनाने के साथ ही जीवन भी देते हैं | क्षेत्र एक देश की प्रशासकीय इकाई हो सकता है या राष्ट्रों के समूह का भू-रणनीतिक संयोजन हो सकता है, जिसमें राजनीतिक-आर्थिक या सैन्य हित शामिल रहते हैं | इसी तरह क्षेत्र ऐतिहासिक, भाषाई, सांस्कृतिक, सामाजिक और ढांचागत आधार पर विषमता भी प्रदर्शित करता है | जातिवाद राष्ट्रनिर्माण और एकीकरण में सबसे बड़ी बाधा है | जाति प्राचीन कालीन प्रणाली है, जिसका परंपरागत तौर पर अनुसरण किया जा रहा है | लिहाजा, लोगों को नए विचार और वैज्ञानिक सिद्धांतों को स्वीकार करने में परेशानी होती है | जातिवाद राष्ट्रवाद के विकास और वृद्धि का रोड़ा है | इसी जातिवाद के कारण देश कई समूहों और उप-समूहों में बंट चुका है | यही नहीं, जातियों में भी उप-जातियां हैं | इस वजह से कई बार अंतर-जातीय और जाति के भीतर ही तनाव की स्थिति देखी गई है | इस विवाद से राष्ट्र के एकीकरण को धक्का लगता है | यह जातिवाद लोकतांत्रिक क्रियाकलापों में भी व्यवधान डालता है | राजनेता जातिवाद को अपने फायदे के लिए भुनाते हैं | चुनावों के समय अक्सर देखा गया है कि विभिन्न नेता व दल जाति के आधार पर वोट मांगते हैं और वे अपने इरादों में कामयाब भी हो जाते हैं | जातिवाद ने राजनीति के आधुनिकीकरण के सपने को भी कमजोर किया है | सबसे बड़ी समस्या यह है कि यह जातिवाद धर्मनिरपेक्ष समाज के निर्माण में भी रुकावट बनकर खड़ा है और समाज में हिंसा कों जन्म दिया है |

महिलाओं पर हिंसा

पुलिस रिकॉर्ड में महिलाओं के खिलाफ भारत में अपराधों का उच्च स्तर दिखाई पड़ता है | राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो ने 1998 में यह जानकारी दी थी कि 2010 तक महिलाओं के विरुद्ध अपराधों की विकास दर जनसंख्या वृद्धि दर से कहीं ज्यादा हो जायेगी| बलात्कार, छेड़छाड़, एसिड अटैक, यौन शोषण, कार्यस्थल पर शोषण, घरेलू हिंसा इत्यादि विभिन्न प्रकार के हिंसा के प्रकार समाज में महिलाओं के प्रति देखने कों मिलते हैं | कई तो इतने खौफनाक और दर्दनाक होते हैं, जिनके बारे में चर्चा करना ही विचलित कर देता है | मामलों को इनसे जुड़े सामाजिक कलंक की वजह से कई मामलों को पुलिस में दर्ज ही नहीं कराया जाता था। इस प्रकार की हिंसात्मक प्रवृत्ति में निरंतर वृद्धि हुई है |

यौन उत्पीड़न

1990 में महिलाओं के विरुद्ध दर्ज की गयी अपराधों की कुल संख्या का आधा हिस्सा कार्यस्थल पर छेड़छाड़ और उत्पीड़न से संबंधित था।लड़कियों से छेड़छाड़ (एव टीजिंग) पुरुषों द्वारा महिलाओं के यौन उत्पीड़न या छेड़छाड़ के लिए इस्तेमाल की जाने वाली एक चालबाज तरकीब (युफेमिज्म) है |

कई कार्यकर्ता (एक्टिविस्ट) महिलाओं के खिलाफ यौन उत्पीड़न की बढ़ती घटनाओं के लिए "पश्चिमी संस्कृति" के प्रभाव को दोषी ठहराते हैं | विज्ञापनों या प्रकाशनों, लेखनों, पेंटिंग्स, चित्रों या किसी तरीके से महिलाओं के अश्लील प्रतिनिधित्व को रोकने के लिए 1987 में महिलाओं का अश्लील प्रतिनिधित्व (निषेध) अधिनियम पारित किया गया था।1997 में एक ऐतिहासिक फैसले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यस्थल में महिलाओं के यौन उत्पीड़न के खिलाफ एक मजबूत पक्ष लिया। न्यायालय ने शिकायतों से बचने और इनके निवारण के लिए विस्तृत दिशा-निर्देश भी जारी किया। बाद में राष्ट्रीय महिला आयोग ने इन दिशा-निर्देशों को नियोक्ताओं के लिए एक आचार संहिता के रूप में प्रस्तुत किया।

दहेज

1961 में भारत सरकार ने वैवाहिक व्यवस्थाओं में दहेज़ की मांग को अवैध करार देने वाला दहेज निषेध अधिनियम पारित किया। हालांकि दहेज-संबंधी घरेलू हिंसा, आत्महत्या और हत्या के कई मामले दर्ज किये गए हैं | 1980 के दशक में कई ऐसे मामलों की सूचना दी गयी थी। 1985 में दहेज निषेध (दूल्हा और दुल्हन को दिए गए उपहारों की सूचियों के रख -रखाव संबंधी) नियमों को तैयार किया गया था। इन नियमों के अनुसार दुल्हन और दूल्हे को शादी के समय दिए गए उपहारों की एक हस्ताक्षरित सूची बनाकर रखा जाना चाहिए. इस सूची में प्रत्येक उपहार, उसका अनुमानित मूल्य, जिसने भी यह उपहार दिया है उसका नाम और संबंधित व्यक्ति से उसके रिश्ते एक संक्षिप्त विवरण मौजूद होना चाहिए. हालांकि इस तरह के नियमों को शायद ही कभी लागू किया जाता है।1997 की एक रिपोर्ट में यह दावा किया गया था कि दहेज़ के कारण प्रत्येक वर्ष कम से कम 5,000 महिलाओं की मौत हो जाती है और ऐसा माना जाता है कि हर दिन कम से कम एक दर्जन महिलाएं जान-बूझकर लगाई गयी "रसोईघर की आग" में जलाकर मार दी जाती हैं | इसके लिए उपयोग किया जाने वाला शब्द है "दुल्हन की आहुति" (ब्राइड बर्निंग) और स्वयं भारत में इसकी आलोचना की जाती है | शहरी शिक्षित समुदाय के बीच इस तरह के दहेज़ उत्पीड़न के मामलों में काफी कमी आई है।

बाल विवाह

भारत में बाल विवाह परंपरागत रूप से प्रचलित रही है और यह प्रथा आज भी जारी है | ऐतिहासिक रूप से कम उम्र की लड़कियों को यौवनावस्था तक पहुँचने से पहले अपने माता-पिता के साथ रहना होता था। पुराने जमाने में बाल विधवाओं को एक बेहद यातनापूर्ण जिंदगी देने , सर को मुंडाने, अलग-थलग रहने और समाज से बहिष्कृत करने का दंड दिया जाता था। हालांकि 1860 में बाल विवाह को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया था लेकिन आज भी यह एक आम प्रथा है | यूनिसेफ की "स्टेट ऑफ द वर्ल्ड्स चिल्ड्रेन-2009" की रिपोर्ट के अनुसार 20-24 साल की उम्र की भारतीय महिलाओं के 47% की शादी 18 साल की वैध उम्र से पहले कर दी गयी थी जिसमें 56% महिलाएं ग्रामीण क्षेत्रों से थीं।रिपोर्ट में यह भी दिखाया गया कि दुनिया भर में होने वाले बाल विवाहों का 40% अकेले भारत में ही होता है।

देवदासी

देवदासी दक्षिण भारत के कुछ हिस्सों में एक धार्मिक प्रथा है जिसमें देवता या मंदिर के साथ महिलाओं की "शादी" कर दी जाती है | यह परंपरा दसवीं सदी एतक अच्छी तरह अपनी पैठ .डी.

बाद की अवधि में देवदासियों का अवैध यौन उत्पीडन भारत के कुछ हिस्सों में ए | थी जमा जुकीक रिवाज बन गया।

डायन प्रथा

डायन प्रथा के बढ़ते प्रभाव के मद्देनजर झारखण्ड जैसे राज्यों ने पहले ही कानून बना लिए हैंअब . छत्तीसगढ़, राजस्थान और हरियाणा भी इसी राह पर हैंक कार्यकर्ताओ का कहना है कुछ सामाजि. कि मौजूदा कानून के तहत भी कार्रवाई की जा सकतीहै | डायन प्रथा के नाम पर महिलाओं के उत्पीड़न की घटनाएं रह्रहकर सर उठाती रही हैं- |

कन्या भ्रूण हत्या और लिंग के अनुसार गर्भपात

भारत में पुरुषों का लिंगानुपात बहुत अधिक है जिसका मुख्य कारण यह है कि कई लड़कियां वयस्क होने से पहली ही मर जाती हैं |भारत के जनजातीय समाज में अन्य सभी जातीय समूहों की तुलना में पुरुषों का लिंगानुपात कम है | ऐसा इस तथ्य के बावजूद है कि आदिवासी समुदायों के पास बहुत अधिक निम्न स्तरीय आमदनी, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएं मौजूद हैं | इसलिए कई विशेषज्ञों ने यह बताया है कि भारत में पुरुषों का उच्च स्तरीय लिंगानुपात कन्या शिशु हत्या और लिंग परीक्षण संबंधी गर्भपातों के लिए जिम्मेदार है।जन्म से पहले अनचाही कन्या संतान से छुटकारा पाने के लिए इन परीक्षणों का उपयोग करने की घटनाओं के कारण बच्चे के लिंग निर्धारण में इस्तेमाल किये जा सकने वाले सभी चिकित्सकीय परीक्षणों पर भारत में प्रतिबंध लगा दिया गया है | कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में कन्या शिशु ह्त्या (कन्या शिशु को मार डालना) आज भी प्रचलित है।भारत में दहेज परंपरा का दुरुपयोग लिंग-चयनात्मक गर्भपातों और कन्या शिशु ह्त्याओं के लिए मुख्य कारणों में से एक रहा है।

घरेलू हिंसा

घरेलू हिंसा की घटनाएं आज समाज के हर तबके में देखी जा सकती हैं | सरकार द्वारा नियमों के बावजूद, इस प्रकार की हिंसा में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं पाई गई हैं | इसके बारे में विस्तृत रूप से हम आगे चर्चा करेगे |

तस्करी

अनैतिक तस्करी (रोक) अधिनियम 1956 में पारित किया गया था। हालांकि युवा लड़कियों और महिलाओं की तस्करी के कई मामले दर्ज किये गए हैं | इन महिलाओं को वेश्यावृत्ति, घरेलू कार्य या बाल श्रम के लिए मजबूर किया जाता रहा है।

उपरोक्त सभी प्रकार के अपराध, सामाजिक हिंसा के कारण बनते हैं | यंह यह कहा जा सकता है की महिलाओं के प्रति यदि हम संवेदनशील नहीं होते हैं तो इसका खामियाजा समाज कों भुगतना पड़ सकता है |

20.7 जातिगत हिंसा

आज हम 21वीं सदी में जी रहे हैं | आज़ादी के वक्त लोकतांत्रिक, ''समाजवादी'', धर्मनिरपेक्ष वगैरह-वगैरह लच्छेदार भ्रमपूर्ण शब्दों का जो मायाजाल रचा गया था वह आज छिन्न-भिन्न हो चुका है | एक ओर देश का अस्सी फीसदी मेंहनतकश अवाम भयंकर अभाव और ग़रीबी में जी रहा है और

वहीं इस मेंहनतकश अवाम के एक विशाल हिस्से, यानी दलित आबादी को जातिगत उत्पीड़न और अपमान का दंश भी झेलना पड़ता है|

भारतीय समाज में जातिगत उत्पीड़न एक वीभत्स सच्चाई के रूप में सदियों से मौजूद रहा है | अंग्रेज़ों के आने से पहले भारतीय सामन्ती सामाजिक संरचना में यह निरन्तरता के साथ मौजूद था। समय-समय पर दलितों और पिछड़ों ने इस जातिगत उत्पीड़न और इससे जुड़े आर्थिक शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठायी और बीच-बीच में कबीर, पल्टू, रैदास और नानक जैसे विद्रोही चरित्र पैदा होते रहे। भक्ति आन्दोलन के रूप में एक दमित प्रतिरोध अस्तित्व में आया। इसी बीच अंग्रेज़ों द्वारा भारत का औपनिवेशीकरण हुआ और अंग्रेज़ों ने अपनी सत्ता के सुदृढ़ीकरण के बाद दलित उत्पीड़न के विरोध में कुछ काग़ज़ी कानून और नियम तो ज़रूर बनाए लेकिन ज़मीनी स्तर पर सामन्ती आर्थिक शोषण के हर उस रूप को और मज़बूती प्रदान की जिससे कि ऊँची जातियों का प्रभुत्व और मज़बूत और अश्मीभूत हुआ। आज़ादी के बाद भारतीय पूँजीवादी सत्ता ने दलितों को आरक्षण दिया और उनके बीच से एक बेहद छोटी अल्पसंख्यक आबादी को नौकरियों और सत्ता में थोड़ी भागीदारी देकर अपना वफादार तो बनाया लेकिन करीब 97 प्रतिशत दलित आबादी आज भी खेतिहर या औद्योगिक मज़दूर है और बर्बरतम जातिगत उत्पीड़न और पूँजीवादी शोषण का शिकार है | सत्ताधारी वर्ग समय-समय पर मेंहनतकश आबादी के बीच जातिवादी राजनीति और अस्मितावादी एन.जी.ओ. राजनीति (तथाकथित ''सामाजिक आन्दोलन'') के जरिये फूट डालकर दलित आबादी को अलग करने और मज़दूरों की क्रान्तिकारी राजनीति को कमज़ोर करने का काम करता है | दलितों का एक हिस्सा जो निम्न मध्यवर्ग या मध्यम मध्यवर्ग की श्रेणी तक पहुँच सका है वह भी इस अस्मितावादी राजनीति का काफी हद तक शिकार बनता है |

घरेलू हिंसा

घरेलू हिंसा की जड़ें हमारे समाज तथा परिवार में गहराई तक जम गई हैं | घरेलू हिंसा के खिलाफ यदि कोई महिला आवाज मुखर करती है तो इसका तात्पर्य होता है अपने समाज और परिवार में आमूलचूल परिवर्तन की बात करना। प्राय: देखा जा रहा है कि घरेलू हिंसा के मामले दिनों-दिन बढ़ते जा रहे हैं | परिवार तथा समाज के संबंधों में व्या।प्त ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, अपमान तथा विद्रोह घरेलू हिंसा के मुख्यं कारण हैं | परिवार में हिंसा की शिकार सिर्फ महिलाएं ही नहीं बल्कि वृद्ध और बच्चे भी बन जाते हैं | प्रकृति ने महिला और पुरूष की शारीरिक संरचनाएं जिस तरह की हैं उनमें महिला हमेंशा नाजुक और कमजोर रही है, वहीं हमारे देश में यह माना जाता रहा है कि पति को पत्नि पर हाथ उठाने का अधिकार शादी के बाद ही मिल जाता है | वर्ष 2006 में भारत में घरेलू हिंसा से पीडित महिलाओं, बच्चोंअथवा वृद्धों को कुछ राहत जरूर मिल गयी है।

महिलाओं पर हिंसा के कारण -

भारतीय समाज में महिलाओं पर हिंसा के प्रमुख कारण क्रमशः परिवार में पुत्र को प्राथमिकता , तथा महिलाओं की अशिक्षा या अल्प शिक्षा है जिसकी परिणिति दहेज मृत्यु,बहुओं को जलाना एवं घरेलु हिंसा के रूप में आती है । इनके अतिरिक्त, असमान विवाह संबंध जिनमें शारीरिक, बौद्धिक स्तर, आर्थिक व सामाजिक स्थिति महत्वपूर्ण है, पति का कंजूस, जुआरी, सट्टेबाज, शराबी या व्यभिचारी होना भी मुख्य कारण है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि यह है कि पुरूष महिला को प्रारंभ से ही अपने आधीन नौकर व गुलाम की तरह व्यवहार करता रहा है और यह स्थिति इसलिए उत्पन्न हुई कि शुरू से ही पुरूष नें महिलाओं को सभी प्रकार के अधिकारों व शक्तियों से वंचित करके उन्हें आर्थिक रूप से दयनीय स्थिति में रखकर अपने अधीन नौकर बनाकर रखा था। अनादिकाल से महिलाओं को तरह तरह के अपमान जनक व्यवहारों व दुखों एवं परेशानियों से पीडित उत्पीडित किया जाता रहा है | उन्हें सार्वजनिक राजनैतिक या सामाजिक अथवा आर्थिक जीवन में कभी सम्मानीय स्थान प्रदान नहीं किया गया।

बालिका के जन्म को भारतीय समाज में अस्वागत योग्य माना गया है और यदि दूसरी पुत्री का जन्म हो तब तो जन्म देनें वाली महिला की स्थिति अत्यधिक पीडादायक हो जाती है | महिलाओं को अविश्वसनीय, अज्ञानी, भावुक तथा अविवेकी तक माना गया है | यही कारण है कि मेंडीकल टर्मिनेशन आफ प्रगनेंसी एक्ट 1970 एवं गर्भधारण पूर्व और प्रसूति पूर्व निदान तकनीकी लिंग चयन प्रतिषेध अधिनियम 1994 के पारित होने के पश्चात भी आज भी भारत में जन्म से लेकर 6 वर्ष तक की बालिकाओं को मार देनें की घटनाएं विशेष तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में असामान्य नहीं है।

दहेज प्रथा की सामाजिक कुरीतिया, पारिवारिक संस्कार, वादविवाद की स्थिति निर्मित होनें पर वर - पक्ष के समक्ष सदैव अत्यधिक आदर सम्मान प्रदर्शित करनें एवं स्वयं कोउनके समक्ष नगण्य व अत्यन्त दीनहीन माननें की मानसिकता-, पति अथवा पति पक्ष के परिवारजन की आज्ञा व आदेश चाहे वह अनुचित एवं अनावश्यक ही क्यों न हो, उनका विरोध न करके उन्हें शिरोधार्य करनें की कुप्रथाओं के कारण बालिकाओं से अमानवीय व्यवहार की स्थिति निर्मित होती है।

उपरोक्त स्थितियों में युद्ध मार्शल रेस, करने वाली जातियों व समाज में उच्च सम्मान या शासन में उच्च पदों पर आसीन व्यक्ति उपरोक्त स्थिति से बचने के लिए अपनी कन्याओं का जन्म होते ही वध कर देना उचित समझते थे ताकि उनके मान सम्मान में कमी न होवे। वर्तमान युग में शिक्षा की बदौलत अब स्थिति में कुछ सुधार हुआ है और समाज को इस कुरीति से थोडा छुटकारा मिला है लेकिन इस मानसिकता की बदौलत अब परिवार नियोजन, या गर्भ में बालिका की मृत्यु के दुष्परिणाम सामनें आनें लगे है जिसके मुताबिक भारत वर्ष में प्रत्येक 1000 पुरूषों के अनुपात में महिलाओं की संख्या 933 है जो कि पाकिस्तान चीन तथा बंगलादेश जैसे पडोसी देशों से भी कम है | पंजाब में तो 1000 पुरूषों की तुलना में केवल 793 महिलाएं है।

घरेलू हिंसा की परिभाषा

पुलिस - महिला, वृद्ध अथवा बच्चों के साथ होने वाली किसी भी तरह की हिंसा अपराध की श्रेणी में आती है | महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा के अधिकांश मामलों में दहेज प्रताड़ना तथा अकारण मारपीट प्रमुख हैं |

राज्य महिला आयोग - कोई भी महिला यदि परिवार के पुरूष द्वारा की गई मारपीट अथवा अन्य प्रताडना से त्रस्त है तो वह घरेलू हिंसा की शिकार कहलाएगी। घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम 2005 उसे घरेलू हिंसा के विरूद्ध संरक्षण और सहायता का अधिकार प्रदान करता है।

आधारशिला (एन.जी.ओ.) - परिवार में महिला तथा उसके अलावा किसी भी व्यक्ति के साथ मारपीट, धमकी देना तथा उत्पीडन घरेलू हिंसा की श्रेणी में आते हैं | इसके अलावा लैंगिक हिंसा, मौखिक और भावनात्मक हिंसा तथा आर्थिक हिंसा भी घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम 2005 के तहत अपराध की श्रेणी में आते हैं |

(पुलिस, राज्य महिला आयोग तथा एन.जी.ओ. द्वारा घरेलू हिंसा की जो परिभाषाएं दी गई हैं उनका तात्पर्य लगभग एक जैसा ही है हालांकि भाषा परिवर्तित है।)

घरेलू हिंसा- विश्व की स्थिति

महिलाओं को अधिकारों की सुरक्षा को अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक (1975-85) के दौरान एक पृथक पहचान मिली थी। सन् 1979 में संयुक्तराष्ट्र संघ में इसे अंतर्राष्ट्री य कानून का रूप दिया गया था। विश्व के अधिकांश देशों में पुरूष प्रधान समाज है | पुरूष प्रधान समाज में सत्ता पुरूषों के हाथ में रहने के कारण सदैव ही पुरूषों ने महिलाओं को दोयम दर्जे का स्था न दिया है | यही कारण है कि पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं के प्रति अपराध, कम महत्वं देने तथा उनका शोषण करने की भावना बलवती रही है | ईरान, अफगानिस्तान जैसे विकासशील देश में भी महिलाओं के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है | अमेरिका में एक नियम है, जिसके अनुसार महिलाओं के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है | यदि एक परिवार में माँ और बेटा है तो वे एक ही शयन कक्ष के मकान के हकदार होंगे । इससे स्पष्ट है कि अमेरिका जैसे देश में भी महिलाओं के प्रति भेदभाव किया जाता है | दुनिया के सबसे अधिक शक्तिशाली व उन्नत राष्ट्र होने के बावजूद अमेरिका में अनेक क्षेत्रों में महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं |

भारत में घरेलू हिंसा

दिल्ली स्थित एक सामाजिक संस्थान द्वारा कराये गये अध्ययन के अनुसार भारत में लगभग पांच करोड़ महिलाओं को अपने घर में ही हिंसा का सामना करना पड़ता है | इनमें से मात्र 0.1 प्रतिशत ही हिंसा के खिलाफ रिपोर्ट लिखाने आगे आती हैं |

घरेलू हिंसा के प्रमुख कारण

पालन-पोषण में पितृसत्ता अधिक महत्व रखती है इसलिए लड़की को कमजोर तथा लड़के को साहसी माना जाता है | लड़की स्वातंत्र्य व्यक्तित्व को जीवन की आरम्भ अवस्था में ही कुचल दिया जाता है | घरेलू हिंसा के प्रमुख कारण निम्न माने जाते हैं :-

1. समतावादी शिक्षा व्यवस्था का अभाव।
2. महिला के चरित्र पर संदेह करना।
3. शराब की लत।
4. इलेक्ट्रा निक मीडिया का दुष्प्रभाव।
5. महिला को स्वावलम्बी बनने से रोकना।

घरेलू हिंसा का दुष्प्रभाव

महिलाओं तथा बच्चों पर घरेलू हिंसा के शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्माक दुष्प्रंभाव पड़ते हैं | इसके कारण महिलाओं के काम तथा निर्णय लेने की क्षमता पर प्रभाव पड़ता है | परिवार में आपसी रिश्तों और आस-पड़ौस के साथ रिश्तों व बच्चों पर भी इस हिंसा का सीधा दुष्प्र भाव देखा जा सकता है

- घरेलू हिंसा के कारण देहज मृत्यु, हत्या और आत्म हत्या बढ़ी हैं | वेश्यांवृत्ति की प्रवृत्ति भी इसी कारण बढ़ी है।

- महिला की सार्वजनिक भागीदारी में बाधा होती है | महिलाओं की कार्य क्षमता घटती है, साथ ही वह डरी-डरी भी रहती है | परिणामस्वरूप प्रताडित महिला मानसिक रोगी बन जाती है जो कभी-कभी पागलपन की हद तक पहुंच जाती है।

- पीडित महिला की घर में द्वितीय श्रेणी की स्थिति स्थापित हो जाती है।

पुलिस की भूमिका

- घरेलू हिंसा के प्रकरणों में कई बार पुलिस द्वारा एफ.आई.आर. दर्ज नहीं की जाती, सिर्फ रोजनामचे में लिखा जाता है | ग्रामीण क्षेत्रों में प्रताडित महिलाओं को एफ.आई.आर. की नकल नहीं दी जाती। मांगने पर अकारण परेशान किया जाता है | आंकडे बढ़ जाएंगे इस कारण प्रकरण पंजीबद्ध करने से पुलिस बचती है।

- पति द्वारा महिलाओं को पीटने अथवा मानसिक यंत्रणा देने को पुलिस बड़ा मुद्दा नहीं मानती। अक्सर उसका कहना होता है कि 'पति ने ही तो पीटा है ऐसी क्या बात हो गई, पति मारता है तो प्यार भी करता है।' यह कहकर पुलिस प्रताडित महिला को टाल देती है | चूंकि महिला की शारिरिक चोट पुलिस को दिखाई नहीं देती इसलिए भी वह उसे गंभीरता से नहीं लेती ।

- थाने में सिर्फ एक यो दो महिला सिपाही पदस्थ की जाती हैं | महिला या घरेलू हिंसा से संबंधितप्रकरणों में प्राय: उनका हस्तक्षेप कम कर दिया जाता है, क्योंकि उनका अधिकारी सहित बहुमत पुलिस का है | यही कारण है कि महिला पुलिसकर्मी भी घरेलू हिंसा की शिकार महिला की ज्यातदा मदद नहीं कर पाती हैं | कई बार तो उनका ही शोषण कर लिया जाता है।

- थाना स्तर पर संवेदनशील लोग नहीं हैं |

- पुलिसकर्मी रिश्वतत लेकर प्रताडित महिला को समझौते के लिए विवश करते हैं अथवा प्रकरण को कमजोर कर देते हैं |

- पुलिस का कहना होता है कि दहेज तथा घरेलू हिंसा के झूठे प्रकरण ही अधिक होते हैं |

- डाकन, नाता आदि मानसिक यंत्रणाओं के मुद्दे पर पुलिस असंवेदनशील है | पुलिस का कहना है कि यह सामाजिक मुद्दा है, पुलिस का नहीं।

- 498, मामले में पुलिस बिना किसी प्रशिक्षित पारिवारिक परामर्शदाता के सलाह देती है अथवा समझौता करा देती है | न तो इस समझौते में घटना का ब्यौरा होता है और न ही पति द्वारा यह लिखाया जाता है कि भविष्य में वह ऐसा नहीं करेगा।

परिवार व अन्य अदालतें |

- महिलाओं को उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने अथवा दोषियों को उपयुक्ता सजा दिलवाने के लिए पारिवारिक अदालतों का गठन सन 1984 में किया गया था । तब यह माना था कि अब महिला को घरेलू हिंसा से राहत मिल जाएगी।
- इन अदालतों में कहा जाता है कि वकील की जरूरत नहीं है पर सारे कागज वकील ही बनाते हैं और हर समय जज यही कहते हैं कि तुम्हा रे वकील कहां हैं ? उनको लाओ। यह एक बड़ा विरोधाभास है, इन अदालतों की कथनी और करनी में अंतर होता है |
- सोचा गया था कि इन अदालतों में मामले जल्दीं निबट जाएंगे पर इनमें भी समय बहुत लगता है।
- गुजारा भत्ता के आदेश हो जाते हैं पर उनका पालन नहीं होता।
- इन अदालतों में गवाहों पर बहुत जोर रहता है | पीडिता के लिए गवाह जुटाना मुश्किल होता है।
- अदालत में जो काउंसलर लगे हुए हैं उनके चयन में पारदर्शिता नहीं है | वे अपने विषय के विशेषज्ञ भी नहीं हैं |
- पारिवारिक अदालतों के मामलों को लकर कोई अध्ययन नहीं हुआ है कि वहां प्रताडित महिलाओं को किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।
- अच्छे वकील फीस अधिक मांगते हैं इस कारण पीडित महिलाओं को बहुत दिक्क त होती है।

जाति पंचायतें

परिवार-समुदायों, समुदायों की जाति पंचायतों का गांव में अधिक और शहरों में कम प्रभाव है | इनसे जातिवाद बढ़ा है | यह पंचायतें महिलाओं के हक में नहीं हैं |

- इन अदालतों में प्राय: प्रताडित महिलाओं को नहीं बुलाया जाता बल्कि उनके बारे में एक पक्षीय निर्णय ले लिया जाता है | हर जगह पुरूष प्रधान जाति पंचायतें ज्यादा हैं |
- जहाँ/महिलाओं की संस्था एं सक्रिय नहीं हैं वहां तो घरेलू हिंसा को लेकर हुए फैसले पूरी तरह एक पक्षीय रहे हैं |

हस्तक्षेप कैसे हो

- शिक्षा संस्थाओं में छात्राओं को खुलकर शिक्षा देना चाहिये ताकि वे घरेलू हिंसा की शिकार न हों। उन्हें काउंसिलिंगतथा कानूनी ज्ञान की जानकारी देना उचित होगा।
- गांव में यह पता लग जाता है कि किसके घर में समस्या चल रही है | शहर में यह पता नहीं लगता है इस कारण वहाँ हर स्तर पर बात करने की आवश्यकता है | शहर में समस्याग्रस्त

महिलाओं के संदर्भ में पुरूषों पर काउंसलिंग का असर नहीं होता। इसी कारण पुरूष छात्रों के साथ भी काउंसिलिंग का सिलसिला स्कूल-कॉलेज के स्तर से ही शुरू हो जाना चाहिये।

- शिक्षा के साथ-साथ लड़कियों में आत्मविश्वास पैदा हो, ऐसा प्रयास करना चाहिये। यह काम शिक्षकों का है | शिक्षकों के प्रशिक्षण में इस मुद्दे को शामिल किया जाना चाहिये।

- सम्पत्ति में लड़कियों को पूरा अधिकार होना चाहिए घर का वातावरण लड़की को आत्मविश्वा सी बनाता है | उसको मजबूत करने की आवश्यकता है।

पुलिस का हस्तक्षेप

- पुलिस को भूमिका काफी संवेदनशील बनाने की आवश्यकता है | उनकी ट्रेनिंग में घरेलू हिंसा एवं महिला संवेदनशीलता को विशेष रूप से शामिल किया जाना चाहिये ।

- प्रत्येक थाने पर प्रतिमाह 'समस्या समाधान शिविर' आयोजित करने का आदेश निकल चुका है पर उसकी किसी को भी जानकारी नहीं है | इसका व्यापक प्रचार-प्रसार किया जाना चाहियेा इसका दिन व समय तय होना चाहिये। अखबार/रेडियो/दूरदर्शन पर प्रचार होना चाहिये।

- थाने स्तर पर काउंसलर हो । विशेष रूप से घरेलू हिंसा के मामलों में पुलिस जब समझौता कराती है तो एक प्रशिक्षित काउंसलर की मदद लेना चाहिये।

महिला आयोग का हस्ताक्षेप

- महिला आयोग का महिला हिंसा के संबंध में संदेश सरकार को मिलना चाहिये। वह ताकतवर है, यह संदेश नहीं जा रहा है | वह अपने ही निर्णय को लागू नहीं करवा पा रहा है, यह स्थिति बदलना होगी।

- महिला आयोग को नीतिगत स्तर पर हस्तक्षेप करना चाहिये। जैसे महिला नीति कार्यस्थयल पर महिला यौन शोषण के बारे में उच्चतम न्यायालय के आदेश का क्रियान्व यन कैसे हो रहा है | महिला विकास कार्यक्रम की क्या उपादेयता है, उसे कैसे सार्थक बनाया जा सकता है | ऐसे कौन से निर्णय एवं कार्य हैं, जो महिलाओं पर विपरीत प्रभाव डाल रहे हैं, इन सब पर आयोग को नजर रखनी चाहिये और समय-समय पर हस्तक्षेप करते रहना चाहिये।

घरेलू हिंसा की व्यापकता एवं प्रकार तथा घरेलू हिंसा से महिलाओं के संरक्षण अधिनियम 2005 के मुख्य प्रावधान -

सम्पूर्ण विश्व में महिलाओं के प्रति घरेलु हिंसा की समस्या इतनी व्यापक है कि संयुक्त राज्य अमेंरिका में प्रत्येक 18 मिनट में एक महिला की धुनाई भारी मारपीट होती है और इस प्रकार प्रत्येक वर्ष लगभग 30 से लेकर 40 लाख महिलाऐं पीटी जाती है | हिन्दुस्तान में भी विवाहित महिलाओं में से 20 प्रतिशत के साथ गंभीर मारपीट व अत्याचार होते हैं जिसके फलस्वरूप प्रत्येक 6 घंटे में एक महिला या तो जीवित जला दी जाती है या उसका वध कर दिया जाता है अथवा उसे आत्महत्या हेतु विवश किया जाता है | प्रत्येक वर्ष दहेज के लिए ही लगभग 6500 महिलाओं की बलि दे दी जाती है | यह तथ्य भी चौंकने वाला है कि प्रत्येक 47 मिनिट में एक महिला के साथ बलात्कार होता है |

संयुक्त राज्य अमेंरिका में हर 6 मिनिट में महिलाओं के साथ बलात्कार व हर 8 सेकण्ड में किसी महिला के साथ मारपीट होती है | वहां महिलाओं के वध की अधिकांश घटनाओं में वध करने वाले या तो महिला के पति होते हैं अथवा उनके रिश्तेदार।

घरेलू हिंसा निसंदेह मानवीय अधिकारो, विशेषरूप से पति-पत्नी संबंधोंको लेकर वाद विवाद का विषय है। यह वास्तव में समाज और देश के विकास के लिए गंभीर एवं भयावह स्थिति है कि देश की आधी आबादी को पुरूषवर्ग दबाव एवं शोषण में रख रहा है वहीं कुछ अपवादों में यह भी सही है कि महिलाएँ अतिरंजित कार्यवाही कर निर्दोष या कम दोषी को तंग और परेशान कर रही हैं |

इस सब बातों से महिलाओं के संरक्षण के लिये "घरेलू हिंसा से महिला सरंक्षण अधिनियम २००५" अधिनिमय बनाया गया है जिसके मुताबिक राज्य पक्ष की यह जिम्मेदारी है कि वह स्त्रियों के प्रति किसी भी प्रकार की हिंसा के विरूद्ध प्रभावी कार्यवाही करे विशेष तौर से जब हिंसा परिवार/कुटुम्ब के भीतर घटित हो रही हो।

घरेलू हिंसा अधिनियम की मूल मंशा प्रताडित करने वाले पति या उसके परिवारजन को दण्डित किये जानें की न होकर मुख्य उद्देष्य पति-पत्नी व परिवारजन के मध्य आपसी सामंजस्य स्थापित करना है | इसलिए इस अधिनियम के अंतर्गत न्यायिक मजिस्ट्रे ट के समक्ष जब कोई कार्यवाही की जाती है तो मजिस्ट्रेट ऐसे विवादों के निराकरण हेतु संरक्षण अधिकारी नियुक्त करता है और आवश्यकता पडनें पर बच्चों व महिलाओं की सुरक्षा के लिए व्यवस्था भी करता है | आदेश का पालन न होनें पर दण्डित करनें का भी उसे अधिकार है।

यह अधिनियम उन स्त्रियों को समाविष्टं करता है जो दुरूपयोगकर्ता या उसके रिश्तेदारी में रह रही है, गृहस्थी में भागीदारी है, विधवा है, मॉ है या अकेली स्त्री है | यह विधेयक किसी पुरूष भागीदार को पत्नि के विरूद्ध परिवाद फाईल करनें के योग्य नहीं बनाता।

यह विधेयक घरेलू हिंसा को परिभाषित करता है जिसमें दहेज की मांग के लिए तंग करना, संवेगात्मक/भावुक रूप से स्त्री को संताप/ परिपीडन करनें के कृत्य को भी समाविष्टम करता है | यह विधेयक स्त्रियों के अधिकारों के लिए उनके निवास स्थान में ही सुरक्षा प्रदान करता हैं व प्रार्थिया को सांझी गृहस्थी में निवास करनें का हक प्रदान करता है।

घरेलू हिंसा से महिला सरंक्षण अधिनियम 2005 के मुख्य प्रावधानों के मुताबिक घरेलू हिंसा की परिभाषा काफी व्यापक है, इसमें विशेष रूप से निम्न समाहित है –

1 शारीरिक हिंसा-

मारपीट करना, थप्पण मारना, ठोकर मारना, दांत से काटना, लात मारना, मुक्का मारना,धक्का देना, धकेलना व अन्य रीति से शारीरिक पीडा या क्षति पहुँचाना।

2 लैंगिक हिंसा-

बलात मैथून, अशलील सामग्री देखनें के लिए मजबूर करना, अपमानित या नीचा दिखानें के लिए अस्वीकार्य लैंगिक प्रकृति का कृत्य करना, बालको के साथ लैंगिक दुर्व्यवहार।

3 मौखिक एवं भावनात्मक हिंसा -

अपमान, गालियां देना, चरित्र/आचरण पर दोषारोप, लडका न होनें के लिए अपमान, दहेज के लिए अपमान, बालक को विद्यालय/महाविद्यालय जानें से रोकना, नौकरी करनें से रोकना,नौकरी छोडने को मजबूर करना, किसी व्यक्ति से मिलनें से रोकना, विवाह करनें के लिए मजबूर करना, अपनी पसन्द के व्यक्ति से विवाह करनें से रोकना, किसी व्यक्ति विशेष से विवाह करनें के लिए मजबूर करना, आत्महत्या करनें की धमकी देना, अन्य मौखिक या भावनात्मक दुर्व्यवहार।

4 आर्थिक हिंसा -

बच्चों के अनुरक्षण के लिए धन उपलब्ध न कराना, खाना कपडा इत्यादि उपलब्ध न करना,रोजगार से रोकना, विघ्न डालना, वेतन/पारिश्रमिक को ले लेना, उपभोग करनें से रोकना,निवास से बाहर निकलनें को मजबूर करना, घर के उपभोग करनें से रोकना, घरेलू कपडो,वस्तुओं आदि के इस्तेमाल से रोकना, मकान किराए आदि का अदा न करना।

धारा 5 के अधीन महिला सरंक्षण अधिकारी और सेवा प्रदाता की सहायता प्राप्त कर सकती है, धारा 9 एवं 10 के अधीन अनुतोष के लिए आवेदन कर सकती है, धारा 18 के अधीन घरेलू हिंसा से स्वयं एवं बच्चों के संरक्षण प्राप्त कर सकती है व दैनिक उपयोग की वस्तुएं वापस कब्जे में ले सकती है, धारा 20 एवं 22 के अधीन अंतरिम धन अनुतोष प्राप्त कर सकती है।

धारा 4 में किसी भी नागरिक को घरेलू हिंसा से संबंधित इत्तला करनें की नैतिक जिम्मेदारी मानवीय दृष्टिकोंण से सौंपी गई है | आज की विषम परिस्थितियों में पडोस की घटनाओं से जानबूझकर आदमी अपनें आप को अलग रखता है, घटना को देखनें सुनने से परहेज करता है, इत्तला देनें वाले पर ही शिकंजा न कसा जा सके या उसे इत्तला देनें का खामियाजा न भुगतना पडे इस लिहाज से धारा 4 में सूचना देनें के पश्चात की जिम्मेदारी से उसे उन्मुक्ति प्रदान की गई है | इस इत्तला को संरक्षण अधिकारी गुप्त रख सकेगा व इत्तला करनें वाले पर सिविल/ क्रिमिनल कार्यवाही नहीं हो सकेगी।

इस कानून के मुताबिक प्रत्येक पुलिस अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह संज्ञेय अपराध की रिपोर्ट मिलनें पर उसका अन्वेषण करे और कार्यवाही करे। वह इस आधार पर कर्तव्य विमुख नहीं हो सकता है कि "घरेलू हिंसा कानून के तहत कार्यवाही होना है" । ऐसा होनें पर पुलिस अधिकारी कर्तव्य पालन में दोषी माना जावेगा।

घरेलू हिंसा कानून की धारा ३६ के मुताबिक यह वर्तमान कानून को प्रवत्त अन्य कानून को प्रभावी बनाए रखता है और उसका प्रभाव कम नहीं करता है।

व्यथित/दुखी महिलाओं को यह सूचित भी किया जावेगा कि वह इस कानून की धारा १८ के तहत संरक्षण आदेश प्राप्त करनें का अधिकार रखती है और इस आदेश को भंग करनें पर धारा ३१ में शास्ति का भी प्रावधान है।

धारा 11 के अंतर्गत केन्द्रीय सरकार व राज्य सरकार को जिम्मेदारी सौंपी गई है कि इस कानून का व्यापक रूप से प्रचार प्रसार किया जावे, पुलिस/न्यायिक सेवा के सदस्य व अन्य अधिकारीगण को सुग्राह्यता व जानकारी का प्रशिक्षण दिया जावे।

विशेष बात यह है कि अन्य सिविल या क्रिमिनल मामलों की भांति कानून के अंडगो से दूर रखनें और अकारण मामले को लम्बा खींचने से पीडित को राहत देनें की दृष्टि से यह अधिनियम बनाया

गया है | धारा 12 (5) के मुताबिक अर्जी की प्रथम सुनवाई की तारीख से ६० दिन की अवधि में राहत प्रदान करनें के प्रावधान है साथ ही आवेदन पत्र देनें की तारीख से ३ दिन के भीतर प्रथम सुनवाई अपरिहार्य है। ऐसा महत्वपूर्ण प्रावधान अन्य अधिनियमों में नहीं है। साझी गृहस्ती में रहनें वाली स्त्री/महिला को भले ही अधिकार, स्वत्व या हित न हो तब भी उसके कब्जे को इस अधिनियम में संरक्षित रखा गया है।

महिलाओं के प्रति अपराध

हत्यायें – महिलाओं की हत्या के मामले तेजी से बढ़ रहे हैं | चरित्र पर संदेह, दहेज की मांग तथा पारिवारिक कलह के कारण महिला की हत्या करने के मामले अधिक प्रकाश में आ रहे हैं | कुछ मामलों में जमीन- जायजाद को लेकर भी महिलाओं को मार दिया जाता है | हत्या के अधिकांश मामले 15 से 40 वर्ष की उम्र के दरम्यान होते हैं |

मारपीट – घर-परिवार में ही महिलाएं सुरक्षित नहीं हैं | अक्सर छोटी-छोटी बातों पर उन्हें मारपीट का शिकार होना पड़ता हैा विशेषत- निम्न मध्यमवर्गीय तथा निम्नतवर्गीय परिवारों में महिलाओं से मारपीट अधिक होती है | पति की शराब की लत इसके लिए प्रमुख रूप जिम्मेदार हैं 20 से 45 वर्ष तक की उम्र की महिलाएं अधिकतर मारपीट की शिकार हो जाती हैं |

छेड़छाड़ – स्कूल-कॉलेज के बाहर लड़कियों के साथ छेड़छाड़ के प्रकरण अधिक सामने आते हैं | वहां पुलिस का तैनात न होना इसका मुख्य कारण हैं | इससे असामाजिक तत्वों को बढ़ावा मिलता है | 24 वर्ष से कम उम्र की युवतियां छेड़छाड़ की शिकार अधिक होती हैं |

अपहरण – नाबालिग लड़कियों के अपहरण के मामले ज्यादा हो रहे हैं | साथ ही शादीशुदा महिलाओं का भी बहला-फुसलाकर अपहरण कर लिया जाता हैा सामान्यत: 12 से 38 वर्ष तक की लडकियां, युवतियाँ तथा महिलाओं के अपहरण के मामले अधिक हो रहे हैं |

बलात्कार – परिवार के सदस्यों तथा रिश्तेदारों के द्वारा ही बलात्कार करने के मामले अधिक हो रहे हैं | नाबालिग लड़कियों से लेकर अधेड़ावस्था की महिलाओं को बलात्कार का शिकार बनाया जा रहा है | बच्चियों के साथ बलात्कार के मामले पिछले कुछ वर्षों में तेजी से बढ़ रहे हैं | बलात्कार के एक तिहाई मामले 10 से 30 की उम्र की लड़कियों तथा महिलाओं के साथ अधिक होते हैं |

आत्महत्याएं – अधिकतर मामले फांसी लगाने के होते हैं | इसका मुख्य कारण पति द्वारा शराब पीकर पत्नि के साथ मारपीट करना अथवा ससुराल वालों द्वारा प्रताड़ना है | दहेज की मांग भी इसका प्रमुख कारण है | 16 से 30 वर्ष की उम्र की युवतियों तथा महिलाओं द्वारा आत्महत्या करने के मामले अधिक देखे जाते हैं |

दहेज हत्या – भौतिक सुख-सुविधाएं बढ़ने के साथ-साथ दहेज लोभियों की मांगे भी बढ़ती जा रही हैं | निम्न मध्यमवर्गीय तथा अशिक्षित वर्ग ही नहीं बल्कि उच्चवर्गीय परिवारों में भी दहेज हत्या के मामले अधिक हो रहे हैं |

प्रताड़ना – पुलिस थानों में मानसिक तथा शारीरिक प्रताड़ना देने के मामले तेजी से बढ़ रहे हैं | गरीब तथा अशिक्षित वर्गों में प्रताड़ना के मामले अधिक होते हैं | शराब की लत, जुआं तथा आवारगी इसके प्रमुख कारण हैं |

महिलाओं की खरीदी-बिक्री – महिलाओं तथा युवतियों का अपहरण कर उन्हें बेचने का कृत्य खूब फल-फूल रहा है | गरीबी के कारण भी यह घिनौना कृत्य बढ़ रहा है | 14 से 30 वर्ष की उम्र की युवतियों तथा महिलाओं को बेचने का घृणित धंधा तेजी से बढ़ा है | मामले का एक पक्ष यह भी है कि उन्हें खरीदने वाले पुलिस के घेरे या कानूनी सजा से बच जाते हैं |

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम 2006 (The Protection of Women from Domestic Violence Rules 2006)

घर में पुरूष के साथ रह रही महिला को यदि पीटा जाता है, धमकी दी जाती है अथवा प्रताडित किया जाता है तो वह घरेलू हिंसा की शिकार है | ऐसी प्रताडित महिला घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम 2006 के अंतर्गत और सहायता प्राप्त कर सकती है।

घरेलू हिंसा के उदाहरण

(1) शारिरिक हिंसा

1. मारपीट करना
2. थप्पड़ मारना
3. ठोकर मारना
4. दांत से काटना
5. लात मारना
6. मुक्का मारना
7. धकेलना
8. किसी अन्य रीति से शारीरिक पीड़ा या क्षति पहुँचाना

(2) लैंगिक हिंसा

1. बलात लैंगिक मैथुन
2. अश्लीलल साहित्य या कोई अन्य अश्लील तस्वीरों को देखने के लिए विवश करना |
3. दुर्व्यवहार करने, अपमानित करने, अपमानित या नीचा दिखाने की लैंगिक प्रवृत्ति का कोई अन्य कार्य अथवा जो प्रतिष्ठा का उल्लंघन करता हो या कोई अन्यक अस्वीकार्य लैंगिक प्रकृति का हो।

(3) मौखिक और भावनात्मक हिंसा

1. अपमान
2. गालियाँ देना
3. चरित्र और आचरण पर दोषारोपण
4. पुत्र न होने पर अपमानित करना
5. दहेज इत्यादि न लाने पर अपमान

6. नौकरी करने से निवारित करना
7. नौकरी छोड़ने के लिये दबाव डालना
8. घटनाओं के सामान्य क्रम में किसी व्यक्ति से मिलने से रोकरना
9. विवाह नहीं करने की इच्छा पर विवाह के लिये विवश करना
10. पसंद के व्यक्ति से विवाह करने से रोकना
11. किसी विशेष व्यक्ति से विवाह करने के लिए विवश करना
12. आत्म हत्या करने की धमकी देना
13. कोई अन्य मौखिक या भावनात्मक दुर्व्यवहार

(4) आर्थिक हिंसा

1. बच्चों के अनुरक्षण के लिये धन उपलब्ध न कराना
2. बच्चों के लिए खाना, कपड़े और दवाइयाँ उपलब्ध न कराना
3. रोजगार चलाने से रोकना अथवा उसमें विघ्न डालना
4. रोजगार करने के अनुज्ञात न करना
5. वेतन पारिश्रमिक इत्यादि से आय को ले लेना
6. वेतन पारिश्रमिक उपभोग करने का अनुज्ञात न करना
7. घर से निकलने को विवश करना

महिला के प्रति हिंसात्म क व्यअवहार का वैधानिक स्व रूप और उत्पीरड़क व्य क्ति पर वैधानिक सजा का प्रावधान

क्र.	उत्पीडित महिला के साथ हिंसात्मक व्यवहार (रूपस्व)	वैधानिक अपराध	वैधानिक संभावित धारा	उत्पीड़क के प्रति सजा का प्रावधान
1	मानसिक हिंसात करनाबेइज्ज -, ताने देना, गालीगलौच करना-, झूठा आरोप लगाना, मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा न करना एवं मायके से न बुलाना इत्यादि हिंसा की धमकीशारीरिक - प्रताड़ना, तलाक एवं मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा न करने की धमकी देना।	पति या उसके रिश्तेदारों द्वारा मानसिक या शारीरि कष्ट देना।	498 498	3 साल 3 साल
2	झूठा आरोप लगाना या बेइज्जत		499	2 साल

	करना।			
3	साधारण शारीरिक हिंसाचांटा - मारना, धक्का देना और छीना झपटी करना।	तमाचा मारना, चोट पहुंचाना	319	3 माह
4	साधारण शारीरिक हिंसा – लकड़ी या हल्की वस्तु से पीटना, लात मारना, घूंसा मारना, माचिस या सिगरेट से जलाना।	आत्महत्या के लिए दबाव डालना, साधारण या गंभीर हिंसा	306	3 साल
5	अत्यंत गंभीर हिंसागंभीर रूप से - हड्डी टूटना या पीटना जिससे खिसकना जैसी घटनाएं शामिल है | गंभीर रूप से जलाना, लोहे की छड़, धारदार वस्तु या भारी वस्तु से वार करना।	गंभीर हिंसा – लोहे की छड़, तेज धार वस्तु का प्रयोग।	232	7 साल

दहेज मृत्यु	304	आजीवन कारावास
महिला की शालीनता भंग करने की मंशा से हिंसा या जबरदस्ती करना।	54	2 साल
अपहरण, भगाना या महिला को शादी के लिये विवश करना।	366	10 साल
नाबालिक लड़की को कब्जे में रखना	366	10 साल
बलात्कार र सरकारी कर्मचारी द्वारा या सामूहिक बलात्का) अधिक गंभीरमाने जाते हैं(	376	2- 10 वर्ष की उम्र कैद
पहली पत्नी के जीवित होते हुए दूसरी शादी करना	494	7 साल
व्यभिचार	497	5 साल
महिला की शालीनता को अपमानित करने की मंशा से अपशब्द या अश्लील हरकतें करना	509	1 साल

अंत में यह कविता घरेलू हिंसा से पीडित महिलाओं को समर्पित है तथा यह उन लोगों को भी समर्पित है जा इस समस्या में सुधार के लिए असंख्य क्षणों से प्रयासरत हैं|

Not wanting to leave, yet not safe to stay
Shadows
On her sad, vacant face
Bruises
Hid by a Coat of skin coloured denial
Not wanting to leave
Where could she go?
Not safe to stay
Did she do something wrong?
Not wanting to leave
He's the only one who loves me
Not safe to stay
Obviously it's here fault
She's so upset
Not wanting to leave
It's not like anyone would listen anyways
Not wanting to leave
Who would believe a small passive voice
Over the charming good boy
(The facade hiding the ugly monster introduced after our brief euphoria of magic)
Not safe to stay
This time not just for her; but for
The life within her womb
Not wanting to leave
But he loves her
What to do?
She only knows two things,
She doesn't want to leave
But it's not safe to stay
Laura Buzawa
Not wanting to leave, yet not safe to stay

अंतत: यह कहा जा सकता है कि हम एक स्त्री को केवल अर्थिक पक्ष से आत्मनिर्भर बनाकर ही सुरक्षित एवं मानसिक पक्ष से तनावमुक्त रख सकते हैं | एक समर्थनवादी तन्त्र ही ऐसी व्यवस्था में परिवर्तन ला सकता है | हमें समाज के अंतर्गत परिवर्तन लाने होंगे तथा सर्वप्रथम, समाज के

सामाजिक,आर्थिक नियमों एंव संकीर्ण मानसिकता की व्यवस्था को तोड़ना होगा । तत्पश्चात हम महिलाओं को संरक्षण देने के बारे में विचार कर सकते हैं| एक व्यकित की चिंतन शैली में बदलाव की आवश्यकता है तथा पुरुष एवं स्त्री, दोनों के लिए नैतिकता की संरचना एक समान होनी चाहिए, तभी हम समाज में महिलाओं को सुनिश्चितता दिला सकते हैं | इस स्तर पर हमें एक मानसिक क्रांति लाने की आवश्यकता है ताकि समाज की समाजिक मनोवृत्ति को बदला जा सके और हमें इससे भी आगे बढ़ने की जरूरत है | यह एक स्त्री का मानव अधिकार है कि वह भी पुरुषों के बराबर समानता का उपयोग कर सके एवं सभी सामाजिक द्वेष, लैंगिक भेदभावों, प्रतिबंधों से मुक्त होकर उसे भी अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन का अवसर मिले।

20.8 कार्यस्थल पर महिलाएँ

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के संबंधमें 1997 में सुप्रीम कोर्ट द्वारा जारी दिशा-निर्देश:

इसके अनुसार यौन उत्पीड़न सिर्फ प्रभावित महिला को एक व्यक्तिगत चोट ही नहीं है, बल्कि यह औरतों के लिए 'कार्यस्थल में समानता का अधिकार' के कानून का उल्लंघन करती है | यह नियोक्ता की कानूनी जिम्मेदारी है की वे अपने यहाँ कार्य हेतु महिलाओं के लिए सुरक्षित माहौल तैयार करें, जिसके अंतर्गत यौन उत्पीड़न और भेद-भाव जैसे परिस्थितियों से सख्ती से निपटा जाए अन्यथा नियोक्ता को कर्मचारियों द्वारा यौन उत्पीड़न के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है | -कार्यस्थल पर किसी भी तरह के यौन शोषण की मनाही है।

-यह कानून उन सभी औरतों पर लागू होता है, जो सरकारी, गैर सरकारी, पब्लिक, सार्वजनिक या निजी क्षेत्र में कार्य करती हैं |

-पीडित महिला को न्याय दिलाने के लिए हर संस्था, दफ्तर में एक यौन शोषण शिकायत समिति का गठन होना आवश्यक है | इस समिति की अध्यक्ष एक महिला होनी चाहिए। इसकी पचास प्रतिशत सदस्य महिलाएं होनी चाहिए तथा इसमें कम से कम एक बाहरी व्यक्ति को सदस्य होना चाहिए।

कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न (रोकथाम , निषेध और निवारण) अधिनियम , 2013

किसी के भी ' लैंगिक समानता ' और ' जीवन और स्वतंत्रता ' के अधिकारों का उल्लंघन करना वास्तव में अनुच्छेद 19 (1) जी के तहत पीड़ित के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करना हैं |

कार्यस्थल में यौन उत्पीड़न एक महिला के अधिकारों का उल्लंघन करती है और यह सिर्फ एक व्यक्तिगत चोट की बात नहीं है ।

अधिनियम में अस्पतालों, नियोक्ताओं और स्थानीय अधिकारियों के स्कूलों में छात्रों और कॉलेजों के साथ ही रोगियों को शामिल किया गया ।
यह कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न को परिभाषित करता है -
i) उसे रोजगार में विशेष ख्याल रखने का अंतर्निहित या स्पष्ट वादा |
ii) उसे रोजगार में हानि पहुचाने के लिए अंतर्निहित या स्पष्ट धमकी |
iii) उसके वर्तमान या भविष्य में रोजगार की स्थिति के बारे में अंतर्निहित या स्पष्ट धमकी |
iv) उसके काम में हस्तक्षेप या उसके लिए एक डराने या आक्रामक या शत्रुतापूर्ण वातावरण बनाने का कार्य करना |
v) अपमानजनक व्यवहार जो उसके स्वास्थ्य या सुरक्षा को प्रभावित करे।

आंतरिक शिकायत समिति

अधिनियम एक निर्धारित समय में शिकायतों का समाधान करने के लिए एक आंतरिक शिकायतों समिति का गठन 10 या इससे अधिक कर्मचारियों वाले सभी कार्यालयों के लिए यह अनिवार्य बनाता है | समिति कर्मचारियों के बीच कम से कम दो सदस्यों को सामाजिक कार्य या कानूनी ज्ञान में अनुभव हो, नियोक्ता द्वारा अधिनियम का पालन न करने पर उस पर 50,000 / - का जुर्माना लगेगा |
समिति में एक सदस्य किसी NGO की तरफ से हो जिसे यौन उत्पीडन मामलो का अनुभव हो| समिति का गठन कार्यस्थल पर एक वरिष्ठ स्तर के महिला कर्मचारी की अध्यक्षता में किया जाना चाहिए। मनोनीत सदस्यों में से 50% महिलायें होनी चाहिए।
कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न के मामलों को शिकायत समितियों द्वारा 90 दिनों के भीतर निपटाया जाना होगा, जिसके नाकाम रहने पर संगठन पर जुर्माना लगाया जायेगा, और बार बार कानून के प्रावधानों का पालन न करने पर संगठन का लाइसेंस या पंजीकरण रद्द किया जायेगा । कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न होने पर उत्पीड़क को नौकरी से निकला जा सकता है, या पद्दोंनती और वेतन वृद्धि भी रोकी जा सकती है, और शिकायतकर्ता को उचित मुआवजे का भुगतान भी करवाया जा सकता है ।

समिति द्वारा जांच के बाद यदि आरोपियों के खिलाफ आरोप झूठे साबित होते हैं तो समिति शिकायतकर्ता पर भी अधिनियम के अनुसार कार्यवाही कर सकती है।

कारखाना अधिनियम, 1948

कारखाना अधिनियम की धारा 66 के अनुसार, महिलाओं को प्रातः 6 से सायं 7 बजे के बीच छोड़कर किसी भी कारखाने में काम करने की अनुमति दी जाएगी।

प्रत्येक कारखाने में जिसमें तीस से अधिक महिलाएं सामान्यतया नियोजित हों, अधिक महिलाओं के छ: वर्ष से कम आयु के बच्चों के प्रयोग हेतु समुचित कमरा अथवा कमरे होंगे।

कार्यस्थल पर पुरुष

अभी तक माना जाता था कि वर्क प्लेस पर सिर्फ महिलाएं यौन उत्पीड़न का शिकार होती हैं, लेकिन आज बहुत से पुरुष भी ऐसी घटनाओं का शिकार हो रहे हैं | कुछ अध्ययनों से यह साबित भी हुआ है | सरकार देश में एक ऐसी स्टडी कराने की योजना बना रही है, जिससे वर्कप्लेस पर पुरुषो के यौन उत्पीड़न की असल तस्वीर सामने आ सके। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय इस ओर अपने कदम बड़ा रहा है | मंत्रालय के पास ऐसे सुझाव आए हैं कि इस बिल को महिला और पुरुष में भेद करने वाला नहीं होना चाहिए।

किन क्षेत्रों में ज्यादा होता है उत्पीड़न : ग्लैमर इंडस्ट्री, फिल्म और टेलिविजन इंडस्ट्री, डिफेंस सर्विसेज, प्रोफेशनल कॉलेजों के हॉस्टल, बीपीओ, आईटी सेक्टर जैसे तमाम क्षेत्र हैं, जहां पुरुषों के उत्पीड़न की घटनाएं सामने आती हैं | मंत्रालय के एक सूत्र के मुताबिक, वैसे तो इस अध्ययन में देश के तमाम शहरों, तबकों और क्लास को शामिल किया जाएगा, लेकिन हमारा ध्यान ऐसे क्षेत्रों पर ज्यादा होगा, जहां ऐसी घटनाएं होने की संभावना ज्यादाहै |

कौन करता है उत्पीड़न : अब तक हुए अध्ययनों से सामने आया है कि पुरुषों के उत्पीड़न के लिए महिला और पुरुष, दोनों जिम्मेदार हैं | माना जा रहा है कि इसके पीछे बदलती सोच है | पुरुषों के मामले में बॉस और सहकर्मी दोनों ही उनका उत्पीड़न करते हैं | विशेषज्ञों के मुताबिक, ताकतवर पदों पर महिलाओं के सामने आने और होमोसेक्सुअल लोगों के प्रति बदली सोच के चलते ऐसी घटनाएं होने लगी हैं |

कार्यस्थल पर बच्चें

बहुत से ऐसे उद्योग हैं जैसे माचिस और पटाखा उद्योग, मुरादाबाद का बर्तन उद्योग, ताला उद्योग, कालीन उद्योग, निर्माण उद्योग, रत्न पालिश उद्योग जंहा बालकों का शोषण किया जाता है | बालक न सिर्फ शारीरिक शोषण के शिकार बनते हैं | भावनात्मक शोषण का शिकार भी बनते है | उनका कहना है कि बच्चों के शोषण को रोकने के लिए सरकार को तत्काल क़ानून कड़े करने चाहिए| एक सर्वेक्षण के अनुसार रत्नपालिश उद्योग में कार्यरत बाल मजदूरों में से तीस प्रतिशत तपेदिक की बीमारी के शिकार हैं | इसकी वजह कार्यस्थल पर भीड़ तथा कुपोषण है | स्वास्थ्य की दृष्टि से बालिका मजदूरों की स्थिति और भी ख़राब है | परिवार की उपेक्षित इकाई होने के कारण उन्हें पौष्टिक आहार नहीं मिलता और ऐसे में उद्योगगत बीमारियों उन्हें ज्यादा कमजोर व अस्वस्थ्य बना देती है | माता-पिता उन्हें अस्पताल भी नहीं ले जाते| अक्सर काम से वापस आने के बाद उन्हें घरेलू कामों में भी हाथ बटाना पड़ता है |

नीचे दिए गए उदाहरण से बालकों के प्रति शोषण कों समझने में आसानी होगी |

आठ साल की अंजना अपने घर के छोटे से आँगन में बैठी है | उसके पास उसकी छोटी बहन भी बैठी हैं तीन साल की वह बच्ची अपनी बहन की उँगलियों को कटा-कट काम करते देख रही है | अंजना छोटी-छोटी लड़कियों के टुकड़े उठाती है, उन्हें मोड़ती है और एक बॉक्स की शक्ल देती है फिर एक रंगीन कागज उठाती है | गोंद से कुछ चिपकाती है तथा उसकी उँगलियाँ फिर रंगीन कागज में खो जाती है |

रानी की उम्र बारह साल है | अब वह घर में माचिस बॉक्स नहीं बनाती बल्कि शहर के पास एक छोटे से कारखाने में जाती है | वहाँ रानी जैसे सैकड़ों लड़कियाँ रोजाना काम पर आती है | रानी ने स्कूल की शक्ल तक नहीं देखी | कैसे देखती, बचपन में ही छोटे भाई-बहनों के देखरेख पर लगा दिया गया

था| इससे माँ को बाहर काम करने में कोई दिक्कत नहीं आई| जब रानी 6 साल की थी तब उसकी माँ ने घर में ही माचिस बॉक्स बनाने का काम ला दिया| वह बहन-भाइयों की देखरेख के साथ माचिस बनाने लगी और कुछ पैसा भी कमाने लगी| दस साल की उम्र में घर से बाहर निकली और घर के पास ही एक दुकान पर यही काम करने लगी और बारह साल की उम्र में उसने अपने पैर कारखाने में रखे| चूँकि अभी वह कानूनन कारखाने में मजदूरी नहीं कर सकती थी इसलिए उसके मलिक ने उसकी उम्र 14वर्ष लिख रखी है | रानी भी अब सबको अपनी उम्र ही बताती है |

यह दृश्य तमिलनाडु के शिवकाशी और उसके इर्द-गिर्द क्षेत्र का है | शिवकाशी संसार का वह इलाका हैं जहाँ सबसे ज्यादा बालिका मजदूर काम करती हैं | इस अर्थ में यह इलाका विश्व की बालिका मजदूर राजधानी है | तमिलनाडु का यह शहर माचिस और पटाखा उद्योग के लिए विश्वप्रसिद्ध है | देश में बनने वाली माचिसों का 75 प्रतिशत और पटाखों का 90 प्रतिशत उत्पादन यहीं होता है | शहर एवं आस-पास में माचिसों के अंदाजन 6,000 कारखाने हैं और आतिशबाजी बनाने वाले कारखानों की संख्या 200 के आस-पास है यूनिसेफ के क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम (1980) के अनुसार माचिस उद्योग में मजदूरों की संख्या 106,648 थी| इनमें 45,269 बाल मजदूर थे| गुरुपादस्वामी की रिपोर्ट (1979) के अनुसार बाल मजदूरों की संख्या 50 हजार है | जबकि 1986 का एक सरकारी सर्वेक्षण ऐसे बच्चों की संख्या 141,121 बताता है | लेकिन यह जगजाहिर है कि आंकड़ों को छुपाने में इस देश को महारत हासिल है |

अंदाजन 40 हजार बच्चे सूर्य उदय होने से पहले ही अपना घर छोड़ देते हैं | वे पढ़ने के लिए नहीं उठते बल्कि अपने काम पर जाने के लिए उठते हैं | इस व्यवसाय में बच्चे बचपन से ही माता-पिता के काम में हाथ बंटाने लगते हैं | 3-14 साल की उम्र वर्ग वाले बच्चे इस व्यवसाय में अपना श्रम बेचते हैं | माता-पिता लड़कों की पढ़ाई में तो रूचि लेते हैं मगर लड़कियों को स्कूल नहीं भेजते| इसे पीछे उनकी दलील व मानसिकता दहेज़ के लिए पैसा इकट्ठा करना व घर में अकेली लड़की की सुरक्षा का सवाल है | कभी बहिन अपने साथ कारखाने ले जाती है तो कभी घर में तीन-चार लड़कियां इकट्ठे मिलकर माचिस बनाने का काम करने लगती हैं | तमिलनाडु सरकार और यूनिसेफ द्वारा तैयार की गयी एक रिपोर्ट के अनुसार कुल श्रम शक्ति को 90 और बाल मजदूरी का 80 प्रतिशत तक महिलाएं और लड़कियाँ हैं|

माचिस उद्योग से उपलब्ध आंकड़ों के मुताबिक 76 प्रतिशत लड़कियाँ माचिस के फ्रेम बनाने और 4 प्रतिशत बैंड रोलिंग के कामों में लगी हैं | अधिकांश लड़कियाँ माँ-बहन के काम में हाथ बंटाने के उद्देश्य से काम में प्रवेश करती हैं और धीरे-धीरे स्वतंत्र रूप से कमाने लगती हैं |

माचिस तथा पटाखा उद्योग में बच्चे गन पाउडर रोल करने, पटाखे बनाने तथा पटाखों की पैकिंग का काम करते हैं | ये खतरनाक काम हैं | बच्चे माचिस बॉक्स बनाने, उस पर रंगीन कागज और लेबल चिपकाने का काम भी करते हैं | माचिस बॉक्स में तीलियाँ भरने का काम भी काम करते हैं | काम का विभाजन भी लिंग के आधार पर तय किया जाता है | कारखानों के मालिक व ठेकेदार महिलाओं व बालिकाओं को अकुशल कार्यों में लगाते हैं और लड़कों को रसायन का घोल बनाने और पेंटिग का काम सिखाया जाता है ताकि उनका भविष्य आर्थिक दृष्टि से मजबूत हो सके | पटाखा उद्योग में रसायनों का उपयोग कम उम्र के बच्चों को बुरी तरह प्रभावित करता है और वे अक्सर बीमार पड़ जाते हैं |

यहाँ बच्चों को प्रतिकूल परिस्थितियों में काम करना पड़ता है | कारखानों में दूषित हवा की निकासी और साफ हवा के आने का उचित प्रबध नहीं है | रोशनी भी अपर्याप्त है | यहाँ तक कि पेय जल और शौचालय भी बहुत कम कारखानों में हैं | यहीं नहीं बाल मजदूरों को औसतन 12 घंटे काम करना पड़ता है | कभी कभार ये बच्चे 14 घंटें भी काम करते हैं | सस्ती बाल मजदूरी कराने के लिए कारखानों के मालिकों के आदमी सुबह बसों में इन्हें भेड़-बकरियों की तरह भरकर कार्य स्थल पर ले जाते हैं | इनसे ज्यादा काम लेने के लिए कार्य स्थलों पर तमिल फिल्मों के भड़काऊ गानों की कैसेट लगायी जाती है ताकि बच्चों की नींद न आए और संगीत की धुन उनकी उँगलियों की गति भी बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो| माचिस उद्योगों में स्थायी कर्मचारी बहुत कम रखे जाते हैं | मजदूरी पीस रेट के आधार पर दी जाती है | मेहनताना बहुत कम मिलता है | एक फ्रेम भरने के 55 पैसे| माचिसों के 144 भीतरी बॉक्स बनाने के 60 पैसे, 300 बॉक्स पर लेबल लगाने के 60 पैसे| स्थायी कर्मचारी न होने के कारण बाल मजदूर अपने हितों की लड़ाई नहीं लड़ पाते| बालिका मजदूरों की स्थिति तो और भी दयनीय है | बालिका मजदूरों की प्रतिमाह सप्ताह औसतन मजदूरी 38 रूपये हैं | लेकिन या आंकड़ा 13 से 70 रूपये के बीच झूलता रहता है | छोटी बालिका को तो यह रकम भी नहीं मिलती| क्योंकि उनकी गिनती माँ या बहन के मददगार के रूप में की जाती है | इसलिए उनकी मेंहनत व पारिश्रमिक की अलग से कोई पहचान नहीं बन पाई है |

इस आर्थिक शोषण के साथ-साथ उन्हें कई बार कारखानों के निरीक्षण और दूसरे कमर्चारियों की अश्लील हरकतों का भी सामना करना पड़ता है | माचिस व पटाखा उद्योग से जुडी अधिकांश बालिकाएँ अनपढ़ है | छोटी बच्चियां काम पर जाती हैं, जबकि उसी उम्र के लड़के स्कूल जाते हैं | बच्चियों को काम पर इसलिए भेजा जाता है कि वे अपने दहेज समस्या से भी जुड़ी है | 115 बालिकाओं पर किये गए अध्ययन से पता चलता है कि 14 साल से कम उम्र की महज 20 प्रतिशत लड़कियाँ कक्षा एक में भर्ती थीं | ठीक इसके उलट 71.4 प्रतिशत लड़के स्कूल जाते थे| लड़कियों के घर बैठाने के पीछे एक मुख्य कारण यह है कि घर में छोटे-बहन भाइयों की देखभाल करती है ताकि माता-पिता रोजाना बाहर जाकर दिहाड़ी तलाश कर सकें| बालिका मजदूर कारखानों से लौटकर भी काम में हाथ बंटाती हैं | यही नहीं जो बालिकाएँ स्कूल जाती हैं, वे स्कूल से सीधा कारखाने जाती हैं ताकि माँ-बहन के काम को पूरा करने में मदद कर सकें और उनकी आर्थिक कमाई में वृद्धि हो | बालिकाओं पर आर्थिक योगदान का इतना दबाव है कि वे साप्ताहिक अवकाश वाले दिन भी कारखानों में काम करने जाती हैं | बेशक अगले दिन उनकी परीक्षा ही क्यों न हो| यह दबाव दक्षिण भारत में बढ़ रही दहेज प्रवृत्ति की ओर भी इशारा करता है |

इस उद्योग में बाल मजदूर लगातार रसायनों के सम्पर्क में रहकर काम करते हैं | उनका मुख्य काम गन पाउडर रोल करना, पटाखे बनाना तथा पटाखों की पैकिंग आदि करना है | माचिस की तिललियों पर पैराफ्रिन लगाने, माचिस बनाने की प्रक्रिया में रसायनों और मोम की 67 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान पर मिलाया जाता है | यह काम करते वक्त बाल मजदूरों के बदन पर बहुत ही कम कपड़े होते | यह गर्म वातावरण उनकी कार्य क्षमता और सेहत को प्रभावित करता है | अधिकांश बच्चे साँस सम्बन्धी बीमारियों तथा नेत्रों रोगों से ग्रसित होते हैं | बच्चों को अक्सर तपेदिक, कुपोषण से उत्पन्न बीमारियों पेट की गड़बड़, खाज-खुजली जैसे त्वचा की बीमारियों की शिकायत रहती है | 10-12 घंटे काम करने से शरीर दर्द करने लगता है | शारीरिक दर्द को दूर करने के लिए बच्चे कई तरह की दवाईयां इस्तेमाल करते हैं जो अंततः नुकसानदायक सिद्ध होती है | कई बच्चे तम्बाकू सूंघने से

लेकर हल्की नशीली दवाइयों के भी आदी हो जाते हैं | डिब्बियों में तीलियाँ भरने की प्रकिया में तीलियों की रगड़ से कभीकभार कारखानों में आग लगने की घटनाएँ भी होती हैं | आगजनी की घटनाओं से बाल मजदूरों के शरीर पर जलने के निशान देखे जा सकते हैं |

सरकारी प्रशासन व कारखाना मालिक आगजनी की घटनाओं की गभीरता से नहीं लेते| आज तक किसी भी कारखानेदार को जेल नहीं भेजा गया| उनसे कुछ सौ रूपये जुर्माना करके छोड़ दिया जाता है | ऐसी परिस्थितियों में बाल मजदूरों की उदासी पहले से ज्यादा गहरी हो जाती है |

गौरतलब है कि बाल मजदूरी को निषिद्ध करार देने वाले कानून कहते हैं कि 14 साल की कम उम्र के किसी भी बच्चे से काम नहीं लिया जाएगा| कानून इस तथ्य का भी खुलासा करता है कि बच्चे 6 घंटे से ज्यादा और साथ ही खतरनाक परिस्थितियों में काम नहीं लिया जायेगा पर शिवकाशी में पटाखों की चकाचौंध में कानून को धुंधला दिखाई देने लगा है |

इन मजदूरियों की त्रासदी यह है कि शोषण का चक्र सिर्फ आर्थिक स्तर पर ही नहीं रुक जाता| बल्कि इन सबकी एक भयावह कड़ी यौन शोषण भी है | ठेकेदार इन्हें आधी दिहाड़ी व ज्यादा काम का लालच देकर कई बार दूरदराज इलाकों में ले जाते हैं | जहाँ उनके (महिलाओं के) परिचित मर्द नहीं होते| वहाँ उनका यौन शोषण होता है | यौन शोषण की ज्यादा शिकार बालिका मजदूर होती है |

सारांश में यह माना जा सकता है कि कार्यस्थल पर महिलाओं, पुरुषों और बच्चे प्रत्येक वर्ग का शोषण होता है | सर्वेक्षणों के अनुसार ऐसी घटनाएँ महिला वर्ग में पुरुष वर्ग से आधिक होती हैं | साथ में यह भी कहा जा सकता है की शोषण में सिर्फ शारीरिक शोषण नहीं होता , अपितु मानसिक एवं भावनात्मक शोषण भी होता है | आमदनी से आधिक कार्य, किसी भी कर्मचारी कों भावनात्मक चोट , बेहूदा टिप्पणी, किसी कर्मचारी विशेष का हास्य बनाना आदि भी शोषण की श्रेणी में आते हैं | सरकार के लिए यह आवश्यक है की वह इसके लिए भी सख्त कानून बनाएँ |

20.9 सामाजिक समस्याओं का समाधान

सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में यह प्रश्न इनके निवारण से सम्बन्धित है | इन समस्याओं का निवारण किस प्रकार किया जा सकता है? तथा क्या इन सामाजिक समस्याओं का हल सम्भव है, इस प्रश्न. के प्रत्युत्तर में सकारात्मक दृष्टिकोण को अपनाया जा सकता है | सामाजिक समस्याओं के इतिहास पर विहंगम दृष्टि डालने से हमें पता चलता है कि समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति स्थायित्व एवं संतुलन बनाए रखने के लिए भिन्न–भिन्न समाजों ने अपनी–अपनी सामाजिक समस्याओं को यथा सम्भव हल करने का प्रयास किया है | किसी भी सामाजिक समस्या का हल सामाजिक समस्या की प्रकृति और तीव्रता पर निर्भर करता हैं | अगर कोई सामाजिक समस्या इस प्रकार की है जिसका समाधान त्वरित गति से करना अपरिहार्य है तो समाज के मूर्धन्य लोगों ने सामाजिक व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए वांछित हल प्रस्तुत किए हैं और समस्या की तीव्रता को कम करने का भरसक प्रयास भी किया है | परन्तु समाज में उन साधनों की कमी अवश्य देखी जा सकती है जो समस्या को पूर्ण रूपेण निस्तारण करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं | सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु निम्नांकित तीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किये जा सकते हैं –

1. बहुकारकबादी दृष्टिकोण (Multipal Factor Perspective) :–

समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है | यह एक अमूर्त एवं जटिल व्यवस्था है | अत: किसी भी सामाजिक प्रघटना की पृष्ठभूमि में अनेक कारक निहित होते हैं | इसी तथ्य को मद्देनजर रखते हुए हम कह सकते हैं कि सामाजिक समस्याओं के मूल में अनेक कारक विद्यमान रहते हैं | बेरोजगारी, बाल विवाह, भिक्षावृत्ति, मद्यपान, छात्र–असंतोष इत्यादि सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु, बहुकारकवादी दृष्टिकोण को अंगीकार करना चाहिए। किसी भी सामाजिक समस्या के वैज्ञानिक एवं तथ्यपरक समाधान हेतु अनेक कारकों पर बल देने के कारण इस मत को बहुकारकवादी दृष्टिकोण के नाम से अभिहित किया जाता है।

2. पारस्परिक सम्बद्धता (Inter–Relatedness) :–

सामाजिक समस्याऐं परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होती हैं तथा इनके अनेक कारण होते हैं जो एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित होते हैं | किसी के सामाजिक समस्या का स्वतंत्र रूप से अन्य समस्याओं से सम्बन्धित हुए बिना पृथक अस्तित्व नहीं होता। प्रत्येक सामाजिक समस्या अनेक समस्याओं का अन्तर संबंधित परिणाम होती है | इसीलिए किसी भी सामाजिक समस्या के निराकरण के लिए अनेक परस्पर कारकों तथा कारणों का वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ उपागमों द्वारा समाधान खोजना अपरिहार्य है | उदाहरण के लिए, बेरोजगारी की समस्या के मूल में अन्य सामाजिक समस्याएं यथा जनसंख्या वृद्धि, दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली, लघु एवं कुटीर उद्योगों का पतन इत्यादि जिम्मेदार हैं | ये परस्पर सम्बन्धित भी हैं | बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए, इसके मूल में विद्यमान अनेक समस्याओं का निराकरण करना अति आवश्यक है |

3. सापेक्षिता (Relativity) :–

सामाजिक समस्याएं स्थान, काल, समाज एवं संस्कृति सापेक्ष होती हैं, अर्थात किसी भी समाज में किसी निश्चित समयावधि में कोई दी हुई एक क्रिया या व्यवहार सामाजिक समस्या हो सकती है | आज भारत में जिस स्थिति अथवा दशा को एक सामाजिक समस्या के रूप में स्वीकार किया जाता है वह किसी कालावधि में एक समस्या नहीं थी। उदाहरण के लिए भूतकाल में अस्पृश्यता एवं छूआछूत एक सामाजिक समस्या नहीं मानी जाती थी, परन्तु वर्तमान में इसे एक गम्भीर सामाजिक समस्या के रूप में स्वीकार किया जाता है | इसी प्रकार वर्तमान में जिस स्थिति को हम एक सामाजिक समस्या मानते हैं, सम्भव है वही स्थिति आने वाले भविष्य में सामान्य दशा बन जाए और समाज उसे समस्या नहीं माने।

उपर्युक्त वर्णित तीनों दृष्टिकोणों के द्वारा किसी भी सामाजिक समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है, परन्तु समस्याविहीन समाज की कल्पना करना असम्भव सा प्रतीत होता है | यद्यपि दृढ़ इच्छा शक्ति के द्वारा किसी भी सामाजिक समस्या की उग्रता एवं तीव्रता पर अंकुश लगाया जा सकता है।

सामाजिक समस्याओं का समाधान ढूंढने में कठिनाईयों का सामना भी करना पड़ता है | हेरी एम. जोनसन की मान्यता है कि शक्तिशाली मनोभाव तथा निहित स्वार्थो द्वारा समर्थित सामाजिक संरचना, सामाजिक समस्याओं का समाधान निकालने में बाधा उत्पन्न करते हैं | समाज में सामाजिक समस्या की उपस्थिति से कुछ शक्तिशाली लोगों के हितों की पूर्ति होती है | सतही तौर पर ये लोग समस्या के निस्तारण में रूचि दिखलाते हैं परन्तु आन्तरिक रूप से समस्या के बने रहने की आकांक्षा भी करते हैं | अनेक लोग दीर्घ अवधि तक किसी दीर्घ को समस्या के रूप में स्वीकार ही नहीं करते।

सामाजिक समस्याओं के अध्ययन की अपरिहार्यता :– सामाजिक संस्थाओं के अध्ययन के निम्नलिखित तीन प्रमुख कारण हो सकते हैं –

1. सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के द्वारा समाज वैज्ञानिकों की भूमिका का पता चल जाता है।
2. सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के द्वारा ही लोगों को बताया जा सकता है कि अमुक अवांछनीय सामाजिक स्थिति उनके दैनिक जीवन को किस प्रकार प्रभावित कर सकती है।
3. सामाजिक अध्ययन के द्वारा यह ज्ञात होता है कि सामाजिक समस्याओं की जड केवल सामाजिक विचलन ही नहीं हैं वरन् अनेक बार सामाजिक अपेक्षाओं को पूरा करने, से भी सामाजिक समस्याऐं पैदा होती हैं |

20.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई में समाज की प्रगति में बाधा वाली समस्याओ के बारे में विस्तार से चर्चा की | लोकतन्त्र के जागरूकनागरिक होने के नाते हमें अपने कर्तव्यों और आधिकारों की जानकारी होनी चाहिये साथ ही देश के विकास हेतु ऐसी समस्याओँ कों जड़ से समाप्त करने की कोशिश करनी | | इकाई के अंत में इन्ही समाधानो के बारे में बताया गया हैं | चाहिये

20.11 कठिन शब्द

- **सामाजिक शोषण** - सामाजिक शोषण प्राचीन समय से चली आ रही प्रक्रिया है पुरुषों | उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग ,मालिक द्वारा श्रमिकों का शोषण ,द्वारा महिलाओं का शोषण हमारे समाज में देखने को मिलते :वं और भी अन्य प्रकार के शोषण प्रायका शोषण एहैं |
- **बाल श्रम -** बाल श्रम बाल उत्पीड़न का एक प्रकार है। परिवार की सीमित आमदनी, निम्न जीवन स्तर, परिवार का वृहत आकार तथा पारिवारिक उपेक्षा और उत्पीड़न के परिणाम स्वरुप एक कम आयु का बालक श्रमिक की स्थिति में पहुँच जाता है|
- **घरेलू हिंसा -** कोई भी महिला यदि परिवार के पुरूष द्वारा की गई मारपीट अथवा अन्य प्रताडना से त्रस्त है तो वह घरेलू हिंसा की शिकार कहलाएगी।

20.12 बोध प्रश्न

1. बाल श्रम के प्रमुख कारण क्या हैं ?
2. कार्यस्थल पर पुरुष की स्थिति के बारे में लिखिये |
3. **कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न रोकथाम), निषेध और निवारण (अधिनियम, 2013** के बारे में विस्तार से लिखिये |
4. घरेलू हिंसा की व्यापकता एवं प्रकार तथा घरेलू हिंसा से महिलाओं के संरक्षण अधिनियम २००५ के मुख्य प्रावधान लिखिये |
5. सामाजिक हिंसा में क्षेत्र? भाषा और जाती की क्या भूमिका होती हैं ,
6. सामाजिक समस्याओ के क्या क्या समाधान हो सकते हैं ?

20.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Paul B.Horton and Gerald R Leslie: The Sociology of Social problems
- Marry E. Walsh and Paul H. Furfey : Social Problems and Social Action
- E.R. Mowrer : Disorganization – Personal and Social
- Elliott and Merrill : Social Disorganization
- Martin H. Newmeyer : Social Problems and the Changing Society
- Domestic Violence: A Reference Handbook **MargiLaird McCue.** ABC-Clio, 2008 (2nd edition)
- Handbook of Domestic Violence Intervention Strategies: Policies, Programs, and Legal Remedies. **Albert R. Roberts.** Oxford University Press, 2002
- Domestic Violence Against Women In India: Author: A.K. Singh, S.P. Singh & S.P. Pandey
  Year: Eastern Book Corporation, 2009
- Dharmyug Articles

  The Sexual Harassment of Women at Workplace ... - Wikipedia